समर्पण—

प्रो० भीखन लाल आत्रेय को

प्रकाशकीय

हिंदी में मनोविज्ञान संबंधी उच्चस्तर के ग्रंथों के अभाव को देखते हुए हिंदुस्तानी एकेडेमी ने इस विषय से संबंधित अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए हैं। प्रस्तुत ग्रंथ भी इसी अभाव की पूर्ति के लिए है। श्री यशदेव शल्य जी ने मन और उससे संबंधित समस्त प्रक्रियाओं का विवेचन अत्यन्त सरल ढंग से किया है। यद्यपि पुस्तक का विषय अत्यन्त जटिल है, किन्तु इस पुस्तक में योग्य लेखक ने उसको सरल और रोचक बना दिया है। मेरा विश्वास है कि हिंदी संसार तथा इस विषय में रुचि रखने वाले पाठक और विद्यार्थी प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत करेंगे और उसे अत्यन्त उपयोगी पावेंगे।

धीरेन्द्र वर्मा
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
उत्तर प्रदेश,
जनवरी १९५८

प्राक्कथन

इन पृष्ठों में मैंने 'मनस्तत्तव' की अपनी कल्पना को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें सभी पहलुओं से 'मनस्तत्त्व' का विश्लेषण हो, ऐसी बात नहीं है, किन्तु मन के अस्तित्व का क्या अर्थ है और हमारी प्रवृत्तियों और प्रक्रियाओं का क्या रूप और आधार है, इस सम्बन्ध में एक रूपरेखा अवश्य बन सकी है। प्रथम पांच निबन्ध मुख्यत: शरीरविज्ञान और जीवविज्ञान से संबन्ध रखते हैं। इन निबंधों में या तो मनस्प्रक्रिया का विश्लेषण है अथवा हेरेडिटी (Heridity) के अर्थ का। शेष निबन्धों में मन की दार्शनिक व्याख्या है।

प्रथम निबन्धों में हमने शरीर वैज्ञानिक और जीववैज्ञानिक आधार पर मनस्प्रक्रिया की यांत्रिकता का प्रतिपादन किया है। हमारे विचार से दो निबंध विशेष महत्व के हैं। तृतीय निबन्ध में जेनेटिक्स की सहायता से विकासवाद की व्याख्या का प्रयास किया गया है। इस निबंध का महत्व और इस पुस्तक में संगति कुछ अस्पष्ट है, किन्तु मन की मेरी कल्पना में यह अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि मैं अमीबा और मनुष्य को मूलत: भिन्न नहीं समझता, जैसा कि प्रत्येक विकासवादी के लिए ठीक है, किन्तु इस विकास के कारण क्या हैं? दूसरे निबंध में हमने मनस्प्रक्रिया की व्याख्या की सहायता से विकासवाद में से 'मानसिक-प्रयास' की कल्पना को दूर करने का प्रयास किया है और तृतीय निबंध में विकास के कारण स्पष्ट करने का प्रयास हैं। तृतीय निबंध इस दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है कि चतुर्थ निबंध में हेरेडिटी (Heredity) के सम्बन्ध में जो कहा गया है उसके लिये यह निबंध आधार प्रस्तुत करता है। चतुर्थ निबंध हेरेडिटी और परिवेश के सम्बन्ध का विश्लेषण है और व्यक्तित्व-निर्माण में उनके महत्व की व्याख्या है। यह निबन्ध प्रथम दो निबन्धों में प्रस्तुत तथ्यों का जेनेटिक्स की सहायता से समर्थन भी है। पाँचवें निबन्ध में प्रवृत्ति और विचारणा (Instinct and Intelligence) की व्याख्या है। ये पाँचों निबन्ध केवल मनस्प्रक्रिया की यान्त्रिकता, अथवा जो भी कुछ इसे नाम दिया जाए, को ही प्रमाणित नहीं करते प्रत्युत् मन को एक मेटर आफ डिगरी) भी मानते हैं। इनमें अमीबा और मनुष्य को एक शृंखला की दो सापेक्ष कड़ियां स्वीकार किया गया है।

पिछले निबंधों में मन की 'अमानसिकता' अथवा भौतिकता के समर्थन में

कुछ और तर्क हैं। प्रथम पाँच निबंध केवल आधार प्रस्तुत करते हैं, उन्हें निर्णयात्मक नहीं कहा जा सकता। स्पष्टतः ही यहाँ बहुत से प्रश्न छोड़ दिए गये हैं या उनको पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया, किन्तु पुस्तक पहले ही काफी भारी हो चुकी थी और मेरे पास इतना समय और धैर्य नहीं था कि और लिख सकता, इसलिए उन प्रश्नों को अन्य पुस्तक के लिए छोड़ देना उययुक्त समझा गया।

यहाँ एक बात की ओर पाठकों का ध्यान मुझे और आकर्षित करना है:—वह है एक महत्वपूर्ण शब्द अथवा सिद्धान्त—'प्रक्रियात्मक-सम्बन्ध' अथवा प्रक्रिया का सिद्धान्त। यह सिद्धान्त मेरी मनस्प्रक्रियाओं की व्याख्या को समझने के लिए अपूर्व महत्व का है क्योंकि इसका स्रोत मेरी ही कल्पना है। इसी से इसके महत्व और अर्थ को समझने में भूल हो सकती है।

यह पुस्तक विश्व विद्यालयों के दर्शन के विद्यार्थियों के लिए भी उपयोग की हो सकती है। यद्यपि इसमें जीववैज्ञानिक अध्ययन कुछ अधिक है और दर्शन के विद्यार्थियों को जीवविज्ञान का ज्ञान इतना नहीं होता, किन्तु उन्हें यह जीवविज्ञान के कोर्स के लिए नहीं पढ़नी है, वे जीववैज्ञानिक तथ्यों की उलझन में पड़े विना इसके अर्थ को सुविधा से समझ सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यदि जीवविज्ञान और शरीर विज्ञान मन की प्रकृति को समझने के लिए अवश्यक हैं तो कोई कारण नहीं कि विद्यार्थी इस सम्बन्ध में इतना भी जानने का प्रयास क्यों नहीं करें।

पुस्तक के चित्र श्री गुरबचन सिंह ने मेरे बनाए हैं, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

अखिल भारतीय दर्शन परिषद्
लाइन बाज़ार
फरीदकोट (पंजाब)

यशदेव शल्य

विषय-सूची

	पृष्ठ
समर्पण	
प्राक्कथन	
धन्यवाद प्रकाश	
प्रवेश	क—र
१—प्रक्रिया के स्रोत	१
२—मनस्प्रक्रिया और विकास	५१
३—जेनेटिक्स: विकास की याँत्रिक प्रक्रिया	९९
४—फिनोजेनेटिक्स और व्यक्तित्त्व	१६०
५—प्रवृत्ति की प्रकृति	१९३
६—शरीर और मन	२२१
७—कारणवाद और स्वतन्त्रेच्छा का प्रश्न	२४७
८—पदार्थ और मन	२८३
९—अनुक्रमणिका	३१६
१०—शुद्धिपत्र	३२५-२८

धन्यवाद-प्रकाश

१ पृ०२-७ ग्राफ मोर्गन टी० की "फिजियालोजीकल साइकालोजी" से उद्धृत ।

२ पृ० ४२ तथा ४८ के चित्र मोर्गन टी० की "फ़िजियालोजीकल साइकालोजी" से उद्धृत ।

३ पृ० ११३ तथा १२९ के चित्र "प्रिंसीपल्ज़ ऑफ जेनेटिक्स" ले० सिन्नट और डन से उद्धृत ।

४ पृ० १२८ का चित्र "मीनिंग ऑफ एवोल्यूशन" ले० सिम्पसन, जी० जी०, से उद्धृत ।

प्रथम ३ के लिए —

By permission of McGraw Hill Book Co., New York.

अन्तिम के लिए --By permission of Yale University Press.

प्रवेश

मन अथवा मनस्तत्त्व की प्रकृति का पर्यालोचन दर्शन के लिए आधार भूत है और यदि इसके सम्बन्ध में कुछ निर्णय किया जा सके तो दर्शन की कम से कम तीन चौथाई समस्याएं सुलझ जाती हैं। मनोविज्ञान में हम 'मन क्या है', इस प्रश्न को अनावश्यक समझ कर छोड़ सकते हैं और तब मन पर विचार कर सकते हैं। वहां यह सुविधा जनक है। वहाँ हम उन अवस्थाओं अथवा घटनाओं के सम्बन्ध में, उनके किसी पहलू विशेष का अथवा समग्र का, अध्ययन कर सकते हैं। यह प्रविधि विज्ञानों के लिए सुविधा जनक है। किन्तु दर्शन में पहले मूल प्रत्यय के ही लक्षणों का विवेचन करना होता है। कुछ मनोवैज्ञानिक केवल शरीर की यांत्रिक प्रक्रियाओं को ही मानसिक अवस्थाएं मानते हैं और इच्छा, उद्देश्य, भावना अथवा सुख-दुःख जैसी किसी अवस्था को स्वीकार नहीं करते। पावलाव की प्रयोगशाला में इन शब्दों के प्रयोग पर जुर्माना किया जाता था।[१] दूसरी ओर फ्रायड है, वह सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष आदि को मौलिक गुण अथवा अवस्थाएं मानता है, जो एक बार अस्तित्व में आकर रहस्यमय ढंग से विद्यमान रहती हैं। किन्तु फ्रायड या पावलाव के लिए इन अवस्थाओं की प्रकृति तथा इनके स-सम्बन्धक (Correlators) के सम्बन्ध में किसी विवाद में पड़ना आवश्यक नहीं है। उनके लिए महत्त्व इन अवस्थाओं के प्रक्रियात्मक संस्थान (Functional pattern) का है।

मनस्तत्त्व के दर्शन के लिए भी यह आवश्यक है कि वह इस प्रक्रियात्मक संस्थान को समझे और इसे दृष्टि में रखकर आगे अन्वेषण के लिए अग्रसर हो। प्राचीन दार्शनिकों के पास मनोवैज्ञानिकों द्वारा अन्वेषित प्रक्रियात्मक संस्थान सम्बन्धी प्रस्तुत सामग्री नहीं थी, अतः मन के सम्बन्ध में उनकी धारणाएं बहुत कुछ उथली थीं। आज जब कि मनोविज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हो चुकी है, अभी तक एक आधारभूत प्रविधि (Method) और सार्वभौम सिद्धान्त की प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। सम्भवतः जिस प्रकार दर्शन के लिए यह आवश्यक है कि वह तथ्यों से समर्थित हो, अन्यथा वह प्रकल्पना मात्र रह जाएगा, उसी प्रकार विज्ञान के लिए भी यह आवश्यक है कि वह एक समन्वित सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित हो, जिसमें तथ्यों के संकलन में अभ्युप-

---

१ Pavlove's selected works, P. 395 (Moscow 1955).

गमों द्वारा एक समन्वित संस्थान का निर्माण हो सके और जो सम्पूर्ण विज्ञान के तथ्यों में संगत हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक में हम मनोविज्ञान के एक ऐसे ही समन्वित दर्शन की प्रतिष्ठा के उद्देश्य से प्रवृत्त नहीं हुए हैं, यह हमारी शक्ति से बहुत अधिक बड़ा कार्य है, किन्तु हमने मनोविज्ञान की एक विशेष प्रणाली द्वारा अपने ढंग से समस्या पर विचार किया है, और दूसरे खंड में मन को सम्पूर्ण विज्ञान को प्रसंग में समझने का प्रयास किया है। इन पृष्ठों में हम प्रथम खंड के तथ्यों का एक सम्पूर्ण दर्शन के साथ सम्बन्ध—सूत्र खोजने का प्रयास करेंगे।

प्रथम खंड में हमने जीव वैज्ञानिक आधारों पर मनोवैज्ञानिक तथ्यों की व्याख्या करने का प्रयास किया है। मन का जीव वैज्ञानिक अध्ययन उसके केवल एक पहलू विशेष से ही सम्बन्ध रखता है, किन्तु हमारा उद्देश्य मनोविज्ञान न होकर दर्शन है, अतः इस अध्ययन को हम एक आधारभूत समस्या के रूप में देखते हैं। इसके अतिरिक्त, जीव विज्ञान में भी हम किसी स्पैश्यलाइज्ड दृष्टिकोण से नहीं चिपटे हैं। जीव विज्ञान में हमारी रुचि इस आधारभूत समस्या अथवा दर्शन को लेकर है कि क्या जीवन की उत्पत्ति और विकास जड़ पदार्थ की अपनी ही प्रकृति के कारण हैं अथवा यह किसी अन्य तत्व के पदार्थ के साथ संयोग के कारण है? क्या मानव मन अन्य प्राणियों के मन के समान ही है अथवा उनसे भिन्न हैं? क्या मन केवल मानव मन ही है और अन्य प्राणी केवल यंत्र हैं अथवा अन्य प्राणी भी मन युक्त हैं? या फिरः मनुष्य भी एक यांत्रिक प्राणी है और मन केवल एक कल्पना है? ये प्रश्न मनोविज्ञान और दर्शन दोनों के लिए महत्त्व पूर्ण हैं और इनका उत्तर मन के जीव वैज्ञानिक स्तर पर अध्ययन से ही मिल सकता है।

विकासवाद को सर्व प्रथम डारविन ने समीचीन रूप से प्रस्तुत किया था। उसने यद्यपि विकास-प्रक्रिया के आधार में किसी अति पादार्थिक तत्व की कल्पना नहीं की थी, किन्तु फिर भी वह विकास में अन्य कारणों के साथ प्राणी के "प्रयास और इच्छा" आदि को भी एक कारण समझता था। जहाँ तक हम जानते हैं, आजकल डारविन के चुनावों के विचार से कोई सहमत नहीं है, विशेषतः सेक्सुअल सिलेक्शन तथा अर्जित प्रवृतियों की हेरेडिटी की कल्पना से। किन्तु कुछ जीव वैज्ञानिक और दार्शनिक विकास, (जैवी और सार्वभौम) के मूल में किसी अति पादार्थिक तत्व, ईश्वर अथवा अन्य शक्ति के अभ्युपगम (Hypothesis) को स्वीकार करते हैं। इनमें भी अनेक संप्रदाय हैं। बर्गसां जब कि ऐसी किसी शक्ति की कल्पना करता है जिसे वह एलन्वाइटल कहता है, वह सोद्देश्यतावादी नहीं

हैं। दूसरे शब्दों में, एलनवाइटल किसी निहित उद्देश्य की चरितार्थता के लिए विकास शील नहीं है, वह केवल अपनी अदम्य "वासना" के द्वारा ही प्रेरित है, और प्राणियों के विविध रूप उसी सृजनात्मक प्रक्रिया के मार्ग में उत्पन्न होते हैं। एलनवाइटल की सृजनात्मकता किसी पूर्व प्रस्तुत उद्देश्य को स्वीकार कर समाप्त हो जाती है। दूसरी ओर अरविन्द हैं जो विकास के मूल में ईश्वर या ब्रह्म की आत्म चरितार्थता की सोद्देश्य प्रक्रिया को देखते हैं। उनके अनुसार, यदि निम्न से उच्चतर की उत्पत्ति होती है तो उच्चतर को पहले से ही निम्न में विद्यमान होना चाहिए यद्यपि उच्चतर निम्नतर में स्पष्ट रूप से विद्यमान न होकर केवल बीज रूप में (In Potential form) ही हो सकता है। अर्थात् उद्देश्यानुकर्षक शक्ति (Motive force), जो निम्नतर को ऊपर उठने को प्रेरित करती हैं, उच्चतर है और निम्नतर में विद्यमान है। उनके अनुसार, विकास त्रिरूप है (१) नवीन उच्चतर की उत्पत्ति (२) उच्चतर का निम्नतर में अवतरण और उसका उच्चतर में रूपान्तरण तथा (३) निम्नतर का उच्चतर द्वारा अपने उपयोग के लिए संघटन। इस प्रकार वे उच्चतम को भी सदैव विद्यमान मानते हैं, यद्यपि गुप्त रूप में।

अरविन्द के अनुसार, सच्चिदानन्द अथवा सार्वभौम आत्मा ही पदार्थ का रूप ग्रहण करता है जो कि आत्मा के एकदम विपरीत प्रतीत होता है, और यह धीरे धीरे विभिन्न स्तरों में से होकर आत्म स्वरूप, पूर्ण चैतन्य और आनन्द की ओर विकास करता है। स्पष्टतः अरविन्द की इस कल्पना के पीछे कोई तर्क नहीं है। सच्चिदानन्द स्वरूप ने, जो कि उच्चतम है, कैसे पदार्थ का, जो कि निम्नतम है, स्वरूप ग्रहण किया ? और इसमें उसका क्या उद्देश्य हो सकता है ? अरविन्द इसका उद्देश्य लीला बताते हैं। तब क्या चैतन्य और आनन्द, जो असीम और पूर्ण है, अपूर्णता के स्तर भी रखता है ? इसी प्रकार, जो चैतन्य है वह अचैतन्य कैसे हो सकता है ? यह सब स्पष्टतः अन्तर्विरोध पूर्ण है।

अरविन्द औपनिषदिक आनन्दवाद और वैष्णव लीलावाद के सौदर्य से अभिभूत प्रतीत होते हैं। अन्यथा दर्शन में उनकी स्वतंत्र रुचि नहीं है। और इस ब्रह्मवाद को आधुनिक बनाने के उद्देश्यसे अथवा आधुनिक विज्ञानादि से उसकी रक्षा के लिए उन्होंने विकासवाद और साइकोएनेलेसिस इत्यादि का उपयोग किया और उन "निम्नतर" सिद्धान्तों में "उच्चतर" ब्रह्मवाद को मिलाकर उनका उदात्तीकरण कर दिया।

किन्तु कुछ दार्शनिक वास्तव में ही जीवन की विचित्रता से प्रभावित

होकर उसकी संगत व्याख्या खोजने के उद्देश्य से इसमें प्रवृत्त होते हैं और कुछ कल्पनाओं और अभ्युपगमों का सहारा लेते हैं ।जीवित पदार्थ अजीवित से बहुत अधिक भिन्न है, और जीवन इस पृथ्वी पर एक सर्वथा विलक्षण और भौतिक विज्ञान द्वारा अव्याख्येय गुण है । शायद जीवन पदार्थ में रासायनिक क्रियाओं द्वारा नव्योत्क्रान्त (Emergent) गुण हो, किन्तु उसका ऊर्ध्वमुखीन विकास और फिर क्रमशः मन की उत्पत्ति आदि की व्याख्या रसायण शास्त्र नहीं कर सकता । एक तरह से जीवन और मन को पदार्थ का नव्योत्क्रान्त गुण कहना अधिक आभ्युपगमिक (Hypothe tical) प्रतीत होता है। पदार्थ और जीवन तथा मन के बीच कुछ बड़े, कम से कम प्रतीयमान, अन्तर हैं और उन्हें उपेक्षित नहीं किया जा सकता। एलनवाइटल इत्यादि कल्पनाएं इस विशेष स्थिति का साम्मुख्य करने के लिए ही हैं ।

वर्गसां का एलनवाइटल एक अन्ध–अविचारपूर्ण प्रक्रिया है, जो पदार्थ में प्रवेश कर उसे एक नवीन संभावनाओं और नवीन अनुभूतियों से युक्त कर देती है, किन्तु व्हाइटहैड का ऑर्गेनिज़्म का सिद्धान्त जब कि सर्वभौमिक विकास प्रक्रिया (Ultimate Principle) में किसी निहित उद्देश्य को स्वीकार नहीं करता, वहाँ प्रत्येक वस्तु सत्त्व (Actuality) अपने व्यक्तिगत उद्देश्य की चरितार्थता चाहता है। व्यक्तिगत वस्तु सत्त्व की सृजन प्रक्रिया (The Process of concrecence) व्यक्तिगत संघटन (Unity) की ओर उद्दिष्ट है। वस्तु सत्त्व की सृजन प्रक्रिया के तीन मुख्य स्तर हैं। क्योंकि सम्पूर्ण प्रक्रिया अनुभूत्यात्मक है, अतः यह अनुभूति की चरितार्थता में पूर्ण होती है । क्योंकि व्यक्ति-प्रक्रिया सोद्देश्य है, यह अंतिम कारण (अथवा-उद्देश्य) की प्राप्ति में, जो कि इसे प्रेरित करता है, चरितार्थ होती है। यह अन्तिम कारण व्यक्तिगत उद्देश्य है । व्हाइटहैड की यह प्रक्रिया (Pro-cess) अथवा व्यक्तिगत उद्देश्य जीव विज्ञान तक सीमित नहीं है, प्रत्युत् सम्पूर्ण अस्तित्त्व से सम्बन्धित है। किन्तु जीव विज्ञान के सम्बन्ध में व्हाइट-हैड ने जो कहा है वह हमारे लिए और भी अधिक महत्वपूर्ण है, वह कहता है–

(इस भौतिकवादी-रासायनिकतावादी) प्रविधि (Method) की शान्दार सफलता हम स्वीकार करते हैं। किन्तु आप किसी समस्या को उसके सुलझाव की प्रविधि से सीमित नहीं कर सकते। समस्या प्राणी के शरीर को समझना है । यह एक दम स्पष्ट है कि कुछ प्राणियों के कुछ व्यापार किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य की पूर्व कल्पना से निर्धारित होते हैं।

समस्या का यह सुलझाव नहीं है कि क्योंकि कुछ व्यवहारों की भौतिक रासायनिक नियमों द्वारा व्याख्या की जा सकती है अतः जो इस नियम के अन्तर्गत नहीं हो सकते, उनकी उपेक्षा की जाए। वास्तव में समस्या की विद्यमानता स्वीकार नहीं की गई, उसका एक दम निषेध किया गया है । अनेक वैज्ञानिकों ने अत्यन्त धैर्य से ऐसे प्रयोगों का आविष्कार किया है जिससे अपना यह विश्वास प्रमाणित किया जा सके कि प्राणी व्यवहार किसी उद्देश्य को दृष्टि में रखकर निर्धारित नहीं होते। उन्होंने अपना शेष समय शायद लेख लिख कर यह प्रमाणित करने में लगाया है कि मनुष्य दूसरे प्राणियों के समान ही है और इसलिए "उद्देश्य" उनके (लेखक के भी) व्यवहार की व्याख्या करने के लिए अप्रासंगिक है। वैज्ञानिक यह प्रमाणित करने के उद्देश्य से प्रेरित होकर कि उनके व्यवहार निरुद्देश्य हैं, अध्ययन के मनोरंजक-विषय बन जाते हैं।

"अन्तिम कारण के बहिष्कार का दूसरा कारण यह भी है कि यह व्याख्या को हानिकार रूप से सरल कर देता है। यह ठीक है कि पूर्वानुगामी भौतिक घटनाओं में अनुक्रम खोजने में किया गया महान परिश्रम अन्तिम कारण के सरल सिद्धान्त से विनष्ट हो जाएगा। किन्तु केवल यह बात कि अन्तिम कारण की कल्पना घातक है, एक वास्तविक समस्या की उपेक्षा करने के लिए कोई उचित युक्ति नहीं है। यदि हमारे मस्तिष्क निर्बल भी हों तो भी समस्या तो समाप्त नहीं होती।" (Limitations of Science से उद्धृत)

यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि अन्तिम कारणता और प्राणी-व्यवहार की सोद्देश्यता को एक ही अर्थ में नहीं समझना चाहिए। यहाँ हम व्हाइट हैड के प्रक्रिया (प्रॉसेस) के सिद्धान्त को प्रसंग में नहीं लाना चाहते, यहाँ हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि प्राणी व्यवहार की सोद्देश्यता इससे प्रमाणित नहीं होती कि मेरा लिखने का व्यवहार सोद्देश्य है। यह कहा जा सकता है कि बन्दर के अधिकांश व्यवहार भी सोद्देश्य हो सकते हैं और कुत्ते के भी, किन्तु इसीलिए मच्छर का व्यवहार भी सोद्देश्य नहीं हो सकता। यह ठीक है कि हमारा प्रत्येक व्यवहार एक विशेष अभाव की अनुभूति से अनुप्राणित होता है और यह अपनी चरितार्थता एक विशेष स्थिति में पाता है, जिसे हम उस व्यवहार का उद्देश्य कहते हैं, किन्तु यह सोद्देश्य इस अर्थ में नहीं है कि उस व्यवहार में उस उद्देश्य का ज्ञान विद्यमान रहता है। अतः यदि हम उस व्यवहार को, जिसकी चरितार्थता एक विशेष स्थिति अथवा घटना में होती है, एक प्रक्रिया कहें, तब वह प्रक्रिया एक और अद्वितीय है और वह एक निश्चित

स्थिति—अन्तिम कारणता—अथवा उद्देश्यानुकर्षकशक्ति (Motive Force) द्वारा निर्धारित होती है। इस प्रक्रिया को हमने वासनात्मक व्यवहार और आत्म-व्ययी क्रिया दो पहलुओं में, प्रथम निबन्ध में, विभाजित किया है। जैसा कि हमने वहाँ प्रमाणित किया है, यह आवश्यक नहीं है कि प्रक्रिया के प्रत्येक क्षण में उद्देश्य का बोध विद्यमान रहे। दूसरे, उस व्याख्या के अनुसार, अन्तिम कारण अथवा उद्देश्य को यहाँ निर्धारक नहीं कहा जा सकता, वह व्यवहार केवल अभावात्मक व्यवहार (Vacume Activity) है। किन्तु यदि उस अर्थ में प्रत्येक प्रक्रिया को सोद्देश्य कहा जाए तो हमें आपत्ति नहीं होगी। किन्तु सोद्देश्यता का यह सामान्य अर्थ नहीं है। मैक्डुगल प्राणियों को सामान्य अर्थ में ही सोद्देश्य बताता है, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

पीछे हमने सोद्देश्यता के लिए उद्देश्यानुकर्षक शक्ति शब्द का प्रयोग किया है, जिसका अभिप्राय है कि विकास अग्रानुसारी न हो कर अग्रानुकर्षित है, क्योंकि सार्वभौम-सोद्देश्य प्रक्रिया का उद्देश्य पूर्व विद्यमान सार्वभौम तत्त्व होना चाहिए, जिसकी ओर विकास आकर्षित है। व्यष्टि क्रियाओं की सोद्देश्यता इससे भिन्न है; यहाँ उद्देश्य भविष्य में निहित न होकर केवल उसकी चरितार्थता भविष्य में निहित है। किन्तु सार्वभौम सोद्देश्यता में उद्देश्य अतीत में प्रविष्ट होकर उसे अपनी ओर आकर्षित करता है, जैसे अरविन्द के दर्शन में, क्योंकि सार्वभौम उद्देश्य की पूर्व कल्पना उसकी वास्तविक विद्यमानता के बिना नहीं हो सकती। किन्तु इसके लिए पुनः यह आवश्यक है कि उद्दिष्ट भविष्य और विकास शील अतीत तथा वर्तमान में कोई मौलिक भेद नहीं हो। मान लीजिए, मूल तत्त्व केवल एक मानसिक तत्व है। तब उसे अवश्य या तो 'इतना कम मानसिक' होना चाहिए कि वह पदार्थ के समान जड हो सके, अथवा उसे इतना अति मानसिक होना चाहिए कि मानसिकता की श्रेणियाँ केवल उसकी विकार मात्र हों। दूसरी कल्पना को हमने अतर्क सम्मत और असम्भव पाया है। जहाँ तक प्रथम कल्पना का सम्बन्ध है, इसकी सोद्देश्यता के साथ कोई संगति प्रतीत नहीं होती। व्हाइट हेड विकास के सार्वभौम नियम (Ultimate Principle) को सोद्देश्य नहीं मानता और व्यष्टि सत्त्वों को जिस प्रकार वह सोद्देश्य मानता है, उस से काल की वास्तविकता का खण्डन नहीं होता।

सोद्देश्यतावाद की एक अन्य प्रकार से भी कल्पना की जा सकती है। यह कहा जा सकता है कि विकास का कोई अन्तिम उद्देश्य नहीं है, प्रत्युत् प्रतिपद एक नवीन उद्देश्य की उत्पत्ति होती है। सोद्देश्यतावाद का यह रूप हाल्डेन के इमर्जेंट से बहुत भिन्न नहीं है। हाल्डेन इस इमर्जेंट के सम्बन्ध में

कहता है—"मेरा विचार है कि विकास-परम्परा के साथ एक "इमर्जेंट" भी संयुक्त हो सकता है, जैसे मस्तिष्क के साथ मन है। रायेस (१६०१) ने इस प्रकार के "इमर्जेंट" का मन के रूप में एक मांसल चित्र देने का प्रयास किया था और कहा था कि प्रजनन के साथ संयुक्त तीव्र वासनाएँ हमारे समान उस मन में भी विद्यमान हैं। यदि ऐसी कल्पनाओं में कुछ सत्यता है तो, मैं सोचता हूँ, क्या ऐसा इमर्जेंट संभवतः मन के समान ही नहीं होना चाहिए ? विकास के साथ संयुक्त ऐसे एक अज्ञात तत्व में मेरा सन्देह वास्तव में इसके सौन्दर्य के प्रति तथा उस असीम वैचित्र्य के प्रति, जो कि विश्व की अद्वितीय विशेषता है, मेरा अभिनन्दन है। इसने मुझे वैज्ञानिक अनुसन्धान के २५ वर्षों मे अत्यधिक प्रभावित किया है।"

इस उद्धरण में यह स्पष्ट है कि इस कव्योचित कल्पना का कारण जीवन की अजीवित से विलक्षणता तथा इसके विकास की निरन्तर ऊर्ध्वोन्मुखता है, जैसा कि ज० डब्लू० एन० सुलिवान ने लिखा है—: ये अनियमित विभिन्नताएँ (Random Variations) और जीवन के लिए संघर्ष इस स्पष्ट तथ्य का, कि जीवन का विकास निरंतर ऊर्ध्वोन्मुख ही क्यों है, बिल्कुल भी समाधान नहीं करते।" * किन्तु हमारे विचार में, यदि जीवित पदार्थ का नव्यात्क्रान्तगुण मान लिया जाए, जिसको हम उसके घटक तत्वों में नहीं पाते, तो यह अयुक्ति संगत नहीं होगा। अन्यथा या तो हमें दो या अधिक तत्त्वों का अस्तित्व स्वीकार करना होगा अथवा जड़ पदार्थ को जीवन अथवा मन का निम्नस्तर रूप मानना होगा। हमारे विचार में, कोई भी तथ्य हमें ऐसा मानने को बाध्य नहीं करता। इसके अतिरिक्त, जीवन का अस्तित्व देश और काल की दृष्टि से अत्यल्प है, शेष सब 'अजीवित' पदार्थ है, अतः यह मानना अधिक उचित जान पड़ता है कि जीवन एक नव्योत्क्रान्त गुण है। यदि मूल तत्व, संवेदादि, मानसिक गुण हैं, जैसा कि इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में संकेत है, तो भी वह तत्व अत्यन्त निम्नस्तरीय मानसिक गुण से युक्त ही हो सकता है। उस अवस्था में जीवन नव्योत्क्रान्त गुण नहीं कहा जाएगा, जीवित और अजीवित में भेद केवल संघटनात्मक रह जाएगा। अब यदि जीवित की उत्पत्ति उसी तत्व से मान ली जाए जिससे अजीवित की है और इसमें किसी सहगामी इमर्जेंट, एलनवाइटल अथवा ऊर्ध्व मन की प्रकल्पनाएँ न कीजाएँ तो रासायनिक स्तर पर यह हमें उचित जान पड़ता है कि जीवित पदार्थ की यह प्रकृति है कि वह प्रजनन करता है और इस प्रजनन क्रिया में कुछ रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न होते रहते हैं। ये परिवर्तन आकस्मिक और नियमित दोनों ही

*Limitations of science. 1959, (Mentor Books)

प्रकार के हैं। नियमित परिवर्तन ऊर्ध्वोन्मुख रहा है, ऐसा हम पाते हैं, किन्तु जैसा कि हाल्डेन कहता है, यह अनिवार्य नियम नहीं है। जो असंख्य जातियाँ पृथ्वी से उठ गई हैं, उनमें विकास न ऊर्ध्वोन्मुख था और न लाभप्रद। संभव है, यह विकास आज विघटन की ओर हो। इस विषय में हमने विस्तार से दूसरे तथा तीसरे निबन्ध में विचार किया है। हमने वहाँ यह प्रमाणित किया है कि जैवी विकास को इन सब कल्पनाओं के बिना ही ठीक तरह से समझा जा सकता है।

२

हमने पुस्तक के प्रथम खंड में अधिकांशतः जीव विज्ञान के आधार पर कुछ समस्याओं पर विचार किया है। इसके दो कारण हैं, जिनमें एक के सम्बन्ध में हमने अभी विचार किया है: जीव वैज्ञानिक विकास के सम्बन्ध में विविध कल्पनाओं का परिहार करना, और दूसरा कारण है हमारी यह धारणा कि मानव-मन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसे अन्य प्राणियों की परम्परा में एक कड़ी समझा जाए और इस प्रकार उसके मन को अन्य प्राणियों के मन के समान, यद्यपि अधिक विकसित, समझा जाए। इसे जेनेटिक साइकोलोजी अथवा विकासवादी मनोविज्ञान कहा जा सकता है।

मनुष्य का मन समाज तथा भाषा के कारण एक अत्यन्त उलझन पूर्ण व्यापार हो गया है। अतः यदि केवल उसी को सम्मुख रखकर उस पर विचार किया जाए तो बहुत सम्भव है कि हम भूलकर जाएं और कल्पनाओं में उलझ जाएँ। किन्तु अन्य प्राणियों का अध्ययन करने में, उनके मन की सरलता के कारण, यह बाधा नहीं है। इस पद्धति में यद्यपि यह कठिनाई है कि जब कि मानव मन मनोवैज्ञानिक का अपना मन है और अतएव उसके अध्ययन में मनोवैज्ञानिक अपने अनुभवों को सम्मुख रख सकता है, वहाँ अन्य प्राणियों के अध्ययन में उसे अधिकांशतः उनके व्यवहार से उनके अनुभवों का अनुमान करना होता है। हम व्यवहार वादियों के साथ इस बात में बिलकुल भी सहमत नहीं हैं कि मनोविज्ञान का विषय केवल प्राणी-व्यवहार हैं; अनुभव, यदि कोई ऐसी वस्तु होती भी हो तो, नहीं। हमारे विचार में, मानसिक अनुभव को शारीरिक व्यापार का पर्याय नहीं कहा जा सकता। मेरे क्रोध का अनुभव मेरे मुँह के लाल होने और सम्बन्धित अंग संचालन आदि का पर्याय नहीं है, चाहे व्यवहारवादी मेरे इस व्यवहार को देखकर निरपवाद रूप से बता सकता हो कि अब मैं क्रुद्ध हूँ। किन्तु यदि व्यवहारवादी व्यवहार को केवल मानसिक अनुभव

का सहगामी मानता है और मेरे अनुभव को वास्तविक और अद्वितीय मानता है, तो मैं उसे अपने मन का अध्ययन करने का अधिकार देने में संकोच नहीं करूँगा, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मैं अपने पाठकों को इस पुस्तक द्वारा अपने विचारों तथा अनुभवों को समझने का अधिकार देता हूँ।

अन्य प्राणियों के व्यवहार द्वारा उनके अनुभवों को समझने में निश्चय ही बड़ी कठिनाई है, क्योंकि उनके अनुभवों का क्षेत्र और विस्तार हमसे कुछ भिन्न है। किन्तु मनोवैज्ञानिक अध्ययन में हमें उनके अनुभवों को अनुभव नहीं करना होता, केवल कुछ सामान्य अनुभवों की समता के आधार पर उनका निश्चय करना होता हैं। यदि मनोविज्ञान के लिए पूर्ण सहानुभूति आवश्यक होती तो शायद कवि सबसे अच्छे मनोवैज्ञानिक होते। किन्तु शायद कवि इस क्षेत्र में सबसे अधिक अयोग्य होंगे। मनोवैज्ञानिक अपने अध्ययन में अपने अनुभव और व्यवहार दोनों के आधार पर दूसरों का निर्णय करता है। यदि चींटी खांड उठा ले जाती है और नमक नहीं उठाती तो मनोवैज्ञानिक यह जान लेता है कि चींटी खांड को पसन्द करती है और नमक को नहीं। उसे यहाँ यह जानने की आवश्यकता नहीं है कि चींटी को खांड का कैसा स्वाद आता है। किन्तु अधिकांश समस्याएँ अधिक उलझन पूर्ण होती हैं और वहाँ मनोवैज्ञानिक को अपने अनुसार दूसरे प्राणियों का और दूसरे प्राणियों के अनुसार अपना अनुमान करना होता है। उदाहरणतः—चींटी अपने बिल को कैसे लौटती है, इस व्यवहार को लें। क्या वह जानती है कि उसका घर है और कि उसकी तत्कालीन दैशिक स्थिति से घर की दैशिक स्थिति का क्या सम्बन्ध है, जैसे हम जानते हैं? यदि वह कभी यह सापेक्ष सम्बन्ध भूल जाए तो क्या वह घर को खोजती है जैसे हम खोजते हैं और उसे उस समय यह ध्यान रहता है कि उसका घर कहीं है और कि उसे वहाँ पहुँचना चाहिए इत्यादि? अनेक प्राणी-मनोवैज्ञानिकों ने इन समस्याओं का अध्ययन करने का अत्यन्त प्रशंसनीय प्रयत्न किया है, किन्तु इस सम्बन्ध में उनमें तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों में भी, भयानक मतभेद है। जैसे मैक्डुगल सभी प्राणियों के प्रायः सभी व्यवहारों को सोद्देश्य, अर्थात सज्ञान मानता है, जब कि इसके एकदम विपरीत वाट्सन और पावलाव हैं, जो मनुष्य के प्रसंग में भी सोद्देश्यता आदि शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहते। ये विभिन्नवाद अत्यन्त विकसित प्रणालियाँ हैं, जिनके बीच हमें यहाँ निर्णय करना है।

किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों को तो मानव-मनोविज्ञान को जैवी मनोविज्ञान के अनुसार समझने के विचार पर ही आपत्ति है। जैसे सी० डी० ब्राड अपने

एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ "माइंड एंड इट्स प्लेस इन नेचर" में लिखते हैं—
"यदि हम विश्व के किसी महत्वपूर्ण पहलू के स्वभाव और ढाँचे (स्ट्रक्चर) का अध्ययन करना चाहते हैं तो यह अधिक उचित है कि हम उसे उसके सर्वाधिक विकसित तथा विशिष्ट रूप में ही देखें, बजाय इसके कि हम उसे उसके अविकसित आरंभिक स्तर पर देखें, जहाँ वह विश्व के अन्य पहलुओं से कठिनाई से पृथक् किया जा सकता है। यदि किसी की रुचि उसके विकास के अध्ययन में भी हो तो उसके विकसित रूप को जानना भी कम से कम उतना ही महत्वपूर्ण है जितना यह जानना कि वह किससे विकसित हुआ है। और फिर, यदि हम दूसरी ओर से आरंभ करते हैं, तो हमारे दो भ्रान्तियों में भटक जाने का भय है। (१) यह बहुत संभव है कि हम अन्तिम अवस्था की उलझनों और विशेषताओं की उपेक्षा कर दें, क्योंकि हम यह नहीं देख सकते कि ये पहली सरल अवस्थाओं से कैसे उत्पन्न हो सकती हैं। (२) दूसरा भय यह है कि हम यह देखते हुए कि इ का विकास 'अ' से हुआ है और 'उ' का 'इ' से, हम यह समझ सकते हैं कि उ अ का ही व्याज रूप है।"

यह आपत्ति वास्तव में एक सीमा तक उचित है जब कि हम वाट्सन इत्यादि की व्याख्याओं को ध्यान में रखते हैं, किन्तु यह नहीं भूल जाया जाए कि हम वास्तव में विकास परम्परा को देख रहे हैं, यह देख रहे हैं कि मनुष्य के मन का इतिहास क्या है, तब यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वह इतिहास की कोई एक घटना नहीं है प्रत्युत् उन घटनाओं के आधार पर विकसित एक घटना है। किन्तु यदि हम किसी घटना का इतिहास नहीं जानते तो हम उसके सम्बन्ध में अच्छी तरह से नहीं समझ सकते, और मानव-मन के सम्बन्ध में तो भयानक भूलें कर सकते हैं। चींटी और मनुष्य का मन एक ही नहीं है, किन्तु चींटी के मन से मनुष्य के मन का यदि हम सम्बन्ध नहीं जानते तो आत्मा-परमात्मा और अहं, आत्म, अन्तर्मन और ऊर्ध्व मन आदि की कल्पनाओं में भटक जाने की बहुत अधिक संभावनाएँ रहती हैं। उदाहरणतः ज्ञान को ही लें, प्राचीन दार्शनिकों ने इसे प्रकाश, आत्मा का गुण आदि अनेक प्रकार से अभिहित किया था। किन्तु चींटी आदि की सहायता से हम इस सम्बन्ध में अधिक ठीक जान सकते हैं। और इसी प्रकार, अपने अनुभव के विश्लेषण के आधार पर चींटी आदि को समझ सकते हैं। चींटी के अपने घर के ज्ञान की समस्या को ही लें। इसके लिए आवश्यक है कि हम पहले यह देखें कि हमें घर का ज्ञान कैसे होता है, जब हम घर लौटना चाहते हैं। सामान्यतः हमारा अपने घर का ज्ञान घर के रूप, आकार तथा दैशिक स्थिति आदि का ज्ञान है। किन्तु यदि हम गाड़ी में चढ़ कर दूसरे नगर में जाते हैं तो हमारा घर का ज्ञान उस

सम्पूर्ण प्रक्रिया का ज्ञान है जिसमें गाड़ी की यात्रा तथा उसके पश्चात् अपने नगर में घर की दैशिक स्थिति इत्यादि सम्मिलित हैं। यदि हम बाहर हैं और घर की दैशिक स्थिति इत्यादि भूल जाते हैं; दूसरे शब्दों में, यदि चाक्षुष संवेदों का परस्पर तथा उनका काइनेस्थटिक संवेदों के साथ स-सम्बन्ध शिथिल हो जाता है, तो कहा जायगा कि हम घर का ज्ञान नहीं रखते। किन्तु एक अन्धा अपने घर को जानता है तो उसका घर का ज्ञान हमारे से बहुत भिन्न होता है। वह घर को पेशीय अभ्यास तथा स्पर्श संवेदों की स्मृति के आधार पर जानता है। हमारे घर के ज्ञान में घर की सुख-दुःखादि की स्मृतियाँ भी विद्यमान रहती हैं। हम चींटी के मस्तिष्क के निर्माण को देखकर तथा उसके व्यवहारादि को देख कर यह अनुमान करते हैं कि संवेदों का उतना उलझनपूर्ण सम्मिश्र (कॉम्प्लेक्स) चींटी के मस्तिष्क में सम्भव नहीं है, व्यवहार इसका समर्थन करता है। अतः चींटी यदि घर को ठीक लौट सकती है तो या तो पेशीय अभ्यास के द्वारा, अथवा जैसा कि हमने प्रवृत्ति निबन्ध में देखा है, घ्राण के द्वारा। यदि हमें कोई रास्ता प्रथम वार तय करना पड़ा है और उसके पश्चात् उस रास्ते के घरों आदि के रंग बदल दिये जाते हैं तो हम रास्ता भूल जाएँगे। बड़े नगरों में हम सामान्यतः ही रास्ता भूल जाते हैं, दूसरे शब्दों में, हम रास्ता नहीं जान पाते, क्योंकि हम रास्ता जानने के लिए अधिकांशतः चाक्षुष संवेदों पर निर्भर करते हैं और उनका न तो हम सम्बन्ध अच्छी तरह से स्थापित कर पाए होते हैं और न उनकी स्मृति* ही जम पाई होती है। चींटी के लिए घर का ज्ञान विशेष गन्धयुक्त रास्ते का ज्ञान है, दूसरे शब्दों में, चींटी के लिए घर का ज्ञान घ्राण-संवेदों का स-सम्बन्ध है। तो क्या वह उस रास्ते की दैशिक सापेक्ष स्थिति का ज्ञान भी रखती है? दैशिक स्थिति का ज्ञान चाक्षुष और काइनेस्थेटिक संवेदों अथवा केवल चाक्षुष संवेदों अथवा केवल काइनेस्थेटिक संवेदों अथवा काइनेस्थेटिक और स्पर्श संवेदों का स-सम्बन्ध है। अतः चींटी शायद घर की दैशिक स्थिति का ज्ञान घ्राण और काइनेस्थेटिक संवेदों के स-सम्बन्ध के रूप में रखती है। किन्तु यह ज्ञान शायद केवल पूर्व संवेदों के वास्तविक संवेदों के साथ सम्पर्क होने पर उत्पन्न परिचितता की अनुभूति के रूप में ही होता है, केवल पूर्व संवेदों के स-सम्बन्ध के प्रजागरण के रूप में नहीं। इस प्रकरण में कबूतर पर किये एक प्रयोग को बताना शायद मनोरंजक और उपयोगी होगा।

---

*जैसा कि हमने शरीर और मन निबन्ध में प्रतिपादित किया है, स्मृति भी उसी प्रकार सांवेदनिक अभ्यास मात्र है जैसे पेशीय अभ्यास।

हमारे घर की ड्योढ़ी के एक आले में एक कबूतर दम्पति ने बच्चे देने के लिए घोंसला बनाना आरंभ किया। घोंसले के लिए तिनके वे हमारे घर के सामने की एक छत से लाते थे, किन्तु वे बाहर जाने के लिए पहले पिछले दरवाज़े से हमारे आँगन में आते और फिर ड्योढ़ी की छत के ऊपर बने चौबारे के ऊपर से होकर उस सामने की छत पर पहुँचते। इसी प्रकार वे लौटते भी थे। अब मैंने आँगन की ओर द्वार बन्द करके उन्हें बाहर के द्वार से जाने को बाध्य किया, जो कि सीधा रास्ता था। उधर का द्वार खुला होने पर भी वे इधर उधर उड़ते रहते थे। जब बाध्य होकर उस द्वार से बाहर जाते भी थे तो लौटते पुनः पिछले द्वार की ओर से ही थे। मैं वह द्वार बन्द रखता, किन्तु तब तक कबूतर बैठा प्रतीक्षा ही करता रहता। इस प्रकार अनेक बार किया गया किन्तु कबूतरों ने अपना रास्ता नहीं बदला, यद्यपि वह रास्ता लम्बा और उलटा था।

इसी युगल पर फिर एक और प्रयोग किया गया—जब इन्होंने अंडे दिये तब मैंने उन अंडों को उठाकर उनके स्थान पर कुक्कुट के अंडे रख दिये। अंडे पर्याप्त बड़े होने पर भी कबूतरों ने उन्हें नहीं पहिचाना। उसके पश्चात् मैंने उनका घोंसला उठाकर उनके स्थान पर लम्बा सूखा घास गोल लपेट कर रख दिया, घोंसला जब कि मोटे तिनकों द्वारा सुन्दर ढंग से बनाया गया था, मेरा रखा घास का घोंसला केवल गोल कर दिया गया था। इस घोंसले में भी कुक्कुट के अंडे ही रखे गये। किन्तु कबूतरों ने कुछ भी सन्देह प्रकट नहीं किया। फिर मैंने उनका अपना घोंसला उस घोंसले से एक फुट के अन्तर पर सामने के कोने में उनके अपने अंडों के साथ रख दिया। कबूतरों ने इसकी भी कोई परवाह नहीं की। तब मैंने दो दिन के लिए उनके घोंसले के पास (जो मेरा बनाया था)नीले रंग का एक बड़ा काग़ज़ रखा और फिर उसे दूसरे(उनके अपने बनाये हुए)घोंसले के पास वहाँ से हटा कर रखा। किन्तु कबूतरों ने इस सबकी कोई परवाह नहीं की। इस सब के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि कबूतर की चाक्षुष स्मृति अच्छी नहीं है और कि ये अधिकतर काइनेस्थेटिक संवेदों पर अधिक निर्भर करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि कबूतर का घर का ज्ञान हमारी अपेक्षा बहुत भिन्न और बहुत अल्प है।

पशुओं की यह स्थिति हम प्रायः अपने साथ तुलना करके और अपनी यह स्थिति पशुओं पर प्रयोग करके जानते हैं। किन्तु अपने आदर्शों, रुचियों, दृष्टि-कोण, संक्षेप में सम्पूर्ण उलझन-पूर्ण व्यक्तित्व को ठीक प्रकार से समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम अन्य प्राणियों के सरल मानसिक

व्यापारों की प्रकृति को समझें। पुस्तक के चतुर्थ तथा पंचम निबन्ध में हमने इस ओर कुछ प्रयास किया है।

यह ठीक है कि मनुष्य में मन ने कुछ आगे विकास किया है, उसके हाथों की अँगुलियों की उलझन पूर्ण व्यापार-सामर्थ्य के पीछे एक अत्यन्त उलझन पूर्ण भेजे का होना अनिवार्य है। और इस सबसे ऊपर है उसकी भाषा सम्बन्धी योग्यता। यद्यपि भाषा-ज्ञान के लिए हमारे भेजे का अधिक विकसित होना आवश्यक है, किन्तु समाज के कारण जिस प्रकार भाषा का और इस प्रकार अपार मानसिकता का विकास हुआ है, वह आश्चर्य-जनक है।

मनोविज्ञान (प्राणी मनोविज्ञान और मानव मनोविज्ञान दोनों) में एक संगत अभ्युपगम विकसित करने के लिए अनेक प्रविधियाँ प्रस्तुत की गई हैं और इनमें कोई भी अभी तक एक सार्वभौम सिद्धान्त होने की प्रतिष्ठा नहीं पा सकी। मनोवैज्ञानिकों ने मानव तथा प्राणी-व्यवहार को एक सरल, प्रयोगात्मक तथा अस्खलनीय आधार पर रखने के लिए उकसाहट-प्रतिक्रिया (Stimulus-Responce) तथा निर्धारित प्रतिक्रिया (Conditioned Responce) इत्यादि सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। व्यवहारवाद ने भी, जो कि इन दोनों विचारों को पूर्व पक्ष के रूप में स्वीकार करता है, मनोविज्ञान के क्षेत्र पर शासन किया है।

जैसा कि हमने अगले पृष्ठों में देखा है. केवल उकसाहट-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त अत्यन्त सरल व्यापारों की व्याख्या भी नहीं कर सकता। कबूतरों के घोंसला बनाने के व्यापार को ही लें। यहाँ शायद विशेष तापमान तथा प्रकाशादि के विशेष शेड को उकसाहट कहा जा सकता है, किन्तु अनेक बार देखा गया है कि व्यक्ति विशेष घोंसला समाप्त कर लेने पर भी घोंसला बनाता रहता है। यहाँ स्पष्टतः आन्तरिक परिस्थिति उकसाहट से कहीं अधिक घोंसला बनाने के व्यवहार की उत्तरदायी कही जा सकती है। इस आन्तरिक परिस्थिति को वाइटल फेक्टर कहा जाता है और इसका महत्व पावलाव ने भी स्वीकार किया है। हमने प्रथम निबन्ध में वासनात्मक व्यवहार तथा वासनाव्ययी प्रक्रिया को अनेक प्रकार के व्यवहारों की व्याख्या के लिए प्रस्तुत किया है। उसमें उकसाहट को दूसरे किनारे पर रखा गया है, जहाँ कि प्रतिक्रिया को होना चाहिए। उकसाहट यहाँ केवल अवरुद्ध वासना के, जो कि आत्मचरितार्थता के लिए विकल है, निकास का साधन बनती है। किन्तु प्रतिक्रियावाद म प्रतिक्रिया एकदम यांत्रिक और जड़ है, महत्व केवल उकसाहट का है, जो कि प्रतिक्रिया का निर्धारण करती है। इस प्रकरण में वाट्सन से एक उद्धरण देना उपयोगी हो सकता है। वह कहता है—"एक व्यवहारवादी का विश्वास है कि

यदि उत्पत्ति से पूर्व शिशु की प्रतिक्रियाओं की, जो कि शिशुओं में पर्याप्त समान होती हैं, एक सूची बनाई जा सके, और यदि परिवेश का निर्धारण किया जा सके, तो वह किसी भी शिशु का व्यक्तित्व किसी भी विशेष प्रकार से निर्धारित कर सकता है—एक चोर के रूप में, एक निर्धन के रूप में, धनी के रूप में अथवा भिखारी के रूप में। "एक सीमा तक यह दावा ठीक है, किन्तु केवल एक सीमा तक। किन्तु यह दावा किया जा सकता है कि रवीन्द्र या आईंस्टीन का निर्माण केवल उकसाहट-प्रतिक्रिया के निर्धारणों द्वारा नहीं किया जा सकता है।

निर्धारित प्रतिक्रियावाद (Conditioned Reflex)ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक प्राविधिक सिद्धान्त (Methodological Principle) के रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन दी है। यह प्रविधि पावलाव ने आविष्कृत की थी, और इसे उसने प्राणी-व्यवहार में अत्यन्त गहराई से मूलित प्रमाणित किया था। सामान्य-रीफ्लेक्स एक उकसाहट तथा तज्जन्य प्रतिक्रिया में सरल सम्बन्ध है। जब कुत्ते के मुँह में रोटी डाली जाती है तब उसके मुँह की ग्रंथियाँ स्लाइवा उत्पन्न करती हैं। दूसरी बार, रोटी देखने पर ही उसके मुँह में स्लाइवा आ जाता है।अब यदि उसे रोटी देते हुए कुछ दिन घंटी भी बजाई जाए, तब कुत्ते के लिए घंटी-ध्वनि तथा सरल रीफ्लेक्स में स-सम्बन्ध स्थापित हो जाएगा और भविष्य में केवल घंटी-ध्वनि से ही कुत्ता उतनी ही मात्रा में स्लाइवा उत्पन्न करेगा जितनी मात्रा में उसने रोटी देने पर किया होता। और अब यदि अनेक बार घंटी रोटी दिये बिना ही बजाई जाए तो धीरे-धीरे कुत्ता उस घंटी के प्रति उदासीन हो जाएगा और सालिवा नहीं बनाएगा। प्रथम प्रतिक्रिया को पाँवलाँव सकारात्मक प्रतिक्रिया अथवा प्रोकसाहन (Exitation) कहता है और दूसरी को निरोध (Inhibition) अथवा नकारात्मक प्रतिक्रिया कहता है। निर्धारण अथवा कंडीशनिंग में इनका बड़ा महत्त्व है। परिवेश के प्रति हमारी प्रतिक्रियाएँ इन दो प्रकारों की ही होती हैं और पाँवलाँव ने इनके शारीरिक कारणों की खोज की है। पावलाव के बाद इस क्षेत्र में और भी पर्याप्त अनुसन्धान हुए हैं। पाँवलाँव ने किसी भी सन्देह से परे यह स्थापित कर दिया है कि ये (प्रोकसाहन और निरोध) शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हैं, इन्हें ठीक मापा तोला जा सकता है और इनके सम्बन्ध में विपर्यय किया जा सकता है। प्रसिद्ध फ्रेंच मनोवैज्ञानिक पीअर जेनेट को एक पत्र में, जो कि उसकी 'पत्रिका' 'जर्नल डे साइकोलोजी' में प्रकाशनार्थ लिखा गया था, पाँवलाँव हमारे प्रत्यक्ष रूप से एक मानसिक व्यवहार की अपने प्रोकसाहन–निरोध (Exitation–Inhibition) सिद्धान्त के अन्तर्गत व्याख्या करता है, जिसे यहाँ उद्धृत करना

१. देखें हमारा निबन्ध-आत्म चरितार्थता और संस्कृति (कल्पनाअक्टूबर १९५६)

रोचक तथा उपयोगी होगा। वह लिखता है—"आपने अपने लेख (Emotions of the Persecution Delusion) के तीसरे भाग में अधिकार (Possession) की अनुभूति की व्याख्या करने का प्रयास किया है। इसका आधार भूत स्वरूप यह है कि रोगी अपनी कमियों को ऑब्जेक्टेवाईज़ (विषयगुणान्वित) करते हैं और उन्हें दूसरों पर आरोपित करते हैं। वे स्वतंत्र रहना चाहते हैं, किन्तु वे अनुभव करते हैं कि लोग उन्हें ऐसे दास समझते हैं, जिनका कार्य केवल दूसरों की आज्ञा पालन करना है। × × × स्वयं बताना और दूसरों द्वारा बताया जाना, यह एक युगल का निर्माण करते हैं और इन्हें आसानी से एक दूसरे से पृथक नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार, अपमान करने तथा अपमानित होने की क्रियाएँ अपमान की सामान्य धारणा से बँधी हुई हैं। किन्तु इनकी अव्यवस्था से यह स्पष्ट है कि इन्हें घपलाया जा सकता है। इसकी शरीर वैज्ञानिक व्याख्या निम्न होगी। मान लीजिए, मीट्रोनोम का एक विशेष स्वरानुक्रम (Frequency) भोजन-सम्बन्धी (Alimentry) एक निर्धारित सकारात्मक उकसाहट का कार्य करता है, क्योंकि इसके साथ भोजन प्रस्तुत किया जाता है। अतः यह स्वरानुक्रम भोजन के बिना भी भोजन-सम्बन्धी सकारात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। मीट्रोनोम का एक अन्य स्वरानुक्रम नकारात्मक उकसाहट का कार्य करता है, क्योंकि यह भोजन द्वारा प्रति पुष्टीकृत नहीं किया गया होता, और इसलिए नकारात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है—जब इस स्वरानुक्रम का प्रयोग किया जाता है तब परीक्ष्य पशु इससे दूर हटता है। मीट्रोनोम का यह स्वरानुक्रम एक शरीर वैज्ञानिक युगल बनाता है, जिसके घटक विरोधी होने पर भी परस्पर सम्बन्धित हैं और इसीलिए परस्परानुपोषक हैं, अर्थात एक स्वरानुक्रम दूसरे के व्यापार को उकसाता और प्रतिपुष्ट करता है। यह एक बिल्कुल ठीक शरीर-वैज्ञानिक तथ्य है। यदि एक सकारात्मक स्वरानुक्रम ऐसे कोष पर व्यापारित होता है जो किसी कारण से [illegible] है (अथवा हिप्नोटिक अवस्था में है) तब यह स्वरानुक्रम, अधिकतम के सिद्धान्त (Law of Maximum) के अनुसार, जो कि पुनः शरीर-वैज्ञानिक स्तर पर प्रतिष्ठित है, कोष को निरुद्ध कर देता है। यह निरोध रेसीप्रोकल इंडक्शन (परस्पर कोष क्रिया प्रसार) के सिद्धान्तानुसार, युगल के दूसरे सम्बद्ध कोष में निरोध के बजाय सकारात्मक उकसाहट उत्पन्न करता है। इसीलिए दूसरे से सम्बद्ध उकसाहट निरोध के बजाय प्रोकसाहन उत्पन्न करती है[1]।

इस प्रकार पावलाव ने प्रमाणित किया है कि किस प्रकार ऐसे मानसिक रोगों में पूर्णतः शरीर वैज्ञानिक कारण ही होते हैं। उसने प्रोकसाहन-निरोध

1. Pavlov-Selected works (Mocow).

विपर्यय के सम्बन्ध में कुत्तों पर असंख्य प्रयोग किए हैं, जो उसे इस सम्बन्ध में कुछ निश्चयात्मक रूप से कुछ कहने के योग्य बनाते हैं।

यहां पावलाव से एक अन्य उद्धरण देने का लोभ हम संवरण नहीं कर सकते, जिसके अनुसार वह सकारात्मक या नकारात्मक प्रक्रिया को शरीर में मापनीय रूप से संचरण करते प्रदर्शित करता है। "यह स्पष्ट है कि त्वचा के प्रत्येक बिन्दु के लिए भे मेंजो प्रतिनिधित्व है। जब हम कन्धे पर त्वचा के एक बिन्दु को उकसा कर भेजे के सम्बद्ध बिन्दु पर एक स्नायविक प्रक्रिया प्रजागरित करते हैं, तो यह प्रक्रिया उसी स्थान पर केंद्रित नहीं रहती, प्रत्युत् यह गति करती है। पहले यह भेजे में ही गति करती है, और तब यह उकसाये गये स्थान की ओर प्रसरण करती है और वहां केंद्रित हो जाती है। स्वभावतः प्रत्येक गति अपने प्रसार में कुछ समय लेती है। जब मैंने मस्तिष्क में कन्धे के सम्बद्ध त्वचा बिन्दु पर एक निरोध प्रक्रिया को मूलित कर जंघा पर एक दूसरे बिन्दु को तुरन्त उकसाने का प्रयास किया तब तक निरोध प्रक्रिया का वहाँ तक प्रसार नहीं हुआ था। प्रक्रिया के वहां पहुंचने में २० मिनट लगते हैं, इसीलिए जंघा बीस मिनट में, उससे पूर्व नहीं, पूर्णतः निरोधाभिभूत हो जाती है। केन्द्रीकरण में ४० मिनट लगते हैं। इसलिए कन्धे पर शून्य उकसाहट के समाप्त होने के एक मिनट पश्चात् हम दूसरे बिन्दु (जंघा) पर रीफ्लेक्स को पूर्ण पाते हैं, किन्तु मूल स्थान (कन्धे पर) रीफ्लेक्स पांच, दस या पन्द्रह मिनट पश्चात् भी विद्यमान नहीं होता।"*

पावलाव के इन दो उद्धरणों से यह एक दम स्पष्ट है कि कंडीशंड रीफ्लेक्स) निर्धारित प्रतिक्रिया) को उसने संपूर्ण मानसिक क्षेत्र पर लागू करने का प्रयास किया है और तथा कथित मानसिकता के शारीरिकता मात्र से अधिक न होने में उसे पूर्ण विश्वास है। पावलाव ने अन्तर्दृष्टि (Insight), चिन्तन तथा भावना और कल्पना जैसी धारणाओं का अत्यन्त जोरदार भाषा में खंडन किया है। यदि यह स्वीकार किया जाय कि प्रत्येक मानसिक घटना के लिए किसी उकसाहट की अनिवार्य आवश्यकता है, तब निर्धारितता एक अपरिहार्य तथ्य है क्योंकि प्रत्येक उकसाहट, यदि वह सरल रीफ्लेक्स नहीं है तो, वह केवल निर्धारिता द्वारा ही उस घटना को प्रेरित कर सकती है। किन्तु कुछ विद्वानों का विचार है कि निर्धारिता एक सीमित क्षेत्र में ही सफल व्याख्या है, अन्य उलझन पूर्ण तथा संश्लिष्ट मानसिक व्यापारों में इसे घटित नहीं किया

1Pavlove's Selected works, p. 408

जा सकता । जैसे सुलिवान के अनुसार, भाषा के क्षेत्र में निर्धारितता बच्चे के शब्द सीखने की प्रक्रिया पर पूर्णतः लागू होती है, किन्तु वाक्यों के निर्माण में मानसिक व्यापार की व्याख्या केवल निर्धारिता द्वारा नहीं की जा सकती। किन्तु वास्तव में हम कभी भी एक-एक शब्द नहीं सीखते, हम सदैव वाक्यों द्वारा भाषा सीखते हैं। उदाहरणतः पानी शब्द हम सदैव, यह पानी है, पानी ठंडा है, मुझे पानी दो, इस प्रकार सीखते हैं और निर्धारितता इसी प्रकार घटित होती है। इसके अतिरिक्त शब्दों का स-सम्बन्ध भी बहुत महत्वपूर्ण है।

सम्भवतः निर्धारितता को घटित करने में सब से अधिक कठिनाई नवीन परिस्थितियों में प्रक्रिया के विश्लेषण में तथा नवीन कल्पना अथवा नवीन विचार के विश्लेषण में है। नवीन परिस्थिति का अभिप्राय है, जिसमें वस्तुओं के अथवा संवेदों के सम्बन्ध उन सब सम्बन्धों से भिन्न हों जो व्यक्ति के जीवन में पहले घटित हुए हों। किन्तु ये नवीन सम्बन्ध पूर्णतः नवीन नहीं होते, पहले विद्यमान सम्बन्धों के असंख्य संस्थानों की कुछेक कड़ियाँ अनुपस्थित होती हैं और उनके स्थान पर नवीन कड़ियाँ होती हैं, जिनका शेष कड़ियों से सम्बन्ध नहीं बैठता। तब प्राणी एक अनवस्था अथवा शून्यता का अनुभव करता है और सम्बन्ध 'बैठाने का प्रयास' करता है। यहाँ 'बैठाने का प्रयास' का प्रयोग भ्रान्तिजनक हो सकता है, यदि इसमें निहित एक चैतन्य नियन्ता-मन की गन्ध का परिहार नहीं किया जाता। यहाँ कोट्लर के प्रसिद्ध बन्दर का उदाहरण देखना उपयोगी हो सकता है जो, उसके अनुसार, फलों के उसकी पहुँच से अधिक ऊँचा टँगे होने पर, पास पड़े हुए बक्सों का तथा दो छड़ियों का, जो एक दूसरी में फँसाई जा सकती हैं, फल उतारने में उपयोग करता है। अब बन्दर के लिए यह एक नवीन परिस्थिति है। वह पहले उछल-कूद करता है फिर पास पड़े हुए बक्सों को एक दूसरे के ऊपर रखता है, उसके पश्चात् वह उन पर चढ़ कर एक छड़ी का उपयोग करता है। किन्तु तब भी फल तक वह नहीं पहुँच पाता और थक कर बैठ जाता है। इसके पश्चात् वह उठता है और एकदम एक छड़ी में दूसरी छड़ी लगाकर फल उतार लेता है।

यहाँ बन्दर का सम्पूर्ण व्यवहार एक अत्यन्त उलझन पूर्ण विकसित मस्तिष्क का परिचय देता है। किन्तु इस व्यवहार को हम निर्धारण से स्वतन्त्र नहीं कह सकते, और अन्तर्दृष्टि जैसे रहस्यमय शब्दों के प्रयोग से इस व्यवहार की व्याख्या में हमें कोई सहायता नहीं मिलती। स्वयं पावलाव ने भी कोट्लर के

इस प्रयोग की व्याख्या की है और साथ स्वयं भी एक बन्दर पर प्रयोग करके उसकी तुलना की है। उसके अनुसार, बन्दर का यह व्यवहार सर्वथा नवीन नहीं है, उसे जंगल में भी ऐसी परिस्थितियों का साम्मुख्य करना पड़ता है और वहाँ वह पत्थरादि रखकर ऊँचे स्थान से फलादि उतारता है। उसके अनुसार, कोट्लर का बन्दर इन बक्सों को आकार के क्रम से नहीं रखता, प्रत्युत् जो भी बक्स हाथ में आजाए उसे ही रख देता है। इस प्रकार, यद्वि ये एक दूसरे पर ठीक नहीं टिकें और गिर पड़ें तो वह दोबारा भी उन्हें ठीक क्रम से नहीं रखेगा, केवल उन्हें किसी प्रकार दूसरे पर ठहराने का प्रयास करेगा। इस प्रकार, बन्दर के लिए यह स्थिति सर्वथा नवीन नहीं है। जहाँ तक दो छड़ियाँ एक दूसरे में मिलाने का सम्बन्ध है, वह भी नवीन स्थिति नहीं है। सम्भवतः बन्दर एक छड़ी से फल न उतार सकने पर दो छड़ियों से काम लेना चाहेगा; पहले वह दोनों छड़ियों को दोनों हाथों में पकड़ कर भी प्रयास कर सकता है, और फिर वह दोनों को एक दूसरे के ऊपर रखने का प्रयास भी कर सकता है। उस अवस्था में अकस्मात भी एक छडी में दूसरी छड़ी डाली जा सकती है। थक-कर बैठ जाने और तब उठकर दो छड़ियाँ मिलाने में किसी प्रकार की अन्तर्दृष्टि की संभावना व्यर्थ है। बन्दर सोचने के लिए बैठा हो, यह ग़लत है। वास्तव में थक कर सब स-सम्बन्ध अव्यवस्थित हो जाते हैं और प्राणी अव्यवस्थित व्यवहार करने लगता है। बन्दर के लिए भी यही सत्य है, और बैठने के पश्चात् उसके स-सम्बन्ध व्यवस्थित हो जाते हैं।

यहाँ नवीन परिस्थिति में पुराने स-सम्बन्धों के प्रयोग को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करना उपयोगी होगा। एक बन्दर को इसी प्रकार की सहायता से फल उतारने दिया गया और वहाँ एक दूसरा बन्दर भी रखा गया, जो यह सब देखता रहा। उसके पश्चात् उसे एक कमरे में बन्द कर दिया गया और बाहर से कुंडी लगा दी गई। इसमें कुछ ऐसा प्रबन्ध भी किया गया कि बन्दर हाथ डालकर बाहर से कुंडी खोलने का प्रयास करे। बन्दर ने दरवाज़ा खोलने का बहुत प्रयास किया किन्तु असफल रहा। तब उसने वहाँ पड़े बक्स को भी नीचे रखा यद्यपि यहाँ उसकी आवश्यक्ता नहीं थी। यह उसने केवल पहले बन्दर को इस प्रकार सफलता लाभ करते देखने के कारण किया था। उसके लिए बक्स नीचे रखने और सफलता प्राप्त करने में एक स-सम्बन्ध स्थापित हो गया था। (पाँवलाँव) इससे यह प्रमाणित होता है कि किस प्रकार हमारे मस्तिष्क में स-सम्बन्ध स्थापित होते हैं। हम भी अनेक बार इसी प्रकार व्यवहार करते हैं। किन्तु यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। फल उतारने में एक व्यवहार की सफलता एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है, अर्थात् फल उतारना रूप सफलता

जिस प्रक्रिया से मिली है वह इस सफलता के साथ एक सम्पूर्ण संस्थान बनाती है। इस संस्थान (Pattern) के स-सम्बन्धों का लगभग इसी प्रकार किसी परिस्थिति में उपयोग होना स्वाभाविक है, जैसे यदि फल के बजाय रोटी ऊँची पड़ी हो और बक्सों के बजाय पीपे हों। यद्यपि यहां भी कुछ साधारणी-करण होता है, किन्तु फल उतारने रूप सफलता का सफलता मात्र की संभावना का पर्याय हो जाना साधारणी-करण की सीमा है। साधारणी-करण और विश्लेषण दोनों के लिए पर्याप्त विकसित मस्तिष्क की आवश्यकता है। भाषा साधारणी-करण और विश्लेषण को बहुत सम्मुन्नत कर देती है, किन्तु यह उसका आधार नहीं है, क्योंकि स्वयं भाषा का आधार हमारा साधारणी-करण का स्वभाव है। स्पष्टतः इसकी व्याख्या के लिए अन्तर्दृष्टि की कल्पना आवश्यक नहीं है, जिसके लिए और भी भयानक कल्पनाओं में उलझना पड़े।

प्रत्येक स-संबन्ध के लिए हमारे मस्तिष्क में तत्संबन्धी मोटर सिस्टम का होना आवश्यक है। जैसे कुत्ते के पर्याप्त बुद्धिमान होने के बावजूद वह इस प्रकार बक्सों आदि को एक दूसरे से ऊपर रखकर कुछ करने का प्रयास नहीं करेगा, न उसे ऐसा सूझेगा ही। बन्दर के अधिक योग्य हाथ, जिसकी अंगुलियाँ पृथक् पृथक् और बड़ी हैं, अपना प्रतिनिधि मोटर-सिस्टम मस्तिष्क में रखती हैं। अतः न केवल वह हाथ से अधिक कार्य ही कर सकता है, वह तत्संबन्धी नवीन स-संबन्ध भी रख सकता है।

किन्तु हम वाट्सन के साथ इस बात में सहमत नहीं हैं कि यदि वह प्रारंभ से उकसाहटों का नियंत्रण करसके, वह किसी भी प्रकार के मनुष्य का निर्माण कर सकता है। जैसा कि हमने प्रथम तथा चतुर्थ निबन्धों में देखा है, उकसाहट एकदम मिट्टी पर व्यापारित नहीं होती और न स-संबन्ध जड़ कड़ियों में होता है, उकसाहटों को एक सजीव (Vital) और "विशिष्ट" [illegible] पर क्रियाशील होना होता है। उकसाहटों का नियंत्रण बहुत अधिक प्रभावशाली होता है, किन्तु यह प्रभाव केवल सापेक्ष है। इस प्रकार हम सरल उकसाहट-रीफ्लेक्स और कंडीशनिंग के सिद्धान्त को मनोविज्ञान का आधार भूत और सार्वभौम सिद्धान्त स्वीकार नहीं करते। स्वयं पावलाव ने निर्धारित रीफ्लेक्स को इतना सरल उकसाहट-प्रतिक्रिया व्यापार नहीं माना था। कम से कम अपने अनुसन्धान के पिछले दिनों में वह सजीव अंश(Vital Factor)को भी महत्वपूर्ण मानने लगा था। उसने स्नायविक क्रिया प्रसार(Irradiation), प्रशस्तीकरण तथा निरोध (Facilitation and Inhibition) इत्यादि सजीव प्रक्रियाओं का महत्व पूर्णतः स्वीकार किया था।

यहां वाट्सोनियन व्यवहारवाद के संबन्ध में थोड़ा और विचार करना हम आवश्यक समझते हैं। व्यवहारवादी केवल प्राणी के व्यवहार को ही मनोविज्ञान का एकमात्र विषय मानते हैं। उनका कथन है कि किसी दूसरे प्राणी के सम्बन्ध में हम इससे अधिक नहीं जान सकते, और एक वैज्ञानिक होने के नाते प्रत्यक्ष से आगे जाने का हमें अधिकार नहीं है। सामान्यत: मानवेतर प्राणियों के मनोविज्ञान का अध्ययन हम केवल उनके व्यवहार के अध्ययन द्वारा ही कर सकते हैं। मनुष्य के मन के ज्ञान का साधन भी हमारे पास केवल उसका व्यवहार ही है। जहाँ तक अपने मन का सम्बन्ध है, वहाँ भी हमें अनुभव आदि की कल्पना करने का अधिकार नहीं है, शरीर के भीतर होने वाले भौतिक परिवर्तनों द्वारा हम अपने व्यवहार के ज्ञान को प्रत्यक्ष बाह्य व्यवहार के ज्ञान के साथ मिलाकर पूरा करते हैं। किन्तु यदि मुझे कोई कहे कि मेरा अपने पुत्र के प्रति स्नेह उसे देखने पर मेरे मुँह पर आने वाली चमक तथा उसे उठाकर चूमने आदि व्यवहार का समवाय मात्र है, तो मैं कभी भी यह स्वीकार नहीं करूँगा। यदि कोई मेरी सूई चुभने की पीड़ा को मेरे एकदम हाथ उठाकर चीख मारने का पर्याय कहे तो मैं उस मनोवैज्ञानिक को सन्देह की दृष्टि से देखे बिना नहीं रह सकता। अब यदि मेरा अनुभव मेरे व्यवहार का पर्याय नहीं है तो स्वभावत: यही बात मनुष्य तथा अन्य प्राणियों पर भी लागू होती है। किन्तु कोई भी व्यक्ति अन्य के अनुभवों को उसके व्यवहार के अतिरिक्त नहीं जान सकता, यह सत्य है। किन्तु यदि एक व्यक्ति कुछ सोच रहा है और हम उसके व्यवहार से यह बता सकें कि वह सोच रहा है, तो भी हम यह नहीं बता सकते कि वह क्या सोच रहा है। ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए व्यवहारवादियों को हमारे शरीर के अन्त: प्रदेशों के व्यवहार अथवा क्रियाओं को भी अपने क्षेत्र में रखना पड़ा, यद्यपि हम उन क्रियाओं को नहीं देख सकते। जैसे, 'विचारना केवल धीरे धीरे शब्दोच्चारण करना है और जब हम स्पष्टत: उच्चारण नहीं कर रहे होते तब भी हमारे कंठ का अन्त: प्रदेश (Sphynax) हल्की उच्चारण क्रियाएं कर रहा होता है। जब कोई क्रुद्ध होता है, तब यदि हमारी आँखें उसे नहीं भी देख पातीं तब भी उसके रक्त-भांडों में आन्दोलन तथा मस्तिष्क में हल्की मोलीक्यूलर प्रक्रियाएं होती हैं।'

हम इससे इन्कार नहीं करते किन्तु इस व्याख्या को एक सिद्धान्त के रूप में अथवा पूर्ण विश्लेषण के रूप में हम स्वीकार नहीं कर सकते। इसे हम केवल एक प्रविधि के रूप में स्वीकार कर सकते हैं—व्याख्या की प्रविधि (Method of Explanation) के रूप में नहीं, अनुसंधान की प्रविधि के रूप में।

व्यवहारवाद एक पूर्ण व्याख्या की प्रविधि के रूप में शायद सबसे अधिक अशक्त है, क्योंकि यह जिस पूर्व धारणा को लेकर चला है उसी के अनुसार यह स्वयं खंडित हो जाता है। व्यवहारवाद केवल प्रत्यक्ष को विज्ञान का आधार स्वीकार करता है और अभ्युपगमों को उसके लिए अवैध समझता है। किन्तु जैसा कि हमने ऊपर अभी देखा है, इसे अनेक तथ्यों की व्याख्या के लिए अभ्युपगमेन अन्तः शारीरिक क्रियाओं को भी व्यवहार के अन्तर्गत रखना पड़ा है। किन्तु स्पष्टतः हम उस मस्तिष्क में, जो सोच भी रहा हो, कोई तत्सम्बन्धी क्रिया नहीं देख सकते। किन्तु यदि अन्तः शारीरिक क्रियाओं सम्बन्धी इन विचारों को मान भी लिया जाए तो भी वास्तविकता के साथ इन्हें संगत नहीं किया जा सकता। जब मैं लाल रङ्ग देखता हूँ, तब व्यवहारवादी के अनुसार मेरे मस्तिष्क में कुछ मोलीक्यूलर प्रक्रियाएँ होती हैं, किन्तु मैं वे प्रक्रियाएँ देखे या कल्पित किये बिना भी लाल रंग देखता हूँ, और यदि व्यवहारवादी किसी प्रकार से मेरे मस्तिष्क की मोलीक्यूलर गतियों को सम्यक् प्रकारेण देख भी सके तब भी वह मेरे संवेद को नहीं देख सकता। अधिक से अधिक वह यह कह सकता है कि जब ऐसी-ऐसी मोलीक्यूलर गति मेरे मस्तिष्क में होती है तब मुझमें लाल रंग का संवेद घटित होता है, जिसे कि वह मेरे मुंह से निकले शब्दों से जानता है। यह एक अत्यन्त उपहासपद स्थिति है। व्यवहारवादी यदि यह दावा करता है कि मोलीक्यूलर गति और संवेद एक ही बात है, तब उससे तर्क करने का कोई लाभ नहीं हो सकता। किन्तु व्यवहारवाद की असंगति तब और भी स्पष्ट हो जाती है जब हम ज्ञान की प्रकृति के सम्बन्ध में विचार करते हैं। जो भी मैं देखता हूँ वह वास्तव में मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली घटना है। व्यवहारवादी भी यह स्वीकार करता है, क्योंकि वह उसके लिए मेरे मस्तिष्क में होने वाली मोलीक्यूलर प्रक्रियाओं को देखता है; किन्तु वास्तव में, तथा कथित मोलीक्यूलर प्रक्रियाएँ, जिन्हें वह मेरे मस्तिष्क में होते देखता है, उसके अपने मस्तिष्क में घटित होने वाले संवेद हैं। इस प्रकार, व्यवहार-वादी जब किसी अन्य के व्यवहार को देखने की बात करता है तब वास्तव में वह अपने मस्तिष्क में घटित होने वाले संवेदों को जानता है। दूसरों के सम्बन्ध में हम केवल दो प्रकार के ज्ञान का दावा ही कर सकते हैं—सहानुभूतिक ज्ञान तथा आनुमानिक ज्ञान। सहानुभूतिक ज्ञान के सम्बन्ध में काफी मतभेद की गुंजाइश है और यहाँ हम उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहते। हमने इस पुस्तक के अन्तिम अध्याय में इसकी प्रामाणिकता के विरुद्ध अपना मत दिया है। किन्तु इडिंगटन के अनुसार, सहानुभूतिक ज्ञान आनुमानिक ज्ञान से अधिक प्रामाणिक है। उसने इसे स्मृति-ज्ञान के समान बताया है। उसके अनुसार, यदि

मुझे अपने सुदूर शैशव की कुछ घटनाएँ बताई जाएँ, तब मुझे वे उतनी ही पराई प्रतीत होंगी जितनी किसी अन्य के जीवन की घटनाएँ। यह ठीक है, किन्तु यदि मुझे प्रत्यक्षतः उनका स्मरण नहीं होता तो वे मेरे लिए केवल शब्द हैं और यदि मैं उनका स्मरण कर पाता हूँ तो वे पूर्णतः सहानुभूतिक ज्ञान से भिन्न हैं, चाहे वे कितनी भीं धुंधली प्रतीत क्यों न हों। इस सम्बन्ध में हमने शरीर और मन निबन्ध में विस्तार पूर्वक विचार किया हैं। यदि हम स्मृति-ज्ञान का विश्लेषण रसल की स्मृति-कारणता (Mnemic Causation) के अनुसार भी करें तब भी स्मृति ज्ञान और सहानुभूतिक ज्ञान में कोई समता नहीं है।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम सहानुभूतिक ज्ञान का निषेध करते हैं, किन्तु हम यह कहना चाहते हैं कि वह प्रत्यक्षज्ञान से भिन्न रूप में हमें नहीं होता, अतः उसके लिए एक अन्य नाम रखने की आवश्यकता नहीं है। जब वह प्रत्यक्ष न होकर केवल शब्दादि के द्वारा हमें प्राप्त होता है तब वह अनुमेय ज्ञान के अन्तर्गत हो सकता है। इस प्रकार व्यवहारवाद एक भ्रान्त धारणा पर आधारित है।

(३)

मनोविज्ञान पर यह दोष लगाया जाता है कि वह एक अविभाज्य, सावयव रूप से संघटित (Organic unity) मन का विश्लेषण कर उस विश्लिष्ट को ही वास्तविक समझ लेता है। स्वयं मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इस विश्लेषणवाद के विरुद्ध विद्रोह हुआ है। जेस्टेल्ट-मनोविज्ञान तथा मैक्डुगल को प्रवृत्ति-मनोविज्ञान (Instinct Psychology) का इस प्रसंग में नाम लिया जा सकता है। मैक्डुगल अपनी पुस्तक "An Out Line of Psychology" में इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हुए लिखता है—"किन्तु कुछ लोग (और मुझे आशा है कि यह पुस्तक उनकी संख्या में वृद्धि करेगी) इच्छाओं के भीषण ऊहापोह का, अथवा किसी आन्तरिक नैतिक संघर्ष का, किसी तीव्र वेदना का, किसी कलुषित आकांक्षा का, सहानुभूति की किसी गम्भीर अनुभूति का, भीषण क्रोध अथवा भयपूर्ण आवेग का स्मरण कर (शरीर वैज्ञानिक मनोविज्ञान के प्रतिपादनों कोशल्य) स्वीकार करने में झिझकेंगे, वे अपने आप से पूछेंगे, क्या ऐसे सिद्धान्त में कुछ आधार भूत गलती ही नहीं जो यह कहता है कि इन अनुभूतियों का इस संसार में कोई अस्तित्व नहीं है ? क्या इस विचार में कोई बड़ा

छिद्र नहीं रह गया है, अथवा यह भ्रान्त आधार (Premise) पर ही तो आधारित नहीं है कि इसके परिणाम इतने थोथे निकलते हैं, जो परिणाम कि सब युगों के सब नैतिक नेताओं के उपदेशों के विरोधी हैं, और जो मनुष्य को एक अत्यन्त क्षुद्र जीव से अथवा टेस्ट ट्यूब में पड़े स्फटिक से अधिक सृजन-शक्ति सम्पन्न अथवा आत्म निर्धारण में स्वतंत्र नहीं मानते; जो कि बाइबल को, शेक्सपीयर, बीथोवन अथवा न्यूटन के शब्दों को परमाणुओं का सँकलन मात्र मानते हैं ?" इत्यादि...

किन्तु हमारे विचार में, यह समझना कठिन नहीं है कि इस प्रकार सब वस्तुओं को ज्यों का त्यों, केवल उनके सौन्दर्य के आधार पर स्वीकार करना सम्भव नहीं है, कम से कम वैज्ञानिक अनुसन्धान और दार्शनिक विश्लेषण इस प्रकार नहीं चल सकते। एक दार्शनिक के लिए, जिसे विभिन्न दृश्यों और प्रदत्तों (Data) का मूल्यांकन और समन्वय करना है, यह पद्धति और भी असम्भव है। यह कहा जा सकता है कि यह पद्धति ही भ्रान्त है, किन्तु जब कि आप उस पद्धति को स्वीकार करते हैं तो उसमें एक सुविधापेक्षी (Arbitrary) सीमा निर्धारित नहीं कर सकते। कोई कवि को अतर्क सम्मत नहीं कहता, जब वह अपनी अनुभूतियों को सच्ची कहता है, कोई धार्मिक व्यक्ति के अनुभवों को नहीं झुठलाता, यदि वह कहता है कि वैसा वह सचमुच ही अनुभव करता है, किन्तु एक वैज्ञानिक या दार्शनिक भी पूर्णतः न्याय पर है यदि वह इन अनुभूतियों का विश्लेषण और वर्गीकरण करता है। हम सुन्दर रूप देखते हैं, अब यदि भूत वैज्ञानिक हमें बताता है कि वास्तव में यह केवल परमाणुओं का एक समवाय मात्र है और किरणें केवल ईथर में विशेष मापानुक्रम में लहर प्रसार मात्र हैं, तो वह कोई गलती नहीं कर रहा है, यद्यपि वह 'प्रसाद' को नहीं झुठलाता जब वह किरण से पूछता है कि वह इस प्रकार क्यों बिखरी है और वह किसके अनुराग में रँगी है ? एक मनोवैज्ञानिक के लिए शेक्सपीयर कुछ संवेदों, अभ्यासों और स-सम्बन्धों आदि का संकलन ही हो सकता है। शेक्सपीयर की विशेषता शेक्सपीयर होने में है, किन्तु शेक्सपीयर क्या है ? यदि मैक्डुगल का ही विचार माना जाए तो, कम से कम वह एक शरीर है जिसमें भय, प्यार, सदासद् की अनुभूतियाँ तथा तर्क, विचार और कल्पनाएँ इत्यादि हैं। इतना कहने में भी आप विश्लेषण और वर्गीकरण करते हैं, क्योंकि अन्यथा, उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति में उसके सम्पूर्ण नहीं तो, कम से कम, व्यक्तित्व के बड़े भाग का समावेश होता है। यदि उसकी एक उक्ति को अमुक प्रवृत्ति, प्रशिक्षण, अभ्यास, कंडीशनिंग इत्यादि में विश्लेषित किया जा सकता है, जैसा कि मैक्डुगल करेगा ही, तो कोई कारण नहीं कि आगे विश्लेषण को आपत्ति

जनक क्यों समझा जाए। इस विश्लेषण में हम इस बात का निषेध नहीं करते कि शेक्सपीयर और न्यूटन सामान्य मर्त्य से भिन्न हैं, उनमें कुछ विशेष प्रतिभा है; अथवा ईसा को वास्तव में ही एक स्वर्गीय अनुभूति हुई थी; किन्तु हम निश्चित रूप से यह स्वीकार नहीं करते कि उनका सामान्य मर्त्य के स्तर पर विश्लेषण नहीं किया जा सकता।

वास्तव में विश्लेषण में कुछ कठिनाइयाँ हैं; कभी-कभी विश्लेषण के पश्चात् यह जानना काफी कठिन हो जाता है कि परिणाम वास्तविक हैं या कि हमारा ही आविष्कार हैं। प्रस्तुत प्रसंग में भी, संवेद आदि विश्लेषण के परिणाम वास्तविक हैं, याकि हमारे आविष्कार हैं? दूसरी कठिनाई यह है कि हम विश्लेषण में विश्लेष्य को समाप्त ही तो नहीं कर देते? प्रथम के उदाहरण रूप में हम (Spectrum) को प्रस्तुत कर सकते हैं: इसके रंग, जो कि हमारे विश्लेषण के परिणाम हैं, व पहले से ही विद्यमान थे अथवा हम अपने यंत्र में किरणों के विभेद द्वारा उनका आविष्कार करते हैं? * दूसरा उदाहरण एक सुन्दर चित्र हो सकता है, क्या इसका विश्लेषण संभव है? यदि हम इसका नाक कुछ छोटा कर दें तो यह सुन्दर नहीं रहेगा, यदि इसके नाक में की एक रेखा थोड़ी सी और झुका दें तो यह और अधिक सुन्दर हो जाएगा; तो क्या यह कहा जा सकता है कि रेखाओं का यह गणितिक अनुपात चित्र का सौन्दर्य है, और कि इस चित्र में रेखाओं का अनुपात बदलने से सौन्दर्य भी बदला और कम-अधिक किया जा सकता है? प्रस्तुत प्रसंग में, एक अनुभूति अथवा प्रतिभास (Intuition) अथवा एक विचार क्या विश्लेश्य हैं? क्या उन्हें केवल हमारे विश्लेषण के परिणाम कहा जा सकता है?

यहाँ प्रथम प्रश्न (आविष्कार संबंधी) अत्यन्त महत्वपूर्ण है और इसका उत्तर उतना ही कठिन है। भूत विज्ञान में श्वेत किरणों को विस्खलित कर हरितादि किरणें प्राप्त की जाती हैं। भूत वैज्ञानिकों ने जब यह देखा कि "प्राकृतिक श्वेत प्रकाश पर्याप्त अनिश्चित विस्खलन है, जिसमें नियमितता हमारा परीक्षण को स्पेक्ट्रोस्कोपिक प्रणाली द्वारा उत्पादित है, तो उन्हें यह आशंका होने लगी कि क्या हम अपने प्रयोगों द्वारा परीक्ष्य में इतना अधिक हस्तक्षेप तो नहीं कर रहे हैं कि हम जो खोजना चाहते हैं उसे विनष्ट ही कर देते हैं?" और "क्या स्पेक्टरोस्कोप विशेष नियमितता (Periodicity) की केवल छँटनी करता है अथवा उसे श्वेत प्रकाश पर आरोपित करता है, यह केवल

*. A. S. Eddington. The Philosophy of Physical Science, Chap. "Discovery or Manufacture?"

अभिव्यक्ति का एक ढंग है ।"* इडिंग्टन कहना चाहता है कि यह मात्र मानसिक आरोपण है। भूतविज्ञान में आज विश्लेपण को हमारे मन की प्रकृति का अनिवार्य परिणाम (A Priori Principle) मान लिया गया है और विश्लेषण के परिणाम इलेक्ट्रन, प्रोटन अथवा किरण-लहर आदि को इस मानसीकरण (Idealization) की विशेष प्रविधि का अनिवार्य परिणाम। तब क्या मनोविज्ञान् में भी हम विश्लेषण को अनिवार्य, विषयीनिष्ठ तथा (A Priori) और उसके परिमाणों को आविष्कार तथा एब्स्ट्रेक्शन स्वीकार कर भूतवैज्ञानिक प्रविधि के अनुसार चल सकते हैं ?

एक प्रकार से मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी भूत वैज्ञानिक विश्लेषण के समान ही विश्लेष्य में हस्तक्षेप करता है, और अनेक मनोवैज्ञानिकों को यह आपत्ति है कि इस प्रकार जिसका हम अनुसन्धान करना चाहते हैं उसे नष्ट देते हैं। और इसी प्रकार, यह कहना कठिन है कि हमारा मानसिक स्पेक्ट्रोस्कोप छंटनी करता हैं अथवा आरोपण करता है। किन्तु मनोविज्ञान भूत विज्ञान से भिन्न है। जब कि भूत विज्ञान अपने ज्ञान को स्ट्रक्चरल (अवैषयिक) मान कर चलता है, मनोविज्ञान में ज्ञान प्रत्यक्ष है। भूत विज्ञान जिस प्रकार परमाणु आदि को प्रत्यय (काँसेप्चुअल यूनिट्स) मानता है, मनोविज्ञान विश्लेषण के परिणामों को सूपक्रिया (छंटनी) का अवशेष मानता है। क्योंकि भूत विज्ञान जिस ज्ञान मीमांसात्मक प्रविधि (Epistemological Method) से इन परिणामों पर पहुँचता है उसका परिणाम स्वयं वे मानसिक इकाइयाँ हैं जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की परिणाम हो सकती हैं। किन्तु भूत विज्ञान में संवेद उसके प्रतीक हैं जिसे 'जानने' का विचार ही अन्तर्विरोध पूर्ण है, भूत विज्ञान में जो हम जानते हैं: वह स्ट्रक्चर है जिसकी इकाइयाँ संवेद है। अतः भौतिक ज्ञान संवेदों के ग्रुप स्ट्रक्चर का ज्ञान है, जब कि मानसिक ज्ञान अपरोक्ष रूप से उन संवेदों का ही ज्ञान है। किन्तु ग्रुप-स्ट्रक्चर भूत विज्ञान की विशेष विश्लेषण पद्धति का ही पर्याय है, अन्यथा इस ग्रुप स्ट्रक्चर के अन्तिम साक्षी संवेद ही हैं। किन्तु क्या संवेद भी किसी विश्लेषण की उपज (End-product) हैं अथवा केवल विश्लेषण के अवशिष्ट हैं ? विश्लेषण तथा अपसारण क्रिया में आधार भूत अन्तर है : विश्लेषण एक सम्पूर्ण का खंडों में विभाजन है और खंड विश्लेषण की प्रविधि विशेष का अंग अथवा उपज हैं, जब कि अपसारण क्रिया का परिणाम वह अवशिष्ट है जो आधार भूत है, जहाँ पहुँच कर अपसारण क्रिया समाप्त हो जाती है। संवेद ऐसे ही अवशिष्ट हैं।

---

*वहीं।

जैसा कि हमने अपने अन्तिम निबन्ध में देखा है, ये संवेद हमारे भौतिक और मानसिक ज्ञान के प्रस्थान बिन्दु हैं। अत: संवेद को न हम एबस्ट्रेक्शन कह सकते हैं और न आविष्कार ही। इसका अनिवार्य अर्थ यह नहीं है कि हम संवेदों से बाहर भौतिक अस्तित्व का निषेध करते हैं, किन्तु उस अस्तित्व को संवेद न कहना भी अन्तर्विरोध पूर्ण है।

किन्तु भूत विज्ञान में जब कि हम संवेदों को प्रस्थान बिन्दु (Starting point) कहते हैं, मनोविज्ञान में इन्हें हम अपसारण का अवशिष्ट कहते हैं। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अपसारित को हम कम महत्व पूर्ण और निषेध्य नहीं कह सकते, केवल उसकी सापेक्ष सारता का निर्धारण करते हैं। इस प्रकार हम आवेग, अनुभूति, सोद्देश्यता इत्यादि को अवास्तविक नहीं कह सकते, किन्तु इसकी वास्तविकता केवल संवेदों के प्रसंग से ही हो सकती है।

जहाँ तक मन की कल्पना का सम्बन्ध है, इस सिद्धान्त के अनुसार उसके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। जो लोग मन का अस्तित्व स्वीकार करते भी हैं, वे भी उसे हमारे ज्ञान का विषय नहीं कह सकते। मैक्डुगल, जिसने मनोविज्ञान को साधारण विश्वासों के आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया है, मन के लिए कहता है—"अब यदि हम इस आधुनिक प्रणाली (शरीर वज्ञानिक) का अनुसरण नहीं करना चाहते, तो हमें पुरानी प्रणाली की ओर लौटना चाहिए और उस पर दृढ़ रहकर मन की कल्पना को स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि पुराना मनोविज्ञान मन को एक ऐसा अस्तित्व स्वीकार करता है जो दो प्रकार से अपने स्वभाव, शक्तियों तथा क्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है : (१) व्यक्तिगत अनुभव का प्रकार तथा (२) शारीरिक क्रिया का प्रकार × × × इस प्रकार व्यक्ति का मन अनुभवों तथा व्यवहार में अपनी अभिव्यक्ति करता है।"

यहाँ मन को एक आधारभूत अस्तित्व के रूप में स्वीकार किया गया है, अनुभवादि जिसके स्फुलिंग हैं। किन्तु क्या मन को हम अनुभवादि से पृथक् भी जानते हैं? मैक्डुगल यह नहीं कहता, तब मन के अभ्युपगम की क्या आवश्यकता है?

तब मन क्या है? स्पष्टत: मन मानसिक घटनाओं का समवाय है, क्योंकि हमने एक मन की कल्पना का निषेध कर दिया है। तब मानसिक घटनाएँ क्या हैं? जैसा कि हमारे पिछले विश्लेषण से स्पष्ट है, मानसिक घटनाएं वे घटनाएं हैं जो एक शरीर के प्रसंग से संवेघ तथा निर्धारित प्रतिक्रिया युक्त हैं। निर्धारित प्रतिक्रिया उनके कारण–नियम की पर्याय है।

यहां संवेद अथवा अनुभव मानसिक घटनाओं का मूलगुण है, जब कि भौतिक घटना एक स्ट्रक्चरल यूनिट है। शरीर रासायनिक पदार्थ है, किन्तु इससे कुछ कठिनाई उत्पन्न नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अन्ततः रसायण विज्ञान भूत विज्ञान में विश्लेषित किया जा सकता है। किन्तु मन को भूत विज्ञन में विश्लेषित नहीं किया जा सकता, किन्तु जल को भी उनके घटक खंडों में विश्लेषित नहीं किया जा सकता। किन्तु इसी प्रकार, यह भी कहा जा सकता है कि भूत विज्ञान मन से नव्योत्क्रान्त है। हम इन दोनों में निर्णय नहीं कर सकते। किन्तु जैसा कि अन्तिम निबन्ध में प्रतिपादित किया गया है, मन और पदार्थ एक ही घटना के दो पहलू हो सकते हैं, हम इसे भौतिक कहें या मानसिक।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि इस अधार पर हम शरीर वैज्ञानिक मनोविज्ञान का किस प्रकार समर्थन करते हैं। जैसा कि हमनें इस पुस्तक के अंतिम निबन्ध में प्रतिपादित किया है, हम अपने सम्वेदों से बाहर अस्तित्त्व का निषेध नहीं करते और उस संवेद को, जो घटित होता है, कारण श्रंखला में एक कड़ी मानते हैं। अतः हम यह स्वीकार करते हैं कि जब संवेद घटित होता है तब अन्य घटनाएं भी घटित होती हैं, यद्यपि ये घटनाएं संवेद नहीं होतीं। इन घटनाओं का हम स्ट्रक्चरल ज्ञान रखते हैं। हम यह नहीं कहते कि संवेद इस श्रृंखला की अन्य कड़ियों से मूलतः भिन्न है, वह केवल प्रसंग से भिन्न है। एक शरीर में होने वाली सब घटनाएं समान ह, किन्तु कुछ विशेष घटनाएं ही मानसिक हो पाती हैं जो संवेद्य होती हैं, किन्तु शेष सब घटनाएं मानसिक होने की संभावना से युक्त रहती हैं

१--प्रक्रिया के स्रोत

विभिन्न प्राणियों में हम प्रक्रियाओं की असंख्य विभिन्नताएं देखते हैं। जो जातियाँ शरीर वैज्ञानिक स्तर पर एक दूसरे से जितना ही अधिक दूर होती हैं उनकी भिन्नता का नाप भी उतना ही अधिक होता है--जैसे इसका भी कोई निश्चित परिमाण होता हो। यद्यपि यह बात कुछ विचित्र सी जान पड़ती है किन्तु यदि हम शारीरिक-प्रकृति और प्रक्रिया के निश्चित कारण-कार्य संबंध को जान सकें तो इसमें कोई भी आश्चर्य की बात नहीं रह जाएगी। यह एक सामान्य सी बात है कि मनुष्य और चींटी दो भिन्न जातियाँ हैं और इन दोनों नें 'असंख्य युगों' का अन्तर है, जिसका नाप उनके शरीर निर्माण की भिन्नता के आधार पर ही हो सकता है; इसके विपरीत मनुष्य और वन्दर में बहुत कम अन्तर है और इससे भी कम अन्तर मनुष्य और शिंपेंज़ी में है। ये अन्तर अनेक बाह्य और आन्तरिक स्तरों पर हो सकते हैं:--मनुष्य और शिंपेंज़ी में हाथ की बनावट का अन्तर और टांगों की आनुपातिक लंबाई तथा बनावट का अन्तर अन्य आन्तरिक तथा गंभीर अन्तरों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हैं, और ये अन्तर भी निश्चित रूप से उनकी प्रक्रिया के स्तर को निश्चित करते हैं। किन्तु ये 'स्पष्ट' अन्तर महत्वपूर्ण होने पर भी 'प्रच्छन्न' अन्तरों की अपेक्षा कहीं कम महत्वपूर्ण और सुदूरगामी हैं क्योंकि ये अंग केवल प्राणी की उस अन्त:प्रेरणा को क्रियान्वित करते हैं, जो अन्त:प्रेरणा प्राणी के सुदूर भीतरी भागों के रासायनिक और स्नायविक प्रबन्धों में रासायनिक और भौतिक स्तर पर जन्म लेती है। इस प्रकार हम अपने अंगों की उपमा इंजन से दे सकते हैं जो अपने भीतर के वाष्प या बिजली की लहरों से उत्पन्न शक्ति-संचयों को क्रियान्वित करते हैं। जैसा कि हम दूसरे निबन्ध में विस्तार से देखेंगे, प्रक्रियाओं में अन्तर के अन्य भी अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे यदि इंजन को रेल पर न चल कर पृथ्वी पर चलना पड़े, अथवा कार को समतल सड़क पर न चलकर पथरीली सम-विषम भूमि पर चलना पड़े तो एक ही जैसी दो कारों या गाड़ियों में अपने आप में कोई अन्तर न होने पर भी उनके शक्ति-संचयों के क्रियान्वित होने में अन्तर होगा। इसे सामान्यत: प्रक्रियात्मक अन्तर भी कह सकते हैं। यह अन्तर स्पष्टत: ही वासना प्रेरित प्राणी और परिवेश के संपर्क से उत्पन्न प्रक्रिया-गत अन्तर है। किन्तु एक ही जाति का एक ही परिवेश होने पर दो भिन्न प्रक्रियाएं दो भिन्न वासनाओं का क्रिया-व्यापार होंगी, जो कि दो भिन्न

हार्मन रस-स्रावक कोषों तथा उनके रसों के विषय में विशेष ज्ञातव्य
तथा उनके प्रक्रिया पर प्रभाव का सिंहावलोकन

ग्रंथियाँ	हार्मन	हार्मन का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
पृष्ट-पिच्यूइटरी (Interior Pituitary)	थाइरोट्रोपिक	थाइराइड कोष-रसों के स्राव को उत्तेजित करता है।	रक्त में थाइरोइड कोष-रसों की कमी होने पर यह प्रवाहित होता है।
	ऐड्रेनोकोर्टिको-ट्रोपिक	ऐड्रेनल कोर्टेक्स के रस-स्रावन को उत्तेजित करता है।	इस रस के बिना ऐड्रेनल-कोष बहुत निर्बल और रस-प्रवाहित करने में असमर्थ हो जाता है, किन्तु सर्वथा निःशेष नहीं होता।
	ल्यूटोजेनिक हार्मन अथवा प्रोलैक्टिन	मैम्मरी कोषों से दूध के स्राव को उत्तेजित करता है।	इस रस का स्राव शिशु दर्शन से अथवा वात्सल्य की अधिक उत्तेजना से बहुत अधिक बढ़ जाता है।
	ल्यूटीनाइजिंग हार्मन	यह रस अंडकोष तथा ओवरी की आन्तरिक ग्रंथियों के विकास तथा परिपाक में सहायक होता है, इन कोषों के रसों के स्राव का कारण बनता है। यही रज कण या ओवा के परिपाक तथा	इससे विशेषतः नर के गोनाड्ज प्रभावित होते हैं।

हार्मन रस-स्रावक कोषों तथा उनके रसों के विषय में विशेष ज्ञातव्य
तथा उनके प्रक्रिया पर प्रभाव का सिंहावलोकन

ग्रंथियाँ	हार्मन	हार्मन का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
पृष्ट-पिच्यूइटरी (Interior Pituitary)	थाइरोट्रोपिक	थाइराइड कोष-रसों के स्राव को उत्तेजित करता है ।	रक्त में थाइरोइड कोप-रसों की कमी होने पर यह प्रवाहित होता है ।
	ऐड्रेनोकोर्टिको-ट्रोपिक	ऐड्रेनल कोर्टेक्स के रस-स्रावन को उत्तेजित करता है ।	इस रस के बिना ऐड्रेनल-कोप बहुत निर्बल और रस-प्रवाहित करने में असमर्थ हो जाता है, किन्तु सर्वथा निःशेष नहीं होता ।
	ल्यूटोजेनिक हार्मन अथवा प्रोलैक्टिन	मैम्मरी कोषों से दूध के स्राव को उत्तेजित करता है ।	इस रस का स्राव शिशु दर्शन से अथवा वात्सल्य की अधिक उत्तेजना से बहुत अधिक बढ़ जाता है ।
	ल्यूटीनाइजिंग हार्मन	यह रस अंडकोष तथा ओवरी की आन्तरिक ग्रंथियों के विकास तथा परिपाक में सहायक होता है, इन कोषों के रसों के स्राव का कारण बनता है । यही रज कण या ओवा के परिपाक तथा	इससे विशेपतः• नर के गोनाड्ज़ प्रभावित होते हैं ।

	गर्भाशय में उसके प्रवेश का कारण होता है। यह मादा में कॉर्पुल्यूटम् या (स्तन पायियों में प्रोजेस्टेरोन को उत्तेजित करने वाले एक अचिरस्थायी कोषविशेष) के निर्माण का तथा नर में ऐंड्रोजन के स्राव का कारण होता है।	
फ़ोल्लिकल स्टिमुलेटिंग हार्मन	गोनाड्ज़ को उत्तेजित करनेवाला रस; यह ओवरी में एक विशेष अंग फ़ोल्लिकल को भी उत्तेजित करता है और वीर्य प्रवाहित करने वाली नलियों को भी पुष्ट करता है।	फ. स. ह. से व्यापारित ओवरी में एेस्ट्रोजन का प्रवाह तीव्र हो जाता है। दोनों ही लिंगों में ल. ह. और फ. स. ह. विशेष क्रिया व्यापारों को व्यापारित करने के लिऐ अनिवार्य हैं।
(ग्रोथ) अथवा अभिवृद्धि	हड्डियों को शक्ति और वृद्धि प्रदान करता है तथा प्रोटीन के संग्रह के लिए आवश्यक है।	बचपन में इसका अधिक स्राव व्यक्ति को असन्तुलित रूप से जिन्न के समान लंबा-चौड़ा बना देता है, और बड़ी आयु में इसकी अधिकता मुख और हाथ की हड्डियों को बहुत बढ़ा देती है।
डायाबेटोजेनिक	यह प्रोटीन और फैट्स को कार्बोहाइड्रेट में बदल देता है, तथा कार्बोहाइड्रेट के व्यय को रोकता है।	इसका अधिक स्राव रक्त म खाँड (Sugar) की मात्रा को बढ़ा देता है, और कभी इस मात्रा को आवश्यकता से कम कर देता है।

ग्रंथियाँ	हार्मन	हार्मन का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
अग्रपिच्यूइटरी	ऐंटीड्यूरेटिक	गुदा द्वारा शरीर के पानी को नष्ट होने से रोकता है।	इसकी कमी या अनुपस्थिति प्यास और यूराइन की अधिकता में परिणत होती है।
अग्रिम पिच्यूइटरी	पिट्रेसिन	यह रक्त के दबाव को, रक्त व रक्त बर्तन की पेशियों के संकोचन के द्वारा बढ़ाता है।	
मध्य पिच्यूइटरी	इंटर मेडिन	त्वचा के नीचे की ग्रंथियों के मेम्ब्रेन (बाह्य पर्दा) में के काले धब्बों के विस्तार को उकसाता है और मछली तथा मेंढक इत्यादि प्राणियों में काले रंग का कारण होता है।	इस हार्मन का स्राव यांत्रिक प्रक्रिया (Reflex action) से भी व्यापारित हो जाता है, जैसा कि हम विस्तार से तीसरे निबंध में देखेंगे।

	सेकंड फेक्टर (हार्मन)	थाइराइड ग्रौर ऐड्रेनल ग्रंथियों के ग्रपसारण के बाद यह प्राणी में प्रारम्भिक रासायनिक क्रियाग्रों को प्रेरित करता है ।	इंजेक्शन से इसका प्रभाव देखा गया है ।
थाइराइड	थाइरोक्साइन तथा ग्रन्य रस	कार्बोहाइड्रेट को खपाते हैं, हृदय की धड़कन को नियमित रखते हैं तथा ग्रंगों के विकास ग्रौर ग्राकृति के परिवर्तन में कारण होते हैं ।	ये हार्मन ग्रपने स्राव के लिए पृष्ठ-पिच्यूइटरी के रस स्राव पर निर्भर करते हैं। इनका स्राव ग्रर्ध-जलचारी जन्तुग्रों-मेंढक इत्यादि में विशेष रूप से ग्राकृति-परिवर्तन में कारण होता है । इस हार्मन की कमी किन्हीं ग्रज्ञात कारणों से मनुष्य में मानसिक ग्रौर शारीरिक निर्बलता उत्पन्न कर देती है ।
पाराथाइराइड	पाराथोर्मोन	रक्त में केल्शियम ग्रौर फास्फोरस के ग्रनुपात को ठीक रखता है ।	यह पिच्यूइटरी के ग्रपसारण से प्रभावित नहीं होता। इसकी कमी रक्त में केल्शियम की कमी ग्रौर फास्फोरस की ग्रधिकता में परिणत होती है ।

ग्रंथियाँ	हार्मन	हार्मज़ का क्रिया-व्यापार	सामान्य टिप्पणी
ऐड्रेनल कोर्टैक्स	कोर्टिकोस्टेरन, हाइड्रोक्साइ-कोर्टिकोस्टेरन	ये कार्बोहाड्रेड के रासायनिक क्रिया व्यापार में सहायक होने हैं ।	इनकी कमी से भोजन और पानी का ग्रहण कम हो जाता है, शरीर का तापमान बहुत कम हो जाता है, नाड़ी की कंपन-गति कम हो जाती है, गुर्दा में नमक की कमी हो जाती है तथा मसल्ज़ निर्बल पड़ जाते हैं ।
मध्य एड्रेनल	एड्रेनलिन	लिवर (Liver) अधिक शूगर निर्माण करने लगता है । रक्त का दबाव बढ़ जाता है और हृदय की गति तीव्र हो जाती है ।	
मादा की कामोत्तेजक रस-ग्रंथियाँ अथवा गोनाड्ज़	एस्ट्रोजन	यह मादा में कामोत्तेजना उत्पन्न करता है । इसी से मादा की संभोग-संबंधी क्रियाएं निर्धारित होती है ।	यह रस स्त्रियों में यौवनोदय के समय को निश्चित करता है । इसकी पर्याप्त मात्रा नर को देने पर उसमें यौवनोदय में देर हो जाती है ।

रासायनिक-भौतिक स्थितियों की परिणाम होती हैं, इसलिए उन दो वासनाओं की तृप्ति का आनन्द भी सर्वथा भिन्न-भिन्न होगा जो उन दो भिन्न वासनाओं की धकेल (Push) की मात्रा और प्रकृति के अनुसार निर्धारित होगा—जैसे मैथुन वासना और वात्सल्य दो सर्वथा भिन्न, अन्तः-शारीरिक रासायनिक स्थितियों की परिणाम हैं और इसी से इनकी सन्तुष्टि का आनन्द भी सर्वथा भिन्न-भिन्न रूप में ही होता है। प्राणी की इच्छा-अनिच्छा, वासना-वितृष्णा तथा सशक्तता-अशक्तता इत्यादि मुख्यतः इन्हीं पर निर्भर हैं। इससे जीवन में मन की स्थिति को समझने के लिए इन अन्तःशारीरिक रासायनिक द्रव्यों का तथा उन स्नायु-तंतुओं का ज्ञान आवश्यक है जो इन प्रक्रियाओं के स्रोत हैं। इस निबंध में हम केवल इन्हीं को देखेंगे जब कि दूसरे निबंध में इनसे प्रेरित प्रक्रियाओं के परिवेश से संबंध तथा उनकी सार्थकता को समझने का प्रयास करेंगे।

वासना-प्रेरक रासायनिक रसों को हार्मन, विटेमन तथा ऐंज़ाइम* कहते हैं। ये यद्यपि तीनों ही महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु मुख्य और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हार्मन ही हैं। ऐंज़इाम्ज़ के प्रभाव को हम चतुर्थ निबंध में देखेंगे।

हार्मन वे विशेष जीवन-रस हैं जो विभिन्न कोषों के ग्रंथियों में बनते हैं, जैसा कि चित्र १ और हार्मन चार्ट में देखा जा सकता है। इनका शरीर की उन भीतरी रासायनिक प्रक्रियाओं में भी पर्याप्त महत्त्व है जो भोजन इत्यादि के परमाणुओं को तोड़ने और उन्हें विभिन्न भागों में बाँटने से संबंध रखती हैं, किन्तु हमारे इस निबंध के प्रकरण से इसका कोई संबंध नहीं है। हमारे लिए इनकी केवल उस प्रकृति का ही महत्व है जो प्राणी की प्रक्रिया को स्फूर्तित करती है। प्राणी हार्मन तथा ऐंज़ाइम्ज़ का निर्माण अपने शरीर के भीतर ही करता है जबकि विटेमन भोजन के रूप में बाहर से प्राप्त करता है। किन्तु ऐंज़ाइम्ज़ और हार्मज़ में भी बड़ा अन्तर है, जहाँ हार्मन ऐंज़ाइम्ज़ के समान ही ग्रंथियों में उत्पन्न होने पर भी अपने प्रभाव में ग्रंथियों तक सीमित नहीं रहते वहाँ एंज़ाइम्ज़ की क्रिया ग्रंथियों तक ही सीमित रहती है—जिन ग्रंथियों में वे उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त ऐंजाइम्ज़ का संबंध (संभवतः) सीधा जेन्ज़ (Gens) से है जबकि हार्म एंज़ाइम्ज़ से निर्मित होते हैं (१)।

बहुत से हार्मज़ शरीर में भोजन इत्यादि के समीकरण तथा शरीर की अन्य रासायनिक क्रियाओं के संचालन का भी कार्य करते हैं और अपनी इन क्रियाओं से ये प्राणी के स्वभाव इत्यादि को भी प्रभावित करते हैं, किन्तु हमें यहाँ

*Hormone, Vitamin and Enzimes.

उन हार्मज़ पर ही विचार करना है जो सीधे और गंभीर रूप से प्राणी के स्वभाव तथा प्रक्रियाओं इत्यादि का निर्धारण कर सकते हैं। कुछ हार्मन तो प्राणी के अंगों तथा आकृति तक को बहुत अधिक प्रभावित कर सकते हैं। जैसे गोनाडल (सेक्स) हार्मन, एड्रेनल हार्मन इत्यादि। ये हार्मन न केवल कर्मेन्द्रियों को ही प्रभावित करते हैं और प्राणी को तदीय प्रक्रियाओं में सशक्त या अशक्त बनाते है प्रत्युत उसकी आकृति, वासनाओं तथा भूख प्यास तक को बदल डालते हैं।

नर की काम-उत्पादक ग्रंथि (टेस्टिस) तदीय रसों को शरीर के अन्त मर्गों में प्रवाहित कर देती है जिससे कि सभी प्रकार की प्राथमिक और उद्दिष्ट (Secondary) काम-चेष्टायें तथा तदीय अंग इत्यादि निर्मित होते हैं। मनुष्यों में सामान्यतः नर में चौदह से सोलह वर्ष की आयु में शरीर में टेस्टिस-ग्रंथि के रसों से निर्धारित परिवर्तन होते देखे जा सकते हैं—इन रसों से ही उसके अंग पकते हैं, मुख पर श्मश्रु फूटने लगती है और वह 'युवक' होने लगता है। अन्य प्राणियों में तो परिवर्तन और भी गंभीर होते हैं, जिन्हें विकासवाद के प्राचीन समर्थक सेक्सुअल-सिलेक्शन कहते थे। इन परिवर्तनों में मुख्य, कुछ पक्षियों के पंखों में विशेष प्रकार के कांटें से या सींगों की उत्पत्ति (चोट करने के लिए), मुकुट का आविर्भाव तथा पंजों का काठिन्य इत्यादि हैं। यदि अपरिपक्वावस्था या कैशोर्य में ये ग्रंथियां शरीर से निकाल ली जाएं तो जो जननेन्द्रियां शेष रहती हैं (जैसे वीर्य भांड इत्यादि, मूत्रेन्द्रिय नहीं) वे बहुत छोटी हो जाती हैं; इसी प्रकार उद्दिष्ट (secondary) मैथुन प्रक्रियाओं (संभोग त्यादि) के भी नर अयोग्य हो जाता है, कंठ में नरत्व सुलभ परिवर्तन नहीं होते, इसी प्रकार शेष शरीर में भी पुंसत्व-जन्य अन्य परिवर्त्तन नहीं होते।

पशुओं में मनुष्य से अधिक परिवर्त्तन का कारण संभवतः यही हो सकता ह कि उनमें कामोत्पादक रस—गोनाडल हार्मन्ज़—अधिक प्रभावशाली होते हैं। कुक्कुट में इस ग्रंथि का अपसारण मुकुट और पंखों इत्यादि की वृद्धि को रोक देता हैं, इसी प्रकार हरिण में उनके शृंगों की उत्पत्ति नहीं हो पाती। जिन जातियों में दोनों लिंगों में ही सींग होते हैं—जैसे गाय में, उनके नर में इस ग्रंथि का अपसारण उसके सींगों की आकृति बदल देता है; जैसे कि हम बैलों और सांड़ों के सींगों की बनावट में अन्तर देखकर सहज ही अनुमान कर सकते हैं। बैलों के सींग बहुत कुछ गाय के साथ मिलते-जुलते होते हैं।

इसी प्रकार अन्य ग्रंथियों के रस भी शरीर पर और प्राणी के व्यवहार पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। इनमें से अनेक रस केवल दूसरी ग्रंथियों के स्राव को

प्रेरित भर करने के लिए हैं। वास्तव में ये सभी ग्रंथियां एक-दूसरे के स्राव पर बहुत कुछ निर्भर करती है और एक दूसरे के कार्य को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। इस प्रकार के रसों में पिच्यूइटरी रस सबसे अधिक प्रमुख हैं। यह अनेक रसों को प्रवाहित करती है, जिन्हें ट्रापिक हार्मन (Tropic Hormons) कहते हैं। ये रस शरीर की अन्य ग्रंथियों के रस-प्रवाह को प्रेरित या निरुद्ध करते हैं, इसी से इस ग्रंथि को अधिष्ठाता ग्रंथि भी कहा जा सकता है। किन्तु इन ग्रंथियों के स्राव-निरोध केवल पिच्यूइटरी पर ही आश्रित नहीं हैं, और भी अनेक रासायनिक प्रक्रियायें शरीर में होती है जो इन्हें प्रेरित या निरुद्ध करती हैं। अनेक ग्रंथियों के अनेक स्राव तो स्नायु-केन्द्र अथवा मस्तिष्क केन्द्रों से आती हुई लहर (Impulse) से ही निर्धारित होते हैं। इसलिए ग्रंथियों के रसों का क्रिया-व्यापार उनके पारस्परिक संबंध, स्नायु-केन्द्र की स्थिति और उसके संबंध तथा अन्य अनेक रासायनिक प्रक्रियाओं की सापेक्षता में निर्धारित होता है।

यद्यपि ग्रंथि-रसों की प्रकृति और शरीर की सामान्य रासायनिक प्रक्रिया में उनका स्थान और प्राणी के व्यवहार या केन्द्रीय-स्नायु तंतु तथा ज्ञानेन्द्रियों पर उनका प्रभाव, समझना अत्यन्त कठिन है, तो भी इन ग्रंथियों के अपसारण से, या इनके रसों के इंजेक्शन से उत्पन्न होने वाले अन्तरों से इनका कुछ सामान्यज्ञान (Workable knowledge) हो ही जाता है। किन्तु ये प्रयोग एक सीमा तक ही इस सम्बन्ध में कुछ बता सकते हैं। जैसे, किसी ग्रंथि के अपसारण से शरीर में कुछ अन्तर उत्पन्न होगा जो उसके शरीर पर सीधे प्रभाव का परिणाम होगा, किन्तु इससे अन्य ग्रंथियों की सापेक्ष स्थिति पर भी अन्तर पड़ सकता है और इस प्रकार वह परोक्ष रूप से भी शरीर में कितने ही परिवर्तनों का जन्मदाता हो सकता है। इसलिए वैज्ञानिक के लिए यह निर्णय देना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि उसके प्रयोग से उत्पन्न प्रभाव सीधा अपसारित ग्रंथि का प्रभाव है या किसी अन्य संबद्ध ग्रंथि के द्वारा अपसारित ग्रंथि का परोक्ष प्रभाव है। यही समस्या इन रसों के इंजेक्शन में भी उत्पन्न होती है। संभव है किसी ग्रंथि-रस का इंजेक्शन, जो प्रयोगकर्त्ता वैज्ञानिक करता है, प्रतीयमान प्रभाव को सीधे ही जन्म दे रहा हो और यह भी उतना ही सम्भव है कि उसने किसी अन्य ग्रंथि के रस को स्रवित होने में सहायता दी हो और प्रतीयमान प्रभाव उसी का हो। इसलिए इस प्रकार के प्रयोगों के महत्व-पूर्ण होने पर भी भूल की संभावना बनी ही रहती है।

संभवतः हार्मज़ के निर्माण में, जो कि विशेष ग्रंथियों के कोषों से होता है, जीवन के आधारभूत पदार्थ, जेंज़ (Genes) ही कारण होते हैं, जैसे वे

एंज़ाइम्ज़ के निर्माण में होते हैं, किन्तु जेन्ज़ और हार्मज़ का सीधा संबंध न हो कर संभवतः एंज़ाइम्ज़ के द्वारा ही है, इसलिए यदि कोई विशेष जेन गौण रह जाय या जेंज़ और हार्मंज़ के बीच की कड़ी—किसी एंज़ाइम को समाप्त कर दिया जाए तो तत्संबंधी हार्मन भी बन्द हो जायगा। इस प्रकार हार्मज़ के स्राव की मात्रा पर भी उत्तराधिकार का संबंध किसी-न-किसी प्रकार से संभावित है ही, और यह बात बहुत महत्वपूर्ण है। हार्मंज़ और एंज़ाइम्ज़ दोनों को ही रोकने वाले कुछ अन्य रासायनिक एजेंट भी हमारे शरीर में रहते हैं जिन्हें हार्मन-निरोधक कहा जाता है। किन्तु इस संबंध में वैज्ञानिक अभी तक निश्चित नहीं हैं कि ये हार्मन-निरोधक कैसे कार्य करते हैं और इनकी रासायनिक प्रकृति क्या है, तो भी इतना तो ज्ञात हो सका ही है कि ये या तो उन ग्रंथियों को ही पंगु कर देते हैं जो हार्मंज़ को उत्पन्न करती हैं, अथवा उन एंज़ा-इम्ज़ को रोक देते हैं जो हार्मंज़ के कारण होते हैं; इसी प्रकार ये हार्मज़ की रक्त इत्यादि में रासायनिक क्रिया को भी प्रभावित करते हैं,—उदा-हरणार्थ, एक रासायनिक द्रव्य-विशेष, एल्लोक्सन (Alloxan) इंसुलिन ग्रंथि के रसों को निरुद्ध कर देता है। यदि यह रस पर्याप्त हो जाए तब तो यह इंसुलिन-ग्रंथि के सेलों तक को नष्ट कर डालता है। इसी प्रकार थाइराइड ग्रंथि के हार्मज़ का भी निरोध किया जाता है—सल्फागुआनेडाइन (Sulfaguanadine) तथा अन्य भी सल्फा के विभिन्न रस इस ग्रंथि के रसों को निरुद्ध करते हैं। कुछ हार्मन भी ऐसे होते हैं जो दूसरे के प्रभाव को क्रियान्वित होने से रोकते हैं—पिच्यूइटरी ग्रंथि एक विशेष हार्मन, थाइराइ-ट्रोपिक (Thyroitropic) को प्रवाहित करती है जो थाइराइड के स्राव को रोकता है। इसी प्रकार एस्ट्रोडियल (Estrodiol) टेस्टोस्टेरोन (Tes-testerone) के स्राव और प्रभाव को रोकता है यद्यपि ये दोनों हार्मंज़ गोनाड्ज़ से ही प्रवाहित होते हैं और रासायनिक प्रकृति में बहुत कुछ समान भी हैं। संभवतः इसका कारण यह हो सकता है कि ये दोनों रस प्रायः समान होने से एक ही रासायनिक प्रक्रिया के लिए स्पर्धा करते हैं।

विभिन्न ग्रंथियों के इन रासायनिक द्रव्यों को देखने के पश्चात् अब हम प्राणी के व्यवहारों पर इनके प्रभाव को भी संक्षेप में देखेंगे क्योंकि इन दोनों के पारस्परिक संबंध को समझना अत्यन्त कठिन होने पर भी अत्यन्त उपयोगी है। यद्यपि प्राणी की प्रक्रियाओं का निर्णय करने में ये एकमात्र निर्णायक तत्व नहीं हैं, प्राणी के मस्तिष्क तंतुवाय तथा 'प्रदेशों' का प्रबंध, केन्द्रीय तथा अन्य स्नायविक प्रबंध (Central Nervous System and Motor Ne-rvous System) तथा विटामिन और एंज़ाइम भी बहुत अधिक निर्णायक

होते हैं, किन्तु प्रक्रिया की वाहक स्नायुओं में प्रेरणा का उत्तरदायित्त्व बहुत कुछ हार्मज़ पर ही होता है। इसलिए यद्यपि हम प्रक्रिया के अन्य एजेंटों को भी प्राणी-व्यवहार का अध्ययन करते हुए देखेंगे, किन्तु मुख्यतः यहाँ हमारे अध्ययन के विषय हार्मज़ ही होंगे। स्नायुतंतुवाय के प्रक्रिया पर नियंत्रण को हम अगले अध्याय में विस्तार से देखेंगे जब कि मस्तिष्क प्रबंध के आश्चर्यजनक यंत्र को निबंध के अन्त में संक्षिप्त चर्चा करते हुए देखने का प्रयास करेंगे। वास्तव में कोई भी एक पहलू प्राणी-व्यवहार के स्रोतों का निर्णय नहीं कर सकता, यह तो शरीर की पूर्ण समष्टि ही है जो अपने उलझनपूर्ण वैविध्य में इसका निर्णय करती है।

× × ×

हम प्रवृत्ति और विचारण (Instinct and Intellect) तथा समझदारी (Intelligence) में निहित अन्तर को आगे पृथक् निबंध में देखेंगे। इसलिए यहाँ हमें एक कामचलाऊ अभ्युपगम (Workable Hypothesis) के रूप में यह मान लेना चाहिए कि मनुष्येतर प्राणियों के व्यवहार अथवा प्रवृत्तियाँ सामान्यतः अचिंतित, अविचारित अथवा प्रवृत्यात्मक (Instinctive) होते हैं, और ज्यों-ज्यों हम अधिक अविकसित प्राणियों की ओर बढ़ते जाएँ, त्यों-त्यों हम उनमें प्रवृत्यात्मकता अधिक पायेंगे। इसी प्रकार मनुष्य के भी व्यवहार, जो पशु-सुलभ हैं, सामान्यतः प्रवृत्यात्मक कहे जा सकते हैं, यद्यपि उनमें समझदारी और विचारणा का कुछ रंग भी मिला रहेगा ही। यदि हम यह कहें कि विशुद्ध रूप से शरीर-वैज्ञानिक प्रक्रिया प्रवृत्ति है और उससे भिन्न प्रक्रिया समझदारी या कुछ और, तो यह स्पष्ट न होने पर भी बहुत कुछ ठीक अवश्य होगा। अस्तु, अब हम इस विवाद को पाँचवें निबंध के लिए छोड़ कर आगे बढ़ते हैं।

इस निबंध में हमें प्रवृत्तियों और प्राणी की प्रक्रिया के स्रोतों (Stimulus conditions) का अध्ययन करना है जो अत्यन्त कठिन कार्य है; किन्तु जिसे समझना अगले सब निबंधों के तर्कों की न्याय्यता को समझने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। न तो मैं ही और न कोई अन्य ही आज इस स्थिति में है कि इस संबंध में कोई अन्तिम बात कह सके, इसलिए यहाँ जो भी कुछ कहा जाएगा वह केवल एक संभावना ही हो सकती है। इसी प्रकार विभिन्न जातियों में प्रतीयमान रूप से एक ही व्यवहार के लिए कोई ऐसा सामान्य आधार अथवा कारण नहीं बताया जा सकता जो सार्वभौम हो। संभव है कुछ जातियाँ उनकी अपवाद भी हों। जैसे, अनेक प्राणी दो या दो से अधिक रंग बदल सकते हैं, इसी प्रकार, बहुत से प्राणियों के रंग ठीक अपनी परि-

वृत्ति के अनुसार होते हैं। संभव है किसी या किन्हीं जातियों में यह मानसिक प्रयास और चुनाव का परिणाम भी हो, और यह भी संभव है कि यह केवल शरीर की यांत्रिक, भौतिक और रासायनिक स्थितियों का ही परिणाम हो। इनमें से चाहे हम किसी को भी सिद्धान्त रूप में स्वीकार क्यों न कर लें किन्तु संभवतः उसे सार्वभौम नहीं कहा जा सकेगा—क्योंकि सदैव ही अपवादों की संभावना तो रहेगी ही। इसी प्रकार, प्राणी का कोई व्यवहार बाह्य-उकसाइट (External stimuli) का परिणाम भी कहा जा सकता है और अन्तर-उकसाइट (Internal stimuli) का भी, यहाँ केवल पहली या दूसरी और कम या अधिक संभाव्य ही है, सार्वभौम नियम नहीं। रंग-परिवर्तन अथवा अपनी प्राकृतिक परिवृत्ति के समान रंग होना प्राणी के लिए लाभदायक हो सकता है, और यह प्राणी के सेल्ज़ की स्वतः-जात रासायनिक प्रक्रिया का परिणाम भी हो सकता है और प्राणी का मानसिक प्रयास भी हो सकता है। इन दोनों में किसी के कम या अधिक संभव होने की संभावना हो सकती है, किन्तु यह सर्वजनीन ही हो, ऐसी कोई शर्त नहीं है, जैसा कि हम अगले दो निबंधों में विस्तार से देखेंगे। किन्तु यह अधिक संभाव्य प्रतीत होता है कि प्राणी किन्हीं अन्तःशारीरिक कारणों से प्रेरित होकर ही व्यापारित होता हो, उसका मानसिक प्रयास उस 'अन्तःप्रेरणा' से कुछ संबंध न रखकर केवल उस अन्तःप्रेरणा या वासना के क्रियान्वित होने से ही संबंध रखता हो, और इस प्रकार मानसिक प्रयास स्वयं एक यांत्रिक प्रक्रिया का ही परिणाम हो। बाह्य परिवृत्ति के साथ उसके दो सबंध हो सकते हैं। एक तो यह कि परिवृत्ति उसके अन्तःशरीर की रासायनिक और भौतिक परिस्थितियों को प्रभावित कर सकती है और दूसरे उसकी अन्तर्वासना के विकास अथवा व्यय के विषय (Object or image) के रूप में साधन हो सकती है। किन्तु परिवृत्ति (Object) किसी मानसिक कारण के रूप में किसी वासना की उत्पत्ति का कारण भी हो सकती है, यह संभव प्रतीत नहीं होता। परिवृत्ति यदि किसी रूप में कारण होती भी हो तो केवल तभी यदि वह अन्तःपरिस्थितियों में किसी रासायनिक विस्फोट की संभावना का लाभ उठा सके, वह स्वयं आन्तरिक परिस्थितियों का सृजन नहीं कर सकती।

(यहाँ सम्भवतः हम अपनी बात कहने में बहुत आगे बढ़ गये हैं, एक-तरफा हो गये हैं, क्योंकि भय-क्रोध इत्यादि की उत्पत्ति में बाह्य परिवृत्ति (Object or image) 'कारण' भी हो सकती है। इस संबंध में हम अगले निबंध में, जहाँ स्नायुतंतुवाय पर विचार किया जायगा, कुछ कहेंगे।

यहाँ हम केवल 'वासनाओं' (Appetites) के लिए ही कह रहे हैं, और इसके लिए यही सत्य है।)

इसलिए प्रक्रिया के स्रोत प्राणी के अन्तःशरीर में ही निहित माने जा सकते हैं। जहाँ तक उसकी वासना-व्ययी प्रक्रिया (Consummatory act) अथवा अन्तर्वासना की तृप्ति के लिए परिवृत्ति से संपर्क, जैसे भूख की वासना होने पर भोज्य-पदार्थ से संपर्क) का संबध है, उसे किसी भी प्रकार से विचारित अथवा किसी भी प्रकार से अपने लाभ की चेतना से स्वीकृत नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यह केवल संयोग है कि प्राणी के शरीर का निर्माण, उसके अंगों का गठन इत्यादि उसके लाभ के लिए हो, जैसा कि हम दूसरे और विशेषतः तीसरे निबंध में देखेंगें।

अनेक वैज्ञानिक प्राणियों की प्रक्रिया और यहाँ तक की शारीरिक विकास तक को मानसिक चुनाव-जन्य मानते हैं। उनके विचार में एक सजीव प्रक्रिया (Vital act) उनके शक्ति-स्रोतों को उनके लाभ में परिवर्तित कर दे सकती है। इस मत के वैज्ञानिकों के प्रतिनिधि के रूप में E. S. Russell को उद्धृत किया जा सकता है। वह कहता है कि "इन (सजीव) प्रक्रियाओं को विशुद्ध भौतिक रासायनिक प्रक्रियाएँ कहना और सदैव इनकी एक ऐसी ही व्याख्या खोजना तथा इन्हें निरुद्देश्य समझना एक अत्यन्त उलझनपूर्ण और भ्रामक व्योरे (Detail) में भटकना है, तथा इन प्रक्रियाओं की जीव-वैज्ञानिक (Biological) सार्थकता को और प्राणी के आत्म-निर्भर, आत्म-जननात्मक तथा विकासशील जीवन के साथ उसके संबंध को भूल जाना है।" रसल संभवतः इस सजीव प्रक्रिया की सोद्देश्यता का समर्थन करने में बहुत दूर तक जाता है। प्राणी-व्यवहार की इस प्रकार व्याख्या करने वालों की संख्या सौभाग्यवश, आज बहुत कम है, किन्तु इनका समन्वय करने वाले आज भी बहुत काफी हैं, और विकास तक की व्याख्या करते हुए वे किसी न किसी प्रकार के प्रयास और सोद्देश्यता तक को स्वीकार कर लेते हैं, जैसे, सेक्सुअल सिलेक्सन, एडेप्टेशन और आत्मरक्षा इत्यादि को। सेक्सुअल सिलेक्शन अथवा एडेप्टेशन इत्यादि भी यद्यपि आज बहुत कम समर्थित हैं तो भी एडेप्टेशन इत्यादि को सेक्सुअल सिलेक्शन से काफी अधिक मान्यता प्राप्त है। प्रवृत्ति का अध्ययन करने वाले समन्वयवादी वास्तव में कभी-कभी अन्तर्वासना को घपला भी देते हैं, वे रासायनिक-भौतिक अन्तर्वासनाओं को मानसिक अन्तर्वासनाओं से पृथक करना भूल जाते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम एडेप्टेशन या आत्म-रक्षा की प्रवृति को विल्कुल

स्वीकार ही नहीं करते, हम स्पष्ट रूप से देखते और जानते हैं कि प्रत्येक प्राणी अपकारक परिवृत्ति से बचता है और सुखद-परिवृत्ति में रहना पसंद करता है, किन्तु यह केवल एक प्रतिक्रिया है और उतनी ही मानसिक या यांत्रिक है जितनी लज्जा से लाल हो उठने की प्रक्रिया। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी बात यह है कि दुख या दुखद अनुभूति का परिणाम चाहे प्राणी के अस्तित्व-रक्षा (Adaptability) के स्तर को उन्नत कर देता हो, किन्तु न तो इस अनुभूति (Reflex) का उद्देश्य ही यह होता है और न कारण ही जैसा कि हम दूसरे निबंध में देखेंगे। किन्तु यह हमें इस निबंध में ही देखना है, और यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रायः सभी प्रकार की क्रियाओं के लिए प्राणी के शरीर में तदनुकूल योग्यता (Capacity) होनी अत्यन्त आवश्यक है और वही योग्यता (Capacity) प्राणी के परिवृत्ति के साथ संपर्क होने पर अथवा आवश्यकता होने पर, व्यवहार-विशेष में अभि-व्यक्त होती हैं। इस प्रकार, जिस प्राणी के दो टांगें हैं, वह कभी भी चार टाँगों वाले प्राणी के समान व्यवहार नहीं कर सकता, चाहे अन्तर्वासना और बाह्य परिवृत्ति सर्वथा एक सी ही क्यों न हो, और क्यों कि वह उस प्रकार व्यवहार नहीं कर सकता इसलिए उसके तदर्थ प्रयास का, उसकी अकांक्षा का भी प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य में मानसिक 'प्रयास' का कारण उसका दैशिक और कालिक विषयों में संबंध-सूत्र (Relations) खोजना या स्थापित कर सकना है, जो कि पशु में नहीं होता। यह केवल विचारणा (Intellect) की ही विशेषता है, प्रवृत्ति की नहीं, जैसा कि हम पाँचवे निबंध में देखेंगे।

विकसित प्राणी (बन्दर, शिंपेंजी इत्यादि) सीखने की योग्यता अपेक्षाकृत अधिक रखते हैं और उनकी क्रियाएँ यांत्रिक होने पर भी उस प्रकार जन्मजात नहीं होतीं जिस प्रकार कम विकसित (मछली इत्यादि) प्राणियों की होती हैं, जैसे बिल्ली और चूहे का प्रक्रियात्मक संबंध इस प्रकार भी बन सकता है कि वह चूहे को खाने के बजाय उससे डरे या प्यार करे। यह बिल्ली की शिक्षा पर या अनुभव पर आधारित है, जो अनुभव न तो प्रवृत्यात्मक है, न विचारणात्मक और न समझदारीपूर्ण— यह प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया अथवा प्रक्रियात्मक प्रवृत्ति पर आधृत है। इसे पाव्लोव (Pavlov) के शब्दों में निर्धारित प्रभाव (Conditioned effect) भी कहा जा सकता है (यद्यपि प्रक्रिया और निर्धारित प्रभाव में बहुत अधिक अन्तर है) और सब से बड़ी बात जो यहाँ समझने की है और जिसके लिए हमने आगे दो निबंध और लिखे हैं, वह यह है कि चूहा बिल्ली

के अहेर की वासना का कारण नहीं है, यह केवल बिल्ली की भौतिक रासायनिक अन्तः परिस्थिति तथा परिवृत्ति के साथ उसका प्रक्रियात्मक संबंध ही है जो उसे अपनी तृप्ति के लिए उकसाती, बाध्य करती और एक विशेष विषय के साथ अपने विकास का संबंध जोड़ती है। विषय के साथ प्रक्रियात्मक संबंध में संयोग (Chance) और सुविधा को ही कारण समझा जा सकता है, यद्यपि अपनी शारीरिक प्रकृति भी कुछ कारण हो सकती है—जैसे स्वाद बेस्वाद में। किन्तु यह स्वाद संबंधी निर्धारण वस्तु-विशेष पर निर्भर न होकर वस्तु के विशेष गुण और अपनी शारीरिक परिस्थिति की विशेष स्थिति पर निर्भर करता है। यह केवल संयोग ही है कि बिल्ली भूख में किसी विषय के संपर्क में आए और वह विषय उसकी उस वासना का ठीक उत्तर (Response) दे और इस प्रकार उसका प्रक्रिया-केन्द्रीकरण उससे संबद्ध हो जाए। मिसपिट (एक वैज्ञानिक) की बिल्ली यदि चूहे को स्नेह करती है और यदि महादेवी (हिन्दी की कवियित्री) की बिल्ली केवल मद्रासी पापड़ खाती है तो इसका कारण प्रक्रिया-केन्द्रीकरण को ही कहा जायगा।

यद्यपि इस प्रकार प्राणी बहुत कुछ 'स्वतन्त्र' हो जाते हैं और अपने व्यवहार में अपेक्षाकृत अधिक 'अवसरवादिता' (Adaptability) लाने में कुछ समर्थ हो जाते हैं, किन्तु उनकी यह अवसरवादिता उन्हें अपनी वासना को नियमित करने और परिवृत्ति के यांत्रिक प्रभाव (Reflex Action) को रोकने में भी समर्थ नहीं करती। इसे हम विशेष विस्तार से अगले निबंध में देखेंगे। यहाँ तो हमें अब केवल यही देखना है कि ये भौतिक-रासायनिक परिस्थितियाँ किस प्रकार प्राणी के व्यवहार या प्रकृति को निर्धारित करती हैं और उनकी कारण हैं।

प्राणी-व्यवहार और शरीर-विज्ञान का स्वतंत्र अध्ययन बहुत देर से होता है, किन्तु इन्हें बहुत देर तक एक-दूसरे पर घटित नहीं किया गया। प्राणी-व्यवहार का अध्ययन केवल व्यवहार के सामान्य वर्णन और कभी-कभी कल्पित कारणों के आरोपण तक सीमित रहा है और शरीर-विज्ञान का अध्ययन केवल शरीर की वृद्धि तथा तत्संबन्धी शारीरिक स्थिति के ज्ञान को ही महत्त्व देता रहा है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों में इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है और व्यवहार को सामान्यतः शरीर-वैज्ञानिक स्तर पर प्रायः सभी प्रकार से देखा जा रहा है। इससे यह प्रमाणित हो गया है कि प्राणी-व्यवहार के मुख्य स्रोत अन्तःशारीरिक ही हैं, जिनमें हार्मोज़

का सबसे अधिक महत्त्व है। वैसे तो प्रायः सभी प्रक्रियाओं में हार्मज़ का किसी न किसी प्रकार से हाथ रहता ही है, किन्तु मैथुन तथा मातृत्व इत्यादि में तो ये पूर्ण रूप से ही अधिष्ठाता हैं। अन्य प्रक्रियाओं, जैसे घोंसला बनाना, प्रवास करना तथा रंग बदलना इत्यादि में भी यद्यपि ये बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं किन्तु यहाँ या तो यह संबंध नकारात्मक है अथवा . परोक्ष, किन्तु यह प्रायः निश्चित ही है कि इनमें भी यही अद्वितीय महत्त्व की नियामक शक्ति है।

इन द्रव्यों को प्रवाहित करने वाली ग्रंथियाँ कुछ तो ऐसी हैं जो एक विशेष समय पर और विशेष परिवृत्ति में ही स्रवित होती हैं और शेष समय बन्द रहती हैं और इस प्रकार प्राणी की प्रक्रियाओं का एक चक्र बाँध देती हैं और दूसरी ग्रंथियाँ या तो इन ग्रंथियों की प्रेरणा से ही रस स्राव करती हैं अथवा परिवृत्ति के प्रकाश और तापमान इत्यादि से नियमित होती हैं। किन्तु प्राणी व्यवहार में ये रस एकमात्र कारण नहीं हैं, सांवेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) और अन्य आन्तरिक परिवर्त्तन, जो मुख्यतः इन रसों से ही संबन्ध रखते हैं, कभी-कभी एक साथ ही केन्द्रीय स्नायु-तंतुवाय (Central Nervous System) को उकसाते हैं जो कि प्रवृत्यात्मक व्यवहार के लिए उत्तरदायी होता है, और कभी-कभी अकेली सांवेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) भी स्नायु तंतुवाय को उकसाने के लिए पर्याप्त रहती हैं। सांवेदनिक उकसाहट (Sensory stimuli) की प्रकृति को हम अगले निबन्ध में विस्तार से देखेंगे। यहाँ हमारे लिए केवल इतना समझ लेना ही काफी है कि हार्मज़ के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रक्रिया-स्रोत भी शरीर में विद्यमान हैं जो प्राणी को प्रेरित करते हैं।

हार्मज—प्रक्रिया के स्रोत

मातृत्व—जैसा कि हार्मज की सूची में देखा जा सकता है, पिच्यूइटरी ग्रंथि के अन्तर्भाग से प्रवाहित होने वाले रसों में एक प्रोलैक्टिन रस भी है जो छाती की मैम्मरी ग्रंथियों में दुग्ध-स्राव को प्रेरित करता है, तथा प्राणी में मातृत्व-स्नेह को जन्म देता है। 'हार्मन-युग' से पूर्व इस सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद रहा है कि मातृ-स्नेह का स्रोत क्या है। फ्रायड इत्यादि ने मातृत्व स्नेह को काम-तृप्ति का ही एक प्रवंचना-मूलक पहलू बताया था जब कि धार्मिक और पवित्रतावादी क्षेत्र इसका तीव्र विरोध करते थे। किन्तु संभवतः, सभी समयों में, यदि कोई दार्शनिक की 'ऊँची-दृष्टि' से नहीं सोचता तो, यह

अनुभव किया जाता रहा होगा कि इन दो वासनाओं की, तथा इनकी तृप्ति की अनुभूति सर्वथा भिन्न रूप की ही होती है। कहा जा सकता है कि, इनमें कहीं भी कोई समता नहीं। फ्रायड ने संभवतः अपनी यह बात इसलिए भी कही होगी, क्योंकि मातृ-स्नेह की तीव्रता स्त्री को काम-वासना की तीव्रता से रहित करती है, और संभवतः उसने समझा कि यह केवल एक ही वासना के दो पहलू भर हैं जो एक दूसरे को स्थानान्तरित करते हैं। इसके अतिरिक्त उसने अनेक ऐसी रोगी लड़कियाँ भी देखीं जो विवाह न चाहकर केवल पुत्र चाहती थीं। वे पुरुष से डरती भी थीं। उसने इसका कारण भी वही समझा जो वह पुरुष से डरने वाली अन्य रोगी स्त्रियों के केस में समझता था। यद्यपि हम उसके उलझनपूर्ण मानसिक स्थिति के रोगियों के बारे में कुछ भी कहने में अपने आपको अयोग्य पाते हैं, किन्तु आज हम यह अवश्य निश्चित रूप से जानते हैं कि प्रोलैक्टिन न केवल मैम्मरी ग्रंथियों में दुग्ध-स्राव को ही प्रेरित करता तथा मातृ-स्नेह का कारण होता है, प्रत्युत् गोनाड्ज़ के रस-स्राव को रोक कर काम-वासना को क्षीण करने का कारण भी होता है।

यह बात प्रयोग-सिद्ध है कि हार्मज़ का शरीर में अनुपात मातृत्व-वासना की उत्पत्ति में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रोलैक्टिन की कमी या अधिकता इसमें सबसे अधिक महत्व रखती है। नर कबूतरों में इस रस का इंजेक्शन उनमें मातृत्व-स्नेह को उत्पन्न कर सकता है। वे अपने शिशुओं से न केवल मादा कबूतर (माता) के समान स्नेह ही करने लगते हैं प्रत्युत उनके लिए मादा के समान धान्यकणों से दूध भी बनाते हैं। पक्षियों की उन जातियों में, जो बच्चों से विशेप-स्नेह नहीं करतीं, इस रस का इंजेक्शन विशेष स्नेह उत्पन्न कर देता है। पालतू मुर्गे इस रस के इंजेक्शन से बच्चों से मादा के समान ही स्नेह करने लगते हैं, उसी के समान वे उन्हें चोगे के लिए साथ ले जाते हैं, बच्चों के भय-क्रंदन सुनने पर उसी प्रकार आक्रमणशील हो उठते हैं और उसी प्रकार उनकी रक्षा करते हैं। किन्तु कितनी भी प्रोलैक्टि-रस की मात्रा उन्हें अंडों पर बैठने के लिए तैयार नहीं करती। इसी प्रकार चहों में भी। नर चूहों और अक्षत मादाओं में यद्यपि मातृ-स्नेह के कुछ आसार इस रस के बिना भी पाए जा सकते हैं, किन्तु इस रस का इंजेक्शन उनमें इस प्रवृत्ति की तीव्रता को बहुत अधिक बढ़ा देता है। वे छोटे बच्चों को देर-देर तक चाटते रहते हैं, उन्हें खिलाते हैं और दुलराते हैं। यह प्रक्रिया उनमें और भी तीव्र की जा सकती है यदि उनमें प्रोलैक्टिन के साथ कुछ अन्य हार्मज भी, जो कि गर्भिणी मादा में पाए जाते हैं, इंजेक्ट कर दिये जाएं तो। ये

हार्मन गोनाडोट्रोपिक (Gonadotropic) हार्मन कहे जाते हैं जिन्हें प्रोलैक्टिन के इंजेक्शन से कुछ पूर्व देने पर प्रभाव की तीव्रता बहुत अधिक बढ़ जाती है ।

ये हार्मन मातृत्व-स्नेह के एकमात्र उत्पादक हार्मन नहीं है । अन्य भी कुछ हार्मन इसकी उत्पत्ति में सहायक हो सकते हैं, यद्यपि उनका प्रभाव इस ओर बहुत कम होता है । प्रोजेस्टेरोन (Projesterone) और डेसोक्साईकोर्टिकोस्टेरोन (Disoxycorticosteron) इसी प्रकार के हार्मन हैं । रिड्डल के अनुसार, जो हार्मन मातृत्व-स्नेह को उत्पन्न करते हैं, वे आंशिक रूप से इसलिए भी अपने प्रभाव को इस रूप में क्रियान्वित करते हैं क्योंकि वे मैथुन-वासनाजनक हार्मंज़ को रोकते हैं। इसका प्रमाण यह भी है कि ओवरी (ovary) या टेस्टिस का अपसारण नर और मादा चूहों में मातृत्व स्नेह को बढ़ा देता हैं जब कि प्रोजेस्टेरोन और फोल्लिकल प्रेरक हार्मन की अधिक मात्रा इसे घटा देती है । इसी प्रकार पिच्यूइटरी-ग्रंथि का अपसारण भी नर या मादा चूहों में मातृत्व-स्नेह का कारण हो सकता है, जो कि आश्चर्य की बात है, किन्तु इसका कारण स्पष्ट है; पिच्यूइटरी ग्रंथि के अपसारण से गोनाड्ज़ का स्राव भी रुक जाता है और इस प्रकार इसका परोक्ष रूप से यह प्रभाव पड़ता है ।

जो भी हो, इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि मातृत्व-स्नेह के उत्पादन में केवल प्रोलैक्टिन ही विशेष रूप से प्रभावशाली होता है । संभवत: इसका मुख्य कार्य गोनाड्ज़ के स्राव को रोकना भी है यद्यपि मैम्मरी ग्रंथियों के रस-स्राव का कारण होने से यह मातृत्व स्नेह का अपरोक्ष कारण भी है । प्रोलैक्टिन संभवत: गर्भधारण के समय से ही प्रवाहित होने लगता है और तभी से गोनाड्ज़ इत्यादि के रस-प्रवाह को रोकना भी प्रारंभ कर देता है। किन्तु संभवत:, जैसा कि मैम्मरी ग्रंथियों को प्रभावित करने से भी स्पष्ट है, इसका एतत्संबंधी व्यवहार पर सीधा प्रभाव भी पड़ता ही होगा ।

अभी विज्ञान संभवत: यह बताने में असमर्थ है कि मातृ-स्नेह के प्रेरक हार्मन तथा अन्य प्रेरक परिस्थितियाँ(Stimulating factors)स्नायु-तंतुवायको किस प्रकार प्रभावित करती हैं, यद्यपि इन अनुभूतियों को क्रियान्वित करने वाले तंतुवाय के विषय में कुछ अनुमान किया जा सकता है । बीच (Beach) के अनुसार (Cortex) के किसी भी भाग का २० प्रतिशत के लगभग काट देने से चूहे में घोंसला बनाने, बच्चों को दुलराने, उनका

पालन करने तथा रक्षा करने की प्रक्रियाएँ गंभीरता से प्रभावित होती हैं, और समाप्त तक हो जाती हैं। चूहे के इन्हीं केन्द्रों पर गंभीर घाव करने से यद्यपि वे इन प्रक्रियाओं को निभा तो लेते हैं किन्तु ठीक तरह से नहीं। यहाँ तक कि उनके बच्चे ठीक पालन-पोषण के अभाव में मर तक जाते हैं। वे वास्तव में घातक परिस्थितियों में अपने आप को उपयुक्त बनाने में तथा अपने बच्चों की रक्षा करने में असमर्थ रहते हैं। अपसारित कोर्टेक्स वाले चूहे अपने नवजात शिशुओं को साफ तक नहीं कर पाते, और यदि उनको घोंसले से बाहर रख दिया जाय तो भीतर उठा कर भी नहीं ले जाते।

केन्द्रीय स्नायु तंतुवाय एक और प्रकार से भी प्राणी की प्रक्रिया में निर्णायक होता है, जिसमें इसका कार्य केवल विनियम केन्द्र (Exchange Centre) का ही नहीं होता। टिंबर्जन के अनुसार ऐसी प्रक्रियाओं में न तो हार्मज़ को ही कारण कहा जा सकता है और न आन्तरिक उकसाहट (Internal Stimuli) को ही; उसके अनुसार, पालतू कुत्ते कभी-कभी बिना किसी आन्तरिक कारण (भूख इत्यादि) और बाह्य उकसाहट (शिकार का विषय) के ऐसे ही दौड़ना प्रारम्भ कर देते हैं, जैसे शिकार के पीछे दौड़ रहे हों, और शिकार के व्यवहार को पूर्णतः प्रकट करते हैं। इसमें हम जानते हैं कि उनके पेट के भरे होने से उनके उदर की संकोच क्रिया (Contraction) को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता, किन्तु अहेर-संबंधी दौड़ की आत्मव्ययी प्रक्रिया (Consumatory act) जन्य थकान बताती है कि यह प्रक्रिया क्रमशः घनीभूत होते हुए आन्तरिक कारणों की ही परिणाम हो सकती है, जो केन्द्रित होने के लिए समय चाहते हैं। उसके अनुसार, इस प्रकार की प्रक्रियाओं का उत्तरदायित्व केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय पर ही है जो स्वयं ही इन प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं।

उक्त उद्धरण में यह कहना पर्याप्त कठिन है कि संतुष्ट कुत्ते की शिकार के लिए दौड़ एकान्त रूप से स्नायविक तंतुवाय से ही प्रेरित है, क्योंकि उदर पूर्ण होने पर तज्जन्य-शक्तिस्रोतों की उष्णता, जो कि भोजन पचने की रासायनिक और मसलसंबंधी प्रक्रिया से उत्पन्न होती हैं, भी इस प्रकार की दौड़ का कारण हो सकती है, जो अपने व्यय के लिए प्राणी को आत्मव्ययी प्रक्रिया में नियोजित कर सकती है। उस समय कुत्ते का उद्देश्य शिकार करना न होकर संभवतः आत्म-व्यय मात्र हो सकता है, जिसका प्रमाण यह भी है कि वह आगे किसी लक्ष के न होने पर भी अनेक बार तेजी से दौड़ने लगता है और आश्चर्यजनक रूप से स्वामी से दूर और स्वामी की ओर दौड़ में अपने आप को थकाने लगता है। इसका अर्थ यह नहीं

है कि हम केन्द्रीय स्नायु तंतुवायजन्य प्रक्रिया से इन्कार कर रहे हैं। हम केवल यही कहना चाहते हैं कि इस उदाहरण में यह कहना, संभवतः इसी प्रकार अन्य प्रक्रियाओं में भी, काफी कठिन हो सकता है। शायद हमारे पेट के मसल्ज़ की और शायद अन्य मसल्ज़ की लय-बद्ध क्रियाएँ शक्ति-संचय के रूप में केन्द्रीय स्नायु-तंतुवाय में तथा रक्त भांडों में संगृहीत होती रहती हैं। किन्तु इनके लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। इस प्रकार इस केन्द्रीय तंतुवाय के लिए हम अभी तक केवल यही निश्चित रूप से जानते हैं कि यह हार्मंज की, उदर की दीवारों की तथा अन्य ऐंज़ाइम्ज़ और विटामिंज़ इत्यादि के क्रिया-व्यापारजन्य-शक्ति-संचय की उकसाहट या वासना को क्रियान्वित करने वाला केन्द्र है। वास्तव में अभी इस ओर काफी कार्य की आवश्यकता है।

घोंसला—जैसा कि हम अगले निबंध में विस्तार से देखेंगे, किसी भी प्रक्रिया का स्रोत किसी प्रकार का उद्देश्य नहीं है, यह केवल शरीर के अन्तः स्रोतों की अथवा वाह्य विषय की यंत्र-क्रिया-केन्द्रों (Reflexive System) पर भौतिक क्रिया है जो किसी आत्मव्ययी की अथवा प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया (Reaction Response) को जन्म देती है। इस प्रकार घोंसला बनाना भी पक्षी के किसी निहित उद्देश्य के कारण नहीं होता, प्रत्युत् उसकी आन्तरिक और बाह्य तापमान संबंधी परिस्थितियों का ही परिणाम होता है। इसी प्रकार घोंसला बनाने की प्रक्रिया यद्यपि मैथुन और मातृत्व-वासना के साथ संबद्ध है, किन्तु ये संबंध मानसिक न होकर शरीर-वैज्ञानिक ही हैं, ऐसा मेरा व्यक्तिगत विचार है। एक विशेष शरीर-वैज्ञानिक परिस्थिति उत्पन्न होने पर, जो अप्राकृतिक रूप से भी उत्पन्न की जा सकती है, पक्षी घोंसला बनाना प्रारम्भ कर देता है, जैसा कि हम पीछे प्रोलैक्टिन हार्मन के इंजेक्शन से मातृत्व-स्नेह और तज्जन्य व्यवहार की उत्पत्ति के उदाहरणों में भी देख आए हैं। किन्तु यहाँ आश्चर्य की बात यह है कि विशेष जाति का व्यक्ति, जो कि अपनी जाति की मादाओं के एक विशेष व्यवहार से अपरिचित है, जैसे नर-कुक्कुट मादा-कुक्कुट के तदीय व्यवहारों से, हार्मन के इंजेक्शन किये जाने पर उसी प्रकार व्यवहार करेगा जैसे उसके अन्य सजातीय करते हैं। एक जाति के सभी व्यक्ति उसी प्रकार घोंसला बनाएं, यह उनको शिक्षा के कारण हो सकता है, किन्तु जो व्यक्ति उस शिक्षा से सर्वथा अनभिज्ञ है, वह भी उसी प्रकार यदि व्यवहार करे तो इसका केवल यही अर्थ हो सकता है कि वह जाति-विशेष उस प्रकार के व्यवहारों को क्रियान्वित करने के लिए भी एक

विशेष शारीरिक यंत्र रखती हैं जो एक ही समान प्रेरित होता है और एक ही समान क्रियान्वित होता है। जैसा कि हम आगे प्रवास की प्रवृत्ति पर विचार करते हुए देखेंगे, यह समता और अधिक आश्चर्यजनक रूप से व्यापक और मनोरंजक होती है।

अस्तु, घोंसला बनाने की प्रवृत्ति अन्य प्रवृत्तियों के समान ही एक स्वतंत्र प्रवृत्ति है, इसीलिए यह मातृत्व और मैथुन से सर्वथा स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में भी आ सकती है। इसलिए हम इस प्रक्रिया की उत्पत्ति के भी उन विशेष कारणों का अवलोकन करेंगे, जो उसके प्रेरक हैं। इसके लिए सौभाग्यवश ऐसे प्रमाण उपलब्ध हैं जो प्रयोगाश्रित हैं और जिनमें कल्पना और अतएव मत-भेद की कम संभावना है। इसमें तापमान, हार्मन और शरीर की विशेष तापमान की आवश्यकताएँ इत्यादि अनेक कारण हो सकते हैं जिन्हें हम अब देखेंगे।

रजस्राव और गर्भधारण :—घोंसला बनाने की प्रवृत्ति का रजस्राव और गर्भधारण के समय की तापमान की आवश्यकता से बहुत बड़ा सम्बन्ध है, जो कि घोंसले की उष्णता-संरक्षण की योग्यता पर आश्रित है। रजस्राव के दिनों में प्राणी की रासायनिक प्रक्रियाओं का स्तर बहुत ऊँचा होता है और उसके शरीर में बड़ी उष्णता होती है। वह उस उष्णता से शक्ति-संचय के व्यय के लिए तीव्रता से भागती-दौड़ती है। इससे रज-स्राव के दिनों में घोंसला बनाने की प्रवृत्ति प्राय: बिल्कुल ही नहीं होती। इसके विपरीत गर्भधारण के बाद, शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं का स्तर बहुत घट जाता है और शरीर की उष्णता समाप्त हो जाती है। इसलिए इन दिनों मादाएं विशेष रूप से गर्म तापमान और विश्राम चाहती हैं। इसी से ये दिन घोंसला बनाने तथा उसमें विश्राम करने में बीतते हैं। यह प्राय: सभी जानते हैं कि गर्भधारण के पश्चात् रज-स्राव बंद हो जाता है और उष्णता-उत्पादक हार्मन भी बन्द हो जाते हैं और शरीर के शक्ति-स्रोत गर्भस्थ शिशु के पालन-पोषण में ही व्यय हो जाते हैं। यह अवस्था गर्भधारण के अन्तिम दिनों में और भी गम्भीर हो जाती है और शिशु-जन्म के कुछ दिन बाद तक रहती है। उसके बाद घोंसला समाप्त कर दिया जाता है। कुछ जातियों में, विशेषत: स्तनपायियों की—पुन: रज-स्राव शिशु-जन्म के एकदम बाद ही फिर प्रारम्भ हो जाता है और उष्णता बहुत अधिक मात्रा में बढ़ जाती है, किन्तु थोड़े दिनों के बाद ही यह लम्बे समय के लिए बंद हो जाता है। यदि इस उष्णता के काल में उसे कोई नर प्राप्त हो सके और गर्भाधान हो जाये, तो पुन: वही चक्र उसी समय प्रारम्भ हो जाता है।

तापमान——जैसा कि हम ऊपर भी कह आए हैं, घोंसला बनाने का कारण उष्णता-संरक्षण ही है । यदि रज-स्राव के दिनों में मादा (या नर जो भी जाति-विशेष में घोंसला बनाने का कार्य करता हो) को ऐसे तापमान में रखा जाय जिसमें इसकी उष्णता-संरक्षण की आवश्यकता पूरी हो जाय, तो वह घोंसला बनाने में बहुत कम ही रुचि लेगा और उसके निर्माण में बहुत कम सामग्री का प्रयोग करेगा । यह प्रयोग चूहों पर सफलता से किया गया है । यदि उन्हें कमरे के सामान्य तापमान में रखा जाय तो भी वे घोंसला बनाने में बहुत कम कागज और अन्य सामान का प्रयोग करते हैं और उनका वह घोंसला बड़ा ढीला-ढाला होता है । किन्तु कम तापमान में उनकी घोंसला बनाने की प्रक्रिया बहुत अधिक बढ़ जाती है और वे घोंसला बनाने में कई-सौ फुट कागज का प्रयोग करते हैं । ये कागज बहुत व्यवस्थित और बहुत कसकर घोंसले में प्रयुक्त किये जाते हैं । (morgon) इससे सहज ही यह अनुमान किया जा सकता है कि घोंसला बनाने की प्रक्रिया सीधे शरीर के अन्तः स्रोतों और परिवृत्ति के तापमान की सापेक्षता से बंधी है । यदि गर्भधारण के दिनों में पक्षियों में उनकी उष्णता-संरक्षण की आवश्यकता को पूर्ण करने वाले विटामिन और हार्मन इंजेक्ट कर दिये जाएँ तो भी वे उसी प्रकार घोंसला बनाने में कम रुचि लेंगे, जैसे बाहरी तापमान के ऊँचा करने पर वे कम रुचि लेते हैं । उनके शरीर की आवश्यकता चाहे जैसे भी पूर्ण हो, उनकी प्रक्रिया का स्तर घट जाएगा ।

किन्तु संभवतः यह भी कारण सार्वभौम नहीं है, नर थ्रीस्पाईंडस्टिक्कलबैक उष्णता-संरक्षण की आवश्यकता के कारण शायद घोंसला नहीं बनाता क्योंकि उसमें रज-स्राव नहीं होता और न गोनाड्ज़ का स्राव उन दिनों बंद होता है । इसके अतिरिक्त, वह मादा के अंडे देने से और मादा के साथ मैथुन से भी पहले ही घोंसला बनाता है, उस समय उसके शरीर का रासायनिक क्रिया-व्यापार भी अधिक तीव्र होने से उसके शरीर की उष्णता बहुत अधिक होती है । संभवतः उसकी घोंसला बनाने की प्रक्रिया का संबन्ध उसके गोनाडल हार्मज़ से है, उष्णता-संरक्षण से नहीं । किन्तु यह भी पूरे निश्चय से नहीं कहा जा सकता, क्योंकि घोंसला बनाने के पश्चात् यदि उसके अंडे उठा लिए जाएं तो वह पहिले को तोड़कर पुनः घोंसला बनाता है और मादा की प्रतीक्षा करता है । इसलिए घोंसला बनाने की प्रक्रिया का कारण केवल गोनाड्ज के स्राव को भी नहीं कहा जा सकता । अन्य क्या कारण हो सकता है, यह कहना कठिन है । हम केवल उसकी प्रक्रिया का वर्णन-मात्र कर सकते हैं ।

नर थ्रीस्पाईडस्टिक्कलबैक मैथुन ऋतु प्रारंभ होने पर घोंसला बनाता है और उसके पश्चात् उसके बाह्य क्षेत्र (इसकी सीमा प्रायः निश्चित होती है) में खड़ा उसकी रक्षा करता है। यदि कोई नर, अन्य प्राणी, अपनी ही जाति की अपक्व आयु की मादा अथवा भुक्त मादा उस क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो वह उन पर आक्रमण करता है। यदि कोई योग्य मादा आती है तो वह उसके सम्मुख वक्रनृत्य (Zigzag dance) करता है और उसकी ओर से स्वीकृति का संकेत पाकर वह उसे अपनी थूंथनी से घोंसले की ओर धकेलता है, यहाँ वह अंडे देती है, और दूसरी ओर से निकल जाती है, नहीं तो नर उसे आक्रमण से भगा देता है। तब वह बाहर आकर एक विशेष प्रकार से पंख मार कर अंडों के समीप से पानी की लहर फेंकता है जिससे उन्हें वायु मिलती है, यह उनके पकने के लिए आवश्यक होती है। यदि वे अंडे खराब हो जाएं तो नर उस घोंसले को तोड़ डालता है और नया घोंसला बना कर उसी प्रकार पुनः मादा की प्रतीक्षा करता है।

इस विवरण से सामान्यतः यही प्रतीत होता है कि स्टिक्कलबैक केवल अंडों के लिए ही घोंसला बनाता है और उसकी यह प्रक्रिया सोद्देश्य है, किन्तु जब हम देखते हैं कि बच्चे उत्पन्न हो जाने पर वह उन्हें खा तक जाता है यदि वे बच कर भाग न जाएें तो, तब यह कल्पना केवल कवि-कल्पना ही कही जा सकती है। संभवतः ऐसी किसी मधुर-कल्पना के लिए प्रकृति में कोई स्थान नहीं है। इसका कारण संभवतः हार्मन-रसोदय तथा प्रक्रिया केन्द्री-करण को ही कहा जा सकता है। यहाँ प्रक्रिया केन्द्रीकरण स्टिक्कलबक के संम्पूर्ण बाह्य व्यवहार की सार्थकता की व्याख्या करने के लिए प्रयुक्त किया गया है—नरों पर आक्रमण, मादा को अंडे देने के बाद धकेल देना, अँडे खराब होने पर दूसरा घोंसला बनाना, इत्यादि, सभी कुछ। इस का प्रमाण यह भी है कि थ्रीस्पाईड की आक्रमण-प्रवृत्ति को उकसाने के लिए किसी भी वस्तु का लाल रंग का होना ही पर्याप्त है फिर चाहे उसकी आकृति कैसी भी हो जब कि ठीक आकृति की मूर्ति भी रंग लाल न होने पर उसे आक्रमण के लिए आकर्पित नहीं कर सकती। इस प्रकार की बाह्य उकसाहट-जन्य क्रियाओं की व्याख्या संभवतः हमारे 'प्रक्रिया-केन्द्रीकरण' से ही ठीक हो सकती है- जैसा कि हम अगले निबंध में विस्तार से देखेंगे। यहाँ हमारे लिए केवल इस बात का ही अधिक महत्त्व है कि यह प्रक्रिया केन्द्रीकरण अपने अस्तित्व के लिए हार्मज़ पर किस प्रकार और कितना अधिक आधारित है। थ्रीस्पाईडस्टिक्कल-बैक के इस मैथुन-संबंधी व्यापार में वही एकमात्र कारण है, इसका प्रमाण यह भी है कि गोनाड्ज़ के प्रस्रवण की ऋतु में ही उसकी ये क्रियाएँ प्रारम्भ

होती हैं और तभी पृष्ठ पिच्यूइटरी से स्राव के कारण शरीर के पृष्ठ रंग निर्माण के कारणभूत मेलानोफोर्ज् के पृष्ठ भूमि में चले जाने से उनका रंग भी लाल होता है जो कि उनके लिए अपने प्रतिस्पर्धी की भी पहिचान है। नर प्रतिस्पर्धियों का द्वंद्व किस प्रकार हार्मज़् से निर्धारित होता है, यह हम आगे मैथुन-हार्मज़् का अध्ययन करते हुए देखेंगे।

घोंसला और हार्मज़—इस प्रकार हम घोंसला बनाने में भी हार्मज़् के प्रभाव को समझ सकते हैं। चाहें ये कारण पक्षियों, स्तनपायियों और मछलियों में सदैव एक से न भी हों।

पीछे हम रजस्राव और गर्भ धारण कालों में घोंसला बनाने की प्रक्रिया की स्तर-भिन्नता के विषय में देख आए हैं, यद्यपि यह भी स्तर-भिन्नता हार्मज़् से सम्बन्ध रखती है, तो भी इस महत्त्व पूर्ण शरीर वैज्ञानिक पहलू का
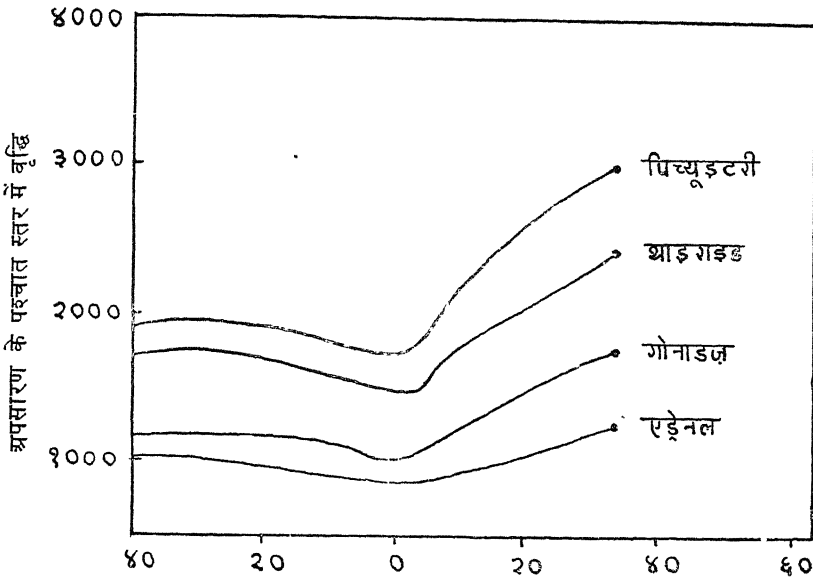
अपसारण से पूर्व और पश्चात् दिनों मे समय

(ग्रंथियों के अपसारण का प्रभाव)

पृथक् से अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में रज-स्राव और गर्भ धारण की प्रक्रिया के स्तर के समान ही अन्य हार्मज़् का भी सम्बन्ध अधिकतर तापमान के स्तर के साथ ही है। पिच्यूइटरी ग्रंथि के अपसारण के पश्चात् घोंसला बनाने की प्रक्रिया का स्तर दो-सौ प्रतिशत तक बढ़ जाता है। इसी प्रकार

एड्रेनल ग्रंथि का अपसारण २४ प्रतिशत तक प्रक्रिया को बढ़ा देता है, थाइराइड सौ प्रतिशत तक तथा गोनाड्ज़ ५० प्रतिशत तक प्रक्रिया के स्तर को बढ़ा देते हैं। पिच्यूइटरी ग्रंथि का अपसारण यद्यपि सब से अधिक प्रभाव छोड़ता है तो भी इसका प्रभाव सीधा प्रक्रिया पर न होकर अन्य ग्रंथियों पर होता है, जो कि प्रक्रिया पर प्रभाव डालते हैं और शरीर के तापमान को घटा देते हैं। इसका प्रमाण यह भी है कि पिच्यूइटरी अपसारण के कई दिन बाद तक भी प्राणी के शारीरिक तापमान पर कोई प्रभाव एकदम से लक्षित नहीं होता जैसा कि हम पीछे भी देख आए हैं। पिच्यूइटरी के हार्मन थाइराइड, एड्रेनल और ओवरी या टेस्टिस इत्यादि सभी ग्रंथियों के रस-स्राव के स्तर को प्रभावित करते हैं। वास्तव में केवल एक ग्रंथि के प्रभाव को ही यदि नापा जाए तो थाइराइड शायद इस प्रभाव में सब से अधिक महत्त्वपूर्ण होगा। इसके अपसारण से किन्हीं विशेष कारणों से, जिन्हें हम नहीं जानते, प्राणी का शरीर दुर्बल और मन अशक्त हो जाता है।

स्नायविक प्रबंध—घोंसला बनाने की प्रक्रिया में यद्यपि हार्मंज़ का बहुत अधिक महत्त्व है, किन्तु जैसा कि हम ऊपर भी देख आए हैं, तदीय आवश्यकताएँ पूर्ण हो जाने पर भी प्राणी घोंसला बनाते ही हैं, फिर चाहे उसमें कम रुचि ही क्यों न लें। इसी प्रकार अनेक बार घोंसला तैयार हो जाने पर भी घोंसला-निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है, जैसे अभी तृप्ति ही न हुई हो। बिना शिक्षा के भी अपनी जाति के अन्य व्यक्तियों के समान ही टिपिकल घोंसला बनाना इत्यादि भी यही प्रमाणित करते हैं कि इसमें स्नायविक प्रबंध एक महत्त्वपूर्ण कारण है, चाहे आज हम निश्चित रूप से यह न भी जानते हों कि ऐसा किस प्रकार होता है। तो भी, तापमान के सापेक्ष-स्तर में अन्तर का प्रभाव-ग्रहण स्नायुओं द्वारा ही होने से भी घोंसला बनाने में हम उनके महत्त्वपूर्ण भाग को समझ सकते हैं। यदि किसी प्रकार से स्नायुओं में तापमान के स्तर को ठीक रखा जा सके तो हार्मन इत्यादि के अपसारण का कोई भी प्रभाव प्रक्रिया पर नहीं होगा। बाह्य तापमान की कमी या अधिकता से प्रक्रिया के स्तर में निम्नता या उच्चता भी इसके प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त स्नायविक प्रबंध में कुछ निश्चित केन्द्र भी हैं जो कि शरीर के तापमान का नियंत्रण करते हैं। इनमें से दो हाइपोथालामस (मस्तिष्क का अन्तर्मध्य) में हैं—एक गर्म तापमान के लिए और दूसरा ठंडे के लिए। इनमें अगला ठंडे के लिए है और पिछला गर्म के लिए। तापमान में परिवर्तनों के ज्ञान के लिए एक पृथक् केन्द्र मस्तिष्क के गोलार्ध (Cerebral Hemisphere) के पृष्ठ

भाग में है। क्योंकि हाइपोथालामस के अग्रभाग के अपसारण से शरीर के तापमान का नियंत्रण नहीं हो सकेगा, अथवा कहें कि सर्दी का नियंत्रण नहीं हो सकेगा, इससे प्राणी में घोंसला बनाने की क्रिया की तीव्रता बहुत अधिक बढ़ जायगी जबकि इसके विपरीत प्रदेश के अपसारण से अत्यधिक घट जायगी, अथवा समाप्त हो जाएगी।

तापमान-नियंत्रण के अतिरिक्त भी स्नायविक प्रबंध का घोंसला बनाने में, जैसा कि अन्य सब प्रक्रियाओं में भी, बहुत अधिक महत्त्व है। इसी प्रकार प्रक्रिया को क्रियान्वित करनेवाला धमनि-यंत्र (Motor nervous system) भी इस में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि इनके बिना कोई भी प्रक्रिया क्रियान्वित नहीं हो सकती। संभवतः इनका इससे कुछ अधिक महत्त्व भी है, । घोंसला किस प्रकार का बने, यह संभवतः मस्तिष्क-प्रबंध के अतिरिक्त केन्द्रीय और व्यापारित करने वाले स्नायुतंतुवाय पर भी निर्भर करता है, यद्यपि इसके लिए हम कोई विशेष प्रमाण नहीं दे सकते।

एकान्तवास—प्रवास और घोंसला-निर्माण के समान ही शीत में एकान्तवास भी सामान्यतः तापमान से ही संबंध रखता है। शीत-ऋतु में यह व्यवहार उष्ण रक्त जाति के स्तनपायियों में देखा जा सकता है। इन दिनों भोजन की उपलब्धि बहुत कम होती है और रासायनिक क्रिया-व्यापार का स्तर शरीर में बहुत नीचा हो जाता है। इसलिए प्राणी प्रक्रिया-संचालन में असमर्थ हो जाता है। स्वभावतः ही इससे वह क्षीणतम शेष शक्ति के अपव्यय से बचता है। इस विपत्ति-पूर्ण काल यापन के लिए वह ऐसा स्थान खोजता है जिसमें सर्दी और शत्रुओं से आत्म-रक्षा कर सके। यहाँ वह शीत के दिन गम्भीर मूर्छा की विस्मृति में बिताता है। जब सर्दी की ऋतु समाप्त हो जाती है और भोजन की उपलब्धि की संभावनाएँ भी बढ़ जाती हैं, तब एकान्तवास की मूर्छा समाप्त हो जाती है और प्राणी जीवन की सामान्य प्रक्रियाओं को क्रियान्वित करने के लिए बाहर आता है।

तापमान और हार्मोन संबंधी परिवर्त्तन—तापमान में परिवर्त्तन संभवतः इस एकान्तवास का सबसे प्रमुख कारण है, इसीसे ग्रंथियों के क्रिया-व्यापार में भी अन्तर पड़ता है, किन्तु शरीर पर प्रभाव के लिए दोनों की ही सापेक्ष-स्थिति उत्तरदायी होती है। ग्रंथियों में आर्तव-परिवर्तन को हम यदि इस व्यवहार का प्रत्यक्ष कारण कह सकते हैं तो तापमान को परोक्ष। एकान्त में प्रवास करने वाले प्राणी सामान्यतः उष्ण-रक्त होते हैं, जो कि अपने शारीरिक तापमान को अपनी परिवृत्ति से ऊंचा रखते हैं।

किन्तु शीत-ऋतु में ये अपने शरीर के इस तापमान को ठीक नहीं रख पाते, जैसे शीत-रक्त प्राणी रखते हैं। इसका एक मात्र कारण यही है कि ये अपने शरीर के रासायनिक क्रिया-व्यापार को ठीक नहीं रख सकते, जिसका कुछ उत्तरदायित्त्व भोजन-प्राप्ति की कमी पर भी है। किन्तु इसका प्रमुख कारण शायद यह है कि ये प्राणी इस ऋतु में अपने उष्णता-संरक्षण के आन्तरिक साधनों को ठीक नहीं रख पाते। यदि इन्हें सर्दियों में सामान्य कमरे के तापमान में भी रखा जाय, जो कि बाहर के तापमान से कुछ उच्च होता है, तो भी उनकी पिच्यूइटरी, थाइराइड और एड्रेनल ग्रंथियों का रस-प्रवाह बुरी तरह से क्षीण हो जाता है (Woodward)। किन्तु ग्रंथियों के रस-प्रवाह में ये परिवर्त्तन केवल तापमान से ही संबंध नहीं रखते क्योंकि यदि इन प्राणियों को गर्मी की ऋतु में, जब कि इनका ग्रंथि-रस-प्रवाह अपने पूर्ण वेग पर होता है, शीत तापमान में भी रखा जाय तब भी इनकी ग्रंथियों के स्राव में प्रायः कोई कमी नहीं आती और वे एकान्तवास में नहीं जाते, फिर चाहे सर्दी कितनी भी क्यों न हो। सच तो यह है कि इनका ग्रंथि-स्राव सर्दियों में बहुत अधिक बढ़ जाता है।

प्रवास—ऊपर वर्णित सभी प्रवृत्तियों से अधिक आश्चर्यजनक और आकर्षक प्रवृत्ति प्रवास की है। यह प्रवृत्ति सामान्यतः पक्षियों और मछलियों में ही पाई जाती है, स्तनपायियों, रीढ़धारियों और कृमियों में शायद ही किसी जाति में इस प्रवृत्ति को पाया जा सके। यह प्रवृत्ति अभी बहुत अधिक अध्ययन की अपेक्षा रखती है। इसके कारणभूत शरीर वैज्ञानिक प्रबंधों और संस्थानों को बता सकना अभी तक उतना निर्विवाद नहीं हो सका है जितना होना चाहिए। वास्तव में इसके कुछ एक पहलू तो अत्यन्त रहस्यमय और मनोरंजक हैं। सामान्य मनुष्य के लिए यह 'ईश्वर की महिमा है,' या फिर 'यह उनका स्वभाव ही है', किन्तु एक वैज्ञानिक या विचारक को इसका कोई प्रयोगाश्रित और कारण-कार्य-सम्मत-संगत उत्तर देना होगा। इससे उसे उन सब तथ्यों का विवेचन करना होगा जो किसी प्रक्रिया के आधार में कार्यशील होते हैं। उससे पूछा जा सकता है कि कोई प्रवृत्ति क्यों क्रियान्वित होती है? उसकी प्रेरणा क्या है? पक्षी जिस ओर को प्रवास करते हैं, वह क्यों?—इत्यादि।

प्रवासी पक्षी—पक्षियों का प्रवास एक प्रसिद्ध बात है। भारत में भी, जैसे अन्य देशों में, पक्षी सर्दियों में उत्तर से दक्षिण की ओर प्रवास करते हैं। कोयल बसन्त ऋतु में उत्तरी मैदानों में प्रवास करती है। हंस शीत ऋतु में

हिमालय से उतरते देखे जाते हैं। कालीदास के मेघदूत में भी ऐसे प्रवासशील पक्षियों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है। किन्तु कालीदास का यक्ष उस वर्णन से मेघ को ललचाना चाहता था जिससे वह उस एकान्त और सुदीर्घ पथ को पार कर उसकी प्रेयसी तक सदेश ले जाने में हिचकचाए नहीं। किन्तु हम वह कार्य करने को नहीं बैठे हैं, हमें इस प्रकाश में एक निश्चित कारण-कार्य-संबंध की शृंखला खोजनी है, और निश्चित रूप से यह बड़े सौभाग्य की बात है कि हम आज इस कारण-कार्य-संबंध को कुछ दूर तक जानते हैं और आगे प्रयोग कर रहे हैं। हम चाहे उस सौन्दर्य की अनुभूति न भी कर सकें जिसकी महाकवि ने की थी, किन्तु हम आज कम सौभाग्यशाली नहीं हैं, क्योंकि हम आरोपित कल्पना के बजाय उस यथार्थ को जानते हैं जिसका पक्षियों के जीवन-मृत्यु के कटु संघर्ष से संबंध है।

यह एक निर्विवाद सत्य है कि प्रवास की ऋतु में गोनाड्ज (Gonads) में बड़ा परिवर्तन होता है। सम्भवतः यह परिवर्तन परोक्षरूप से पिच्यूइटरी ग्रंथि पर प्रकाश के प्रभाव से प्रवाहित होने वाले रसों के द्वारा होता है। यद्यपि इसके अन्य कारण, जैसे तापमान में अन्तर और आर्तव-चक्र भी होने ही चाहियें। किन्तु प्रकाश इसमें प्रमुख कारण प्रतीत होता है। एक प्रयोग में दो पहाड़ी पक्षी एक जैसे ही तापमान, एक जैसे ही भोजन पर पिंजरों में रक्खे गये। किन्तु एक पक्षी के सामने प्रकाश के उचित प्रबंध से उसी प्रकार दिन छोटे किये गये जैसे पतझड़ में क्रमशः होते हैं, जब कि दूसरे के सम्मुख बढ़ते हुए दिनों का क्रम उपस्थित किया गया, जैसे वसंत में होता है। प्रयोग के अन्त में देखा गया कि प्रथम वर्ग के गोनाड्ज़ में बिल्कुल ही कोई अन्तर नहीं आया था जब कि दूसरे वर्ग के गोनाड्ज़ में बहुत अन्तर पड़ गया था। इसके अतिरिक्त पहले वर्ग के पक्षियों में किसी ने भी प्रवास की उत्कंठा प्रकट नहीं की जबकि दूसरे झट तीव्रता से उड़ गए। क्योंकि पहाड़ी पक्षी वसन्त में उत्तर की ओर प्रवास करते हैं, इससे हम सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि गोनाड्ज़ उनकी रासायनिक क्रिया (Metabolism) को बहुत बढ़ा देते हैं और इससे उनके शरीर की उष्णता बहुत बढ़ जाती है। ऐसी अवस्था में वे शीतल परिवृत्ति की खोज करते हैं। यद्यपि यह एकदम निर्विवाद नहीं है कि प्रकाश के समय में परिवर्तन और हार्मन के तीव्रस्राव इसके एकमात्र कारण हैं, किन्तु यह एकदम निश्चित है कि ये प्रमुखतम कारणों में से हैं।

किन्तु कुछ ऐसे भी पक्षी हैं जिनमें प्रकाश तथा गोनाड्ज़ के परिवर्तन प्रवास से कोई संबंध नहीं रखते, प्रवास इन परिवर्तनों के बिना भी होता है (Morgan)। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि न तो गोड्ज़ इत्यादि

प्रवास के एकमात्र कारण ही और न सार्वभौमिक कारण ही, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इनके प्रवास में कोई हार्मन कारण नहीं है। यद्यपि बीच (Beach) के अनुसार, कुछ पक्षी गोनाड्ज़ अपसारित कर दिये जाने पर भी प्रवास करते ही हैं किन्तु कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि इनके प्रवास में पिच्यूइटरी ग्रंथि के स्राव कारण हो सकते हैं, जिनके स्राव का उद्गम ऋतुचक्र ही है। यह हम जानते ही हैं कि पिच्यूइटरी के स्राव थाइराइड और गोनाड्ज़ के प्रवाह को भी प्रेरित करते हैं। किन्तु, सम्भवतः इस कल्पना का कोई विशेष आधार नहीं है। तो भी अन्य किसी अधिक पुष्ट और सर्व-सम्मत कारण के आभाव में हम इसे काम-चलाऊ कल्पना (Warkable Hypothesis) के रूप में स्वीकार करके चल सकते हैं। ऐसा करने का औचित्य यह है कि अन्य सभी जातियों में हम पिच्यूइटरी को ही प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस प्रक्रिया का कारण पाते हैं। इससे यह माना जा सकता है कि इस प्रक्रिया को महत्वपूर्ण कारण पिच्यूइटरी ग्रंथि ही है। यह ग्रंथि, जैसा कि हम पीछे भी कह आए हैं, शरीर में की अधिकांश ग्रंथियों के रस-स्राव का या तो नियंत्रण करती है या कम से कम उनके स्राव में महत्व-पूर्ण तथा आवश्यक है। जैसा कि हम आगे भी देखेंगे, सालमेंडर (Salmen-dor) मछली में भी पिच्यूइटरी ग्रंथि ही प्रवास की कारण है। यदि पक्षियों या मछलियों में छोटी आयु में भी परिपक्व पिच्यूइटरियों को लगा दिया जाय तो ये व्यक्ति बड़ी आयु के व्यक्तियों के समान ही व्यवहार करने लगते हैं।

पक्षियों के प्रवास का सबसे अधिक आकर्षक और उलझनपूर्ण पहलू है उनके प्रवास की दिशा का एक निश्चित और अन्तःप्रेरणा में निहित होना। यह एकदम आश्चर्य की बात है कि कैसे नवजात शिशु भी, बंदी-जीवन में युवा होने पर बिना किसी शिक्षा के और सहायता के ठीक दिशा की ओर ही प्रवास करते हैं। इसी प्रकार प्रवास-काल में उत्पन्न बच्चे भी स्वतः ही, और अकेले ही कहीं छोड़े जाने पर भी, अपने ठीक घर की ओर लौट चलते हैं और वहीं पहुँच जाते हैं जहाँ उनके अभिभावक और जनक पहुँचे होते हैं। संभव है पक्षियों की प्रवास-यात्रा और लौटने की यात्रा में उनका पीछा करने पर कुछ ज्ञात हो सके, किन्तु न तो यह सहज ही है और न शायद बहुत उप-कारक ही, जैसा कि वायुयान से पीछा करने के कुछ प्रयासों से प्रमाणित हो चुका है। यह प्रायः निश्चित ही है कि पक्षी बिना किसी पूर्व शिक्षा या नेतृत्व के भी अपने निश्चित जातीय पथ का अनुसरण कर सकते हैं चाहे उन्हें सजातीयों के लौट जाने के काफी समय पश्चात् भी क्यों न छोड़ा जाय और चाहे किसी एकदम अनजाने स्थान पर ही क्यों न छोड़ा जाय। एक बार अमे-

रिका में कुछ नवजात शिशु पिंजरों में रोक लिए गये जबकि शेष प्रवास कर गए। सबके चले जाने के एक मास पश्चात् भी उन्हें जब छोड़ा गया, उनमें से आधे से अधिक पक्षी ठीक उसी रास्ते से, उसी स्थान पर पहुँच गये जहाँ उनके अन्य सजातीय पहुँचे थे। दूसरे भी अनेक प्रयोग पक्षियों की उस जन्म-सिद्ध 'प्रतिभा' को प्रमाणित करते हैं, क्योंकि प्रवास का यह पथ हजारों मील लंबा तक भी हो सकता है। किन्तु प्रश्न किया जा सकता है कि शेष क्यों ठीक दिशा की ओर नहीं जा सके जबकि आधे से अधिक ठीक दिशा की ओर लौट सके? इस के अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु उनका तब तक अनुमान करना कठिन है जब तक हम यह नहीं जान लेते कि उन पक्षियों को कैसे छोड़ा गया। तो भी हम समझते हैं कि किसी प्रकार से भी उनके भटकने का कारण केवल संयोग (Chance) ही है, क्योंकि संभव है कि वे ठीक दिशा में उड़ते हुए अचानक भटक गए हों और किसी अन्य वायु की लहर में पड़ गए हों; यह भी संभव है कि प्रारंभ से ही उन्हें ठीक लहर न मिली हो! इसमें सूर्य की दिशा और नदी-पर्वत इत्यादि की स्थिति का कोई हाथ नहीं है, क्योंकि उन्हों ने पहले कभी इस रास्ते को तो देखा ही नहीं। जिन पक्षियों ने रास्ता देखा होता है, वे किसी अनजाने स्थान पर छोड़े जाने पर कभी तो अपने ठीक रास्ते पर आ जाते हैं और कभी भटक भी जाते हैं, किन्तु अनभिज्ञ पक्षियों के लिए ऐसी कोई बात नहीं है। इसका कोई कारण सर्वसम्मत नहीं है और संभवत: मनुष्य के लिए यह सदैव कठिन रहेगा कि इसके ठीक कारण को खोज सके और उस संबंध में निश्चित प्रमाण दे सके। किन्तु हम कुछ अनुमान तो कर सकते ही हैं। मेरे विचार में ५० प्रतिशत या इससे कुछ कम या अधिक पक्षियों के ठीक स्थान पर पहुँच जाने से यह सिद्धांतत: प्रमाणित हो जाता है कि शेष भी ठीक उसी प्रकार ठीक स्थान पर पहुँच सकते थे जैसे उनके अन्य साथी, और इससे यह निश्चित है कि पक्षियों का ठीक दिशा की ओर लौटना सकारण और स्वाभाविक ही है और कुछ के न लौट सकने का कुछ अज्ञात कारण है। इस कारण को हम मछलियों की प्रवास-प्रवृत्ति के अध्ययन से समझने में शायद अधिक सफल हो सकेंगे।

साल्मोन मछली नदी के शीतल पानी में उत्पन्न होती है और अपने शैशव का प्रथम वर्ष वहीं बिताती है। दूसरे वर्ष में वह सागर के गंभीर जलों की ओर प्रयाण करती है और दो वर्ष इसी प्रवास में बिताती है। इसके पश्चात् वह पुन: नदी में प्रवेश करती है और प्राय: उन्हीं जलों में लौट आती है जिनमें उसने आयु का प्रथम वर्ष बिताया था। यहाँ वह अब गर्भ-धारण करती है, बच्चे देती है और मर जाती है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि सभी

मछलियाँ अपने इस प्रवास में बिल्कुल निश्चित और नियमित हों। कभी-कभी कोई मछली या मछलियाँ भटक भी जाती हैं और आयु का एक वर्ष इधर या उधर अधिक बिताती हैं, किन्तु ऐसा केवल अपवादात्मक रूप से ही होता है।

नदी से सागर की ओर प्रवास का कारण मछली की आँखों में परिवर्तन है। शैशव में सालमोन की आँखें त्वचा में गहरी गई होती हैं और उन पर एक विशेष झिल्ली-सी पड़ी रहती है। किन्तु धीरे-धीरे यह झिल्ली समाप्त हो जाती है। तह हट जाने पर उसकी आँखें चुँधियाने लगती हैं और वह इससे बचने के लिए गहरे जलों में 'प्रच्छाय निवास' खोजती है। इन जलों में जब उसकी आयु बड़ी हो जाती है और उसकी ग्रंथियाँ पक जाती हैं, तब इनके रस-प्रवाह से उसके शरीर का रासायनिक क्रिया-व्यापार बहुत तीव्र हो उठता है और शक्ति-स्रोत खुल जाते हैं। इससे उसमें शीतल जल से घर्षण की वासना जागती है और शक्ति-स्रोतों से धमनियों में गुदगुदी होने के कारण उसमें दौड़ने-भागने की भी इच्छा उत्पन्न है। तब वह नदी में प्रवेश करती है और उस के शीतल जलों के तीव्र प्रवाह के विरुद्ध तैरना प्रारंभ करती है। इस प्रकार वह सहज ही अपने जन्म-स्थान पर लौट आती है।

यह सब विवरण बहुत सीधा-सा है, किन्तु पक्षियों के प्रवास को समझने में उलझन का कारण उनका आकाश से सम्बन्ध है। हम अभी तक वायु की लहरों से उतने परिचित नहीं हो सके हैं और न हमारे पास अभी इतने विकसित साधन हैं कि पक्षियों के साथ उनके प्रवास की पूरी यात्रा कर सकें। किन्तु जितना वैज्ञानिकों को आज इस बारे में पता है, उससे यह अनुमान किया जा सकता है कि मछलियों और पक्षियों के प्रवास के कारण एक-से ही हैं। मछली अपरिचित और भिन्न लहरों में पड़ कर उसी प्रकार भटक जाती है जैसे पक्षी, किन्तु उसका यह भटक जाना उसके प्रवास के कारणों का अपवाद नहीं है। इस प्रकार पक्षियों के प्रवास की यह क्रिया एक दम यांत्रिक और कारण-कार्य-संबंध में बंधी है।

कर्मोत्तेजना, मैथुन-प्रक्रिया और लिंग-निर्धारण

मैथुन-प्रक्रिया प्रायः कुछ अपवादों को छोड़ कर, सभी प्राणियों में समान रूप से पाई जाती है। इस प्रक्रिया के क्रियान्वित होने के लिए दो भिन्न प्रकृति के व्यक्तियों—नर और मादा का होना आवश्यक है। किन्तु नर और मादा उस प्रक्रिया के केवल दो पहलू भर हैं, जो प्राणी की धमनियों और ग्रंथियों में रासायनिक परिवर्तन जन्य शक्ति-स्रोतों के खुलने के रूप में जन्म लेती हैं। इससे इन रासायनिक क्रिया-व्यपारों को ही मैथुन-प्रक्रिया का

प्राथमिक और एकमात्र कारण कहा जा सकता है। किन्तु यह केवल विकास स्तर पर निम्न श्रेणी की जातियों के लिए ही कहा जा सकता है। विकास स्तर पर उच्च श्रेणियों में क्रमशः 'मनोवैज्ञानिक' कारण भी महत्वपूर्ण होते जाते हैं। मनुष्य में मनोवैज्ञानिक कारण अन्य किसी भी प्राणी से बहुत अधिक महत्वपूर्ण होते हैं, किन्तु संभवतः उन्हें शरीर वैज्ञानिक कारणों से कदापि अधिक महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता। इसके दो प्रमाण दिये जा सकते हैं—प्रथम तो यह कि यदि मनुष्य की कामोत्तेजक ग्रंथियाँ अपसारित कर दी जाएं तो उनमें कामोत्तेजना प्रायः समाप्त हो जाएगी और यदि तत्संबंधी धमनि-यंत्र भी अपसारित कर दिये जाँय तब तो यह पूर्णतः ही समाप्त हो जायगी। दूसरा प्रमाण लिंग परिवर्त्तन-जन्य मानसिक परिवर्त्तन हो सकता है। यदि नर को मादा में और मादा को नर में बदल दिया जाय तो उनकी मानसिक अनुभूतियाँ और आकांक्षाएँ तथा व्यवहार भी तदनुसार बिल्कुल बदल जाएँगे। इतना ही नहीं, मनुष्य भी प्रत्येक हार्मन, विटामिन और ऐंज़ाइम इत्यादि से अपनी मानसिक योग्ययता-अयोग्यताओं में उसी प्रकार प्रभावित होता है जैसे पशु। इसमें अन्तर केवल इतना ही है कि निम्न श्रेणी के पशुओं में हार्मन अधिक प्रधान होते हैं और मनुष्य में केन्द्रीय तंतुवाय और मस्तिष्क-तंतुवाय इत्यादि भी पर्याप्त महत्व रखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य की प्रत्येक प्रक्रिया में उसकी 'मानसिकता' भी अनुस्यूत रहती है, जिसमें उसकी सामाजिक परिवृत्ति का महत्वपूर्ण प्रभाव होता है, और यह भी ठीक है कि मनुष्य का यह मानसिक संस्थान अपनी इच्छानुसार भी कुछ शारीरिक परिस्थितियाँ उपस्थित कर सकता है, किन्तु यह सामान्यतः शारीरिक प्रवृत्तियों को उकसाने की ओर ही अधिक सत्य है, उन्हें संयमित करने की ओर उतना नहीं। तभी ब्रह्मचर्य इत्यादि को इतना कठिन कार्य समझा जाता है।

वास्तव में यह बात उत्तेजना से अधिक उसकी व्ययजनित सन्तुष्टि के लिए और भी अधिक सत्य है। यद्यपि एक बार उत्तेजना के अस्तित्व में आ जाने पर उसकी तृप्ति के लिए पहले शारीरिक तृप्ति—स्पर्श और व्यय—जन्य सन्तुष्टि का हो लेना भी अनिवार्य है, किन्तु यह सन्तुष्टि केवल मानसिक स्तर पर भी रह सकती है यद्यपि वह सन्तुष्टि **वास्तविक** नहीं होती। यदि कोई व्यक्ति किन्हीं सामाजिक कारणों से अपनी प्रेयसी को प्राप्त नहीं कर पाता, और यदि उसका 'सांस्कृतिक स्तर' कुछ ऊँचा है तो उसकी सन्तुष्टि अपनी प्रेयसी की मधु-स्मृति से भी एक सीमा तक हो जायगी, तो भी कामवासना और तदीय तृप्ति की परिभाषा केवल शरीर वैज्ञानिक स्तर पर ही की जा सकती है, मनोवैज्ञानिक स्तर पर नहीं।

मनुष्य में प्यार की अनेक श्रेणियाँ हैं, जो पशु से कुछ अधिक हैं, जैसे माता-पिता, बहन-भाई और प्रेयसी इत्यादि से प्यार। सामान्यतः प्रेयसी मे प्यार और माता-बहन इत्यादि से प्यार में अन्तर किया जा सकता है और उनमें सीमा-रेखाएँ, जो बिल्कुल स्पष्ट हैं, लगाई जा सकती हैं। किन्तु इन सीमा-रेखाओं को न केवल मनोवैज्ञानिक स्तर पर स्पष्ट ही नहीं किया जा सकता, प्रत्युत् देखा तक नहीं जा सकता। इन्हें केवल सन्तुष्टि की शरीर-वैज्ञानिक परिभाषा से ही स्पष्ट किया जा सकता है। नैतिकता के अधिक बोझ के कारण अनेक भावुक युवक और युवतियाँ आपस में प्यार करते हुए भी भाई-बहन का संबंध स्थापित कर लेते हैं, और सभी प्रकार से एक-दूसरे की आकांक्षा करते हुए भी केवल मैथुनकी लैंगिक प्रक्रिया (संभोग) संबंधी कल्पना से घबराते हैं। मैं ऐसे कुछ व्यक्तियों को निकट से जानता हूँ और उनकी व्यथाओं को सुनता रहा हूँ, उनके दिवा और रात्रि-स्वप्नों का विश्लेषण भी, जहाँ तक मैं कर सका हूँ, किया है। वे अपनी 'बहन' के विरह में उसकी नयनों के सौन्दर्य पर कविता लिखते हैं, चांदनी रातों में नदी के किनारे हाथ में हाथ डालकर प्यार की कथाएँ कहना-सुनना चाहते हैं, नौका में एक-दूसरे के सम्मुख बैठकर चप्पू की छप-छप ध्वनि में अपने प्राणों की वेदना को डुबा देना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि वे अपनी 'बहन' की प्यारी कजरारी आँखें चूम लें, उसकी मधु-स्मिति का पान करलें, इत्यादि। उन्हें कितना भी कहा जाय, वे कभी भी यह स्वीकार नहीं करते कि वे उसे बहन के अतिरिक्त भी कुछ समझते हैं, यह भ्रान्ति केवल मानसिक घपला ही उत्पन्न करती है, किन्तु ऐसे किसी भी घपले को सन्तुष्टि की शरीर-वैज्ञानिक व्याख्या से दूर किया जा सकता है। इस परिभाषा को हम इन शब्दों में रख सकते हैं—प्रेयसी के दर्शन-स्पर्शन या स्मरण से शरीर में जो वासना-स्रोत खुल जाते हैं, और उसके पश्चात् किसी भी प्रकार के सम्पर्क से, चाहे वह संपर्क आंखों और स्मृति का ही क्यों न हो, जो उस वासना का व्यय होता है उसमें शरीर के वे हार्मन और धमनियों के वे केन्द्र व्यापारित होते हैं जो विशुद्ध रूप से मैथुन प्रक्रिया के लिए बने हैं—जैसे नर-चूहे को मादा-चूहे के चुम्बन में जो आनन्द आता है, वह इसी प्रकार के व्यय का आनन्द है, और इस आनन्द में उस व्यय से सर्वथा भिन्न शरीर-वैज्ञानिक व्यय होता है जो मादा-चूहे में मातृत्व-वासना के पश्चात् पुत्रों को दूध पिलाने या प्यार करने से होता है। सामान्यतः चुम्बन या दर्शन वासना-व्यय के साधन न होकर वासनोद्रेक के साधन होते हैं, वासना-व्यय केवल संभोग का अनुसरण करता है, मनुष्य के लिए भी यही सत्य है, किन्तु मनुष्य में 'प्रवंचक-तृप्ति' (Decep-

tive satisfaction) का भी पर्याप्त महत्व है जो विशुद्ध मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसे समझने के लिये हमें वासनोद्रेक (Appetitive push अथवा Tumescence) और आत्म-व्ययी प्रक्रिया (Consumatory act or Detumescence) की प्रवृत्ति को अच्छी प्रकार से समझ लेना चाहिए। यद्यपि अगले निबंध में इसकी विस्तृत व्याख्या की गई है, फिर भी यहाँ इतना कह देना आवश्यक है कि वासना की धकेल उन हार्मज़ के रासायनिक क्रिया व्यापार का परिणाम है जो भाफ के समान शक्ति-संचय के रूप में प्रयुक्त होते हैं और प्रक्रिया के रूप में व्यय होकर प्राणी को सन्तुष्टि प्रदान करते हैं।

अस्तु, हमारे लिए यहाँ इस बात का अधिक महत्व नहीं है कि मनुष्य में प्यार की कितनी श्रेणियाँ हो सकती हैं, हमें तो यहाँ उन तथ्यों को देखना है जो इस वासना के उत्कर्ष या उद्रेक के कारण और स्रोत हैं। यह तो सभी जानते ही हैं कि मैथुन-व्यापार की क्रिया प्रत्येक प्राणी में कुछ विशेष ढंग और अनुक्रम से होती है, किन्तु यह केवल उस वस्तु का खोल है जिसे वासना और व्ययजन्य-सन्तुष्टि कहा जा सकता है, और शायद तज्जन्य सुख और आनन्द की अनुभूति सभी में समान रूप से और समान ही होती होगी। संभव है नर और मादा की सन्तुष्टि में कुछ अन्तर हो, किन्तु अन्तर यह मौलिक तो कभी भी नहीं हो सकता।

नर और मादा को मैथुन प्रक्रिया के दो पूरक कहा जा सकता है। ये पूरक यद्यपि ऐसे दो विरोधी तत्व—ऋण और धन—समझे जाते हैं जो एक दूसरे से मौलिक भिन्नता रखते हैं, किन्तु वास्तव में यह भिन्नता उतनी मौलिक नहीं हैं, जितनी समझी जाती है। ऋण-धन पदार्थों में जो आकर्षण शक्ति सापेक्षता में होती है, वही यद्यपि नर-मादा में भी पाई जाती है, किन्तु नर को मादा में और मादा को नर में परिवर्तित किया जा सकता है और परिवर्तित होने की यह क्रिया अत्यन्त सरल और सीधी है। नर-मादा के इस अन्तर के कारण जर्म सेल और उनमें निहित जेन होते हैं जिनको सुविधा के लिए x और y जर्म कहा जाता है। स्तनपायियों में प्रायः नर में जब कि x और y जेन होते हैं, मादा में x x जेन होते हैं। इसके विपरीत पक्षियों में नर में x x और मादा में x y जर्म होते हैं (विशेष तीसरे और चौथे निबंधों में)। मैथुन के पश्चात् स्तनपायियों में यदि मादा के अंडे में नर का y स्पर्म (शुक्र) प्रविष्ट होकर गर्भाधान करे तो परिणाम नर पुत्र होगा और यदि x शुक्र प्रवेश करे तो मादा होगा। पक्षियों में इसके विपरीत निर्णय मादा के हाथ में रहता है। कृमियों की कुछ जातियों में और

भी अधिक आश्चर्यजनक रूप से सूक्ष्म विभाजन रेखा पायी जाती है, उदाहरणार्थ मधुमक्खी के अंडे में क्रोमोसोम संख्या X=2N होती है जब कि शुक्र में क्रोमोसोम संख्या X=1n होती है। यदि मादा शुक्र के वपन के बिना ही बच्चा दे दे तो विभाजन (Reduction Division) के द्वारा क्रोमोसोम संख्या X=1n रह जाने से बच्चा नर होगा और यदि शुक्र वपन से बच्चा दे तो विभाजन के बाद क्रोमोसोम संख्या X=2n होगी और बच्चा मादा होगा। मधुमक्खियों में X=8 होता है। मादा में क्रोमोसोम संख्या 2x=16 होती है तो नर में यह संख्या 1x=8 होती है।

इस प्रकार बीज-वपन के एकदम साथ ही भावी शिशु के लिंग का निर्णय हो जाता है किन्तु गर्भ में बच्चा बनने के काफी देर बाद तक भी उसमें किसी लिंग के चिन्ह प्रकट नहीं हुए होते। किसी भी प्राणी का लिंग-निर्णय उसके गोनाड्ज़ के निर्णय पर निर्भर करता है, क्योंकि ये ही लैंगिक इंद्रियों को बनाने में कारणभूत तत्व हैं। अनेक बार तो केवल वाह्य अंग-निर्माण से कुछ निर्णय कर लेना काफी भ्रामक भी हो सकता है, क्योंकि हो सकता है कि तब तक उसकी गोनाड्ज़ ग्रंथि ने अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति ही न की हो। कभी-कभी किसी में दोनों ही ग्रंथियाँ भी हो सकती हैं जब कि उसका वाह्य अंग-निर्माण केवल एक ही ओर का होता है।

मनुष्य में गर्भधारण के लगभग ६ या ७ सप्ताह पश्चात् बच्चे में कुछ ऐसे कोषों के प्रारंभिक चिन्ह बनने लगते हैं जो बाद में टेस्टिस या ओवरी में परिणत होते हैं। किन्तु क्योंकि अभी तक ये सेल या भावी ग्रंथियाँ लैंगिक भिन्नता से स्पष्ट होती हैं इसलिए तब भी लिंग के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। वास्तव में इसके बाद की अवस्था में भी काफी देर तक बच्चा दोनों लिंगों के प्रारंभिक चिन्ह और नालियाँ इत्यादि रखता है। पश्चात्, यदि उसका झुकाव नरत्व की ओर होता है तो उसकी आन्तरिक नालियाँ और वाह्य इन्द्रियाँ उसी ओर विकास करने लगती हैं और दूसरी ओर के अंग अविकसित ही रह जाते हैं, और यदि मादा की ओर तो नरत्व के पोषक अंग अविकसित रह जाते हैं।

प्रश्न किया जा सकता है कि जब बच्चे में पहले किसी भी लिंग की ओर कोई झुकाव नहीं होता और वह बहुत देर तक दोनों के ठीक बीच में होता है तो क्यों वह एक ओर न जाकर दूसरी ओर जाता है? इसका उत्तर इतना कठिन नहीं है। हम पहले ही जैसा कि कह आये हैं, नर या मादा में सदैव जर्म x y और x x या x x और x y तथा 1x=1n और 2x=

2n होते हैं और जर्मज़ का यह भेद ही लिंग-भिन्नता का कारण है। यद्यपि इन जर्मज़ में तो कोई भी अंग और कोई भी ग्रंथि नहीं होती, किन्तु प्रतीकात्मक रूप से कहा जा सकता है कि, ये सब बीज रूप में उसमें निहित रहते हैं। पश्चात, जब यह बीज आत्मोद्घाटन करता है तो प्राणी के शरीर का निर्माण होता है। जैसा कि हम चतुर्थ निबंध में देखेंगे, जर्म के भीतर क्रोमोसोम्ज़ में रहने वाले जेन ही हमारे शरीर के रासायनिक क्रिया-व्यापारों, जैसे एंज़ाइम, सहायक ऐंज़ाइम तथा हार्मन इत्यादि—के आधार और सूत्रधार होते हैं। इससे ग्रंथियों में से स्रवित होने वाले हार्मज़ के द्वारा ये जेन प्राणी के लिंग निर्णय में कारण बनते हैं। यद्यपि स्नायु-तन्तु-वाय का भी इस में कम महत्त्व नहीं है, किन्तु ये स्नायु और तन्तु (Tissues) किस ओर विकास करेंगे, यह संभवत: ग्रंथियों पर ही निर्भर करता हैं। इसके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं, यदि किसी व्यक्ति में से टेस्टिस ग्रंथि को समाप्त कर दिया जाय तो उसमें मादापन के चिन्ह प्रकट होने लगेंगे, वास्तव में स्तनपायियों (नर x y, मादा x x) में मादापन केवल नरत्व की अनुपस्थिति ही है जब कि पक्षियों में (नर x x और मादा x y) इसके सर्वथा विपरीत नरत्व मादापन की अनुपस्थिति है। वहाँ यदि मादा से ओवरी ग्रंथि अपसारित कर दी जाय तो उसमें नरत्व के चिन्ह, तीव्र नख, कठोर पंख और मुकुट इत्यादि प्रकट होने लगतेहैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पक्षियों में मुकुट इत्यादि नर-ग्रंथि-रसों के परिणाम न होकर मादा ग्रंथियों की अनुपस्थिति के परिणाम हैं। पोल्ट्री फार्मों (Poultry Farms) में प्राय: ही लिँग-परिवर्त्तन के केस होते रहते हैं। जब किसी कारण से मादा की ओवरी ग्रंथि अयोग्य हो जाती है तो उसमें नरत्व के चिन्ह प्रकट हो जाते हैं, किन्तु वह पूर्णत: नर तभी बन सकती हैं यदि उसमें टैस्टिस भी विकसित हो जाएँ। अनेक बार ऐसा होता है कि कुछ व्यक्तियों में टेस्टिस और ओवरी दोनों ही पर्याप्त विकास कर लेते हैं किन्तु एक कुछ गौण पड़ी रहती है, यदि बाद में प्रधान ग्रंथि किसी कारण से गौण हो जाये तो वह दूसरे लिंग में प्रविष्ट हो जाती है। किसी-किसी में दोनों ही ग्रंथियाँ काफी प्रभावशाली रहती हैं, उस अवस्था में व्यक्ति न पूरी तरह से नर होता है और न मादा। संभव है इसका कारण यह भी हो कि पहले x या y जेन में से एक प्रधान रहे और बाद में दूसरा।

किन्तु लिंग-परिवर्त्तन के लिए केवल इतना ही काफी नहीं है कि ग्रंथि-रसों को ही बदल दिया जाए, इसके लिए व्यक्ति के शरीर में उनकी प्रेरणा

को क्रियान्वित करने की योग्यता भी होनी चाहिए। यद्यपि इनमें दोनों का ही बहुत महत्व है, किन्तु क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में दूसरी योग्यता होती ही है (अर्थात् वह नर और मादा दोनों के समान क्रिया-व्यापार कर सकता है) इसलिए पहिली योग्यता (ग्रंथि-रसों की) में ही परिवर्त्तन आवश्यक है। फिर ये ग्रंथि-रस भी उस योग्यता को प्राप्त करने में बहुत सहायक होते हैं। किन्तु शरीर के भीतर कुछ और भी योग्यताएँ होनी आवश्यक हैं जो कि कभी कभी हार्मंज़ से नहीं आ पातीं, जैसे अनेक स्त्रियों में भर्ग और गर्भ का ठीक विकास नहीं हो पाता, इसी प्रकार अनेक पुरुषों में लिंग पूरा विकसित नहीं हो पाता, यद्यपि लिंग और भग के विकास में हार्मन बहुत प्रभावशाली तत्व हैं किन्तु संभवतः गर्भ का विकास होना उनसे संभव नहीं होगा।

इससे स्पष्ट है कि हार्मज़्काम-वासना और वासना की प्रकृति में कितने महत्वपूर्ण कारण हो सकते हैं। इसके संबंध में अन्य ज्ञातव्य बातों को भी हम संक्षेप में यहाँ देखेंगे।

यह प्रायः सर्वसम्मत ही है कि ओवरी के अपसारण के पश्चात् प्रायः सभी प्रकार के प्राणी मैथुन-प्रक्रिया के अयोग्य हो जाते हैं। यदि ओवरी का अपसारण शैशव में ही कर दिया जाए तब तो तदीय वासना और आचरण तक का विलय हो जाता है, किन्तु यदि यौवन में भी इस ग्रंथि का अपसारण कर दिया जाय तो भी बहुत शीघ्र ही प्राणी में ये वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं, किन्तु आकृति में विशेष परिवर्तन लक्षित नहीं होते। और यदि यह अपसारण रज-स्राव के दिनों में किया जाय तो काफी दिन इसके प्रभाव को क्रियान्वित होने में लग सकते हैं, क्योंकि उन दिनों ओवरी-रस पर्याप्त मात्रा में रक्त में विद्यमान रहते हैं। मनुष्य जाति में स्त्री पर ओवरी के अपसारण का प्रभाव इतनी गंभीरता और शीघ्रता से लक्षित नहीं किया जाता, तो भी वहाँ धीरे-धीरे मैथुन-वासना समाप्त होती जाती है। संभवतः मनुष्य में हार्मंज़ या तो कम प्रभावशाली होते हैं अथवा गोनाड्ज़ के अतिरिक्त अन्य हार्मंज़ का भी इसमें हाथ रहता है। यह भी संभव है कि गोनाड्ज़ का अपसारण पूर्ण रूप से न होता हो। इसलिए पिच्यूइटरी को अपसारित कर देखना चाहिए कि मनुष्य की यह वासना कितनी और किस प्रकार प्रभावित होती है। संभवतः हार्मंज़ के अतिरिक्त, मनुष्य में उसके स्नायु-तंतुवाय का भी महत्वपूर्ण भाग रहता है।

नर में टेस्टिस के अपसारण का प्रभाव मादा में ओवरी के अपसारण से कुछ भिन्न रूप में होता है। यदि नर में टेस्टिस का अपसारण किशोरा-

वस्था से पूर्व ही कर दिया जाए तो उसमें इस वासना और प्रक्रिया का विकास ठीक तरह से नहीं हो पाता, किन्तु यदि यह अपसारण कैशोर्य के पश्चात् किया जाए तो मादा से भिन्न नर में मैथुन-योग्यता समाप्त होने में और भी अधिक दिन लग जाते हैं। उदाहरणार्थ, चूहों में अपसारण के पश्चात् ३३ प्रतिशत चूहे एक मास के पश्चात् असमर्थ हुए, ४५ प्रतिशत दो महीनों पश्चात् असमर्थ हुए और शेष को चार मास तक लग गए (Stone)। इस असमर्थता में पहले वीर्य-स्खलन की शक्ति का ह्रास हुआ और पीछे मैथुन-प्रक्रिया का। अधिक विकसित प्राणियों में हार्मज़ का नर की मैथुन योग्यता पर प्रभाव और भी कम होता है। कुत्तों में टेस्टिस का अपसारण जब कि कुछ को शीघ्र असमर्थ कर देता है, शेष दो-अढ़ाई वर्ष तक अपनी मैथुन योग्यता को बचाए रख सकते हैं (Beach)। शिम्पेंज़ी में तो हार्मज़ का यह प्रभाव और भी कम देखा जाता है। वे तो कैशोर्य से पूर्व भी अपसारित ग्रंथि होने पर यौवन में उसी उत्तेजना से मादा से मैथुन की उत्सुकता प्रकट करते हैं। मनुष्य में यद्यपि इसका निश्चय नहीं किया जा सका है, किन्तु संभवतः उसमें भी शिंपेंजी के ही समान हार्मज़ का मैथुन प्रक्रिया पर प्रभाव होगा (Beach)। इस प्रकार विकास-पथ में हार्मज़ का प्रभाव क्रमशः कम होता जाता है।

जैसा कि हम पीछे भी अनेक स्थलों पर कह आए हैं, पिच्यूइटरी ग्रंथि के अपसारण का भी प्रभाव मैथुन योग्यता पर बहुत गंभीर होता है। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि इसका नर पर भी वैसा ही गंभीर प्रभाव होता है जैसा मादा पर। दोनों ही में मैथुन-प्रक्रिया अपसारण के शीघ्र पश्चात् समाप्त हो जाती है। इसका अर्थ यह नहीं कि पिच्यूइटरी इस प्रक्रिया में प्रत्यक्षतः प्रभावशाली है, जैसा कि हम जानते हैं इसके हार्मन दूसरी ग्रंथियों के हार्मज़ को व्यापारित करते हैं। संभव है कि एंड्रेनल ग्रंथि के हार्मन या ऐंड्रोजन टेस्टिस के अपसारण के पश्चात् विकसित प्राणियों में मैथुन प्रक्रिया और वासना को बचाए रखते हों, किन्तु पिच्यूइटरी के अपसारण से वे भी स्रवित नहीं होते। मादा में ओवरी अपसारण और पिच्यूइटरी अपसारण का प्रभाव सामान्यतः एक-सा ही होता है, किन्तु विकसित प्राणियों में ओवरी का प्रभाव उतना गंभीर नहीं होता जितना पिच्यूइटरी का होता है। संभवतः ओवरी और टेस्टिस के अपसारण के पश्चात् भी विकसित प्राणियों में मैथुन-वासना और प्रक्रिया का ऐंड्रोजन इत्यादि रसों से जारी रहना इस बात का सूचक है कि इनकी धमनियों की योग्यता कम सशक्त

रासायनिक द्रव्यों से भी लाभ उठा सकतीं है। पिच्यूइटरी के अपसारण का गंभीर प्रभाव यही सूचित करता है।

ग्रंथि-अपसारण के इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि हार्मज़ का मैथुन-व्यापार पर कितना गंभीर प्रभाव हो सकता है। किन्तु इससे अधिक आकर्षक अध्ययन हार्मंज़ या ग्रंथियों का नर से मादा और मादा से नर में बदलना है। इसके लिए हमने पीछे भी कुछ थोड़ा-सा लिखा था, किन्तु इसका और अधिक अध्ययन हार्मंज़ के प्रभाव को समझने के लिए आवश्यक है।

यह तो सहज ही समझा जा सकता है कि ओवरी या टेस्टिस के अप-सारण के प्रभाव को तदीय रसों के इंजेक्शन से कम किया जा सकता है; फिर चाहे वह नर पर प्रयोग किया जाय या मादा पर। उसके प्रभाव में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि पिच्यूइटरी या गोनाड्ज़ को कैशोर्य से पूर्व भी अपसारित किया हो तो भी इन रसों के इंजेक्शन उन व्यक्तियों में वासनो-द्रेक उत्पन्न कर सकते हैं। अपसारित नर में इन रसों के इंजेक्शन से क्रमशः मैथुन की सामर्थ्य पहले और स्खल की बाद में लौटती है, जो कि अप-सारण से उत्पन्न होने वाले प्रभाव से ठीक उल्टा है। दुर्भाग्यवश नर मनुष्य में इस प्रकार के प्रभाव समान परिणाम नहीं लाते (Beach)। मोर्गन के अनुसार जैसे अपसारण का परिणाम नर मे समान नहीं होता, वैसे ही इंजेक्शन का प्रभाव भी समान नहीं होता। उसके अनुसार इसका कारण मनोवैज्ञानिक है। किन्तु हमारे विचार में यह ठीक नहीं है। हमने पीछे भी कहा था कि टेस्टिस-अपसारण के पश्चात् नर में मैथुन-योग्यता का बने रहना बताता है कि उसकी उस योग्यता में संभव है अन्य रस भी उत्तरदायी हों, और फिर हमने पिच्यूइटरी के अपसारण से समान रूप से सभी के असमर्थ होने की सूचना देते हुए बताया था कि संभव है नर में ऐंड्रोजन भी मैथुन योग्यता में निर्णायक होता हो। इसलिए इसमें मनोवैज्ञानिक कारणों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। यदि पिच्यूइटरी का अप-सारण मनुष्य में वही प्रभाव डालता है जो ओवरी का अपसारण चूहे में, तो टेस्टिस या ओवरी का उतना गंभीर प्रभाव न होने पर भी इसका कारण मानसिकता को संभवतः नहीं कहा जा सकता।

अपसारित ओवरी और अपसारित टेस्टिस मादाओं और नरों में एस्ट्रोजन हार्मन का प्रभाव समान ही होता है। मादा में एस्ट्रोजन के इंजेक्शन से रज-स्राव और मैथुन-वासना की शक्ति लौट आती है। किन्तु रज-स्राव और वासना के चक्र की नियमितता, जो अनपसारित व्यक्तियों में पाई जाती हैं, वह इनमें नहीं होती।

एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन का सम्मिलित इंजेक्शन और भी गंभीर प्रभाव डालता है। मादा सूअर (Female Guinia Pig) में ऐस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन के आनुक्रमिक इंजेक्शन उत्तेजना की तीव्रता और रज-स्राव को, तथा तज्जन्य अन्य शारीरिक प्रभावों को भी लौटा लाते है। किन्तु विभिन्न जातियों पर इनके प्रभाव भी विभिन्न होते हैं। शशक, खरहा इत्यादि (Rabbits) में तथा बंदरों में प्रोजेस्टेरोन का इंजेक्शन उत्तेजना को प्रायः बिल्कुल ही समाप्त कर डालता है। विभिन्न हार्मज़ के इंजेक्शन प्राणियों में ऋतु न होने पर भी अथवा यौवनोदय से पूर्व भी कामोत्तेजना उत्पन्न कर सकते हैं।

अनेक जातियों में, जो विशेष ऋतु में ही उत्तेजना में आती हैं, यह उत्तेजना गोनाड्ज़ के इंजेक्शन से, तथा अन्य उपायों से भी, ऋतु के बिना ही उत्पन्न की जा सकती है (Beach)। जैसा कि हम पीछे भी देख आए हैं, प्रकाश के समय को बढ़ा देने से पिच्यूइटरी ग्रंथि से रस-स्राव होने लगता है, यह भी हम जानते हैं कि यह ग्रंथि गोनाड्ज़, थाइराइड तथा ऐड्रेनल इत्यादि ग्रंथियों के स्राव की कारण हैं। इससे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि प्रकाश के समय का बढ़ा देना मात्र ही कामोत्तेजना को बढ़ाने में कितना बड़ा कारण हो सकता है। दूसरा ढंग गोनाडल रसों का इंजेक्शन हो सकता है। आयु ढलने पर निम्न स्तर के प्राणियों में हार्मज पुनः कामोत्तेजना और यौवन के चिन्ह लौटा सकते हैं। यह उत्तेजना मनुष्य तक में लौटाई जा सकती है, किन्तु बाद में संभवतः इसका परिणाम घातक थकन और व्यय होता है। एक फ्रेंच डाक्टर ने एक बार कुत्ते के गोनाड्ज को नमकीन पानी में मिलाकर अपने आप में इंजेक्शन किया और इससे उस पर जादू का सा प्रभाव हुआ। इस पर उसने अपने को पुनः युवक हो उठने की पत्रों में घोषणा कर दी, किन्तु एक मास के पश्चात् ही वह बुरी तरह से निर्बल हो गया। उसने इसके जो कारण दिये हैं, उनकी चर्चा हम यहाँ नहीं करेंगे, क्योंकि वे पर्याप्त प्रामाणिक नहीं हैं, किन्तु यह प्रयोग अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग अवश्य है। मनुष्य में मनोवैज्ञानिक कारणों को भी कुछ महत्त्व दिया जा सकता है, ऐसे बहुत से व्यक्ति हो सकते हैं जो पर्याप्त हार्मज़ और शक्ति होने पर भी इस ओर से पर्याप्त उदासीन रहें। यद्यपि उनके उस मानसिक विकास में भी उनकी शरीर-वैज्ञानिक-परिस्थितियों का बहुत अधिक महत्त्व है, और संभवतः इस प्रकार की उदासीनता या अनुरक्ति बहुत कुछ व्यक्ति के ग्रंथि-रसों के अनुपात पर भी निर्भर करती है। इस प्रकार के व्यक्तित्त्व निर्माणमें सभी रस-स्रावक ग्रंथियाँ उत्तरदायी होती हैं। संभवतः मनुष्य का भी,

जैसा कि अन्य प्राणियों का चरित्र दो आंतरिक कारणों से निर्धारित होता है—प्रथम, उसके क्रोमोसोम्ज़ के उत्तराधिकार के रूप में, और दूसरा इन रस-स्रावक ग्रंथियों से। पिछले २२ वर्ष से व्यक्तित्त्व पर इन रसों के प्रभाव का अध्ययन बहुत आगे बढ़ सका है। यद्यपि इस ओर अभी बहुत कम निश्चित परिणाम प्राप्त हो सके हैं तो भी कुछ अनुमान तो किये जा सकते ही हैं। उदाहरणार्थ, कीट्स में थाइराइड-ऐड्रेनल रस प्रधान थे, शेली में थाइराइड और पिच्यूइटरी प्रधान थे और एकदम शान्त और विचारशील वुडरो विल्सन में पिच्यूइटरीग्रंथि (K. Walker)। सामान्यतः कवि और गायक, अथवा अन्य कलाकार भावुक होते हैं और उनमें अधिक कामुकता होती है। इसका श्रेय अधिक एड्रेनल और गोनाड्ज को ही दिया जा सकता है। इसी प्रकार वैज्ञानिक, दार्शनिक और व्यापारी इत्यादि कम भावुक और स्थित-प्रज्ञ होते हैं, इससे उनमें सहज ही इन ग्रंथियों का प्रभाव अपेक्षाकृत गौण होना चाहिए। यद्यपि इनमें आगे और भी सूक्ष्म-भेद होने अनिवार्य हैं, किन्तु वह सब हम यहाँ नहीं देखेंगे। हमारे लिए यहाँ केवल इतना ही प्रार्कणिक है कि ये ग्रंथियाँ और विशेषतः कामोत्तेजक ग्रंथियाँ कैसे कार्य करती हैं और प्राणी के व्यहार को प्रभावित करती हैं। इसके लिए (Beach) की पुस्तक "हार्मज और बिहेवियर" से एक रेखा-चित्र देना उपयोगी रहेगा—
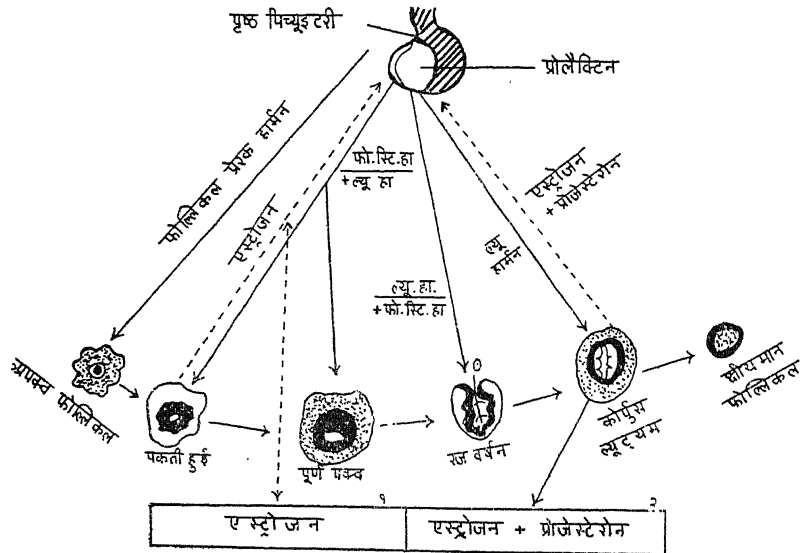
गर्भ	बाह्य दीवार में परिवर्तन	शिशु-ग्रहण के लिए प्रस्तुत	मासिक धर्म का प्रारम्भ
रज	फोल्लिकल में	ट्यूब में गर्भ में	वपित होने पर गर्भ-धारण
अरीढ़धारियों में कामनोदय	शून्य	उच्चतम स्तर पर	शून्य
मानव से निम्न रीढ़धारियों में	बहुत कम	उच्चतम स्तर पर	निम्नतम स्तर पर

ये हार्मन विभिन्न प्राणियों में विभिन्न प्रकार की मैथुन-प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं। इन्हें मुख्यत: प्राथमिक और उद्दिष्ट (Secondary) दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्राय: सभी प्राणी अन्तिम या उद्दिष्ट मैथुन-प्रक्रिया (संभोग) से पूर्व प्राथमिक (चुम्बन, कंडूयन, इत्यादि) क्रियाएँ करते हैं। पक्षियों में प्राय: कूजन और चंचुमेलन-नृत्य प्राथमिक क्रियाएँ कही जा सकती हैं। कुछ जातियों में तो इन प्राथमिक क्रियाओं के लिए विशेष अंग ही बने हुए हैं, जैसे कस्तूरी मृग की नाभि की कस्तूरी अपनी प्रेयसी को आकर्षित करने के काम आती है। कुछ कृमियों में भी इसी प्रकार सुगंधित अंग मैथुन-ऋतु में उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ कृमि विशेष प्रकार की आवाज़ करते हैं जो संभवत: उनका मैथुन-गीत होता है, कुछ अन्य ऐसे यंत्रों का प्रयोग करते हैं जिससे अपनी प्रेयसी को आकर्षित कर सकें, उनकी प्रेयसियाँ बिना उन टिपिकल गीत-ध्वनियों के नर के समीप नहीं जातीं। इसके अतिरिक्त गायन, नृत्य और कंडूयन-चुंबन इत्यादि की क्रियाएँ अन्य भी प्राय: सभी प्रकार के प्राणियों में बहुत अधिक विकसित हैं। थ्रीस्पाईंडस्टिक्कल-बैक अपनी प्रेयसी के आगे नृत्य करता है और उसे अपने घोंसले की ओर मादा के भग पर अपनी थोंथनी के चुम्बन-घर्षण से धकेलता है। हरिण प्रेयसी के भग के समीप बड़ी मधुरता और मादकता से कंडूयन करते हैं। हाथी एक दूसरे के सूंड में लपेट कर अपनी नथुनी एक दूसरे के मुँह में डालते हैं। साँप और सँपनी एक दूसरे से रस्सी के समान लिपट जाते हैं और नर मादा के मुँह को अपने मुँह में ले लेता है। पुंस्कोकिल के गीतों की मधुरता और तीव्रता को तो सभी जानते ही हैं, वह बड़ी विकलता और अधीरता से अपनी प्रेयसी के लिए धरा से व्योम तक स्पन्दित गीतों का वितान छा देता है। इसी प्रकार वुडपैक्कर (Woodpecker) अपनी प्रेयसी के लिए मृदंग की सी एक विशेष ध्वनि

करता है। ग्रासहोप्पर वायलिन के समान एक यंत्र से मधुर संगीत उत्पन्न करता है और उसकी प्रेयसी मधुर गीतों में उसका उत्तर देती है। ये सब प्रक्रियाएँ हैं जो एक तीव्र वासना की बाह्य अभिव्यक्तियाँ-मात्र हैं। ये अपनी इच्छा से स्वीकृत नहीं हैं प्रत्युत अन्तर्वासना की बाध्यता की परिणाम हैं। इस को हम काफी विस्तार से पीछे देख ही आए हैं।

विशेष भूख

ऊपर अध्ययन किए गए विशेष व्यवहारों के समान ही भूख और प्यास का अध्ययन भी मनस्प्रक्रिया के स्रोतों को समझने के लिए आवश्यक है। भूख के विषय में यह तो प्रायः निर्विवाद सिद्ध ही है कि इसकी उत्पत्ति में मानसिक प्रयासों (Psychological desires) या मानसिक प्रवृत्तियों को (जिनका निर्धारण परिवृत्ति से हुआ समझा जाता है), कुछ भी लेना देना नहीं है, अथवा इसमें उनका न के बराबर ही हस्तक्षेप होता है; इसकी उत्पत्ति में तो हमारे शरीर में के परिवर्त्तन ही उत्तरदायी हैं। इस लिए यहाँ हम इसके विषय में कुछ कहना आवश्यक नहीं समझते। हमारे लिए यहाँ केवल उसी प्रक्रिया का विशेष महत्व है जो प्रत्यक्षतः मानसिक प्रतीत होती है। भूख में भी प्रतीयमान मानसिक पहलू विद्यमान है—जिसे वस्तु-विशेष की भूख, किसी भोजन का समय-समय पर स्वाद या बे-स्वाद लगना इत्यादि में देखा जा सकता है। किन्तु इससे पहले कि हम इसके शरीर वैज्ञानिक कारणों को देखें, हम भूख के कारणभूत हार्मंज़ का संक्षिप्त-सा विवरण देंगे।

प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि भखे व्यक्ति का रक्त सन्तुष्ट व्यक्ति के रक्त से रासायनिक प्रकृति में भिन्न होता है—इसमें कुछ रासायनिक द्रव्यों का अभाव और कुछ की अधिकता होती है। यद्यपि अभी तक यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हो सका है कि यह भिन्नता क्या है, किन्तु कुछ भिन्नता है, इसमें कोई संदेह नहीं। इसका प्रमाण यह है कि यदि भूखे व्यक्ति का रक्त सन्तुष्ट व्यक्ति में इंजेक्ट कर दिया जाए तो वह पुनः खाने के लिए व्याकुल हो उठेगा, उसे भूख लग आएगी। इसी प्रकार भूखे व्यक्ति में सन्तुष्ट व्यक्ति का रक्त-संचार उसके पेट की सिकुड़न को कम कर देगा (Beach)। इससे स्पष्ट है कि भूख में और सन्तुष्टि में रक्त की कुछ भिन्न रासायनिक स्थितियाँ होती हैं। हाइड्रोक्लोरिक एसिड भोजन पचाने में बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेता है, संभव है और भी कुछ ऐसे रासायनिक पदार्थ हों जो कि पेट की किसी ग्रंथि से स्रवित होते हों और इस प्रकार अज्ञात हार्मन हों। एक

प्रयोग में कुत्ते के पेट का एक भाग काटा गया और रक्त को ठीक संचार के साथ त्वचा में शरीर के अन्य किसी भाग में सी दिया गया। वह भाग सामान्य पेट के समान ही सिकुड़ता था और एक विशेष रस को प्रवाहित करता था, जिससे भोजन पचने में सहायता मिलती थी---ऐसा अनुमान है। संभवतः भूख के कई अन्य भी रासायनिक कारण हो सकते हैं, जिनमें रक्त में इन रसों के मेल से ही नहीं, भोजन के अभाव से भी रासायनिक परिवर्तन की संभावना एक कारण हो सकती है।

ये रस और अन्य रासायनिक कारण ही शायद विशेष भूख और भोजन में किसी वस्तु के पसन्द-नापसन्द के कारण होते हैं। ये न केवल यही निर्धारित करते हैं कि व्यक्ति विशेष कब और कितना भोजन ग्रहण करे प्रत्युत् यह भी कि वह क्या चाहे। सामान्यतः यदि एक व्यक्ति एक विशेष भोजन अपने रासायनिक परिवर्तनों के कारण अथवा अपने सामान्य भोजन में उसकी अनुपस्थिति के कारण चाहता है तो हम कहेंगे कि उसने अपनी एक विशेष भूख विकसित कर ली है। यह भूख केवल पेट पोशियों की के संकोच से ही संबंध नहीं रखती, क्योंकि अनेक बार व्यक्ति पेट भर लेने पर भी और अधिक खाना चाहता है। इसलिए अनिवार्य रूप से कुछ दूसरे भी रासायनिक और स्नायविक कारण होंगे जो विशेष भूख का निर्धारण करते होंगे। मेरे विचार में यदि किसी विशेष भूख से भूखे एक व्यक्ति का रक्त दूसरे सन्तुष्ट व्यक्ति में डाला जाय तो शायद उसे भी वही विशेष भूख लग आएगी। मान लीजिए, एक चूहे ने एक महीने में कभी नमक ग्रहण नहीं किया जब कि दूसरा उपयुक्त मात्रा में नमक ग्रहण करता रहा है, और उसके बाद नमक के भूखे चूहे का रक्त यदि सन्तुष्ट में इंजेक्ट कर दिया जाय तो संभवतः वह चूहा भी नमक चाहने लगेगा।

यदि किसी व्यक्ति के आगे उसकी जाति के समान सभी प्रकार के भोजन रख दिये जाएँ तो वह ठीक चुनाव करने में, यदि वह मनुष्य नहीं है तो, काफी से अधिक सफल रहेगा और बड़े सन्तुलित रूप से अपनी आवश्यकता के अनुसार चुनाव कर लेगा, और हम देखेंगे कि किन्हीं भी दो व्यक्तियों का चुनाव ठीक एक-सा-ही नहीं होगा। इस प्रकार के चुनाव में मनुष्य के असमर्थ रहने का कारण उसकी मानसिक अभिरुचियों का विकास है। उसमें मनो-वैज्ञानिक कारण उसकी प्राकृतिक रुचि को घपला देते हैं। किन्तु यदि बहुत छोटे बच्चों के सम्मुख सभी आवश्यक भोजन प्रस्तुत किये जायें तो वे चुनाव में बहुत काफी सफल रहेंगे। किसी दिन तो वे मक्खन और अंडे या बिस्कुट इत्यादि पसंद करेंगे और किसी दिन मक्खन को या अंडों को चखना भी नहीं

चाहेंगे। यदि उन्हें काफी दिन अपर्याप्त मीठा दिया जाए तो वे उसे प्राप्त करने पर उस की बहुत अधिक मात्रा ग्रहण करेंगे, इसी प्रकार मक्खन इत्यादि के लिए भी। इस प्रकार कभी एक वस्तु को अधिक खाते हुए और कभी दूसरी को, वे अपने आवश्यक भोजन का अनुपात ठीक रखेंगे। इसी प्रकार अन्य प्राणिओं में भी देखा जा सकता है। यदि चूहे को विभिन्न पदार्थ एक साथ दिये जाँय और ये पदार्थ भिन्न-भिन्न तश्तरियों में रखे गए हों तो वे अपनी आवश्यकता के अनुसार ठीक मात्रा में इनमें से अपना भोजन ले लेंगे। यदि किसी व्यक्ति को कोई पदार्थ किसी दूसरे रूप में दे दिया गया हो, फिर चाहे वह इंजेक्शन से ही उसके शरीर में क्यों न पहुँचाया गया हो, तो भी वह उसे अपने भोजन में ग्रहण नहीं करेगा। यदि प्रत्येक व्यक्ति का हिसाब रखा जाए तो सामान्यतः सभी ने एक-सा-ही प्रत्येक पदार्थ को ग्रहण किया होगा। यह बात दूसरी है कि एक, किसी विशेष दिन नमक अधिक ग्रहण करता है तो दूसरा, उस दिन उसकी कम मात्रा भी ग्रहण कर सकता है, इस लिए कई दिनों का परिणाम जानना आवश्यक हैं।

किन्तु यह मामला इतना सीधा नहीं है जितना प्रतीत होता है, उसमें आदत का भी बहुत महत्त्व है। उदाहरणार्थ, यदि चूहों को निरंतर मीठे पर ही रखा जाए और वे इसके प्रयोग के अभ्यस्त हो जाएँ तो दूध का पनीर की आवश्यकता होने पर भी, और उसके प्रस्तुत किये जाने पर भी वे उसे ग्रहण नहीं करते। बहुत धीरे-धीरे वे उसका प्रयोग आरम्भ करते हैं (young)। सामान्य नियम का यह विरोधाभास इतना उलझन-पूर्ण नहीं है। यद्यपि प्राणी उसी भोजन का प्रयोग अधिक करता है जिसकी उसे आवश्यकता हो, किन्तु विशेष कारणों से आवश्यकता आदत भी बन सकती है और यह आदत उसके स्नायुतंतुवाय में अपना स्थान निश्चित कर लेती है। इसके अतिरिक्त उसका उस भोजन और उस परिवृत्ति से कुछ सापेक्ष संबंध भी स्थिर हो जाता है। यदि चूहे को पुरानी परिवृत्ति में ही रखा जाय जिसमें उसे खाँड मिलती रही है और वहाँ उसे पनीर दिया जाय तो वह उसकी आवश्यकता होने पर भी बहुत कम मात्रा में और झिझक के साथ ग्रहण करेगा, किन्तु यदि उसकी परिवृत्ति बदल दी जाय तो वह खांड के बजाय पनीर को ही ग्रहण करेगा जो उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है। इसी प्रकार और इसी रूप में विटामिन और हार्मन इत्यादि भी भोजन में, विशेष भूख में, बहुत महत्त्व रखते हैं। विशेष हार्मज़् के प्रवाह के साथ जो शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते हैं उनसे शरीर की भोजन-संबंधी आवश्यकताओं में भी अन्तर पड़ता है। मनुष्य में हम इसका एक अप्रत्यक्ष

प्रमाण पा सकते हैं। प्रायः ही अधिक प्रशान्त, विचारशील और कम भावुक व्यक्ति हल्का नमक, मिर्च इत्यादि अपने भोजन में पसंद करेंगे जबकि इनसे विपरीत स्वभाव के व्यक्ति अधिक मीठा या अधिक नमकीन भोजन चाहेंगे। स्त्रियाँ प्रायः अधिक चटपटी वस्तुएँ खाना पसंद करती हैं। अधिक (Broody), मक्कार और निम्न बौद्धिक स्तर के व्यक्ति भी प्रायः तीव्र भोजन पसंद करते हैं और कभी-कभी तामसिक भोजन भी। इन सब का भी कारण हमारे शरीर की रासायनिक और स्नायविक स्थिति ही होनी चाहिए।

इस प्रकार अनेक प्रवृत्तियों के स्रोतों के संक्षिप्त अध्ययन में हमने देखा कि, प्राणी क्या करता है, क्यों करता है और वह क्या करेगा। इसके निश्चित जैवी और भौतिक कारण होते हैं। उसकी इच्छा-अनिच्छा का बहुत महत्त्व हो सकता है, किन्तु वह इच्छा-अनिच्छा कोई स्वतन्त्र चेतना-विलास नहीं है। इस प्रकार प्राणी एक ऐसा यंत्र-मात्र रह जाता है जिसका प्रत्येक कार्य उसकी अपनी अतिप्राकृतिक इच्छा से नहीं, प्रत्युत् निश्चित कारण-कार्य-संबंध से निर्धारित होता है। किन्तु बहुत से वैज्ञानिक इसे स्वीकार नहीं करना चाहते। पीछे हम रसल से एक उद्धरण दे आए है, यहाँ एक और उद्धरण हम उसकी दूसरी पुस्तक से देंगे। वह कहता है कि "इससे यह प्रमाणित होता है कि संवेद Perception को केवल शारीरिक उकसाहट-मात्र कहना भ्रान्ति है। संवेद का वास्तविक अर्थ है आकृतियों को, विभिन्नताओं को, खंडों को और संपूर्ण को तथा सम्बन्धों को 'देखना'। 'सम्बन्धों' में केवल दैशिक ही नहीं कालिक सम्बन्ध भी सम्मिलित हैं।

"उकसाहट शब्द का बहुत अधिक अनर्थ किया गया है। जब नर-पक्षी मादा को देखकर एक विशेष व्यवहार करता है तो मादा को केवल एक उकसाने वाली वस्तु कहना या नर के दृष्टि-व्यापार को केवल एक उकसाहट कहना पूर्णरूप से गलत है, क्योंकि उकसाहट का अर्थ केवल एक ही होता है, और वह है मादा के शरीर से प्रक्षेपित होती हुई किरणों का नर की रेटिना नाड़ी, केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय और मस्तिष्क केन्द्रों पर भौतिक प्रभाव। किन्तु वास्तव में देखना क्या है?—वह है उसकी आवश्यकताओं (या वासनाओं) की सापेक्षता में मादा पर क्रियाशील होने की सम्भवना।" हमें इससे कोई मतभेद नहीं है, शायद किसी को भी नहीं होगा, हमने स्वयं प्रक्रिया की परिभाषा इससे कुछ मिलती-जुलती ही की है, किन्तु इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि नर का यह व्यवहार शारीरिक-प्रक्रिया (Biological or Physiological act) नहीं है। यदि रेटिना के द्वारा प्राणी के मस्तिष्क

स्पर्शज्ञान
दृष्टि विषय स्मरण
दृष्टि विषय का संबंध ज्ञान
पढना
शब्द स्मृति
भाषा निर्माण
संगीत की पहचान
संगीत निर्माण
व्यवस्थित व्यवहार
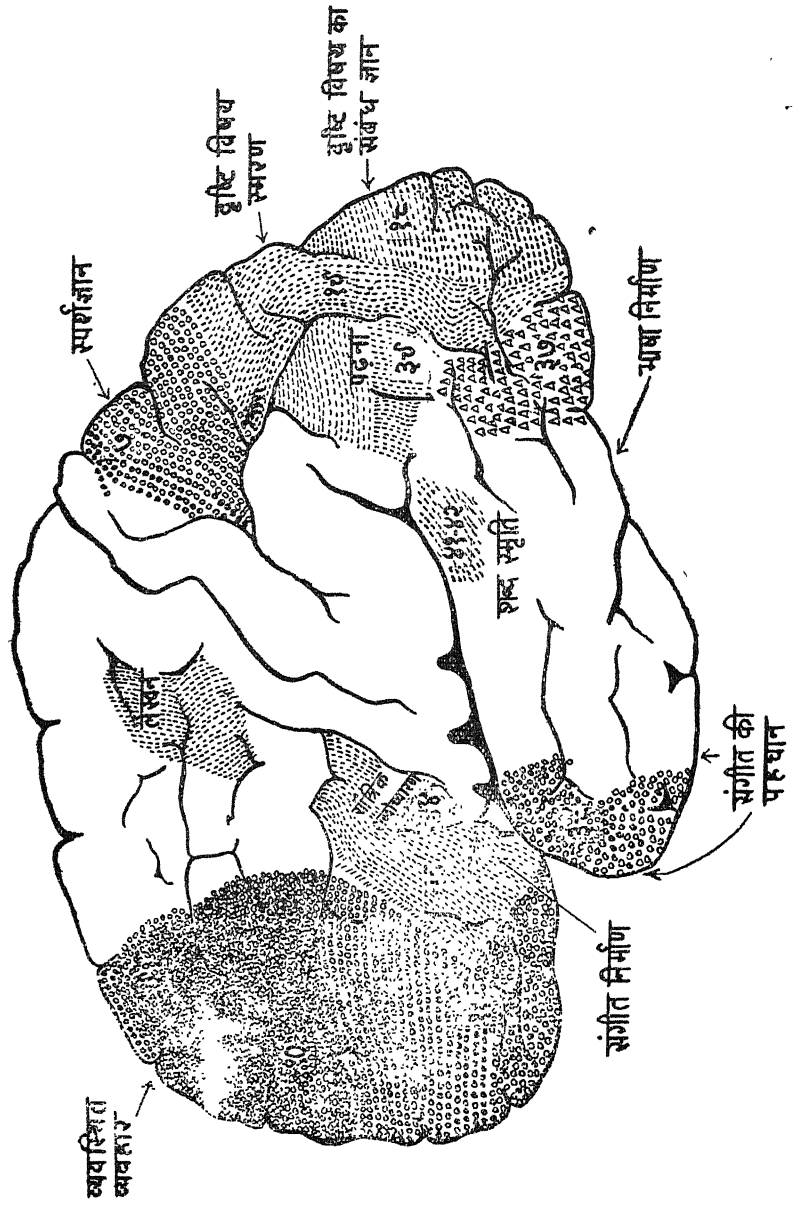
तंतुओं पर होते हुए दृष्टि-विषय के शरीर से प्रतिबिंबित किरणों के भौतिक प्रभाव को किसी प्रकार रोक दिया जाए तो क्या वह प्राणी किसी प्रकार से भी मादा के दैशिक और कालिक संबंध (Relation) को जान सकेगा ? यदि मस्तिष्क से (Pare Striatic Aria) को आपसारित कर दिया जाए तो नर के लिए मादा की सार्थकता की और उसके सम्बन्ध-ज्ञान की कोई सम्भावना ही न रह जायगी। पीछे दिए हुए मस्तिष्क के रेखा-चित्र में मस्तिष्क के विभन्न प्रदेशों की योजना से स्पष्ट है कि मस्तिष्क-प्रदेश के ये विभाग किसी भी संबंध-ज्ञान के लिए आवश्यक हैं। जैसा कि हम सातवें निबन्ध में देखेंगे, स्मृति या विषयों के दैशिक और कालिक सम्बन्ध पूर्णतः शरीर वैज्ञानिक स्तर पर ही विकसित होते हैं। एक पक्षी के लिए अपना अंडा केवल एक ऐसी गोल वस्तु है जिसकी सार्थकता उसके लिए एक विशेष परिवृत्ति में घिरे होने पर केवल सेने की प्रक्रिया के विषय के रूप में है, इस प्रकार वह उसको किसी विशेष कालिक तथा अन्य सम्बन्ध में नहीं जानता। केवल एक सीमित से दैशिक 'संबंध' के साथ जानता है। यदि उसके अंडे को उसके घोंसले की सीमा (जो निश्चित रहती है) के बाहर उठाकर रख दिया जाए तो वह उसे या तो खा लेगा अथवा उससे उदासीन ही बैठा रहेगा। इसी प्रकार, यदि एक चूहे के घोंसले के दोनों ओर की दीवारों में से एक का रंग बदल दिया जाए तो वह अपने घोंसले और बच्चों तक को शायद न पहचान पाए। इससे भी अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव यह है कि चींटी आँखें होने पर भी केवल इसलिए नहीं देख सकती क्योंकि उसके मस्तिष्क-तंतु उसके लिए प्रस्तुत नहीं हैं। इससे यह समझना सहज ही है कि जिसे हम बुद्धि की सबसे बड़ी करामात (संबंध-विधान की योग्यता) समझते हैं, वह भी विशुद्ध शरीर वैज्ञानिक प्रक्रिया-मात्र है। यद्यपि प्रक्रिया के कुछ और पहलू भी हो सकते हैं, किन्तु वे शारीरिकता से उस प्रकार स्वतंत्र नहीं हैं जिस प्रकार समझा जाता है, जैसा कि हम अगले निबंध में देखेंगे।

—:o:—

REFERENCES

1. *Beach F. A.* ..... Hormons and Behavior, 1944, Hoeber, New York.

2. *Coward* .. The Migration of Birds, 1929 3rd Ed. Cambridge University Press.

3. *Kruif P. D.* .. The Male Hormons, 1st Ed. 1948. Perma Books, New York.

4. *Madwoall* .. General Physiology and Bio-Chemistry, 3rd Ed. 1946. John Murray, London.

5. *Morgon and Stillar* Physiological Psychology, 2nd Ed. 1951. Mac Graw Hill Book Co., New York.

6. *Russell E. S.* .. Behavior of Animals, 2nd Ed. 1938. Edward Arnold Co.. London.

7. *Tinbergen* .. The Study of Instinct Ed. 1st 1951.Oxford University Press.

8. *Walker K.* .. The Physiology of Sex, 6th Impression 1944. Panguin Books. L. T. D., London.

२—मनस्प्रक्रिया और विकास

पिछले निबंध में हमने प्रक्रिया के स्रोतों या हेतुभूत यंत्रों को और प्रक्रिया के साथ उनके संबंध को देखने का प्रयास किया। इस निबंध में हम प्रक्रिया-वासना और व्यय—को पिछले निबंध के पूरक के रूप में देखेंगे। इस निबंध में हमने प्रक्रिया के साथ ही विकास (वाद) की समस्या को भी उठाया है और वह भी इस निबन्ध का महत्वपूर्ण भाग है। वास्तव में हम समझते हैं कि प्रक्रिया की यांत्रिकता (Mechanical Process) को समझना अत्यन्त आवश्यक है।

हमारे शरीर में प्रक्रिया की संवाहक विविध धमनियाँ हैं जो परिवृत्ति के प्रभाव को मस्तिष्क-केन्द्र तक ले जाती हैं और जो प्राणी को परिवृत्ति पर क्रियात्मक होने के उपयुक्त बनाती हैं। यह स्नायुतंतु ही हैं जिनके द्वारा शरीर के सम्पूर्ण भागों और स्थलों का निर्धारण होता है, जिससे कि व्यक्ति परिवृत्ति का लाभ उठाने की ओर और सम्भावित हानियों से बचने की ओर प्रवृत्त होता है। स्नायुतंतुवाय के संयोजकों को सामान्यतः Somatic (सोमैटिक —शरीर की बाह्य परिवृत्ति संबंधी) और Splanchnic or Visceral (विस्सेरल—उदरस्थ धमनि गुच्छ तथा आँत-संबंधी) नाम दिया जाता है। स्नायुतंतुवाय के ये दोनों ही संयोजक बहुत सी सामान्य विशेषताएँ रखते हैं, जैसे प्रभाव ग्रहण करने वाले तंतु और प्रभाव को प्रक्रियात्मक रूप देने वाले तंतु। प्रभाव को प्रक्रियात्मक अंगों में अनूदित करने वाले इन तंतुओं का जाल इतना उलझनपूर्ण और विस्तृत है कि उसका विवरण यहाँ देना अनावश्यक और असंभव भी है। सोमैटिक संयोजक, सामान्यतः उस उकसाहट की, जो सोमैटिक तंतुओं के प्रभाव-ग्राहक सूत्रों में उत्पन्न होती है और प्रक्रिया-चालक (Locomotor) यंत्र में स्पंदन के रूप में परिणत होती है, संप्राप्ति, अनुवाद और संवाहन की व्यवस्था करते हैं। इन संयोजकों को हम केन्द्रानुसारिणी (Centripetal) और केन्द्रापसारणी (Centrifugal) धमनियों में विभक्त कर सकते हैं। सोमैटिक संग्राहक हमारी त्वचा में, जोड़ों में और मसल्ज इत्यादि में बिखरे रहते हैं। त्वचा से संबद्ध संग्राहक (Receptors) बाह्य उकसाहट को ग्रहण करते हैं। जिन विभिन्न उकसाहटों को वे बाहर से ग्रहण करते हैं उन्हें बाह्य संग्राहक (Exteroceptive) कहते हैं। इसके विपरीत जो संग्राहक मसलों में, जोड़ों में या Tendons (पुट्ठे—मसलों के विशेषस्नायु गुच्छ) में पाये जाते

हैं, वे अपना कार्य-क्षेत्र शरीर के भीतरी भागों में बनाते हैं, बाह्य प्रभाव के साथ उनका कोई संबंध नहीं रहता। इन विभिन्न उकसाहटों को ग्रहण करने वाले तंतुओं को अन्तर संग्राहक या (Proprioceptive) कहते हैं। अन्तर-अनुभूति के ये संग्राहक, बहिरनुभूति के संग्राहकों के समान ही अपना प्रतिनिधित्व Cerebral Cortex (मस्तिष्क का अग्रभाग) या Thalamus (मस्तिष्क का पृष्ठभाग) में रखते हैं। किन्तु कुछ अन्तर-अनुभूति के संग्राहक ऐसे भी हैं जो हमारे चैतन्य-व्यापार में कोई हस्तक्षेप नहीं करते। वे तो हमारे मसलों की व्यवस्था में सहायक होते हैं, जो मसल हमारे प्रत्येक अंग-चालन के लिए अनिवार्य हैं।

सोमैटिक केन्द्रापसारी—धमनि-संयोजक शरीर के प्रक्रियात्मक यंत्रों का प्रबंध करते हैं। ये यंत्र अन्तर-अनुभूति-संबंधी किसी भी उकसाहट को क्रियात्मक रूप देते हैं, उन्हें केन्द्रानुसारी धमनि-यंत्र केन्द्र तक पहुँचाते हैं।

इसके विपरीत विस्सेरल (उदरस्थ स्नायुतंत्र) के संयोजक 'स्नायु तंतुवाय' के वह विभाग हैं जो रक्त, रस-स्रावक ग्रंथियों और रक्त-बर्त्तन आदि की क्रियाओं का निर्धारण करते हैं। सोमैटिक संयोजकों के समान ही इस यंत्र को भी केन्द्रानुसारिणी और केन्द्रापसारिणी धमनियों में विभक्त किया जा सकता है। केन्द्रानुसारणी धमनियों के विशेष विभाग उकसाहट का अनुभव ग्रहण कराने के लिए रक्त वर्त्तन की दीवारों के साथ संबद्ध रहते हैं जबकि केन्द्रापसारणी धमनियों का प्रक्रिया यंत्र (Glandularal Epithalialcells) और विस्सेरा तथा रक्त बर्तनों की मसलों के द्वारा अन्तर-अनुभूति (उकसाहट) को क्रियान्वित करता है। सामान्य अवस्थाओं में स्नायुओं का यह उदरस्थ-स्नायु-गुच्छ संबंधी* प्रबंध निरन्तर क्रियाशील रहता है, किन्तु उसकी यह क्रियाशीलता प्राणी के चैतन्य-व्यापार से स्वतन्त्र ही चलती रहती है। जब सम्पूर्ण viscera (अन्तर-प्रदेश) सुव्यवस्थित रूप से अपना कार्य कर रहा होता है उस समय हम एक विचित्र स्फूर्ति और स्वास्थ्य-सुख का अनुभव करते हैं। यद्यपि अभी यह निश्चित रूप से जाना नहीं जा सका है कि इस यंत्र का प्रतिनिधित्व मस्तिष्क के ज्ञान-तंतुओं में है या नहीं, तो भी विशेष अवस्थाओं में यह अपने केन्द्रों की गम्भीर परिस्थिति का परिचय सोमैटिक धमनियों के माध्यम से तो देता ही है।

स्नायुतंतुवाय के ये दो बड़े संयोजक यंत्र हमारे चेतना-व्यापार और प्रक्रियात्मक व्यवहार को जन्म देते हैं। Impulses (अन्तः-प्रेरणाएँ) जो

---

*Splancnic

कि केन्द्रापसारिणी धमनियों के द्वारा शरीर के प्रक्रियात्मक संचालन में परिणत हो जाती हैं, पूर्णरूप से केन्द्रापसारिणी धमनियों के ही व्यापार पर निर्भर हैं और इनके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण करती हैं।

किन्तु ये स्नायु-तंतुवाय केवल टेलीफोन की उन तारों के समान ही हैं जो ध्वनि-लहरों के संवाहन का साधन बनती हैं; प्राणी के शरीर के क्रिया-व्यापार को प्रेरित करने में तो शरीर की विभिन्न ग्रंथियों से बहने वाले रासायनिक रस और कोष तथा मस्तिष्क तंतु ही प्रभावशाली होते हैं, जो न केवल हमारे शरीर की प्रेरणाओं के ही कारण होते हैं, प्रत्युत् प्राणी की प्रकृति या स्वभाव के निर्धारण में भी बड़ा महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। यद्यपि विभिन्न ग्रंथियों के हटाने से उत्पन्न होने वाले प्रभाव के बारे में विभिन्न वैज्ञानिकों में मतभेद है, किन्तु इनके सामान्य महत्व के विषय में किसी को भी संदेह नहीं है।

ये ग्रंथियां या इनके रस हमारे शरीर की व्यवस्था में कितना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, यह हम उनको शरीर से अनुपस्थित करके देख सकते हैं। ओवरी ग्रंथि के रस, जो मैथुन प्रवृत्ति का निर्धारण करते हैं, व्यक्ति की क्रियात्मक शक्ति के भी महत्वपूर्ण विधायक हैं। यदि इन्हें प्राणि विशेष में से निकाल दिया जाए तो उसका प्रक्रियात्मक स्तर सामान्यतः पाँचगुणा तक कम हो जाता है, और मैथुन-प्रवृत्ति तो बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है। किन्तु यदि, जैसा कि रिचर और हर्टमैन कहते हैं, इन अपसारित ओवरी प्राणियों में Estrone (एस्ट्रोन) रस का इंजेक्शन कर दिया जाए तो इनका प्रक्रियात्मक स्तर फिर प्रायः सामान्य हो जाता है। किन्तु जो प्राणी इस अपसारण से पूर्व ही निष्क्रिय हों, उन्हें इन रसों की कितनी भी मात्रा सामान्य स्तर पर नहीं ला सकती। गोनाड्ज़ के समान ही, जैसा कि हम अगले अध्याय में भी देखेंगे, ऐड्रेनल ग्रंथि-रस भी प्रक्रिया के निर्धारण में बहुत महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। इनका अपसारण प्रक्रिया के स्तर को ९० प्रतिशत तक घटा देता है। मसलों की क्रियाशक्ति क्योंकि ऐड्रेनल रसों पर ही आश्रित हैं, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि इस रस का अभाव शरीर पर इतना गंभीर प्रभाव छोड़े। किन्तु इन सबसे अधिक प्रभाव पिच्यूइटरी ग्रंथि के अपसारण का होता है। यदि इस ग्रंथि को हटा दिया जाए या इसका हाइपोथालमस (मस्तिष्क का एक अग्रिम भाग) के साथ संबंध विच्छिन्न कर दिया जाए तो क्रियाशीलता बहुत अधिक घट जाती है। इसका कारण यह भी है कि पिच्यूइटरी ग्रंथि के रस अन्य ग्रंथियों के रस-स्राव को भी नियंत्रित करते हैं और इस प्रकार शरीर की सामान्य रासायनिक प्रक्रिया का निर्धारण करने में सर्वाधिक प्रभावशाली बनते हैं। पिच्यूइटरी के अपसारण के पश्चात ऐड्रेनल, थाइराइड और गोनाड्ज़ आकार में लघु और

क्षीण हो जाते हैं, और ये ग्रंथियाँ, जैसा कि हम आगे देखेंगे, शारीरिक प्रक्रिया और प्रवृत्ति के निर्धारण में बहुत अधिक महत्वपूर्ण भाग लेती हैं।

इस ग्रंथि के अपसारण का प्रभाव केवल प्रक्रियात्मक-स्तर को बदलने के रूप में ही नहीं, प्रत्युत् प्रक्रिया के आवृत्ति-चक्र (Cycle) को भी बदलने में, विशेषतः मादा में, देखा जाता है। जहाँ पिच्यूइटरी ग्रंथि से युक्त चूहा चार से पाँच दिन का मैथुन-प्रक्रिया-चक्र प्रदर्शित करता है, वहाँ अपसारित-पिच्यूइटरी-ग्रंथि वाले चूहे में १४ से १८ दिन का क्रिया-चक्र देखा जाता है।

इसी प्रकार मस्तिष्क-तंतु भी प्रक्रिया के निर्धारण में बहुत अधिक प्रभावशाली देखे जाते हैं। वास्तव में शारीरिक प्रक्रिया का कारण किसी एक ही यंत्र को नहीं कहा जा सकता। यह ठीक है कि Biochemicles (रासायनिक जीवन रस) हमारी प्रक्रिया का निर्धारण करते हैं, किन्तु, जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, ये अपने आप को स्नायु-तंतुवाय के माध्यम से ही क्रियान्वित करते हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि इस तंतुवाय को शरीर की आन्तरिक परिस्थितियाँ बहुत अधिक प्रभावित करती हैं। मस्तिष्क के स्नायु-तंतुओं के विशेष भागों को काट देने पर तो शरीर की प्रक्रियात्मक-योजना इस प्रकार बिखर जाती है कि प्राणी—विशेष या तो असंबद्ध प्रक्रियाओं की दौड़ में मर ही जाता है या फिर किसी भी प्रक्रिया को उचित और सुनियोजित ढंग से करने के सर्वथा अयोग्य हो जाता है। बिल्लियों पर प्रयोग करते हुए मस्तिष्क के श्वेत धमनि-गुच्छ में एक घाव किया गया, जिससे कि उनकी सम्पूर्ण प्रक्रिया की प्रकृति में ही एक गुणात्मक अन्तर लक्षित किया गया। (Bailey Davis)। ये बिल्लियाँ निरन्तर सीधी चली जातीं, जब तक कि कोई वस्तु रास्ते में आकर उन्हें गिरा नहीं देती थी, किन्तु तब भी ये ठहरती नहीं थीं, प्रत्युत् किसी दूसरी दिशा की ओर अग्रसर हो जाती थीं। यह व्यवहार इन दुर्भाग्यशाली प्राणियों में तब तक जारी रहता है जब तक ये पूर्ण रूप से निश्शक्त होकर गिर नहीं पड़ते। इसी प्रकार मटलर ने भी बिल्ली पर प्रयोग करते हुए Corpus striatum (मस्तिष्क में स्नायु-गुच्छों के विशेष कोषों) पर घाव किये और इस प्रकार आहत-प्राणियों में पूर्ण रूप से अव्यवस्थित तथा अत्यन्त प्रवृद्ध प्रक्रिया को परिणाम में प्राप्त किया। Muttler सुझाव देता है कि Striatum सामान्यतः प्रक्रियात्मक धमनियों के निम्न केन्द्रों पर नियंत्रण करता है और जब इसे हटा दिया जाता है तो ये स्नायु-केन्द्र स्वतन्त्र हो जाते हैं। रिचर और हाइज़ ने बन्दर के स्ट्रेटम (अग्रिम मस्तिष्क-तंतुओं के सैल) और Cortex (मस्तिष्क के अग्र भाग में एक विभाग) के कुछ भाग को घायल करके देखा कि उसमें क्रियाशीलता

बहुत अव्यवस्थित और प्रवृद्ध हो गई थी जब कि Beach ने चूहे में स्ट्रेटम को अपसारित करके कुछ भी विशेष अन्तर नहीं पाया। पाँच चूहों पर एक-से प्रयोग करके उसने पाया कि केवल एक में दौड़ने की क्रिया बढ़ी थी, दो में सामान्य से अपेक्षाकृत कम हो गई और दो में कोई भी परिवर्त्तन लक्षित नहीं हुआ। इसी प्रकार का एक उदाहरण हम पिछले अध्याय में भी दे आए हैं कि कैसे Frontal poles का अपसारण चूहे में असम्बद्ध रूप से इधर-उधर भागने की प्रवृत्ति को इतना अधिक बढ़ा देता है कि वह थककर मर जाता है।

इसका क्या कारण है, यह अभी तक निश्चित नहीं हो पाया, किन्तु संभव है कि ये अपसारित-प्रदेश गोनाड्ज़ तथा अन्य ग्रंथियों के प्रवाह को रोकते हों और इस प्रकार प्रक्रिया को व्यवस्थित रखते हों और इनके अपसारण से इन ग्रंथियों का रस-प्रवाह बढ़ कर प्रक्रिया को असंबद्ध रूप से बढ़ा देता हो। (T. Morgan) जैसा कि हम पीछे भी देख आए हैं, गोनाड्ज़ का या अन्य ग्रंथियों का अपसारण प्रक्रिया को कम कर देता है। मस्तिष्क प्रदेश के विभिन्न प्रदेशों से रहित किये हुए प्राणियों में Ovary ग्रंथि का बढ़ जाना इसकी पुष्टि करता है। (Morgan) किन्तु हमने पीछे यह भी देखा था कि यदि इन प्राणि-विशेषों को अधिक हॉर्मन भी पिला दिये जाएँ तो भी इनकी प्रक्रिया-शक्ति में गंभीर अन्तर देखा जाता है, तब भी, यदि इनकी ग्रंथियाँ अपसारित कर दी गई हों। इससे यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि मस्तिष्क के ये विभिन्न प्रदेश स्नायु तंतुवाय के विभिन्न यंत्रों में सन्तुलन स्थापित करते हैं, सम्भव है ग्रंथियों के रस-प्रवाह में भी ये प्रभावशाली होते हों। किन्तु, जैसा कि Beach के भी बाद के अनुसंधान प्रमाणित करते हैं, यह आवश्यक नहीं है कि मस्तिष्क तंतुओं के ये प्रदेश अपसारित होने पर प्रक्रियाओं को बढ़ाते ही हों, कभी-कभी ये इन्हें कम भी कर देते हैं, यद्यपि अग्रिम भाग अपसारित होने पर प्रायः प्रक्रिया को बढ़ावा ही देते हैं। फिर सभी प्राणियों में भी इस अपसारण का प्रभाव एक-सा ही नहीं देखा जाता। इससे स्पष्ट है कि अभी इस ओर और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि क्यों सभी प्राणियों में एक ही प्रदेश का अपसारण एक ही परिणाम प्रदर्शित नहीं करता।

इस विषय में सम्भवतः किसी को भी संदेह नहीं होगा कि इन प्रक्रिया-यन्त्रों के बिना हम न तो कुछ ज्ञान या अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं और न क्रियाशील ही हो सकते हैं। Emotional (इमोश्नल) व्यवहार की शरीर-वैज्ञानिक व्याख्याएँ यद्यपि अनेक हैं, और यद्यपि इस विषय में किसी निश्चित

सिद्धान्त पर नहीं पहुँचा जा सका, तो भी इन सभी व्याख्याओं से इस विषय में कोई संदेह नहीं रह जाता कि हमारा यह व्यवहार हमारे स्नायु-तंतुओं और रासायनिक ग्रंथि-रसों की ही प्रक्रिया है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी विभिन्न रुचियां और विभिन्न प्रवृत्तियाँ रखते हैं, किन्तु यह सब मस्तिष्क की स्नायविक योजना और ग्रंथि-रसों के आनुपातिक विभाजन का ही सुपरिणाम है। यदि इस योजना को विघटित कर दिया जाए, या इस अनुपात को बिगाड़ दिया जाए तो प्राणी की मानसिक योजना भी बिखर जाएगी—उसकी बाह्य उकसाहट की प्रतिक्रिया अव्यवस्थित और अनर्गल हो जाएगी। इस ओर जेम्ज़ और लैंग्ज़ की व्याख्या सर्वाधिक मान्य समझी जाती ह। उनके अनुसार आवेगात्मक प्रतिक्रिया (Response) हमारे रक्तबर्त्तनों में और विभिन्न ग्रंथियों में तथा विशेष मस्तिष्क केन्द्रों में एक गति ला देती है, और यह गति केन्द्रापसारिणी धमनियों के द्वारा उकसाहट की प्रतिक्रिया के लिए प्राणी को प्रेरित कर देती हैं। ये प्रतिक्रियाएं हमारे आन्तरिक संग्राहकों (Visceral Receptors) को उकसा देती हैं, और ये उकसाहट को केन्द्रापसारिणी स्नायुओं में स्थानान्तरित कर देते हैं, और इस प्रकार आवेग Emotion का अनुभव अथवा ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस तरह जेम्ज़ के अनुसार, हम क्योंकि डरते हैं, इसलिए नहीं भागते, बल्कि भागते हैं, इसलिए डरते हैं। इस सिद्धांत की विशेषता इसमें है कि इसके अनुसार आवेगात्मक अनुभूति सोमैस्थैटिक (शरीर की वाह्य परिवृत्ति संबन्धी) धमनियों और मसलज़ के खिंचाव द्वारा ग्रंथियों और गम्भीर मस्तिष्क तंतुओं आदि के केन्द्रों से आती है, न कि वाह्य उकसाहट के केन्द्रानुसारी यन्त्रों के द्वारा मस्तिष्क-केन्द्र तक आने और वहाँ रुके बिना केन्द्रापसारी तंतुओं के द्वारा प्रक्रिया में अनूदित होने के रूप में। जेम्ज़ के अनुसार "शारीरिक परिवर्तन एकदम उकसाहट तत्वों की अनुभूति से अनुधावित होते हैं, इसलिए हमारी यह अनुभूति शारीरिक परिवर्त्तन की अनुभूति है न कि वाह्य उकसाहट की"—इस सिद्धान्त को आज भी एक सीमा तक सर्वमान्य समझा जाता है, यद्यपि अनेक वैज्ञानिक इसे अव्याप्ति दोष से दूषित मानते हैं। इनमें Sherrington का स्थान सर्व प्रमुख है। उसने कुत्ते पर अपने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि आवेगानुभूति वह मानसिक प्रक्रिया है जो कि प्रत्यक्ष रूप से बाह्य उकसाहट से सम्बद्ध है। उसने गर्दन के निचले भाग से स्पाइनल कॉर्ड को घायल कर दिया, Vitscera (आँतों के गुच्छ) को भी मस्तिष्क से तथा अन्य सभी सम्पर्कों से पृथक कर दिया। इस पर भी, उसके अनुसार कुत्ते में आवेग की अभिव्यक्ति उतनी ही सजीव थी

जितनी सामान्य कुत्तों में देखी जाती है। उसके अनुसार, इसलिए विस्सेरल परिवर्तनों को आवेग का प्रत्यक्ष कारण नहीं कहा जा सकता, प्रत्युत् यह कि ये आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन मस्तिष्क तन्तुओं से संबद्ध इस अनुभूति के प्रवर्धन में सहायक भर हो सकते हैं। (Cannon) के प्रयोग ऐड्रेनिन रसों के प्रभाव को इमोशनल अनुभूति में और भी अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध करते हैं। उसके अनुसार यदि ऐड्रेनल ग्रंथि रसों का इंजेक्शन कर दिया जाए तो उस व्यक्ति-विशेष में क्रोध और भय की शारीरिक अभिव्यक्ति सहज ही देखी जा सकती है। हम पिछले अध्याय में विभिन्न ग्रंथि रसों के शरीर पर प्रभाव को देख ही आए हैं कि किस प्रकार ये ग्रंथि-रस और विशेषतः ऐड्रेनल ग्रंथि-रस डर, क्रोध जैसी प्रवृत्तियों को बहुत अधिक बढ़ा देते हैं। इससे एक सीमा तक तो यह कहा जा ही सकता है कि जेम्ज़ का सिद्धान्त ठीक है यद्यपि Sherring-ton) के प्रश्न का उत्तर यह सिद्धान्त नहीं दे सकता। हमारे विचार में (यद्यपि हम इस अवस्था में नहीं हैं कि अपने विचार को महत्त्व दे सकें) सामान्यतः जेम्ज़ का सिद्धान्त निरपवाद रूप से ठीक कहा जा सकता है, किन्तु क्योंकि प्राणी के पूर्वानुभव भी उसके व्यवहार में महत्त्व रखते हैं, इसलिए यह भी कहना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि इमोश्नल अनुभूति के जागरण में मात्र अन्तः शारीरिक परिवर्तन को ही प्राथमिक नहीं कहा जा सकता। इसे यदि कुछ इस प्रकार कहा जाए कि इमोशन या आवेग केन्द्रानुगामिनी धमनियों से मस्तिष्क में पहुँचकर एक ओर बिना मस्तिष्क के व्यवधान के ही केन्द्रापसारिणी धमनियों में पहुँच कर (प्रतिक्रियात्मक व्यवहार Reflex-action) उत्पन्न कर देता है, वहाँ उसी लहर से प्रेरित मस्तिष्क तंतुओं के प्रदेश व्यक्ति को उस आवेग का ज्ञान भी करा देते हैं, तो ठीक होगा। और भी ठीक शब्दों में, यदि कहें तो कहना होगा कि यह आवेग एक साथ ही शरीर के विभिन्न केन्द्रों को प्रेरित कर देता है, इसके लिए न तो यही कहा जा सकता है कि क्योंकि हम दौड़ते हैं इसलिए डरते हैं और न यही कि क्योंकि डरते हैं, इसलिए दौड़ते हैं, और न यह कि यह आवेग हमारे भीतरी प्रक्रिया-केन्द्रों की अशान्ति की चेतना है। सामान्यतः भय और क्रोध में शरीर की बाह्य अभिव्यक्तियाँ और उदरस्थ स्नायु प्रक्रियाएँ एक ही सी देखी जा सकती हैं, ऐड्रेनल ग्रंथि-रसों के इंजेक्शन के प्रभाव में भी क्रोध और भय दोनों की अभिव्यक्तियाँ एक ही सी देखी जाती हैं। इससे कहा जा सकता है कि शरीरिक अभिव्यक्ति एक होने पर भी दो भिन्न आवेगों का होना एक स्वतन्त्र मानसिक अस्तित्व की सम्भावना को बढ़ा देता है। किन्तु यह युक्ति वास्तव में अनुपयुक्त है, क्योंकि इन दोनों आवेगों की शारीरिक

अभिव्यक्तियों में अनेक असमानताएँ भी देखी जा सकती हैं। तो भी Sherrington की युक्ति का उत्तर जेम्ज़ का सिद्धान्त नहीं दे सकता, यह स्पष्ट ही है।

यद्यपि हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने की स्थिति में नहीं हैं तो भी हम आवेगात्मक व्यवहार में किसी स्वतंत्र मानसिक प्रक्रिया के पक्ष में अपना मत देना नहीं चाहते। इसमें भी हमारे स्नायुतंतुओं और विशेषतः मस्तिष्क के पिछले और निचले भाग बहुत अधिक योग देते हैं। यदि मस्तिष्क-तंतुओं को अपसारित भी कर दिया जाय तो भी प्राणी कुछ सामान्य आवेग अनुभव करते हुए देखे जा सकते हैं। जैसे स्पाइनल पशु (जिनका सम्पूर्ण मस्तिष्क काट दिया गया है) चुभन इत्यादि की प्रतिक्रिया करतें हैं, किन्तु क्रोध भय इत्यादि के लिए मस्तिष्क-तंतु आवश्यक हैं।

कभी यह विवाद का विषय था कि मस्तिष्क के मध्य भाग में भी कहीं आवेग केन्द्र हैं या नहीं? किन्तु कैल्लर ने अपने प्रयोगों में मध्य मष्तिष्क को अपसारित करके भी बिल्ली में क्रोधात्मक प्रक्रिया प्रदर्शित की है। पर बहुत से विद्वानों का विचार है कि Hypothalamus (मस्तिक का पृष्ठ-भाग) के ठीक होने पर ही क्रोध की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप में प्राप्त की जा सकती है। इस विषय में इनका कथन है कि हाइपोथालमस के अपसारित कर देने पर भी यद्यपि क्रोधाभिव्यक्ति के विभिन्न पहलू हम प्राणी में प्राप्त कर सकते हैं, जैसे गुर्राना, पूंछ पटकना, जबड़े खोलना इत्यादि, किन्तु ये पूर्ण और सुश्रृंखलित अभिव्यक्तियाँ न हो कर विश्रृंखलित और खण्ड अभिव्यक्तियाँ हैं। मस्तिष्क के विभिन्न भागों में विभिन्न विद्वानों ने घाव करके कुत्ते बिल्ली इत्यादि के व्यवहारों का अध्ययन किया है। इनसे अनेक आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त किये जा सके हैं। मस्तिष्क के अग्रिम भाग के अपसारण के पश्चात् देखा गया कि क्रोध पर नियंत्रण या रुकाव बहुत कम हो गया, अब अपसारित मस्तिष्काग्र प्राणी को थोड़ी सी उकसाहट से ही इतना क्रोधाभिभूत किया जा सकता था कि वह थक कर ही चैन लेता। इससे यह अनुमान करने के लिए कि अग्रिम-मस्तिष्क-प्रबंध प्रक्रिया-क्षेत्रों पर नियंत्रण का कार्य करता है, हमारे पास काफी ठोस प्रमाण हैं। इसके विपरीत मध्य भाग के प्रदेश क्रोध की उकसाहट का उदात्तीकरण और संयोजन करते हैं। यदि इन प्रदेशों को किसी प्रकार बिजली की लहरों से उकसा दिया जाय तो (Unesthatized) बिल्ली भी क्रोध के व्यवहार के पूर्ण प्रक्रिया खंडों की अखंडता का प्रदर्शन करती है। इसी प्रकार अग्रिम मस्तिष्क रहित बिल्ली भी

यद्यपि क्रोध की अखंड और प्रवृद्ध अभिव्यक्ति करती है किन्तु आक्रमण की दिशा का उसे ज्ञान नहीं रहता। इतना ही नहीं, अपमारित कोर्टैक्स बिल्ली यह भी नहीं जान सकती कि उसको तंग करने वाली वस्तु किस ओर और कौनसी है। जैसे, यदि कोई उसकी पूंछ को छेड़ता है तो सम्भव है बिल्ली सामने की ओर ही या किसी अन्य ओर आक्रमण करे।

इस प्रकार हमने देखा कि कैसे मौलिक प्रवृत्तियों और सामान्य व्यवहारों तथा प्रतिक्रियाओं के लिये जीवन ने शरीर-यंत्रों का सुयोजनापूर्ण संकलन किया है। किन्तु प्राणी का व्यवहार कहाँ तक वाह्य उकसाहट पर निर्भर है और कहाँ तक आन्तरिक आवश्यकताओं से प्रेरित, दूसरे शब्दों में कहाँ तक यांत्रिक है और कहाँ तक सोद्देश्य—यह एकदम विवाद का विषय है, यद्यपि बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। Behaviorist (प्राणी-व्यवहार का अध्ययन करने वाले) जहाँ वाह्य उकसाहट पर बल देते हैं वहाँ मनोवैज्ञानिक उसकी आन्तरिक आवश्यकताओं-मानसिक अभावानुभूतियों-की प्रेरणा को प्राथमिक मानते हैं। इनके अतिरिक्त एक और वर्ग है जो मनुष्य की मनोवैज्ञानिकता को साक्षी रखकर पहले दोनों से पृथक एक अपदार्थिक तत्व (मन) की सम्भावना पर बल देता है।

यह एक बहुत पुराना विवाद है, जो अब भी उसी प्रकार अनिर्णायिक अवस्था में है। यह कहना बहुत कठिन है कि व्यवहार को आन्तरिक (Spontaneous) कहा जाए या बाह्य उकसाहट (External Stimuli) का परिणाम मात्र ? प्राणी-व्यवहार का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिए सबसे बड़ी कठिनाई अध्ययन के प्रारम्भ के साथ ही उत्पन्न हो जाती है, क्योंकि न केवल प्राणियों की विभिन्न जातियों के व्यवहार की प्रकृति में ही बहुत बड़ा अन्तर है, प्रत्युत् उनकी ज्ञानेंद्रियों की शक्ति और प्रकृति में भी बहुत अधिक अन्तर पाए जाते हैं, इसलिए कौन-सा प्राणी परिवृत्ति के किस गुण के प्रति प्रतिक्रिया करता है, यह जानना अत्यन्त कठिन हो जाता है। तो भी वैज्ञानिकों ने इन परीक्षणों के अनेक उपायों का आविष्कार किया है; किन्तु परिवृत्ति की जिस वस्तु को वे पसंद या नापसंद करते हैं—वह क्यों, यह अभी तक निश्चित रूप से कह सकना सम्भव नहीं हो सका है। इसका ज्ञान या तो सम अनुभूति से ही हो सकता है, या फिर (संभवतः) समृद्ध शरीर—वैज्ञानिक ज्ञान से अनुमान किया जा सकता है। जहाँ तक सम अनुभूति का प्रश्न है, जब तक हमारे वही ज्ञानेंद्रियाँ और शरीर की वही स्थिति नहीं है, अथवा, जब तक हमारा ठीक वही इतिहास और वर्तमान नहीं है, जिसका

हम अध्ययन कर रहे हैं, तब तक यह संभव ही नहीं, और शरीर-विज्ञान अभी तक इस स्थिति में नहीं है कि वह हमें किसी सर्वमान्य निश्चय पर पहुँचने में समर्थ कर सके। प्राणी-व्यवहार के सावधान निरीक्षण से सहज ही यह जाना जा सकता है कि किन्हीं भी दो जातियों की ज्ञानेन्द्रियाँ समान नहीं हैं, फिर अन्तर-शरीर स्थिति की भिन्नता का तो कहना ही क्या। इसलिए इस ओर अध्ययन करने वाले के लिए प्रथम आवश्यकता इस तथ्य को समझने की है, क्यों कि इसे जाने बिना अध्ययन का प्रारम्भ ही गलत आधार पर होगा।

Vonfrisct के अनुसार सबसे अधिक अन्तर रासायनिक ज्ञानेन्द्रियों में पाया जाता है। उसके अनुसार, मधुमक्खी शहद में मिठास के लिए जिन वस्तुओं का उपयोग करती है, उनमें अधिकांश यद्यपि मनुष्य के लिए भी मीठी ही हैं, किन्तु कुछ वस्तुएँ उनमें ऐसी भी हैं जिनका मनुष्य की जिह्वा के लिए कोई स्वाद नहीं होता, दूसरी ओर मधुमक्खियाँ ऐसे कुछ रसों को विल्कुल ही ग्रहण नहीं करतीं जो मनुष्य के लिए मीठे हैं। इतना ही नहीं, विभिन्न जातियों की आँखों में भी बहुत अन्तर पाया जाता है—Papaver phoeas फूल, जो मनुष्य को गहरे लाल रंग के दिखाई पड़ते हैं, वही मधु-मक्खी को गहरे नीले रंग के प्रतीत होते हैं। (यह भूत वैज्ञानिक के लिए भी मनोरंजक अध्ययन का विषय है)।

इसी प्रकार दिशा और देश ज्ञान की शक्ति भी पशुओं में विभिन्न स्तरों पर पाई जाती है। कुछ प्राणी जहाँ स्पर्श से दिशा-ज्ञान प्राप्त करते हैं, वहाँ दूसरे घ्राण से, जब कि सामान्यतः आँख को इसका सब से अच्छा साधन समझा जाता है, या कम से कम मनुष्य का दिशा ज्ञान आँख पर आश्रित है।

Waterbug या Notonecta glanc, दिशाज्ञान स्पर्शेन्द्रिय से प्राप्त करता है। वह हल्की से हल्की लहरों से भी अपने शिकार की दिशा और देश का निश्चय कर लेता है। कभी-कभी तो कुछ प्राणी स्पर्श और रासायनिक इंद्रियों की सहायता से आँख के बिना भी देश की तीनों दिशाओं या विस्तारों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। Marine मछली गर्दन के निचले भाग में लटकती हुई तीन रस्सियों में स्वाद ग्रहण करने की शक्ति रखती है। मछली इन्हें यथेच्छया किसी ओर भी फैला सकती है और इस प्रकार आस-पास के जल में भोजन की विद्यमानता का ज्ञान प्राप्त कर सकती है (Tinbergen)।

कृमियों में भी चक्षु-इन्द्रिय के स्थान पर घ्राण इन्द्रियाँ ही देश-ज्ञान का कार्य करती हैं। कृमियों के व्यवहार का सूक्ष्म अध्ययन करने पर हम निश्चित

रूप से जान सकते हैं कि अधिकांश क्रमियों में घ्राण-शक्ति अत्यधिक विकसित होती है। चींटियों की प्रायः सभी जातियाँ अंधी या अर्ध-अंधी होती हैं। जिनके आंखें होती भी हैं, वे भी आंखों के बिना उसी प्रकार कार्य करती हैं जैसे आंखों वाली चींटियाँ, जब कि घ्राण-शक्ति से रहित कर देने पर उनका कार्य-संचालन विश्रृंखलित हो जाता है। घ्राणेन्द्रिय से रहित कर देने पर वे घोंसले के पास रखी जाने पर भी उसको नहीं जान पातीं; इतना ही नहीं, वे खा-पी भी नहीं सकतीं और न अपने शत्रु-मित्रों को ही पहचान सकती हैं। यदि उनके घोंसले से उनके बच्चे भी उनके सम्मुख लाकर रख दिए जाएं तो भी वे उन्हें नहीं पहचानतीं। इससे स्पष्ट है कि चींटियों की घ्राणेन्द्रिय ही एक मात्र विकसित इन्द्रिय है, क्योंकि दास चींटियों के लिए घोंसले के बच्चों से अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु और कुछ नहीं हो सकती।

इन सब प्रक्रियाओं के लिए चींटियाँ घ्राण-शक्ति पर ही निर्भर करती हैं। जैसा कि हम अगले अध्यायों में भी देखेंगे, चींटियाँ दूर-दूर तक बिना भटके चली जाती हैं और पूर्ण विश्रब्ध भाव से अपने घोंसले की ओर लौट आती हैं, इसका श्रेय उनकी घ्राणशक्ति को ही दिया जा सकता है, क्योंकि चक्षुरिन्द्रिय से तो वह घोंसले के पास पड़ी भी उसे नहीं जान पातीं। उनकी यह इन्द्रिय उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी मनुष्य के लिए चक्षु-श्रोत्र और घ्राण इन्द्रियाँ, क्योंकि चींटी इसी से अपने घोंसले की सदस्याओं से दूसरों को पृथक् करती हैं, इसीसे अपने शत्रु और मित्र का ज्ञान करती हैं, इसी पर उनकी स्मृति–शक्ति आश्रित है और यही उनके दिशा ज्ञान की साधन है (Cheesman)।

इसी प्रकार अन्य क्रमियों में चक्षु-इन्द्रिय प्रधान या एकमात्र इन्द्रिय हैं। किन्तु सबसे विचित्र इन्द्रिय है कुछ क्रमियों की श्रोत्र इन्द्रिय। अनेक क्रमि, विशेषतः रोमिल चर्म वाले क्रमि, इन रोमों से शब्द-ज्ञान प्राप्त करते हैं। इनके ये रोम चिटिन chitin (एक पदार्थ जो विशेष क्रमियों के शरीर के सख्त भाग के निर्माण में प्रयुक्त होता है) में से होकर विशेष धमनियों से जुड़े रहते हैं, जिससे कि जो भी कुछ उन पर प्रभाव डालता है, इन धमनियों के द्वारा धमनि-केन्द्र तक पहुँचा दिया जाता है, जो कि क्रमियों का मस्तिष्क है। इससे कोई भी शब्द, जो इनमें लहरों से प्रभाव डाल सके, इन्हें ज्ञात हो जाता है। फिर भी यह कह सकना कठिन है कि इन रोगों के द्वारा उन्हें शब्द-ज्ञान ज्ञान के रूप में होता है या स्पर्श-ज्ञान के रूप में अथवा किसी अन्य रूप में? एक वैज्ञानिक का कथन है कि कुछ विशेष प्रकार की संगीत ध्वनि इन रोमों में लहर उत्पन्न कर देती है। उसने एक विशेष प्रकार

से एसी संगीत-ध्वनि करके, जो उस जाति की मादा करती है, पाया कि नर के वे रोम उन लहरों को ग्रहण कर रहे थे। जब मादा नर के पर्याप्त समीप से शब्द करती है तो वह इन्हें इन रोमों से ग्रहण करता देखा जा सकता है। ग्रास-होप्पर्ज़ की श्रोत्र-इन्द्रिय उसकी टाँग में होती है। इसी प्रकार विभिन्न कृमि जातियों में यह इन्द्रिय विभिन्न स्थानों पर देखी जाती है।

ये कृमि और अन्य प्राणी भी सामान्यतः इन इन्द्रियों का प्रयोग यंत्रों के समान करते हैं, जैसा कि हम पिछले अध्याय में अनेक उदाहरणों से दिखा आए हैं। किन्तु क्यों इन उदाहरणों को एक मनोवैज्ञानिक योजना का परिणाम नहीं कहा जा सकता, यदि मन को शारीरिक स्थिति की अन्तर-निहित प्रक्रिया का यंत्र समझा जाए तो? जैसा कि हमने पीछे अन्तर-संग्राहकों और अन्तर्-प्रेरणा यंत्रों के विषय में बताते हुए देखा था—हमारी प्रक्रिया योजना में उनका बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ तक बाह्य संग्राहकों का संबंध है, उनके लिए भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे हमारी आन्तरिक आवश्यकताओं से निर्धारित नहीं हैं। मधुमक्खी अपने शहद की मिठास के लिए ऐसे पदार्थों का संग्रह करती है जो मनुष्य के लिए कोई स्वाद नहीं रखते, उन पदार्थों को देखते ही उसमें संग्रह की यांत्रिक आवश्यकता-अनुभूति उत्पन्न होगी—यह निर्विवाद है, किन्तु इसका कारण उस पदार्थ और बाह्य संग्राहकों के यांत्रिक संबंध को ही एकदम कैसे कहा जा सकता है? उस स्वाद के पीछे निरन्तर आन्तरिक प्रेरणा और आवश्यकता से प्रेरित शारीरिक विकास और एक जर्म से दूसरे जर्म में निहित होती हुई प्रवृत्ति को क्यों नहीं कहा जा सकता? यह नहीं कहा जा सकता कि क्योंकि यह एक प्रक्रिया विशेष है जो कि व्यक्ति या जाति की आवश्यकता और बाह्य पदार्थ के गुण की सामयिकता की समन्वित योजना का परिणाम है? यह हम अगले अध्याय में विस्तार से देखेंगे। नर थ्रीस्पाइंड स्टिक्कल बैक का रंग सामान्यतः काला होता है, किन्तु वसन्त-ऋतु में उसका रंग लाल हो जाता है। यह उसकी मैथुन की ऋतु है। इस ऋतु की समाप्ति के पश्चात् वह अपने रंग को फिर (कहा जाएगा) बदल लेता है। इसका उद्देश्य स्पष्ट रूप से प्रबल शत्रुओं से आत्म रक्षा ही होना चाहिए, जैसा कि बहुत से वैज्ञानिक कहेंगे। किन्तु हम इससे सहमत नहीं हैं, जैसा कि हमारे हार्मन संबंधी निबंध से भी स्पष्ट है। टिन्बर्जन भी, जो कि बहुत सावधानी से अपना निर्णय देता है, इसे मानसिक या वासनात्मक (Spontaneous) व्यवहार के अन्तर्गत रखता है। मैं भी इसे बाह्य उकसाहट (External Stimuli) का परिणाम नहीं कहता, किन्तु वासनात्मक-व्यवहार से जो अर्थ प्रायः समझा जाता है, हम उससे

सहमत नहीं है । टिंबर्जन तथा हैव्ब या रसल इत्यादि इस प्रकार के व्यवहार में एक प्रकार की चतुराई (Trick) और प्रयास को स्वीकार करते हैं, वे इसे एक ऐसी यांत्रिक प्रक्रिया नहीं मानते जो प्राणी-विशेष में स्वतः ही उसी प्रकार यंत्रवत् क्रियान्वित हो जाती है, जैसे वाह्य उकसाहट उसे यंत्रवत किसी निश्चित प्रक्रिया में नियोजित कर देती है । यह इससे भी स्पष्ट है कि यदि नर थ्रीस्पाईड को अप्राकृतिक रूप से भी वसन्त का तापमान और दिनमान दिया जाए तो भी उसका रंग लाल और व्यवहार मैथुन-वासनायुक्त हो उठता है । इसका कारण केवल उनके उन हार्मन रसों का प्रवाह मात्र है जो एक ही साथ बिलकुल यांत्रिक रूप से उनकी मैथुन वासना और लाल रंग को उत्पन्न कर देता है । इस प्रकार बाह्य या आन्तरिक उकसाहट में केवल इतना ही अन्तर है कि आन्तरिक उकसाहट केवल रासायनिक या ग्रंथि-रसों का परिवृत्ति निरपेक्ष प्रभाव होता है जब कि बाह्य उकसाहट अन्तर में विभिन्न परिवर्तनों के रूप में अनूदित होकर प्रक्रिया में क्रियान्वित होती हैं । किन्तु अपनी उत्पत्ति में दोनों एकदम यांत्रिक हैं ।

सच पूछा जाए तो ये दोनों ही पहलू किसी भी प्रक्रिया की अभिव्यक्ति और विकास के लिए आवश्यक हैं । आन्तरिक शारीरिक आवश्यकताएं, जो कि हॉर्मन रस, आन्तरिक ज्ञानेन्द्रियों (Viscera and Blood vessels) और स्नायुतंतुवाय पर निर्भर हैं, विभिन्न स्तरों की हो सकती हैं । ये यद्यपि एकदम यांत्रिक हैं किन्तु इन्हें बाह्य उकसाहट मात्र कहना अनुपयुक्त होगा । जैसे विशेष तापमान और प्रकाश भिन्न ऋतु में भी मैथुन आकांक्षा और अन्य पूरक प्रक्रियाओं और अभिव्यक्तियों को उत्पन्न कर सकते हैं, यह अकाँक्षा पुनः प्राणी में दौड़ने, लड़ने और मैथुन साथी खोजने की प्रक्रियाओं को उत्पन्न कर देती हैं, किन्तु इस आकांक्षा को आकांक्षा-संतुष्टि की वास्तविक प्रक्रिया से भिन्न ही कहा जाएगा । इसका प्रमाण यह है कि जब तक इस प्रकार की आन्तरिक आकाँक्षा से अभिभूत प्राणी को इसकी सन्तुष्टि का साधन-विषय प्राप्त नहीं हो जाता तब तक उसकी इस प्रक्रिया को क्रियान्वित होते नहीं देखा जा सकता, दूसरे यह आकाँक्षा इस दूसरी प्रक्रिया की विभिन्न अभिव्यक्तियों (जैसे लड़ना, मैथुन करना, घोंसला बनाना, इत्यादि) के उसी रूप में क्रियान्वित होती देखी जा सकती है जिस अभिव्यक्ति का साधन सामने प्राप्त हो सके । इन दो प्रक्रियाओं को क्रमशः वासनात्मक प्रक्रिया और आत्मव्ययी प्रक्रिया* कहा जा सकता है । टिन्बर्जन के अनुसार पशु के अधिकाँश व्यवहारों में ये दोनों पहलू कारण होते

*Appetitive Behaviour or and Consumatory Act

हैं। वह कहता है कि पशु के सामान्य व्यवहार लड़ना, काटना, मैथुन करना इत्यादि भी, जिनमें निम्नतम शारीरिक केन्द्रों की धमनियों की क्रिया ही अपेक्षित होती है, अपनी उत्पत्ति के लिए उन गम्भीर, उलझनपूर्ण और सुदूरगामिनी प्रक्रियाओं के अन्तिम छोर-मात्र हैं जो अपनी सन्तुष्टि या संप्राप्ति के लिए प्राणी को वाध्य कर देती हैं। लड़ना, प्रहार करना और मैथुन करना इत्यादि वास्तव में आत्म-विश्रान्ति या व्यय (Self exhaustion) मात्रके लिए हैं। इन प्रक्रियाओं के ये केन्द्र स्वयं ही, प्रक्रिया को आन्तरिक आवश्यकता से स्वतन्त्र क्रियान्वित करने में समर्थ नहीं हो सकते। वे अपनी प्रेरणा आन्तरिक आवश्यकताओं (Appetites) के केन्द्रों से ही ग्रहण कर सकते हैं। वास्तव में प्राणी के 'आवश्यकता पूर्ति के लिए किये गए हुए 'सोद्देश्य प्रयास' को समझने के लिए आन्तरिक आकाँक्षा या वासना और आत्मव्ययी प्रक्रिया के सम्बन्ध को ममझना आवश्यक है। यह प्रायः ही कहा जाता है कि पशु अपनी आकाँक्षा-पूर्ति के लिए संघर्ष करते हैं—वे अपनी आकांक्षा का ज्ञान रखते हैं। लोरेंज के अनुसार, आकाँक्षा पूर्ति के लिए यह प्रयास अन्तर् वासनाओं (Appetites) का ही कार्य है न कि (Consummatory act) आत्मव्ययी प्रक्रिया का, जब कि अन्तर्वासना प्रेरित व्यवहार का उद्देश्य स्वयं विषय की प्राप्ति न होकर आत्म-व्ययी प्रक्रिया ही होता है जो कि प्राणी को उपयुक्त उकसाहट (Stimuli) प्राप्त होने पर क्रियान्वित हो जाता है। इसलिए कहा जा सकता है कि भूखा पशु भोजन के लिए नहीं प्रत्युत् अपनी वासना के व्यय के लिए दौड़ता है और जब तक भोजन उसकी आत्मव्ययी प्रक्रिया को क्रियान्वित करने के लिए उपस्थित नहीं होता वह भोजन की चेतना नहीं रखता। इसी प्रकार पक्षी घोंसला किसी निहित उद्देश्य से नहीं बनाते, प्रत्युत् यह घोंसला बनाने की यांत्रिक प्रवृत्ति ही है जो विशेष परिवृत्ति में पक्षी में एक वासना के रूप में जागृत हो उठती है, और पक्षी तिनके इत्यादि सम्मुख पाते ही उसे क्रियान्वित कर देता है। घोंसला बनाते हुए उसमें न तो निर्मित होने वाली वस्तु के फल का लोभ है और न स्वयं निर्मित होने वाली वस्तु से मोह, वह केवल एक वासना की धकेल से बाध्य उसके व्यय के लिए क्रियाशील होता है। इसका अर्थ यह नहीं कि घोंसला बनाने की प्रवृत्ति उसके हॉर्मंज़ और धमनि यंत्रों की विशेष याँत्रिक स्थिति का ही परिणाम है—प्रत्युत् यह कि यह एक आवश्यकता—अनुभूति की प्रक्रियात्मक योजना है जो कि एक जर्म से दूसरे में निहित होती हुई एक याँत्रिक प्रक्रिया के रूप में विकसित हो गई है। यदि हम ऐसे पक्षियों के वच्चे प्राप्त करें जिन्हें घोंसला नहीं बनाने दिया गया और इस क्रम को कुछ सन्तानों तक चलने दें तो हम सहज ही एक दिन ऐसे पक्षी प्राप्त कर सकेंगे

जिनमें घोंसला बनाने की वासना ही उत्पन्न नहीं होगी। तब उन्हें पुनः उन्हीं परिस्थितियों में, जिनमें उन्हें घोंसला बनाने की आवश्यकता हो, रख कर देखा जा सकता है, सम्भवतः शीघ्र ही हम पुनः उनमें उस प्रवृत्ति को विकसित होते देख सकेंगे। McDougall ने कुछ चूहों पर प्रयोग करके पाया कि शिक्षित चूहों के ३४ वीं पीढ़ी के बच्चे दूसरे चूहों से उस विशेष कार्य में कहीं अधिक चतुर थे जिनका उनके पूर्वज अभ्यास करते रहे थे। प्रवृत्ति संबंधी निबंध में हम कितने ही ऐसे उदाहरण देंगे जिनमें हम देखेंगे कि किस प्रकार प्राणी सहज ही ऐसे व्यवहार करते हैं जो आश्चर्यजनक रूप से रहस्यमय प्रतीत होते हैं——जैसे चींटियों का सर्वथा दो भिन्न जातियों के बच्चे देना, जिसके लिए हम कह सकते हैं कि यह सामाजिक संगठन की प्रक्रिया ही है जो चींटी के जर्म में अन्तर्निहित होकर उक्त व्यवहार को सहज करती है। किन्तु ये केवल अटकलें हैं, क्योंकि इस सम्बन्ध में हम कभी भी कोई निश्चित प्रयोगात्मक प्रमाण नहीं दे सकते और फिर जेनेटिक्स के अध्ययन से यह सिद्ध किया जा सकता है कि ये प्रवृत्तियाँ न तो जर्म में निहित हैं और न चिन्तित हीं।

विभिन्न प्राणियों के विभिन्न व्यवहार और एक ही प्राणी के विभिन्न व्यवहार, जिन्हें हम सामान्यतः आत्म व्ययी प्रक्रिया (consummatory act) के अन्तर्गत रख सकते हैं, विभिन्न अन्तर्वासनाओं की धकेल Appetitive push के परिणाम ही कहे जा सकते हैं किन्तु यह अन्तर्वासना अपनी उत्पत्ति में इतनी यांत्रिक है और यह आत्मव्ययी प्रक्रिया अपनी अभिव्यक्तिमें इतनी स्टिरियोटाइप्ड है कि इन्हें किसी प्रकार की ऐसी मानसिक प्रक्रिया समझना, जिसका अर्थ किसी प्रकार की इच्छा हो, भारी भूल होगी। जैसा कि मर्फी कहता है "यह निर्विवाद सत्य है कि अन्तर्वासना अथवा आन्तरिक धकेल (Internal push) बहुत दूर तक शरीर के रासायनिक परिवर्तनों और अन्य अनेक बाह्य और आन्तरिक कारणों—जैसे तापमान भोजन, रासायनिक पदार्थों, हार्मोज़ इत्यादि से निर्धारित होती है। और यह भी निर्विवाद है कि प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया को उत्तेजित करने में अथवा अन्तर्वासना की अवरुद्ध शक्ति का द्वार खोलने में आत्म-व्ययी (consummatory) प्रक्रिया के विषय (External Stimuli) की आवश्यकता है।" यदि इस वासना को एक वर्तन में बंद गैस की उपमा दी जाए तो आत्मव्ययी प्रक्रिया के विषय को विस्फोटक चोट की उपमा दी जा सकती है। यदि इस वासना-प्रेरित प्राणी को उस गैस की धकेल को व्यय करने का साधन प्राप्त नहीं होता तो बहुत सम्भव है कि वह उसे सहन न कर पाकर मर जाए या फिर इसके निकास के

ऐसे साधन खोजे जो उसे थका कर निष्क्रिय बना दें—जैसे मैथुन-वासना से प्रेरित प्राणी निकास का विषय प्राप्त न करके सोने या खाने में आत्म-व्यय करने लगता है।

यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि उसकी अन्तर्वासना की अभिव्यक्ति का प्रक्रियात्मक संबंध अपने स्वाभाविक विषय से हटकर एक अन्य अस्वाभाविक विषय में स्थानान्तरित हो जाता है। यह प्रक्रिया-योजना पशु के यांत्रिक जीवन में कितनी महत्वपूर्ण है, यह हम एक उदाहरण से देखेंगे—नर थ्रीस्पाईंड—स्टिक्कल बैक दूसरे नर के लाल पेट को देखकर उस पर अनिवार्य रूप से आक्रमण करता है जैसा कि हम पीछे भी देख आए हैं, स्टिक्कलबैक का पेट मैथुन-ऋतु में लाल हो जाता है, जो चेतन चुनाव न होकर भी मैथुन का प्रतीक तो है ही। नरों का लड़ना भी मैथुन-वासना का ही एक पहलू है। इस प्रकार एक नर स्टिक्कल बैक दूसरे के लाल पेट को देख कर सहज ही 'समझ' लेता है कि यह उसका प्रतिद्वंद्वी है, इससे उसका लाल पेट वाले स्टिक्कल बैक पर आक्रमण करना स्वाभाविक ही है। किन्तु रोचक और विशेष तथ्य यहाँ यह है कि यदि नर के आगे हम एक ऐसा लाल पेट वाला स्टिक्कल बैक भी बना कर रख दें जिसकी आकृति बिल्कुल ही स्टिक्कल बैक-सी न हो, तो भी वह उस पर उतनी ही उत्कटता से आक्रमण करेगा जैसे वह वास्तव स्टिक्कल बैक ही हो, जब कि बिल्कुल ठीक आकृति के लाल रंग के बिना उपस्थित करने पर उसे संघर्ष के लिए प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। स्पष्ट है कि उसे संघर्ष के लिए केवल लाल रंग ही प्रेरित करता है, जब कि वह परिवृत्ति की दूसरी वस्तुओं के देखने में भीं उतना ही समर्थ है। लाल पेट के प्रति संघर्षोन्मुख होने का कारण बड़ी सुविधा से समझा जा सकता है, यद्यपि अन्य पहलुओं—आकृति इत्यादि—की ओर एकदम उपेक्षा-वृत्ति का कारण विवदास्पद हो सकता है। किन्तु हम इसका कारण प्रक्रियात्मक योजना को समझते हैं—सैक्सुअल-संघर्ष की प्रक्रिया थ्रीस्पाईन्ड स्टिक्कल बैक में प्रतिद्वंद्वी के लाल पेट पर इस प्रकार केन्द्रित हो गई रहती है कि उसके लिए लाल पेट-मात्र उसकी संघर्ष-वृत्ति के आह्वान का पर्याय हो उठता है—जब कि अन्य पहलू सर्वथा उपेक्षित ही रह जाते हैं। इसी प्रकार प्राणी की अन्य प्रवृत्तियों के अनुसार भी उसके लिए विश्व का प्रक्रियात्मक विषयों के रूप में निर्धारण हो गया रहता है। मादा स्टिक्कल बैक के लिए नर का वक्र नृत्य ही उसकी सैक्सुअल प्रवृत्ति के जागरण में प्रभावशाली हो सकता है अन्य कुछ नहीं। यदि कोई विद्रूप आकृति भी मादा के सम्मुख zig-zag नृत्य करने लगे तो भी वह उतनी ही उत्कटता से मैथुन के लिए उद्यत हो जाएगी जब कि बिल्कुल ठीक आकृति भी इस

नृत्य के बिना मादा की मैथुन-वासना के व्यय का विषय नहीं हो सकती। मुर्गी अपने बच्चों की करुण पुकार सुनकर एकदम भयानक रूप से आक्रमणशील हो उठती है चाहे वे बिलकुल भी दिखाई न पड़ते हों जब कि उसके सामने भूख से तड़पते उसके बच्चे किसी भी प्रक्रिया को उत्पन्न नहीं कर सकते। एक मनुष्य एक व्यक्ति को देखकर प्रायः उपहास ही करता है जब कि दूसरे के सम्मुख आते ही उसके व्यवहार में एकदम परिवर्तन आ जाता है, वह उससे केवल एक विशेष ढंग की ही बातचीत करता है। इसी प्रकार प्यार के लिए भी, वह एक विशेष व्यक्ति से प्यार करता है, उसके सौंदर्य की सराहना करता है जब कि अन्य कोई भी उससे कितना भी अधिक सुन्दर व्यक्ति उसकी स्नेह-प्रक्रिया को उत्तेजित नहीं कर सकता। ये सब व्यवहार सहज हैं और प्रक्रिया-केन्द्रीकरण के स्पष्ट प्रमाण हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि यह प्रक्रिया अपनी परिवृत्ति में स्वतन्त्र है—प्रत्युत् यह है कि यह अन्तर की माँग और प्ररिवृति की स्थिति दोनों से निर्धारित होती है। नर स्टिक्कलबैक में मैथुन-प्रवृत्ति (Searial instinct) अन्तर की माँग है जब कि संघर्ष की प्रक्रिया और उसका केन्द्रीकरण परिवृत्ति की बाधकता और उस बाधकता के रूप पर निर्भर है। स्टिक्कलबैक 'जानता' है कि केवल लाल पेट का स्टिक्कलबैक ही उसका प्रतिद्वंद्वी हो सकता है और इस प्रकार प्रतिद्वंद्विता की यह प्रक्रिया परिवृत्ति की मांग और अन्तर की प्रेरणा दोनों से ही निर्धारित होती है, किसी एक से नहीं। कहा जा सकता है कि नर स्टिक्कल बैक जिस प्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पेट का रंग काले से लाल करता है, उसी प्रवृत्ति की सहज प्रेरणा से वह यह भी जानता है कि लाल पेट युक्त का अर्थ है मादा को आकर्षित करने की उत्कण्ठा, जो कि उसकी आकांक्षा पूर्ति में बाधक है, और इस प्रकार प्रक्रिया का केन्द्रीकरण परिवृत्ति के लाल रंग से निर्धारित न हो कर उस अन्तर्-प्रेरणा से ही निर्धारित होता है जिससे यह प्रक्रिया प्रेरित होती है। इसके प्रमाण और भी कितने ही दिये जा सकते हैं जिनमें हम देखते हैं कि बाह्य विषय प्राणी की प्रक्रिया शृंखला में उसकी अन्तर्वासना से ही निर्धारित होते हैं। एक ही वस्तु एक ही प्राणी के लिए विभिन्न वासनाओं में विभन्न स्तरों की और विभिन्न गुणों की प्रक्रियाओं का विषय वनती देखी जा सकती है। (E. S. Russell) के अनुसार नर थ्रीस्पाईंड स्टिक्कल बैक अपना घोंसला तैयार करके उसके समीप पहरा देता है और जो भी वस्तु उसकी ओर आती है उसको वह दूर हटा देता है। कोई भी प्राणी यदि उस घोंसले के एक विशेष निर्धारित क्षेत्र में प्रवेश करता है तो वह उस पर भीषण आक्रमण करता है फिर चाहे वह अपरिपक्व या उपयुक्त मादा ही क्यों न हो। किन्तु कोई भी मैथुन के

लिए उपयुक्त मादा, जो विशेष प्रकार के गति-चिन्ह प्रदर्शित करती है, वहाँ स्वागत पाती है। वह उसके साथ संभोग करता है तथा उसके अंडे देने तक उसे घोंसले में स्थान देता है। वह घोंसले और मादा के बीच के स्थान में वक्र (zig zag) नृत्य करता हैं, एक विशेष प्रकार का रस गुर्दों Kidney से प्रवाहित करता है और फिर मधुर दंश से उसे घोंसले की ओर प्रेरित करता है। तब मादा उस घोंसले में प्रवेश करती है, अंडे देती है और तीव्रता से दूसरी ओर से बच निकलती है। नर उसके बाहर निकल आने पर उसे दूर भगाने के लिए उस पर आक्रमण तक कर देता है। उसकी प्रक्रियात्मक योजना अब अपनी वासना, आत्मव्ययी प्रक्रिया और विषय (विषय की अर्थाभिव्यक्ति Significant property) सभी के साथ बदल जाती है—मादा नर के लिए मैथुन-साथी के स्थान पर आक्रमण का विषय हो उठती है।

रसल और मैक्डुगल इस अन्तर्प्रेरणा पर बहुत बल देते हैं, मैक्-डुगल के अनुसार "भूख और प्यास अन्तर-वासना-जन्य-प्रक्रियाएँ ही हैं," जैसा कि शब्द का सामान्य प्रयोग भी बताता है, किन्तु यह भी स्पष्ट ही है कि सम्पूर्ण प्रवृत्यात्मक व्यवहार एक सीमा तक अन्तर-वासना की अवस्था पर निर्भर करते हैं। शिकारी पशु केवल तभी शिकार करते हैं जब वे भूखे होते हैं, एक सन्तुष्ट बिल्ली चूहे की, अपनी पूंछ पर बैठने पर भी उपेक्षा कर सकती है। इसी प्रकार कबूतरों की मैथुन-प्रक्रिया का चक्र भी विशेष अन्तर-वासना पर ही निर्भर करता प्रतीत होता है। मैथुन की लालसा उनमें वन्सत-ऋतु में उत्पन्न होतीं है और इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतु में भी प्रत्येक चक्र की समाप्ति के पश्चात् पुनरुद्भूत होती हैं। अन्य अवस्थाओं में मादा को नर का कोई भी व्यवहार मैथुन के लिए प्रस्तुत नहीं कर सकता। अब उममें एक दूसरी वासना उत्पन्न होती है—बच्चों के पालन की और घोंसला-निर्माण की, जो पुनः प्रक्रियात्मक-योजना में परिवर्तन की द्योतक है। रसल के अनुसार प्रत्येक प्राणी अपने एक विशेष संसार में रहता है। वह प्राणी के विशेष व्यव-हार और प्रक्रिया के विषय के साथ सम्बन्ध को एक विशेष शब्द (valence) के द्वारा प्रकट करता है, जिसकी व्याख्या वह कुछ इस प्रकार करता है कि प्रत्येक विषय अपने आप में जीव के लिए कुछ महत्त्व न रख कर उसकी वासना की अभिव्यक्ति का साधन भर है। इस वासना और विषय के संबंध को वह इस शब्द द्वारा शायद प्रकट करता है।

हम सामान्यतः इससे सहमत हैं, किन्तु प्राणी-व्यवहार के अनेक पहलू ऐसे भी हैं जो इसके अन्तर्गत नहीं आ सकते, ये अधिक यांत्रिक और

धमनि-यंत्र के निम्न स्तरीय विभागों के कार्य कहे जा सकते हैं। जैसे नर थ्रीस्पाइंड स्टिक्कलबैक अंडों के घोंसले से बाहर एक विशेष सीमा में पड़े होने पर उन्हें उठा कर घोंसला में रख लेता है, जब कि उस सीमा से बाहर पड़े अपने घोंसले के अंडों को भी खा जाता है। इसी प्रकार वह घोंसले में पड़े अंडों के गल जाने पर घोंसले को भी तोड़ देता है और पुनः संपूर्ण प्रक्रिया की आवृत्ति करता है। इसी प्रकार गल भी अपने या अन्य किसी के अंडों को घोंसले से बाहर एक विशेष सीमा में पड़े होने पर अपने घोंसले में उठा लाती है जब कि उस सीमा से बाहर पड़े अपने अंडों की वह बिल्कुल भी परवाह नहीं करती, मानों वे उसके लिए कुछ भी नहीं। संभवतः इन प्राणियों के लिए अंडों, घोंसलों और बच्चों इत्यादि का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है, वे एक विशेष प्रकार की परिवृत्ति को ही देखते और जानते हैं। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस प्रक्रियात्मक योजना के निर्धारण में न तो परिवृत्ति को ही कारण कहा जा सकता है और न प्राणी की किसी अन्तर-प्रकृति को ही, प्रत्युत यह एक विशुद्ध प्रक्रियात्मक योजना प्रतीत होती है, अर्थात् प्राणी के एक विशेष-व्यवहार और उसके एक निश्चित विषय का एकपक्षीय संबंध जिसमें विषय के शेष पहलू उपेक्षित रहते हैं। यह संबंध ऐसे ही क्यों बना, अथवा प्रक्रियात्मक योजना का विकास इस तरह हो क्यों हुआ, इसका कोई कारण आकस्मिक प्रतीत होता।

इस सब से यह स्पष्ट है कि प्रक्रिया-केन्द्रीकरण के लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रकिया-केन्द्र या प्रक्रियात्मक-योजना प्राणी की अस्तित्व रक्षा में उपकारक ही हो। सच पूछा जाए तो अस्तित्व-रक्षा के उपकारक अपकारकत्व की 'उद्देश्य-कल्पना' अत्यारोपण मात्र प्रतीत होती है। मैं नहीं जानता कि प्राणी की प्रक्रियात्मक योजना को Appetitive-Behavior और Consumatory Act) वासनात्मक और आत्मव्ययी प्रक्रिया की संज्ञा देने वाले कहाँ तक इन व्यवहारों को अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति में उपकारक या अपकारक समझते हैं, अथवा कहाँ तक वे विकासवाद के इस सिद्धान्त के निर्वाह का ख्याल रखते हैं, किन्तु हम समझते हैं कि प्रक्रिया का पर्याय (Consumatory act) आत्मव्ययी प्रक्रिया शब्द अस्तित्व-रक्षा और प्रक्रिया के संबंधों को अच्छी तरह से स्पष्ट कर देता है। आत्मव्ययी प्रक्रिया के लिए यह कोई शर्त नहीं है कि वह अस्तित्व-रक्षा की सापेक्षता में ही विकसित हो अथवा अस्तित्व-रक्षा की साधन बने, प्रत्युत् यह कि वह अन्तर-प्रेरणा की धकेल 'poush को निकास दे सके। अन्तर वासना (Appetitive urge) और अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति में भी सच पूछा जाय तो कुछ सामान्य नहीं हैं, इन्हें एक

दूसरी से सर्वथा स्वतन्त्र कहा जा सकता है। अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति को Appetitive Behavior नहीं कहा जा सकता और न अस्तित्व-रक्षा-संबंधी व्यवहार को किसी वासना की धकेल के निकास का साधन (Consumatory act) ही कहा जा सकता है, यह केवल एक प्रतिक्रियात्मक व्यवहार है जिसे सामान्यतः Reflexive या Emotional Behavior (आवेगात्मक व्यवहार) कहा जा सकता है। अस्तित्व-रक्षा को अब तक जीवन की आधारभूत प्रवृत्ति समझा जाता रहा है, किन्तु जैसे स्वादिष्ट भोजन के परमाणुओं के स्पर्श से हमारी जिह्वा के नीचे की ऐंडोक्राइन ग्रंथियाँ हमारी इच्छा और ज्ञान के बिना ही सालिवा छोड़ देती हैं, उसी प्रकार किसी प्रहार या अन्य अस्तित्व-अपकारक सम्भावना के साथ ही हमारे शरीर के अंग स्वतः ही सुरक्षात्मक-कार्यवाही करते हैं। इसके विपरीत मैथुन प्रक्रिया एक आन्तरिक वासना-भूख-से प्रेरित होती है, जिसका विस्फोट यद्यपि विषय के सम्मुख आने पर ही होता है किन्तु जिसकी उत्पत्ति के लिए हमारे ग्रंथिरस या अन्य शरीर-वैज्ञानिक पहलू ही उत्तरदायी होते हैं। इसी प्रकार भूख इत्यादि के लिए भी। किन्तु अस्तित्व-रक्षा के लिए कोई स्वतन्त्र आन्तरिक प्रेरणा नहीं होती, प्रत्युत यह कि यह हमारा सहज प्रक्रियात्मक शरीर-धर्म ही है, जैसे गर्मी या सर्दी लगना, दर्द या चुभन का अनुभव होना इत्यादि। मैथुन की वासना और मैथुन-साथी या निकास-साधन के लिए विवश दौड़ के उत्तरदायी हमारे कुछ ग्रंथिरस हैं, यद्यपि मनुष्य या बन्दर जैसे विकसित प्राणियों में मस्तिष्क-तन्तु तथा अन्य ज्ञान तंतु और (viscera) भी काफी महत्वपूर्ण होते हैं, जैसा कि अगले निबंध में हम देखेंगे। इनके बिना यह वासना प्राणी में उत्पन्न ही नहीं होती; दूसरे, इसकी उत्पत्ति के लिए किसी भी बाह्य विषय या उकसाहट की आवश्यकता नहीं है। आत्म-व्ययी प्रक्रिया यद्यपि विषय सापेक्ष है किन्तु यह केवल उस धकेल की, विषय अथवा निकास-साधन प्राप्त होने पर, उपभुक्ति का प्रसार भर है—अपने आप में स्वतन्त्र प्रक्रिया नहीं। इसी प्रकार भूख-नींद इत्यादि के लिये भी; किन्तु क्रोध, चुभन या बचाव की प्रक्रिया की उत्पत्ति-मात्र के लिए किसी बाह्य विषय की अनिवार्य अवश्यकता है, इसके बिना ये प्रक्रियाएँ उत्पन्न ही नहीं हो सकतीं और न दूसरा कुछ ऐसा व्यवहार ही देखा जा सकता है जिसे अस्तित्व-रक्षात्मक प्रक्रिया कहा जा सके।

प्रायः सभी विकास-वादी दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक (आज विकासवाद उनसे आगे बढ़ चुका है) सभी प्रवृत्तियों के विकास का कारण अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति (हम कहेंगे आवेग—भय की आवेगात्मक Emotional प्रक्रिया)

पर आधारित सहज चुनाव को मानते हैं, किन्तु हम नहीं समझते कि ऐसा कहने के लिए क्या उपयुक्त कारण दिया जा सकता है। यदि यह कहा जाए कि प्राणी के प्रायः सभी व्यवहारों और आकांक्षाओं का परिणाम अस्तित्व-रक्षा होता है, तो इसके गलत होने पर भी, इसे एक सीमा तक समझा जा सकता है, किन्तु यह कुछ अधिक संगत नहीं जान पड़ता कि सभी व्यवहारों के मूल में अस्तित्त्व रक्षा की प्रवृत्ति एक धकेल Push के रूप में स्वीकार की जाए। जैसे, मैथुन-प्रक्रिया और आकांक्षा दोनों को ही अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति Push का परिणाम कहा जाता है, किन्तु हम नहीं समझते इसे क्योंकर स्वीकार किया जाए ? उनका तर्क है कि प्राणी सन्तानों के रूप में अपने अस्तित्व को सुरक्षित करता है और इसीलिए मैथुन की प्रक्रियात्मक धकेल भी इसी उद्देश्य से विकसित हुई है। डारविन 'ओरीजन ऑफ स्पेसीज़' में इसके कितने ही उदाहरण देता है, जैसे, अधिक देश को अधिगत करने के लिए अधिक सन्तानोत्पत्ति करना, वृक्षों का ऐसे बीज उत्पन्न करना जो पक्षियों से बच सकें, पंखदार बीज होना, जिससे वे अन्य वृक्षों की प्रतिद्वंद्विता से बचकर हवा के द्वारा सुरक्षित स्थान पर पहुँच सकें इत्यादि। किन्तु सन्तानोत्पत्ति और संतति-रक्षा की इस प्रवृत्ति को हम व्यक्तिगत अस्तित्त्व–रक्षा का परिणाम समझें या जातिगत अस्तित्व रक्षा का ? यदि इसे व्यक्तिगत अस्तित्व-रक्षा का परिणाम कहा जाए तो इसमें व्यक्ति को अपनी शरीर-रक्षा का पहिले ध्यान होना चाहिए न कि सन्तति-रक्षा का; किन्तु हम देखते हैं कि प्रायः सभी प्राणी अपने बच्चों पर संकट पड़ने पर अपने जीवन को पूरी तरह से संकट में डाल कर भी अपने बच्चों की रक्षा का प्रयत्न करते हैं। तो भी यदि आग्रह किया जाए और कहा जाए कि इससे स्थिति में कुछ अन्तर नहीं पड़ता तो सन्तति-रक्षा के विरोधी भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं––जैसे, सँपनी अपने बच्चों को खा जाती है। प्रायः ९० प्रतिशत जीवों में नर को सन्तानों की कोई चिन्ता नहीं रहती। बिल्ला तो नर-बच्चों को मार ही डालता है। इन सब से स्पष्ट है कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति ही मैथुन-वासना और सन्तति-स्नेह का कारण नहीं है। नहीं तो सन्तान-रक्षा में केवल मादाओं को ही क्यों रुचि हो, नर को क्यों न हो ? बिल्ले में तो मैथुन-वासना सन्तति-रक्षा से प्रधान और उसकी अपकारक हो कर आती है। इसी प्रकार थ्रीस्पाईड स्टिकलबैंक का मादा को आकर्षित करने के लिए अपने रंग लाल, श्वेत और चमकदार बनाना उसके लिए अस्तित्व-रक्षा की दृष्टि से घातक हो उठता है। अनेक कृमियों और मछलियों में मादा प्रथम-प्रसूति के ही कुछ

बड़े होने पर मर जाती है। कुछ कैटर-पिल्लर जातियों के व्यक्ति एक विशेष अवस्था के पश्चात् (यौवन अवस्था) सन्तानोत्पत्ति और मैथुन-संभोग के नाम पर द्विधा या त्रिधा विभक्त हो जाते हैं और तितलियों के रूप में विकसित हो जाते हैं। इसी प्रकार एक और भी आश्चर्यजनक सुन्दर शाखाओं वाला समुद्री पौधा कोरोलाइन पोलियस के साथ चिपटा हुआ समुद्र के भीतर की एक शिला से स्पर्श करते ही फूलों में खिल उठता है, कुछ समय के पश्चात् उसके फूल विभक्त होकर तैरने वाले बड़े-बड़े चोंचदार जीव बन जाते हैं, फिर ये जीव अंडे देते हैं जिनसे छोटे-छोटे जीव उत्पन्न होते हैं जो अपने आपको फिर इन समुद्री शिलाओं के साथ जोड़ देते हैं और कोरोंलाइन पौधे बन जाते हैं। इसी प्रकार यह व्यापार पुनः प्रारम्भ होता है। इनमें कुछ उदाहरणों को जहाँ व्यक्ति के अस्तित्व-नाश का प्रमाण कहा जा सकता है, वहाँ कुछ को व्यक्तित्व का विघटन और अन्यों को सर्वथा भिन्न योनि में प्रवास कहना उपयुक्त प्रतीत होता है। यदि मैथुन-प्रक्रिया को जाति-रक्षा के उद्देश्य से विकसित कहा जाए तो उपर्युक्त उदाहरणों के साथ प्रश्नावली में अन्य उदारहण भी रखे जा सकेंगे, जैसे एक ही जाति के किसी व्यक्ति के घोंसले में यदि दूसरे व्यक्ति के अंडे ला कर रख दिये जाएँ तो वह पहचान लेने पर उन्हें तोड़ देता है, उपर्युक्त कृमियों के अतिरिक्त अनेक ऐसे कृमि और पशु-पक्षी हैं जो मैथुन-प्रक्रिया के पश्चात् मर जाते हैं या विघटित हो जाते हैं। इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि मैथुन प्रक्रिया और सन्तानोत्पत्ति तथा सन्तति-रक्षा की प्रक्रियाएँ अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति से प्रेरित नहीं हैं प्रत्युत् स्वतन्त्र प्रक्रियाएँ हैं।

मैथुन—वासना और प्रक्रिया का परिणाम यद्यपि सन्तानोत्पति होता हैं किन्तु सन्तति-रक्षा की वासना और मैथुन-वासना सर्वथा भिन्न और स्वतन्त्र वासनाएँ हैं। इन दोनों के लिए हमारे शरीर में सर्वथा भिन्न hormones और इनकी सुखानुभूति की प्रवृति भी सर्वथा स्वतंत्र है। सच तो यह है कि ये दोनों वासनाएँ एक सीमा तक एक दूसरी की अवरोधक भी हैं, जैसे, सन्तति–स्नेह के जनक prolectin रस (hormone) मैथुन-वासना के रसों के स्राव को कम कर देते हैं और इस प्रकार मैथुन-वासना की तीव्रता को बहुत कम कर देते हैं। मनुष्य-जाति में भी ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ देखी जाती हैं जिनमें यह वासना बहुत कम होती है, जबकि सन्तति-वासना बहुत अधिक होती है। कभी-कभी तो कुछ स्त्रियाँ मैथुन प्रक्रिया से घबराती तक देखी जाती हैं, और यदि उन्हें कोई अधिक मैथुन रुचि पति मिल जाए तो वे बीमार हो जाती हैं, जबकि इसके सर्वथा विपरीत उदाहरण बहुत अधिक प्राप्त किये जा सकते हैं। इसी प्रकार पशुओं में भी ये वासनाएँ विभिन्न स्तरों की देखी

जाती हैं। इस लिये भूख, नींद, मैथुन-वासना इत्यादि सभी वासनाएँ अस्तित्व रक्षा से भिन्न प्राणी के शरीर की कुछ ऐसी प्रवृत्ति-जन्य आवश्यकताएँ हैं जिन्हें केवल push (धकेल) या Appetite (लालसा) ही कहा जा सकता है और जिनका अस्तित्व रक्षा से कोई संबंध नहीं है।

इस प्रकार प्रवृति का शरीर-वैज्ञानिक और व्यवहार-संबंधी अध्ययन हमें इस परिणाम पर पहुँचाता है कि प्रत्येक जीव कुछ सामान्य और कुछ निर्धारित प्रवृत्तियों से युक्त है और प्रत्येक प्रवृत्ति धमनि-केन्द्र की प्रक्रिया (Activity) से नियोजित होती है।

जैसा कि हम पीछे देख ही आए हैं, प्रवृत्ति क्रियान्वित होकर प्राणी में एक निश्चित वासना, अभावानुभूति, उत्पन्न कर देती है, जो कि अन्ततः उसे तृप्ति खोजने की ओर प्रेरित कर आत्म-व्ययी प्रक्रिया के द्वारा शान्त होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि यह धमनि-केन्द्र पशु को प्रत्येक प्रक्रिया के लिए वाध्य करता है। टिन्बर्जन इसे 'ठीक समय पर ठीक प्रक्रिया' कहकर इसका कुछ अस्तित्व-रक्षात्मक मूल्य बताना चाहता है, जिसकी, जैसा कि हम पीछे विस्तार से देख आए हैं, तथ्य से कोई संगति नहीं बैठती। वह कहता है कि प्राणी इस प्रकार धमनि-यंत्र के प्रयोग और क्रमशः उसकी प्रक्रियात्मक योग्यता के चुनाव के द्वारा परिवृत्ति में अपने आप को उपयुक्ततम बनाने की ओर अग्रसर होता हैं।

किन्तु कुछ ऐसे उदाहरणों के द्वारा, जिनमें अटकल लग सके, जीवन की सामान्य प्रक्रिया पर सहज-चुनाव को ठोंसना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। यद्यपि संघर्ष और 'अस्तित्व रक्षा एकदम वहिष्कृत नहीं किये जा सकते, किन्तु यह जीवन की सामान्य प्रक्रिया और अन्तर्निहित प्रवृत्ति नहीं है। सिम्पसन के शब्दों में, जीवन के ऐतिहासिक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो कुछ सम्भाव्य है, अथवा कहना चाहिए, जो कुछ हो सकता है, वह होता है। इस कथन में, कि, जो होता है वह होना ही था, कि इसमें कोई निश्चित योजना है कोई तथ्य प्रतीत नहीं होता। जीवन केवल उन अवसरों का अनुसरण करता है, जो उसे अपनी यात्रा में प्राप्त होते हैं। इस प्रकार, विकास की मूल प्रवृत्ति, अवसर वादिता कही जा सकती है। 'अवसरवादिता' शब्द का प्रयोग यहाँ कुछ खतरनाक हो सकता है क्योंकि इसमें एक चेतन प्रयास की भावना निहित है, जैसे जीवन प्राप्त-अवसर को एक्सप्लायट करता हो। किन्तु पाठकों को विज्ञान में ऐसे शब्दों के प्रयोग को सावधानी से समझना चाहिए और किसी भी मानवीय अत्यारोपण से वचना चाहिए। यहाँ किसी प्रकार के चेतन प्रयास से अभिप्राय नहीं है, वास्तव में किसी 'फलाप्ति के लिए अचेतन प्रयास भी' यहाँ सार्थक

नहीं हो सकता। यह शब्द केवल विकास की इस अन्तर्निहित प्रवृत्ति का ही द्योतन करता है, कि 'जो होता है सामान्यतः वही हो सकता था; परिवर्तन होते हैं, जैसे वे हो सकते हैं, जैसे वे उन परिस्थितियों में सम्भावित हैं, ये परिवर्तन किसी सबसे अच्छे की प्राप्ति के लिए या 'सबसे अच्छे' की सम्भावना के रूप में नहीं होते। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया अवसर का अनुसरण करती है, किसी योजना का नहीं। जैसा कि हम प्रवृत्ति संबंधी अध्याय में बार-बार कह आए हैं, किसी प्रकार की भी प्रक्रिया, प्रवृत्ति और चुनाव परिस्थितियों की, जिनमें प्राणी भी एक अंग है, यांत्रिक योजना के परिणाम हैं। प्राणी में प्रत्येक परिवर्तन उसकी सारी परिवर्तनों की सम्भावनाओं को भी बदल देता है। इसमें भौगोलिक परिस्थितियों का भी बड़ा हाथ रहता है। इसी प्रकार शरीर की अपनी प्रकृति भी उसमें उतनी ही, और विकास में आगे बढ़े हुए प्राणियों के लिए कहीं अधिक, प्रभावशाली होती है। कोषों की शरीर में वृद्धि, अथवा अधिक कोषोंवाले प्राणियों की उत्पत्ति ने उनके लिए वे सब प्रक्रिया विस्तारों के और शारीरिक परिवर्तनों के द्वार बन्द कर दिये जो एक कोष वाले प्राणियों के लिए खुले थे। किन्तु अब उनके लिए दूसरी ओर कितनी ही सम्भनाएं बंदनवार बनाने लगीं। इस प्रकार किसी भी प्राणी के जीवन में किसी भी घटना के घटित होने के लिए उसकी शरीर-वैज्ञानिक स्थिति और परिवृत्ति उत्तरदायी होती हैं। इसे हम और भी विस्तार से अगले अध्याय में देखेंगे।

इसका अर्थ यह नहीं कि विकास में सहज-चुनाव का कोई हाथ ही नहीं। हमने अगले अध्यायों में इसके कितने ही उदाहरण देकर इसका समर्थन किया है, किन्तु न तो विकास में सहज चुनाव को एक प्रधान तत्व कहा जा सकता है और न एक ऐसी प्रक्रिया जो शरीर-वैज्ञानिक और परिवृत्ति की प्रकृति से स्वतंत्र हो। प्राणी की सहज वासनाएँ (Appetites) उसे अपनी तृप्ति के लिए बाध्य कर देती हैं और इस तृप्ति के लिए उसे किसी निश्चित विषय से सम्पर्क स्थापित करना होता है। वासना और विषय का यह सम्पर्क न तो केवल शरीर वैज्ञानिक कारण से निर्धारित कहा जा सकता है और न परिवृत्तिसे, यद्यपि इसमें परिवृत्ति अधिक प्रभावशाली तत्व है किन्तु इसे आवश्यकता और अवसर (Opportunity) दोनों का संयुक्त फलित ही कहना उपयुक्त हो सकता है। वासना और परिवृत्ति तथा इन दोनों का फलितप्र—क्रिया विकास को निर्धारित नहीं करते, जैसा कि आज भी बहुत से वैज्ञानिक समझते हैं, प्रत्युत वासना, शरीर और परिवृत्ति की सापेक्ष प्रकृति और तदनुसार निर्धारित प्रक्रिया एक ऐसे यांत्रिक और आधार भूत तंत्र से निर्धारित होते

हैं, जिसमें इनका प्रायः कोई भी हस्तक्षेप नहीं है। इसलिए जो वैज्ञानिक यह कहते हैं कि शरीर यंत्र प्रयोग के द्वारा, लाभ के ग्रहण और हानि के परित्याग में शिक्षित होता हुआ परिवृत्ति के अनुसार ढलता है, और अपनी बदली हुई परिवृत्ति में उपयुक्त होने के लिए बदलता है, केवल भूल करते हैं जैसा कि हमारे अगले अध्याय में और भी विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

इस प्रकार विकास का न तो मनस्तत्त्व एक मात्र कारण ही है और न अनेक कारणों में से एक कारण, यह केवल प्रक्रिया की प्रेरणा और निर्धारण में कारण है, जब कि यह स्वयं विकास से निर्धारित है। इसमें जेनेटिकल सिस्टम की उलझन पूर्ण रासायनिक स्थिति और रासायनिक परिवर्तन ही प्रधान कारण कहे जा सकते हैं। जैसा कि हम अगले निबन्ध में देखेंगे एक शरीर की प्रकृति, एक अविभाज्य इकाई के रूप में, एक अथवा दूसरे जेन के प्रभाव अथवा परिवर्तन से निर्धारित नहीं होती, प्रत्युत् सम्पूर्ण जेन्ज़ की क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वारा विकसित होती है। कुछ (स्त्री-पुरुष के) सम्मिलन बहुत हीन कोटि के शरीर का निर्माण करते हैं जब कि कुछ बहुत उत्कृष्ट कोटि के शरीर को सम्भव करते हैं। और वास्तव में इन जेन-संबंधों की एक ही जाति में अरबों सम्भावित प्रकृतियाँ हो सकती हैं, जिनमें प्रत्येक उपयुक्त शरीर का सृजन करने में समर्थ हैं। इन विविधताओं की सम्भावनाएँ वास्तव में वर्तमान और अतीत विविधताओं से कहीं अधिक हो सकती हैं। इन सम्भावनाओं का क्रियान्वित होना न होना मैथुन प्रक्रिया में संबद्ध नर-मादा के जेन्ज़ की रसायनिक परिणतिपर निर्भर करता है। अनेक वैज्ञानिकों का विचार है कि सहज चुनाव इस सम्मिलन की प्रकृति को निश्चित करता है, जो, हमारे विचार में गलत है। इसके दो प्रमाण दिये जा सकते हैं, प्रथम तो यह कि यदि इस चुनाव का संबन्ध व्यक्तियों की तात्कालिक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति पर निर्भर होना मानलिया जाए तो यह कभी भी सम्भव नहीं कि उनकी यह परिस्थिति कभी भी एक जैसी हो सकती है, दूसरे, इस प्रकार की क्षणिक परिस्थिति को जर्म में निहित मानना वैसे भी संगत प्रतीत नहीं होता। यदि एक अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक परिस्थिति को इसका कारण माना जाए तो वह सम्पूर्ण जाति में सामान्य रूप से निहित होने से किसी भी सम्भावित विविधता के लिए अवसर नहीं रहने देगी। दूसरा और बड़ा प्रमाण यह है कि ऐसी अनेक प्रवृत्तियाँ अनेक प्राणियों में देखी जा सकती हैं, जो न तो किसी प्रकार की अन्तरवासना की तृप्ति के प्रयास के कारण उत्पन्न हुई प्रतीत होती हैं और न अस्तित्व-रक्षा में उन्हें उपकरण कहा जा सकता है।

कुछ तो स्पष्ट रूप से इन दोनों की अपकारक हैं। जैसे John Y. Beaty के अनुसार, एक विशेष मधुमक्खी किसी के डंक मारने के एक दम पश्चात् मर जाती है क्योंकि इसका डंक चुभ जाने के पश्चात् निकल नहीं सकता। यह डंक मक्खी के जीवन-तन्तुओं के साथ अच्छी तरह से सम्बद्ध रहता है और ज्यों ही मधु-मक्खी इसे बाहर खींचती है, उसके वे जीवन-तंतु बाहर खिंच आते हैं, और इन तन्तुओं के बिना यह मक्खी जीवित नहीं रह सकती। इस मक्खी का यह डंक बना ही कुछ इस तरह से होता है कि वह उसे बाहर नहीं खींच सकती। स्पष्ट रूप से यह एक ऐसी अवस्था है जिससे किसी लाभ या वासना-तृप्ति की कल्पना नहीं हो सकती। किन्तु Beaty, अखंड सत्य के ज्ञाता के समान, कहता है कि "यह एक विचित्र अनियमितता है कि मधु मक्खी, जिसे डंक जीवन-रक्षा के लिए प्राप्त हुआ, इसका उपयोग करके इसे खो बैठती है। वह और भी निश्चय से कहता है—फिर भी आखिर, मधु-मक्खी ने अपना मिशन पूरा किर लिया। यह उसका कार्य नहीं कि वह अपनी रक्षा करे, प्रत्युत् यह कि वह अपने साथियों की रक्षा करे। जब वह किसी आक्रमक को बाहर धकेल देती है, वह अपने साथियों के लिए अपने जीवन का त्याग कर देती है।" सम्भवतः इस नैतिकता का तो उसे ज्ञान न होगा, किन्तु स्पष्ट रूप से यह जर्म से जर्म में निहित होते हुए सहज-चुनाव के सिद्धान्त के लिए बहुत बड़ी समस्या उत्पन्न कर देता है। यह एक और भी बड़े आश्चर्य की बात है कि रानी मक्खी का डंक भिन्न प्रकार से बना होता है, वह जितनी बार चाहे उसका प्रयोग कर सकती है, किन्तु वह उसका प्रयोग केवल रानियों पर ही करती है, न तो अन्य मक्खियों पर ही वह इसे प्रयुक्त करती है और न किसी अन्य प्राणी पर। इससे प्रतीत होता है जैसे चींटियों में सामाजिक प्रक्रिया अपनी पूर्ति के लिए दो भिन्न-जाति की दास चींटियों को जन्म देती है, उसी प्रकार-यहाँ भी वही प्रक्रिया इस भिन्नता को उत्पन्न कर रही हो सकती है, किन्तु स्पष्ट रूप से यह मधु-मक्खियों के किसी भी स्वार्थ की, जो हम समझ सकते हैं, पूर्ति में सहायक नही होती। इसे सम्भवतः जेंन्ज़ में रासायनिक परिवर्तन का परिणाम ही कहा जा सकता है। और रानी मधु-मक्खी का भिन्न होना इसका खंडन नहीं करता क्योंकि संभव है जिस जेन के कारण वह अन्य से भिन्न है उसी के कारण उसका डंक भी भिन्न हो। जहाँ तक उस के प्रयोग की विशेषता का सम्बन्ध है वह पूर्णतः किसी प्रकार के चुनाव और उसके कारण भूत अपनी प्रकृति और परिवृत्ति पर निर्भर हो सकता है। कृमियों की किसी प्रवृत्ति और प्रक्रिया की व्याख्या करना अत्यन्त कठिन कार्य है, क्योंकि वे हम से बहुत

ही अधिक भिन्न हैं । इसलिए उनकी वासना और उसकी सन्तुष्ट की व्याख्या करते हुए हम निश्चित नहीं हो सकते । इसका हम एक और उदाहरण प्रस्तुत करेंगे --एक विशेष कृमि मैंटिम जीवित मांस के भक्षण की ऐसी वासना रखती है कि वह अपने मैथुन साथी तक को खा जाती है । नर मैथुन के लिए उसके समीप आता है और शीघ्र ही वह उसकी पकड़ में पहुँच जाता है । वह उसे तब निगलना प्रारम्भ कर देती है । यह कृमि प्रायः सवा तीन इंच लम्बा होता है । इसी प्रकार एक और कृमि मादा अपने मैथुन–सखा को मैथुन क्रिया के बाद एक विशेष स्थान पर काट कर उसे आगे किसी भी मैथुन क्रिया के आयोग्य कर देती है । इसमें मादा का कुछ स्वार्थ हो सकता है, जो हमारे लिए समझना कठिन है, किन्तु नर क्यों सहज चुनाव के द्वारा अपनी रक्षा नहीं करता ? फिर पहले उदाहरण में मादा की जीवित मांस की भूख इस अत्याचार की कारण समझी जा सकती है किन्तु दूसरे उदाहरण में इसमें किसका स्वार्थ समझा जाए ? हमारे विचार में इन दोनों उदाहरणों को सामान्यतः सहज चुनाव के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता है, किन्तु इन्हें किन्हीं अज्ञात रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा उत्पन्न अज्ञात वासनाएँ कहा जा सकता है । वास्तव में कृमि-समष्टियों या जातियों में ९० प्रतिशत प्रक्रियाएँ सामान्य रासायनिक परिवर्तनों का परिणाम ही कही जा सकती हैं । वे (कृमि-जातियाँ) प्रवृत्ति के विशेष उपकरणों की सीधी उपज हैं, उनमें किसी प्रकार की मनोवैज्ञानिक कल्पना संगत नहीं जान पड़ती । यदि हमारे इन दो उपर्युक्त उदाहरणों को किसी उपयोगी वासना का परिणाम भी कहा जाए तो हमें कुछ विशेष आपत्ति न होगी, किन्तु हम जो पीछे अनेक उदाहरण ऐसे दे आए हैं जिन में ऐसी किसी वासना या जीवन-रक्षा की प्रवृत्ति को नहीं पाया जा सकता, उन्हें ध्यान में रखकर ही ऐसी विचित्र प्रवृत्तियों की व्याख्या की जानी चाहिए । सामान्यतः हम एक ही जाति के दो वर्गों में, जिनमें किसी कारण से कुछ भिन्नता आ गई रहती है, दो भिन्न प्रवृत्तियों को देखते हैं । इन भिन्नताओं का कारण हम सहज चुनाव को नहीं समझ सकते । इसी प्रकार भिन्न जातियों को प्रवृत्तियों को भिन्नता के लिए भी । इसका कारण भी हम जर्म या जेन में होते हुए आकस्मिक रासायनिक परिवर्तन को ही समझते हैं । जैसे, हम हरिणों के अनेक वर्गों में सींगों की बड़ी भिन्नता को पाते हैं, वास्तव में यही मुख्य भिन्नता उनके वर्गीकरण की आधार है । किन्तु इन सींगों की भिन्नता स्पष्ट रूप से सहज चुनाव की परिभाषा नहीं है । सींगों की विद्यमानता का कारण आत्म-रक्षा कहा जाता है, किन्तु स्पष्ट रूप से इनमें अनेक वर्गों के सींग, जो बाद में भिन्न हुए हैं, आत्म-रक्षा में सहायक

नहीं हो सकते। इसी प्रकार पक्षियों की एक ही जाति के दो भिन्न वर्गों का भिन्न ढंग से पानी पीना उस भिन्नता का कारण सहज चुनाव को सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि ये दोनों ही ढंग समान रूप से लाभदायक हैं। इसका हम एक और उदाहरण देगें जो पूर्ण रूप से हमारे कथन की सत्यता को प्रमाणित करता है—एक तितली की आँख उच्चस्तर के कृमियों की आँख के समान बनी है। यह तितली (टोर्टोईस) छः से सात हज़ार लैंज़ तक अपनी प्रत्येक आँख में रखती है। प्रत्येक लैंज़ एक स्फटिक सदृश बनी नुक्कर के ऊपर जटित होता है, यह ऊपर से चौड़ा होता है किन्तु नीचे की ओर एक बिन्दु पर केन्द्रित होता है जिससे कि यह आने वाली किरणों को समेट कर उस बिन्दु पर केन्द्रित कर सकता है। यह केन्द्र आगे फिर एक पतली नाड़ी से जुड़ा हुआ है जिसके नीचे धमनि केन्द्र और पेशियाँ होती हैं। अभी तक यह समझा जाता था कि इस प्रकार की आँखें छोटी-छोटी आकृतियों को प्रतिबिंबित करती हैं, प्रत्येक लैंज़ एक भिन्न आकृति को गृहण करता है, किन्तु वास्तव में इन आँखों से उससे कहीं अधिक स्पष्ट देखा जा सकता है जितना कि विभिन्न लघु-आकृतियों के घपले को प्रतिबिम्बित करने वाली आँखें देख सकती हैं। वास्तव में प्रकाश किरणें उस वस्तु के विभिन्न बिन्दुओं से, जिसे यह तितली देख रही होती है, इन लैंज़ पर प्रतिबिंबित होती हैं, परिणामतः तितली उतने ही विभिन्न स्थलों को एक साथ देखती है जितने उस पर प्रतिबिंबत होते हैं। ये सब प्रतिबिंबित होने वाले बिन्दुओं की समष्टि एक विस्तृत चित्र उपस्थित करती है। क्योंकि कृमियों की आँखें समतल नहीं कर गोल होती हैं इस लिए उस पर प्रतिबिंबित होने वाले विभिन्न स्थल बहुत अधिक होते हैं, किन्तु इस से यह न समझना चाहिए कि वे एक घपला बनाते हैं प्रत्युत् उसी प्रकार एक समन्वित चित्र उपस्थित करते हैं जैसे हमारी आँखें।

किन्तु जब एक मृत तितली की आँख निकाली गई और सम्पूर्ण मसल उससे पृथक कर दिए गये, वह एक पूर्ण छोटे कैमरे की तरह प्रतीत होती थी। यदि इसे ग्लैसरीन की एक बूंद पर रख दिया जाए तब तो इसमें एक सुन्दर चित्र प्रतिबिंबित देखा जा सकता है। इस चित्र से हम सहज ही यह देख सकते हैं कि यह तितली कितनी दूर तक और क्या कुछ देख सकती है। इस प्रकार से प्रतिबिंबित चित्र, यद्यपि वह बहुत स्पष्ट नहीं होता, दूर तक फैले विस्तार की एक आश्चर्य जनक प्रतिकृति उपस्थित कर देता है। यह बहुत आश्चर्यजनक बात है, क्योंकि यह अच्छी तरह से प्रमाणित किया जा चुका है कि यह तितली नौ फुट से परे किसी भी वस्तु की ओर ध्यान नहीं देती उसे वह नहीं दीखती, किन्तु देखने का यह यंत्र आँख आश्चर्यजनक रूप से पूर्ण

है । इस उदाहरण से स्पष्ट है कि यह आँख किसी भी प्रकार से तितली को सहज चुनाव के द्वारा प्राप्त नहीं हुई है प्रत्युत् एक ऐसी रासायनिक प्रक्रिया से विकसित हुई है जिसने न केवल जेन्ज़ की प्रकृति में एक बार परिवर्तन ही सम्भव किया और इस प्रकार संतानों को एक अनावश्यक लाभ का वरदान दिया प्रत्युत उनमें स्थायी भी हो गया । इससे न केवल यही प्रमाणित होता है कि किसी अंग या प्रवृत्ति के विकास का कारण मुख्यतः सहज चुनाव नहीं है और यह कि किसी स्थायी प्रवृत्ति की विद्यमानता उस जाति की स्थायी आवश्यकता को सिद्ध नहीं करती प्रत्युत यह भी कि अनुपयोग से कोई अंग समाप्त नहीं हो जाता । इसलिए जेनपरिवर्तन (Gen Mutation) में मूल रूप से मुख्य कारण सहज चुनाव या परिस्थिति के अनुसार अपने आपको ढाल कर आत्म-रक्षा करने की प्रवृत्ति न हो कर परिस्थितियों (आन्तर या बाह्य) द्वारा थोपी गई रासायनिक परिवर्तन की प्रक्रिया है । जर्म में कुछ जेन बहुत स्थायी होते हैं जब कि दूसरे प्रायः परिवर्तित होते रहते हैं, यह भी स्पष्ट ही है कि यह परिवर्तन अधिक स्थायी जेन्ज़ में भी परिवर्तन ला सकता है यदि वह परिवर्तन कुछ गम्भीर हो । इस निरन्तर और सामान्य रूप से घटित होते परिवर्तन की प्रक्रिया की प्रकृति को अनेक बाह्य प्रभाव बदल सकते हैं जैसे गर्मी, कॉस्मिक किरणों या अन्य प्रकाश किरणों का प्रभाव, तथा अन्य रासायनिक प्रभाव किन्तु ये प्रभाव जेन-म्यूटेशन को बहुत दूर तक निर्धारित नहीं करते । किसी भी एक जेन-प्रकृति-परिवर्तन का प्रभाव आकृति या शरीर परिवर्तन पर सामान्य और स्वल्पतम भी हो सकता है और मौलिक परिवर्तन के रूप में भी हो सकता है । बड़े परिवर्तन, जो कि शरीर पर मौलिक प्रभाव डालते हैं, सामान्यतः, यद्यपि सदैव नहीं, घातक होते हैं । ये सामान्यतः गर्भ-स्थिति में बच्चे के विकास को अवरुद्ध कर देते हैं या शीघ्र मृत्यु के कारण होते हैं । सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जेन में रासायनिक-परिवर्तन उपयुक्त तम स्थिति की प्राप्ति और आवश्यकताओं इत्यादि की पूर्ति से कोई संबंध नहीं रखता । इस मामले में वे बिल्कुल आकस्मिक और अनियमित होते हैं । एक ऐसे प्राणी में, जो पहले से ही अपनी परिस्थितियों का अधिक से अधिक लाभ उठाने में समर्थ है, यह जैन-रासायनिक परिवर्तन हानिकारक ही हो सकता है, क्योंकि ऐसी परिस्थितियों में कोई भी आकस्मिक परिवर्तन उसको उनपरिस्थितियों का लाभ उठाने में अनुपयुक्त बना देगा । अन्य प्रणियों में, जो अपनी परिस्थियों में अयोग्य हैं, ये परिवर्तन लाभदायक हो भी सकते है, किन्तु यह बिल्कुल संयोग है ।

इससे हम सहज ही यह समझ सकते हैं कि तितली की उस आश्चर्य जनक

आँख के विकास का, जिसका वह बिल्कुल भी लाभ नहीं उठाती (क्योंकि उसके मस्तिष्क तंतु उतने विकसित नहीं हो सके) इस प्रकार विकास क्यों हुआ। इस प्रकार के हम कुछ और उदाहरण भी देंगे, जिनका अब तक के प्रचलित सिद्धान्तों से कोई मेल नहीं बैठता। जैसे एक स्तन-पायी प्राणी आरमा-डिल्लो एक बार में चार बच्चे देता है और ये चारों अनिवार्य रूप से या तो नर होते हैं या मादा, मिले जुले ये कभी नहीं होते। एक कृमि डूडलबग आठ टाँगों से युक्त होने पर भी पेट के विशेष संकोच-विस्तार से ही चलता है और इसके चलने की दिशा आगे न होकर पीछे की ओर होती हैं। नर ग्राइ-लिडी इतना सुस्त होता है कि वह अपने स्थान से हिलना भी नहीं चाहता और यदि मादा समीप न हो तो पेट भरने के लिए दूर जाने से बचने के लिए, अपने बच्चे तक खा जाता है। एक जल-जन्तु हाइड्रा बच्चा या अंडा देने की बजाय एक डाली के समान वस्तु उत्पन्न करता है जिसपर फूल होता है। समय आने पर यह फूल हाइड्रा बन कर तैरने लगता है। ऐसे और भी कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनकी ऐसी कोई व्यख्या नहीं दी जा सकती जैसी हम अपनी कल्पनाओं को प्रकृति पर आरोपित करके करते हैं।

इन विभिन्न प्रवृत्तियों के और अंगों के विकास के मुख्यतः दो कारण दिए जा सकते हैं--प्रथम जेनेटिकल और दूसरा प्रक्रियात्मक। जैन्ज में होने वाले आकस्मिक परिवर्तन प्राणी के लिए लाभ कर हों या हानिकारक, कभी-कभी उस जाति के एक वर्ग में और कभी सम्पूर्ण जाति में ही स्थायी हो जाते हैं। यह भी एक बड़ा कारण है कि क्यों विकास पूर्ण रूप से 'उपयुक्त तम' की ओर ही नहीं होता, और अव्यवस्थित तथा अनिर्धारित परिवर्तन प्रदर्शित करता है। चुनाव वास्तव में, होते हुए परिवर्तनों में प्रक्रियात्मक प्रयास के द्वारा प्रभाव-शाली होता है अवश्य, किन्तु ये परिवर्तन उसकी अधिक चिन्ता नहीं करते। फिर प्राणी की प्रक्रिया का 'लाभ' के साथ भी केवल इतना ही संबन्ध है कि उनकी प्रकृति ने उनको जो विशेष वासनाएं दी हैं, उनकी पूर्ति के लिए सुविधाएं जुटा सकें।' इस प्रकार स्वयं लाभ की प्रकृति उनके आकस्मिक परिवर्तनों के साथ बदलती रहती है, और एक बड़े चुनाव का विषय न होकर, अथवा यों कहें, कि मुख्यतः चुनाव से प्रेरित न होकर स्वयं निर्धारित होते हुए चुनाव से निर्धारित होती ह।

यह समझ लेने पर, ऐसी वासनाओं को, जो स्पष्ट रूप से अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति की अपकारक हैं—जैसे पतंगों का दीपक पर मरना, थ्रीस्पाईन्ड स्टिक्कल बैक का अपने रंगों का निखार कर हिंसक शत्रुओं के लिए सुलभ होना इत्यादि, भी हम सहज ही उसी प्रकार एक सामान्य वासनात्मक प्रक्रिया

के अन्तर्गत रख सकते हैं जैसे मैथुनवासना और भूख को। कुछ प्राणियों में मैथुन-प्रक्रिया भी वास्तव में मृत्यु का संदेश है, जैसे कृमियों की अधिकांश जातियों में नर ज्यों ही मैथुन-योग्य अवस्था का होता है त्योंही वह समय के अपव्यय के बिना अपने मैथुन-साथी की ओर दौड़ता है और मैथुन-प्रक्रिया के शीघ्र ही पश्चात् वह मर जाता है। (Cheesman) इसी प्रकार, मोर्गन के अनुसार, साल्मोन मछली अंडे देने के पश्चात् मर जाती है। टिंबर्जन के अनुसार, सामान्यतः अनेक प्राणी जीवन में केवल एक ही बार मैथुन प्रक्रिया करते हैं और उसके पश्चात् मर जाते हैं। नर मैंटिस कृमि मैथुन के पश्चात् मादा से खा लिया जाता है, यूरोपियन मादा फील्ड—क्रिक्कट मैथुन प्रक्रिया के पश्चात् नर के पंखों को फाड़ कर उनमें से मैथुन के लिए मादा को उकसाने वाले एक विशेष अंग को काट देती है। इस सबसे स्पष्ट है कि मैथुन प्रक्रिया का उद्देश्य अस्तित्व-रक्षा कभी भी नहीं हो सकता—अन्यथा ऐसे प्राणियों को भी अपनी ही जाति के अन्य प्राणियों के समान जीवन के पूर्ण विकास में से बीतना चाहिए, फिर चाहे वह कितना भी अल्पकालिक क्यों न हो। मैंटिस और फील्ड—क्रिक्कट जाति के नरों को या तो मैथुन-क्रिया ही छोड़ देनी चाहिए या फिर कोई ऐसा उपाय खोजना चाहिए जिससे वे मादाओं के पंजे से छुटकारा पा सकें। कृमियों में ही अनेक वर्ग ऐसे भी हैं जो पूरा जीवन जीते हैं जब कि प्रथम मैथुन के पश्चात् ही मर जाने वाले कृमि अधूरी आयु का उपयोग करते हैं। इनके विपरीत छत्ता-मक्खियों की जातियों में बच्चों के बड़े हो जाने पर रानी अपने दासों के साथ निकल जाती है और आमरण अनशन करके आत्म-हत्या कर लेती है जिसे हम आत्म-हत्या की वासना कह सकते हैं? प्रकृति में कोई ऐसा आध्यात्मिक प्राणी नहीं है जो यह सोचे कि उसने कर्तव्य कर्म कर लिए हैं, इसलिए अब उसकी कोई आवश्यकता नहीं, वे जो कुछ करते हैं वह केवल इसलिए क्योंकि वे वैसा करने के लिए वासना की धकेल से या अपनी शारीरिक परिस्थियों से बाध्य हैं। इसलिए यह कहना बहुत कठिन है कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति ही जीवन में प्रक्रियाओं की एक मात्र प्रेरक शक्ति है। कुछ वैज्ञानिक जीवन के लिए संघर्ष को अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति का पर्याय मान कर उसी के एकमात्र प्रेरक और आधार-भूत प्रवृत्ति होने पर बल देते हैं, जैसे डारविन कहता है—"क्योंकि मिस्टलिटो (एक लता) पक्षियों द्वारा नष्ट की जाती है इसलिए इसका अस्तित्व उन पर निर्भर है, और इस प्रकार वह, आलंकारिक रूप से ही सही, दूसरे फलदार अपने साथी पौधों से संघर्ष निरत कही जा सकती है, जो आत्म-रक्षा के लिए पक्षियों को उसके

बीज खाने के लिए उकसाते हैं।" कितनी बड़ी सूझ है, इसे पूर्ण रूप से प्राणी शास्त्र के अध्ययन का मानवीकरण कहा जा सकता है। यद्यपि डारविन 'आलंकारिक रूप से' कहते हैं, किन्तु मैं नहीं समझता, यह कहने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी यदि यही न मान लिया जाए कि वे इस शब्द का अर्थ विस्तृत करके अनर्थ करना चाहते हैं? जिन वृक्षों के मीठे फल हम तोड़ कर खाते हैं और इस प्रकार उनकी संख्या वृद्धि को हानि पहुँचाते हैं, वे वृक्ष क्यों सहज चुनाव के द्वारा अपने आप में कोई परिवर्तन नहीं लाते? इसका उत्तर डारविन 'मनुष्य द्वारा चुनाव' कह कर दे देगा, किन्तु तब उन जंगली वृक्षों के लिए क्या कहा जाए जिनके फल बन्दर खाते हैं? डारविन के ही ऊपर दिये उदाहरण में यह संदेहास्पद बात है कि किसी वृक्ष को अन्य वृक्षों से इस प्रकार आलंकारिक संघर्ष में क्यों पड़ना चाहिए, जिसका अर्थ केवल हमारे द्वारा ही आरोपित हो, क्यों न वह अपने में ही ऐसा परिवर्तन करे जिससे उसे खाने वाले कृमि-पक्षी उसका उपयोग ही न कर सकें? वास्तव में कृमियों में, निम्न स्तर के रीढ़ धारियों में और वृक्षों में विकास या परिवर्तन का मूल कारण परिवृत्ति में परिवर्तन के कारण जेन में परिवर्तन या मैथुन प्रक्रिया में जेन सम्मिलन के द्वारा कोई विशेष रासायनिक परिवर्तन हो सकता है, जब कि वासना-पूर्ति और उसमें आने वाली बाधाओं के अपसरण का प्रयास केवल इन परिवर्तनों के परिणाम हैं, कारण नहीं।

डारविन कहता है—"अनेक सामान्य परिवर्तन, जो एक ही दम्पति की विभिन्न सन्तानों में पाए जाते हैं, छोटे होने पर भी महत्व पूर्ण होते हैं। वह कहता है कि ये व्यक्तिगत परिवर्तत उत्तराधिकार में प्राप्त किये जाते हैं, जिनका कि प्राकृतिक चुनाव Natural Selection में बहुत महत्व है।" उसके अनुसार, इन परिवर्तनों में बीतते हुए व्यक्तियों में उपयुक्ततम ही शेष रह पाते हैं और अन्य समाप्त हो जाते हैं। यदि यह बात इसी प्रकार ग्रहण की जाए—तब संभवतः किसी को भी आपत्ति नहीं होगी, किन्तु डारविन इस उत्तराधिकार को भी सहज चुनाव mental selection या Adaptation से निर्धारित मानता है, जो एकदम ज्यादती प्रतीत होती है। इसके खंडन के लिए हम उसी का दिया एक उदाहरण लेंगे। वह कहता है—"मैं उस जाति को उदाहरण रूप में स्वीकार करता हूँ जिसे बहु-रूपिणी कहा जा सकता है, जिसमें प्रत्येक वर्ग अनेक रूप की सन्तानों को जन्म देता है। इन रूपों को लेकर बहुत मतभेद है, बड़ी कठिनाई से कोई दो वैज्ञानिक इनके वर्गीकरण में सहमत हो सकेंगे। हम पौधों में से र्‌यूबस, रोजा और हीराशियम को और जीवों में से कुछ कृमि-जातियों को उदाहरण रूप में रखेंगे।

सबसे अधिक विभिन्न आकृतियों वाली जाति में छः वर्ग निश्चित और स्थिर रूप और चरित्र होते हैं। जो जातियाँ एक देश में विभिन्न आकृतियों वाली हैं वे दूसरे देश में भी कुछ अपवादों के साथ विभिन्न आकृतियों वाली होती हैं। वह ागे कहता है कि कुछ प्राणियों में बहुत से अंग न लाभ कर होते हैं और न हानिकारक और ये अंग उनमें स्थायी हो जाते हैं, क्योंकि सहज चुनाव उन पर प्रभावशाली नहीं होता।"

इन दो उदाहरणों को डारविन उलझन पूर्ण बताता है, क्योंकि सहज चुनाव इन पर सीधे से लागू नहीं होता। पहले उदाहरण में जहाँ यह प्रमाणित होता है कि सर्वथा भिन्न परिवृत्ति और बाधाएं भी सहज चुनाव के द्वारा उत्ताराधिकार को प्रभावित नहीं कर सकीं वहाँ दूसरा उदाहरण यह भी प्रमाणित करता है कि अंगों की विद्यमानता-अविद्यमानता सहज चुनाव पर निर्भर नहीं करती। इसका कारण हम केवल यही समझते हैं कि जेन्ज़् में का अन्तर्निहित inertia (इनर्शिया--एक ही स्थिति में बने रहने की प्रवृत्ति) परिवृत्ति के प्रभावों को निष्प्रभाव करता रहता है, और जो विभिन्न, और विभिन्न परिवृत्ति में भी समान वर्ग देखे जाते हैं वे यह घोषित करते हैं कि जेन्ज के विभिन्न संम्मिलन यद्यपि असंख्य सम्भावित रूपों को जन्म दे सकते हैं किन्तु इनके विकास में, यदि यह अब चलता रहे तो, एक नियमित शृंखला होनी सम्भव है। किन्तु हम सदैव विभिन्न परिवृत्तियों में विकसित होते एक ही जाति के प्राणियों में कुछ भिन्नता पाते हैं, जो कभी कभी काफी गम्भीर होती है और व्यक्तिगत-भिन्नता से अधिक स्थायी' होती है, इस भिन्नता का कारण हम परिवृत्ति-जन्य भिन्नता को समझते हैं जो जेन्ज़् के इनर्शिया में छिद्र खोज लेती है। किन्तु यह जेन्-इनर्शिया उतना ही अधिक सशक्त होता है जितना ही विकसित प्राणी हो, नहीं तो कृमियों और वनस्पतियों में इतना इनर्शिया नहीं होता, अथवा, उनके जेन उत्ताराधिकार को सुरक्षित रखने में इतने समर्थ नहीं होते।

जेन्ज़् में वासना भी परिवर्तन सम्भव कर सकती है, जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, किन्तु यह परिवर्तन किसी ऐसे सुक्ष्मतत्त्व के जेन्ज़् में प्रवेश से नहीं होता जिसे हम वासना या भावना कह सकते हैं प्रत्युत् वासनाएं और प्रक्रियाएं जिस धकेल से उत्पन्न होती हैं, वह उन रासायनिक परिस्थितियों की ही परिणाम होती है जो उत्ताराधिकार और जीवन की परिवृत्ति (भौगोलिक और रासायनिक) की परिणाम होती हैं। किन्तु एक बार जब यह वासना स्थिति में आ चुकी रहती है उस समय उसकी धकेल को व्यय करने के लिए प्राणी निकास खोजता है और इस प्रकार

प्रक्रिया का जन्म होता है। यह प्रक्रिया अपनी उत्पत्ति के लिए शरीर के रासायनिक परिवर्तनों से कितनी निर्धारित होती है यह इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि यदि भूखे प्राणी का खून पूर्ण तृप्त प्राणी में डाल (इंजेक्ट कर) दिया जाए) तो वह भी भूख से व्याकुल हो उठता है। (Mc-dougal) इस प्रकार यह वासना मौलिक है और प्रक्रिया आवश्यक है, क्योंकि वासना की धकेल अपने व्यय के लिए प्राणी को बाधित कर देती हैं। और यदि यह धकेल अपना उपयुक्त निकास नहीं कर पाती तो इसका प्राणी के लिए घातक होना अनिवार्य है, सम्भव है वह कभी उसके जनन कोषों पर प्रभाव डालकर उसमें जेन म्यूटेशन की कारण हो उठे। इसका दूसरा प्रभाव जेन्ज़ के चुनाव पर होना भी सम्भव है क्योंकि यह शरीर में ऐसे रासायनिक तत्वों को उत्तेजित कर सकता है जिससे विशेष कोषों का और अंगों का प्रतिनिधित्व करने वाले क्रोमोसोम (Chromosome) अधिक क्रियात्मक हो उठें और इस प्रकार दूसरे मैथुन साथी के विशेष क्रोमोसोम के साथ मिलकर शरीर-प्रकृति पर प्रभाव डालें। किन्तु परिवर्तन या विकास के इन कारणों में से किसी को भी बहुत दूर तक नहीं खींचा जा सकता, जैसा कि अनेक वैज्ञानिक किसी एक को ही आधार भूत मान कर अन्य से निषेध करते आए हैं। फिर चुनाव संबंधी ये कल्पनाएँ प्रयोग सिद्ध न होकर केवल अटकलें ही हैं।

डारविन ने सहज-चुनाव पर बहुत बल दिया है; सहज चुनाव में 'एप्पी--टाइटिवबिहेव्यर और कंज्यूमेटरी ऐक्ट' जन्य चुनाव भी सम्मिलित होने चाहिएं; किन्तु वह सहज-चुनाव को जीवन-संघर्ष तक ही सीमित रखता है जो अन्ततः अस्तित्व रक्षा की प्रवृत्ति का ही पर्याय है। सैक्सुअल-चुनाव को भी वह एक सीमा तक महत्त्व देता है, किन्तु यह वास्तव में अपवादों की व्याख्या करने के लिए। फिर उसके अनुसार, सैक्स भी अन्ततः अस्तित्व-रक्षा के ही अन्तर्गत है, क्योंकि सन्तानोत्पत्ति का यह साधन है और ज्यामितिक अनुपात Geome tnical Ratio बढ़ाने में सन्तान की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस प्रकार सहज ही यह देखा जा सकता है कि डारविन तथा अन्य विकासवादी बलात् उन प्रक्रियाओं पर एक ऐसे उद्देश्य को ठोंसते हैं जो वास्तव में हमारी अपनी कल्पना है। सन्तानोत्पत्ति सैक्सुअल प्रवृत्ति का उद्देश्य नहीं परिणाम है, इसी प्रकार ज्यामितिक अनुपात-वृद्धि भी सन्तानोत्पत्ति का उद्देश्य न हो कर परिणाम मात्र है।

× वासनात्मक और अतमव्ययी प्रक्रिया।

जैसा कि हम इस निबन्ध के प्रारम्भ में देख आए हैं, हमारे व्यवहारों को दो मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है—:(१) वासना प्रेरित क्रियाशीलता और उसका प्रक्रियात्मक व्यय तथा (२) आवेगात्मक प्रतिक्रिया Emotional Response)। प्रथम यद्यपि अन्तः प्रेरणा और शारीरिक-प्रक्रिया जन्य व्यवहार है, किन्तु यह शारीरिक-प्रक्रिया परिवृत्ति के जिस विषय (Object) पर क्रियाशील होती है उसके अनुसार अपने प्रक्रियात्मक व्यवहार को निर्धारित करना उसके लिए आवश्यक है, किन्तु आवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ—भय, क्रोध, विस्मय, और घ्राण तथा स्पर्शानुभूति आदि इन्द्रिय विषय प्रतिक्रियाएँ—सामन्यितः हमारा शरीर-धर्म ही हैं, यद्यपि ये भी एक सीमा तक विशेष से चिपटी रहती हैं, और कुछ उन पूर्वानुभवों पर, जिनमें उत्तराधिकार में प्राप्त अनुभव भी सम्मिलित हैं, अवलंबित हैं। चूहे का बिल्ली को देखते ही भय-कम्पित हो उठना पूर्वानुभवों पर आश्रिति है और इसी प्रकार बिल्ली का चूहे को देखते ही आक्रमण-प्रवृत्ति से अभिभूत हो उठना पूर्वानुभव-प्रेरित आवेगात्मक व्यवहार है। किन्तु यदि बिल्ली को प्रारंभमें ही खाने को कुछ दूसरी वस्तु दी जाए तो उसकी आवेगात्मक प्रक्रिया उस पर केन्द्रित हो जायगी × इसी प्रकार यदि चूहे को प्रारम्भ में ही ऐसी बिल्ली के पास रखा जाए जो अहिंसक है तो उसकी आवेगात्मक प्रक्रिया—केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बदल जाएगी। इसी प्रकार अन्य भी कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं। अस्तु, इन दोनों व्यवहारों में न केवल बाह्य अन्तर है प्रत्युत्, जैसा कि हम पीछे भी कह आए हैं, शरीर वैज्ञानिक—शरीर की अन्तः प्रकृति में निहित, अन्तर भी है। सामान्तः अस्तित्व-रक्षा का संघर्ष इन दोनों से बँधा है—पहले में जहाँ उदर पूर्ति के लिए प्राणी अनेक साधनों का आविष्कार करता है वहाँ दूसरे में वह बाह्य खतरों से अपनी रक्षा करने में समर्थ होता है। किन्तु अस्तित्व-रक्षा इन दोनों में से किसी भी व्यवहार को पूर्ण रूप से व्याप्त नहीं कर सकती। कहा जा सकता कि अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति जीवन की अन्तर्निहित प्रवृत्ति है—यह जीवन-रचना और जीवन-विकास की प्रकृति में ही निहित है, और आवेगात्मक प्रतिक्रिया अपकारक परिवृत्ति से बचने की और इस प्रकार अस्तित्व-रक्षा की साधन है।

मै नहीं समझता कि इससे कुछ मौलिक अन्तर पड़ता है, इसमें शब्दों का चक्कर ही अधिक है, क्योंकि प्रायः प्रत्येक आवेग, विशेषतः स्पर्श-सुख या चुम्भन और पीड़ा इत्यादि भी, शायद अधिक स्पष्ट और निश्चित् रूप से, जीवन

× महादेवी जी की बिल्ली केवल पापड़ खाती है, चूहा तो बिल्कुल भी नहीं खाती।

की किसी भी अभिव्यक्ति (शरीर) में पाई जा सकती हैं। और सच तो यह है कि यदि कहा जाए कि वासनात्मक धकेल (Appetitive Push) और आवेगात्मक प्रतिक्रिया (Emotional Response) ही वास्तव में परिवृत्ति के संघर्षण में अपनी आवश्यकतानुसार प्राणी के व्यवहार और प्रक्रिया में कारण भूत होती हैं तो यह अधिक उपयुक्त जान पड़ता है (यद्यपि इनसे स्वतन्त्र जेनम्यूटेशन भी इसमें बहुत महत्व रखता है)। आवेगात्मक प्रतिक्रिया यद्यपि अस्तित्व-रक्षा में बहुत अधिक सहायक है किन्तु यह कैसे कहा जा सकता है कि ये विभिन्न प्रतिक्रियाएं अस्तित्व-रक्षा की ही पर्याय हैं?—अर्थात् जीवन ने अपनी रक्षा के लिए ही इनको जन्म दिया है? भय अपने बलवान् शत्रु से भी होता हैं और छोटे से ही पीड़ा जनक प्रहार से भी; यद्यपि इन दोनों में अन्तर मात्रात्मक है किन्तु प्रभाव में तो गुणात्मक अन्तर ही है न कि मात्रात्मक, और इन दोनों में शरीर-यंत्र की एक ही प्रक्रिया-योजना प्रयुक्त होती हैं। सामान्यतः पशु यह अनुभव से जानता है कि अमुक प्रहार उसे केवल कम या अधिक पीड़ा पहुँचाएगा जब कि दूसरा उसके अस्तित्व तक को मिटा सकता है, किन्तु तब भी उसकी आवेगात्मक प्रतिक्रिया में कुछ अन्तर नहीं देखा जाता। सर्दियों में पशु गर्म स्थानों की खोज करते हैं, चाहे उस सर्दी से उनकी मृत्यु की कोई भी सम्भावना न हो। फिर एक सीमा तक सर्दी में स्वयं हमारा शरीर अपना इस प्रकार प्रवन्ध करता है कि सर्दी का प्रभाव कम किया जा सके, किन्तु यह क्रिया एकदम भौतिक है न कि प्रयास जन्य। यह ठीक है कि अधिक सर्दी या अधिक गर्मी मृत्यु का कारण हो सकती हैं किन्तु वे इससे इसलिए नहीं बचते कि इससे उनके अस्तित्व को कोई खतरा है बल्कि इसलिए कि परिवृत्ति की प्रतिकूल परिस्थिति से जो भौतिक परिवर्तन उनके शारीरिक-संस्थान में होते हैं वे उनको असुविधा पहुँचाते हैं, वे उनको पीड़ित करते हैं, उनके शरीर की शक्ति का अपव्यय होता है और इस प्रकार उनको इससे थकावट और तंगी अनुभव होती है। इसी प्रकार भूख की सन्तुष्टि न होने से प्राणी की मृत्यु अनिवार्य है, किन्तु प्राणी उसकी सन्तुष्टि के लिए इसलिए प्रयास नहीं करता कि यह उसके अस्तित्व के लिए खतरा है बल्कि इसलिए कि वासनात्मक धकेल उसको इसके लिए बाध्य कर देती है, उसकी नाड़ियाँ उस धकेल से तन जाती हैं और उस तनाव का व्यय करने के लिए व्याकुल हो उठती हैं, नहीं तो यह तनाव स्वयं समाप्त हो जाता है और उसका यह अस्वाभाविक व्यय उसमें थकन और दौर्बल्य छोड़ जाता है, उन नाड़ियों में उत्पन्न शक्ति शरीर को ही खाने लगती है। सम्भवतः भूख की

वासनात्मक धकेल उसे उसी प्रकार बाध्य करती है जैसे शलभ की जलने की वासना उसे अग्नि पर जलने को वाध्य करती है, या मैथुन वासना प्राणी को मैथुन साथी खोजने के लिए वाध्य करती है या कुछ कृमियों में यह जीवन-नाशक-मैथुन–प्रक्रिया के लिए धकेलती है। इसी वासनात्मक धकेल, वासना–व्ययी प्रक्रिया तथा आवेगात्मक प्रतिक्रिया के परिवृत्ति के साथ सम्बन्ध के आधार पर ही सहज-चुनाव की प्रवृत्ति का भी निर्धारण होता है। सहज-चुनाव शब्द हमारे अर्थ को बिल्कुल भी ठीक प्रकट नहीं करता, क्योंकि यह कुछ सीमा तक मनोवैज्ञानिक पहलू पर अधिक बल देता है, इसलिए हम प्रक्रिया शब्द का प्रयोग, जैसा कि हम पीछे भी करते आए ह, करेंगे। प्रक्रिया शब्द में न केवल प्राणी की क्रिया शीलता ही अभिप्रेत है प्रत्युत् परिवृत्ति के विषय (object) भी समवेत ह, क्योंकि प्राणी-व्यवहार में प्राणी की प्रकृति और परिवृत्ति की प्रकृति दोनों ही समान रूप से प्रभावशाली होते हैं। इसमें न केवल प्राणी का शारीरिक विकास ही प्रत्युत् प्राणी का व्यवहार भी अन्तर्हित हो जाता है। डारविन सहज चुनाव की जो व्याख्या करता है वह बहुत कुछ निर्दोष अवश्य है किन्तु उसमें हमारी प्रक्रिया और जैन-म्यूटेशन तथा अधिक मनोवैज्ञानिक तत्वों का घपला कर दिया गया है। नर थ्रीस्पाईड स्टिक्कल बैक का लाल पेट इसका बहुत ही स्पष्ट उदाहरण हैं—एक नर थ्रीस्पाइंड की दूसरे थ्रीस्पाइंड के लाल पेट को देखकर आक्रमण करने की प्रवृत्ति एक ऐसा व्यवहार हैं जिसमें मादा को आकर्षित करने की प्रवृत्ति, मादा का लाल रंग के प्रति आकर्षण और प्रतिद्वंदी का तुष्टि में बाधक होना सभी कुछ सम्मिलित है, फिर भी यह एक सहज प्रक्रिया है जो लाल पेट पर इस प्रकार केन्द्रित हो गई है कि उसे अन्य किसी पहलू की अपेक्षा ही नहीं है। यह प्रक्रिया-केन्द्रीकरण जहाँ स्टिक्कल बैक को शस्त्र-सज्जित होने के लिए प्रेरित करता है वहाँ इसमें अन्तर्निहित दूसरा प्रक्रिया-केन्द्रीकरण (मादा को आकर्षित करने की वासना) उसे और अधिक आकर्षक होने के लिए उत्तेजित करता हैं, और इस विकास में प्रक्रिया केवल Internal inspiration (अन्तः प्रेरित वासना) के रूप में ही नहीं External stimuli (बाह्य आवेगात्मक उकसाहट) के द्वारा भी समान रूप से निर्धारित होती हैं; इसे यदि इस प्रकार कहा जाए कि प्रक्रिया की प्रकृति या 'चुनाव' में अन्तः प्रेरणा और बाह्य उकसाहट की अन्विति कारण भूत है तो अधिक उपयुक्त होगा, और इस प्रक्रिया-केन्द्रीकरण को अस्तित्व रक्षा के उपकारक तत्वों का समूह न कहकर वासनात्मक धकेल और उसकी वासना-व्ययी क्रिया की प्रक्रियात्मक अन्वित कहा जा सकता हैं। इस अन्विती के दोनों पहलू प्रक्रिया-विकास के

लिए कितने आवश्यक हैं यह हम वनस्पतियों और पशुओं के प्रक्रिया यंत्रों और प्रक्रियात्मक व्यवहारों की तुलना करके सहज ही देख सकते हैं। वनस्पतियों की शारीरिक निर्माण की प्रकृति ही कुछ इस प्रकार से विकसित हुई है कि वे अपना भोजन वायु और पृथ्वी से ही प्राप्त कर सकते हैं और उनकी मैथुन-वासना की सन्तुष्टि वायु के द्वारा अथवा कृमियों या पक्षियों के द्वारा लाए गए हुए विरुद्ध लिंगी फूलों इत्यादि के रज वीर्य को प्राप्त करके ही हो जाती हैं। इसी प्रकार उनकी त्वचा और स्नायु तंतु भी बहुत कम चेतन हैं। यही कारण हैं कि उन्हें न तो चलने फिरने की आवश्यकता हैं और न गर्मी-सर्दी से बचाव की। किन्तु जिन वनस्पतियों को अपनी वासनाओं की संतुष्टि के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिला, उन्हें अपने प्रक्रिया केन्द्रों को बदलना पड़ा, वे अपने आहार की प्राप्ति के लिए दूसरे विषय खोजने को बाध्य हुईं। वनस्पतियों का जन्तुओं से भिन्न प्रक्रिया-विकास इसलिए हुआ हो सकता है कि उनकी शरीर-रचना ही इस प्रकार की थी या फिर इसलिए कि उनकी परिवृत्ति ही इस प्रकार की थी कि उनके प्रक्रिया-यंत्र इस प्रकार से विकसित हो गए! स्पष्टतः इसमें कारण प्रयास न होकर विकास ही हो सकता है। बर्गसां के विचार में जीवन का एक ही स्रोत है इसलिए वनस्पतियों और जन्तुओं के भिन्न विकास का कारण उनकी अस्तित्व-रक्षा की आवश्यकताएँ ही कही जा सकती हैं। उन्होंने बहुत विस्तार से इसका वर्णन किया है और उनकी काव्यमयता ने उसे बहुत आकर्षक बना दिया है, किन्तु क्यों एक ही उत्स से उत्पन्न जीवन एक ही स्थान पर एक ही परिस्थिति में इतनी विभिन्न दिशाओं की ओर बढ़ गए——इसका संतोषजनक समाधान हम बर्गसां के पास से नहीं पा सके। यदि एक ही प्रकृति के दो व्यक्तियों को एक ही परिस्थिति में रखा जाए तो कोई कारण नहीं कि वे भिन्न और इतने भिन्न क्यों हों।

यदि यह मान लिया जाए कि जीवन की उत्पत्ति प्रारंभ से ही कुछ भिन्न रूपों में हुई होगी तो यह आपत्ति-जनक क्यों समझा जाए? यह ठीक है कि ऐसे अनेक जीव आज भी विद्यमान हैं जो वनस्पतियों और प्राणियों के अन्तर के केन्द्र बिन्दु पर हैं, किन्तु इससे कुछ मौलिक अन्तर नहीं पड़ता।

सम्भवतः इसमें किसी को भी आपत्ति नहीं होगी कि जीवन पृथ्वी की अपनी प्रकृति और सर्य की किरणों की शक्ति——पूर्ण उष्णता के एक विशेष रासायनिक संघर्षण का परिणाम होगा जो कि प्रोटोप्लास्मिक (Protoplasmic) रासायनिक तत्व के रूप में उत्पन्न हो गया, इसलिए जीवन की वासना Push या Impetus पदार्थ की संकलयिता न होकर स्वयं संकलन की परिणाम है, इसीलिए जीवन और संकलित रासायनिक

पदार्थ भी अभिन्न हैं,—इसे दूसरे शब्दों में ऐसे भी कह सकते हैं कि प्राणी परिवृत्ति का विशेष संकलन है, जिसमें पृथ्वी के तत्व, सूर्य की किरणें इत्यादि ही नहीं, सर्दी-गर्मी इत्यादि सभी सम्मिलित हैं, जो कि इस रसायनिक द्रव्य की प्रकृति का निर्धारण करते हैं—या स्वयं उसमें एक तत्व हैं। यह स्वीकार कर लेने पर अब यह सुविधा से कहा जा सकता है कि प्रत्येक जीव परिवृत्ति के विशेष रासायनिक संकलन का ही परिणाम होगा और इस प्रकार वह प्रकृति में भी प्रत्येक अन्य संकलनों से भिन्न होगा। सम्भवतः यही कारण है कि जीवन इतनी दिशाओं में विभक्त मिलता है। इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक प्राणी प्रारम्भ से ही कुछ आधार भूत भिन्नताओं के साथ उत्पन्न होकर आगे होनेवाले परिवर्तनों में विकसित होता रहा है। सम्भव है चावल पहले कुछ भिन्न रंग के भिन्न प्रकार के भिन्न स्वाद के और भिन्न ऋतु में होते हों, किन्तु चावल और पीपल का उत्स एक ही हो, यह न तो अवश्यक ही है और न असंभव ही। इसी प्रकार मच्छर और मनुष्य का एक ही उत्स से उत्पन्न होना या न होना समान रूप से सम्भाव्य है, तो भी मच्छर और मनुष्य का बहुत एक जैसी अथवा एक ही रासायनिक अन्विति से विकसित होना बहुत सम्भव है।

किन्तु जीवन का उत्स क्या है, यह हमारे लिए यहाँ उतना महत्वपूर्ण नहीं है, हमारे लिए महत्व इस बात का है कि परिवृत्ति प्राणी पर कहाँ तक प्रभाव डालती है अथवा वह कहाँ तक परिवृत्ति से निर्धारित होता है। इसके लिए हमारा सहज और सामान्य यही उत्तर हो सकता है कि जिस जाति के जैन्ज़् पर परिवृत्ति का जितना अधिक प्रभाव पड़ता है, अथवा जिस जाति के जेन् जितने अधिक बाह्य प्रभाव के लिए खुले हैं वह जाति उतनी ही अधिक परिवृत्ति से निर्धारित होती हैं, जैसा कि हम आगे और भी विस्तार से देखेंगे।

किन्तु एक बार जीवन के किसी भी रूप में अस्तित्व में आ जाने पर उसका परिवृत्ति के साथ प्रक्रियात्मक-सम्पर्क स्थापित होता है और एक के बाद दूसरी सन्तति में आवश्यकतानुसार कुछ न कुछ सम्भावित परिवर्तन होते रहते हैं—जिसके लिए हम पीछे कुछ लिख आए हैं और आगे एक निश्चित सैद्धान्तिक स्तर पर और भी देखेंगे। पीछे हमने देखा था कि कैसे प्रवृत्तियां विकसित होती हुई या तो प्राणी की शरीर रचना में, या फिर उसके स्नायविक प्रबन्ध की प्रकृति में अपना स्थान बनाकर व्यवहार के विकास का या परिवर्तन का कारण होती हैं। इसी प्रकार हमने शिक्षित और अशिक्षित चूहों का उदाहरण भी दिया था कि कैसे ३४ वीं पीढ़ी में परीक्षित

चूहों में काफी बड़ा अन्तर पाया गया था। जैन्ज़ में जो अधिक इनर्ट Inert जेन भी हैं, वे यदि नहीं भी बदलते तो भी ऐलैल्ज़ (शीघ्र परिवर्तित अथवा प्रभावित होने वाले जेन) निरन्तर प्रभावित होते रहते हैं और वे इस प्रकार प्राणी की परिवृत्ति को उसके शारीरिक संस्थान में निहित करते रहते हैं। Somesthetic System (जर्म के अतिरिक्त जीवन-पदार्थ) जो इन क्रोमोसोम्ज़ (जैन्ज़ को धारण करने वाले लम्बे डब्बे जिनका स्नायुओं से भी संबंध है) से विकसित होता है, इस प्रकार उत्तराधिकार में प्रक्रिया को और परिवृत्ति को एक विशेष और भिन्न शारीरिक संस्थान के रूप में ग्रहण करता रहता है। इस प्रकार घनीभूत होते हुए प्रवृत्ति या प्रक्रिया और परिवृत्ति (भौतिक) के प्रभाव हमारे विकास में कारण बनते हैं।[1] किन्तु वर्गसां इस विकास में मनोवैज्ञानिक विकास को अधिक मुख्य समझता है, यद्यपि वह एक ऐसी जीवन की लहर की कल्पना करता है जो अभौतिक हैं और अविभाज्य है। इस प्रकार उसका मन भी एक सीमा तक अभौतिक और अविभाज्य है। वह कहता है—"इस प्रकार हम Eimer से तब सहमत नहीं हो सकते जब वह कहता है कि भौतिक और रासायनिक कारणों का संकलन ही इसके लिए काफी है। इस के विपरीत, हमने आँख के उदाहरण से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यदि जर्म से जर्म में सीधे विकास क्रम को स्वीकार किया जाए तो मनोवैज्ञानिक कारणों को स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है। एक उत्तरोत्तर होता हुआ निश्चित दिशा की ओर परिवर्तन, जो निरन्तर पुंजीभूत होता हुआ अधिक से अधिक उलझन पूर्ण यंत्र को सम्भव करता है, निश्चित रूप से प्राणी के प्रयास का परिणाम है, क्योंकि बाह्य परिस्थितियों से स्वतंत्र यह प्रयास ही, जो कि एक जाति के सभी प्रतिनिधियों के लिए सामान्य है और जो उनके शरीर के बजाय जर्म में निहित है, और जो उनकी सन्तानों में और भी विकसित होता रहता है, विकास की ठीक व्याख्या दे सकता है।" इस प्रकार वर्गसां जीवन को एक मौलिक प्रवृत्ति या निरन्तर विकास शील मौलिक शक्ति के रूप में देखता है, जो अपनी अभिव्यक्ति या विकास के लिए पदार्थ को सहायक रूप में स्वीकार करती है। वह कहता है "यदि यह बात न होती तो विभिन्न दिशाओं में प्रगति शील प्राणियों में आँख का एक ही समान यंत्र कैसे सम्भव होता ?" इसलिए, उसके अनुसार, "इससे यह परिणाम निकलता है कि विभिन्न दिशाओं में विकासशील

---

१ जर्म सेल और शरीर-विकास के संबंध की ठीक व्याख्या के लिए तृतीय और चतुर्थ निबंध देखें।

जीवन के आधार में एक मौलिक प्रवृत्ति या शक्ति की सम्भावना आवश्यक हो जाती है जो विकास की विभिन्न दिशाओं में उलझती हुई विभक्त हो गई है। ये विभिन्न जातियाँ इस मौलिक शक्ति-स्रोत से ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गईं त्यों-त्यों इनकी विभिन्नताएँ भी बढ़ती गईं, किन्तु कुछ पहलुओं में उनमें अब भी समता पाई जा सकती है, और यह समता होनी अनिवार्य है, नहीं तो हमारी यह मौलिक शक्ति की कल्पना निराधार हो उठेगी।" किन्तु यह अभौतिक शक्ति-स्रोत[1] क्या है, उनकी Creative Evolution से यह समझना कठिन है, और यदि हम उनकी दूसरी पुस्तकों की इसे समझने में सहायता लें तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाएगी क्योंकि Matter and Memory में वह एक प्रकार की आत्मा की कल्पना करते हैं, किन्तु वह आत्मा और Time and Free will का सहजमन (Intuition) इस समस्या को सुलझाने के बजाय और अधिक उलझा देते हैं। वह वास्तव में आत्मा की व्याख्या नवीन विज्ञान (१९ वीं शताब्दि का) के और नवीन वैज्ञानिक दर्शन के प्रकाश में करता है, इससे वह न पूरी तरह से आत्मा रह जाती है और न भौतिक मन। फिर यदि बर्गसां की कल्पना को हम एक बार पूर्णरूप से स्वीकार भी कर लें तो प्रश्न किया जा सकता है कि क्यों समता अन्यत्र बिल्कुल न होकर केवल आँख तक ही सीमित रही? फिर आंख भी सब प्राणियों में समान नहीं हैं। Infusoria में आंख के नाम पर केवल आँख का चिन्ह है, जिसे वर्गसां प्रकाश का प्रभाव स्वीकार करता है। यहाँ दो प्रश्न किये जा सकते हैं, प्रथम तो यह कि Infusoria की आँख का विकास, जो बाद की बात है, उन दो भिन्न श्रेणियों में एक समान ही कैसे हुआ जो अन्य पहलुओं में पहले एक समान रह कर भी बाद में भिन्न हो गए? यह सचमुच ही आश्चर्य की बात है कि एक प्राणी जिन पहलुओं में पहले एक समान ही थे उनमें वे भिन्न हो जाएँ और उस भिन्नता की प्राप्ति के बाद उनमें विकसित होने वाली आँख समान हो। दूसरा और अधिक उपयुक्त प्रश्न यह है कि प्रकाश Infusoria (इन्फ्यूज़ोरिया) के एक विशेष स्थल पर ही आँख के चिन्ह बना सका, वे चिन्ह अन्यत्र क्यों नहीं बने? फिर वे चिन्ह ही आगे आँख के रूप में क्यों विकसित हुए? यह संभव है कि प्राणी ने प्रयास भी किया हो किन्तु केवल प्रयास ही कैसे इस उलझन पूर्ण यंत्र को सम्भव कर सका? सम्भव है बर्ग सां का Common-Stuff से अभिप्राय Common Physiology (समान शारीरिक संस्थान) और

[1]Vital Impetus

इस प्रकार Common Heredity (समान उत्तराधिकार) से हो, जो जीवन के एक उत्स के कारण सम्भाव्य है। किन्तु हम शीघ्र ही देखेंगे कि इसके लिए भी कोई वास्तविक आधार नहीं है। बर्गसां स्वयं ही एक श्वेत बिल्ली का उदाहरण देता है जिसकी आँखों में देखने की शक्ति नहीं रहती, और वह स्वीकार करता है कि इसका केवल शरीर वैज्ञानिक कारण ही समझा जा सकता है। तो हम नहीं समझते कि यही कारण सार्वभौमिक रूप से क्यों न स्वीकार किया जाए? इंफ्यूज़ोरिया के चक्षु-चिन्ह को प्रकाश का परिणाम स्वीकार कर लेना और मनुष्य या पक्षी की अत्यन्त विकसित आँख को किसी मनोवैज्ञानिक प्रयास से विकसित और जीवन की अन्तर्गत एकता का समान कहना ऐसा ही है जैसे कोई केवल प्रोटोप्लास्म (सजीव रासायनिक द्रव्य) के जीव अमोयबा को तो केवल रासायनिक संकलन का परिणाम कहे और मनुष्य में आत्मा की ज्योति के जगमगाने की बात करे। मोल्लुस्क और मनुष्य की दो सर्वथा भिन्न जातियों में विभाजित वह 'मौलिक जीवन शक्ति' यदि किसी मनोवैज्ञानिक कारण से विभाजित हुई हैं तो उसकी यह भिन्नता आँख पर भी प्रभाव शाली होनी ही चाहिए। इस प्रकार बर्गसां जिस सुविधा के लिए मनोवैज्ञानिक शक्ति और किसी रहस्यमय जीवन-स्रोत की कल्पना करता है वह समस्या को और भी अधिक उलझा देती है।

फिर, मोल्लुस्क और मनुष्य की आँख में आश्चर्य जनक समता दिखाकर जो जीवन की एक सार्वभौम योजना या सार्वभौम जीवन-शक्ति की सम्भावना को सिद्ध करते हैं वे आँखों की अनन्त विभिन्नताओं को भूल कर केवल एक उदाहरण चुन लाते हैं। ये सब आँखें एक ही ढंग से कार्य करती हैं किन्तु एक ही ढंग से बढ़ती (Develop) नहीं होतीं और न एक ही समान विकसित होती हैं। रीढ़ धारियों की आँख में रेटिना (विशेष स्नायु-गुच्छ) और इसके प्रकाश ग्राहक कोष प्रकाश से भिन्न दिशा में उद्दिष्ट हैं जब कि मोल्लुस्क में प्रकाश की ओर अभिमुख हैं। यही गम्भीर अन्तर कुछ मूत्र न ग्रहण करने वाली, अरीढ़धारी प्राणियों की आँखों में पाया जाता है। इसलिए वास्तव में यह जीवन की प्रकृति और परिवृत्ति है जो एक ही कार्य के लिए करोड़ों भिन्नताओं को जन्म देती है। असंख्य रीढ़धारी और अरीढ़धारी प्राणियों में स्पष्ट रूप से बाह्य विषयों को देखना अथवा प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया शील होना एक सामान्य व्यापार है। कुछ प्राणियों में, जिनके हम आगे उदाहरण देंगे, यह किसी भी विशेष महत्व से रहित है, जब कि कुछेक में, यद्यपि ऐसे बहुत कम प्राणी होंगे, यह व्यापार हानिकारक भी हो सकता है। किन्तु यह परिवृत्ति से लाभ उठाने में एक स्वभावतः लाभप्रद व्यापार

हैं। कुछ प्राणियों में तो यह व्यापार केवल प्रकाश की उपस्थिति या अनुपस्थिति की सूचना देने भर तक सीमित है, जब कि दूसरों में यह आकृति का पूर्ण चित्र ग्रहण करने में समर्थ हैं, जो आकृति प्रकाश को प्रतिभासित करती है। यहाँ तक कि ये आंखें विषय की दूरी, गति और रंग तक को ठीक ठीक बता सकती हैं।

प्रकाश-ग्रहण करने की क्रिया अधिक विशेष और निर्धारित है। यह कल्पना की जा सकती है कि इस प्रक्रिया के विकास का केवल एक ही मार्ग था, कम से कम केवल एक ही सब से अच्छा ऐसा यंत्र हो सकता था जो बाह्य प्रकाश विषयों का संवेद कर सके। तो भी वास्तव में प्राणियों की आँखों (Photoreceptors) की असंख्य विभिन्नताएं देखी जा सकती हैं। कुछ एक कोष वाले प्राणियों में शरीर विभिन्न कोषों में विभाजित न होने से, सारा का सारा ही प्रकाश-किरणों की उकसाहट के प्रति प्रतिक्रिया शील (sensitive) हैं, जब कि दूसरों में एक विशेष प्रकाश-संग्राहक बिन्दु प्रोटोप्लास्म में उत्पन्न हो गया है। किन्तु चित्र-ग्राहिणी आँखें भी, साधारण प्रकाश-ग्रहण के प्रकार की दृष्टि से भी, जिसके अनुसार वे कार्य करती हैं, किसी प्रकार से भी समान नहीं हैं। इस दृष्टि से सामान्यतः चार प्रकार की आँखे देखी जा सकती हैं : लैंजयुक्त, केवल सूक्ष्म सुराखों वाली, अनेक ट्यूबों वाली और गुम्बदाकार या गोल आँखें। पहली सामान्यतः रीढ़ धारियों में, दूसरी नॉटिलुस (विशेष जल जन्तु) में और तीसरी मक्खियों में पाई जा सकती हैं जब कि चौथी अनेक कृमियों में विभिन्न स्तरों पर देखी जा सकती हैं। (Simpson)

अकेले कृमियों में ही आँखों की असंख्य विविधताएं देखी जा सकती हैं। कुछ कृमियों में जहाँ केवल एक लैंज ही आँख के लिए पर्याप्त है वहां दूसरों में हजारों लैंज एक ही आँख में प्रयुक्त होते हैं। इतना ही नहीं, कुछ कृमियों में आश्चर्य जनक रूप से विकसित आँखों के साथ एक या अधिक ऐसी आँखें भी होती हैं जो नितान्त साधारण हैं और जिनसे वे कुछ भी काम नहीं लेते। ये आँखें सामान्यतः उन्हीं कृमियों के होती हैं जिनके नितान्त विकसित आँखें भी पाई जाती हैं। ये आँखें (ocelli) दूसरी आँखों से भिन्न दिशा की ओर उन्मुख होती हैं, कभी कभी सिर के ऊपर और कभी मस्तक के आगे की ओर, इसलिए ये वास्तविक आँखों से भिन्न दिशा में ही देखती हैं। कृमियों की वास्तविक आँखें सिर के दोनों (दाहिने—बाएं) ओर

लगी होती है । सम्भवतः ocelli दूसरी दिशाओं से (ऊपर या सामने से) आने वाले शत्रुओं को, प्रकाश और छाया के ज्ञान द्वारा, देखने में सहायता देती हैं, किन्तु यह भी प्रयोगों से सिद्ध नहीं हो सका है । एक विशेष मछली की प्रत्येक भुजा पर एक आँख होती है । (Beaty)

इन सब उदाहरणों से स्पष्ट है कि बर्गसाँ जिस एकता की ओर इस प्रकार एक जीवन लहर (Elen vital) की कल्पना करता है उसमें कोई सत्यता नहीं है । अपने तर्क के प्रमाण में वह एक और उदाहरण देते हुए कहता है—यदि crystalline lens को अपसारित कर दिया जाए तो Iris (इरिस) स्वयं ही पुनः उसे उत्पन्न कर देती है, जब कि इरिस का कार्य और निर्माण लैंज से सर्वथा भिन्न हुआ है । उसके अनुसार, इस प्रकार भिन्न कारण से भिन्न कार्य का होना पुनः किसी आन्तरिक और सप्राण प्रेरणा की ओर संकेत करता है। जब कि यह उदाहरण वास्तव में बर्गसां के तर्कों का दुहरा खंडन करता है, क्योंकि यहाँ यह प्रमाणित होता है कि मोल्लुस्क और मनुष्य की आँख का समानान्तर विकास—Law of coordinated development (दो घटनाओं का समानान्तर कारण नियम द्वारा होना अथवा हेतु हेतु मद् संबंध) के अनुसार हुआ है वहाँ यह भी सिद्ध होता है कि यह उसी प्रकार शरीर-वैज्ञानिक प्रकृति का है जैसे नीली आँखों वाली सफेद बिल्ली का बहरी होना शरीर-वैज्ञानिक है। वास्तव में यह कार्य-कारण-संबंध ही है जो कि इस प्रकार हेतु हेतुमद् सम्बन्ध-विकास के द्वारा बिल्कुल भिन्न दिशामें विकसित प्राणियों में भी समान आँख को सम्भव कर सका और बिल्कुल एक ही जाति Genera के प्राणियों में भिन्न आँखों का कारण बना । बर्गसां बिल्ली के जिस उदाहरण में Co-ordinated Development (हेतु हेतु मद्-प्रगति) को स्वीकार करता है उसमें भी वह हेतु हेतु मद् प्रक्रिया केवल रंग के द्वारा कानों पर प्रभाव तक सीमित नहीं है, क्योंकि, जैसा कि Tait बताता है, यह बहरापन केवल नर में ही पाया जाता है, मादा में नहीं, जिसका अर्थ है कि इस बहरे पन पर Sesxual determination का प्रभाव भी पड़ता है और इस प्रकार इसकी जड़ें बहुत गहरी हैं। इसी प्रकार, डारविन के अनुसार प्राणी का रंग तक शरीर में गहराई तक प्रभाव डालता है । वह बताता है कि सफेद भेड़ों और सूअरों पर अनेक पौधे घातक प्रभाव डालते हैं । कुछ पौधों की जड़ों (Lachnanthes) को खा लेने पर इन सूअरों की हड्डियाँ और खुर पीले पड़ जाते हैं और गलने लगते हैं। खुर तो झड़ तक जाते हैं, जिससे सूअरों की अवश्यम्भावी मृत्यु हो

जाती है। किन्तु काले रंग के सूअरों पर वनस्पतियाँ ऐसा कोई प्रभाव नहीं डालतीं। इस उदाहरण से केवल यही प्रमाणित होता है कि ये सूअर अस्तित्व रक्षा की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति के रहस्यमय प्रभाव से प्रेरित होकर भी इन जड़ों को खाना नहीं छोड़ते प्रत्युत् यह भी कि शरीर में प्रत्येक परिवर्तन प्रायः ही दूसरे भागों पर भी अनिवार्य प्रभाव डालता है और इस प्रकार Coordinated development के सिद्धान्त को पुष्ट करता है।

वास्तव में इस तथ्य को कि यह शारीरिक प्रकृति और परिवृत्ति की सापेक्ष स्थिति ही है जो जेन म्यूटेशन की प्रकृति को निर्धारितकरती है अथवा जो कुछ भी घटित होता है वह इसीलिए क्योंकि वही उस समय घटित हो सकता था, समझना और धारण करना बहुत कठिन है, क्योंकि हम अपनी विशेष मानसिक स्थिति के कारण प्रत्येक प्रक्रिया और घटना के उद्देश्य और योजना की कल्पना करते हैं। E.S. Russell थ्रीस्पाईंड स्टिक्कल बैक की आँखों के बारे में कहता है· जहाँ तक मेरी कल्पना जाती है, स्टिक्कल-बैक अपना भोजन खोजने में अपनी आँखों से बहुत अधिक सहायता नहीं लेता, ये उसके सिर के प्रायः ऊपर होती हैं और प्रायः आते हुए शत्रु की सूचना देती हैं।" इससे फिर यही बात प्रमाणित होती है कि न तो किसी अंग विशेष का होना प्रयास पर निर्भर है और न जीवनकी एकत्व योजना या उद्देश्य-विस्तार पर, यह केवल एक यांत्रिक शरीर-योजना है जो अंगों को, शरीर की, अन्तर प्रकृति को और प्राणी की वासना और आत्म-व्ययी प्रक्रिया को निर्धारित करता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम प्रयत्न और मनोवैज्ञानिक पहलू से एक दम निषेध कर रहें हैं, पीछे प्रकिया की व्याख्या करते हुए हमने इसके महत्व को पूर्णरूप से स्वीकार किया है। जीवित और जड़ पदार्थ में निश्चित रूप से बहुत बड़ा अन्तर है, इसे कौन स्वीकार नहीं करेगा? और जीवन की सार्थकता यही है कि वह एक बार ज्यों ही अस्तित्व में आ जाता है, अपनी परिवृत्ति में से भोजन के रूप में कुछ ग्रहण करके आत्मसात करता है, उसकी कुछ वासनाएं होती हैं, जिनके लिए वह प्रयास करता है और परिवृत्ति के विषयों परकेन्द्रित अपनी अभिरुचियोंके अनुसार प्रक्रियाशील होताहै। उसकी ये प्रवृत्तियां और प्रक्रिया--केन्द्रीकरण एक सीमा तक अभौतिक भी कहा जा सकता हैं किन्तु ये उसी प्रकार अभौतिक हैं जैसे आग और पानी से बनी भाफ की धकेल से इंजन की क्रियाशीलता अभौतिक कही जा सकती है। किन्तु क्योंकि

जीवन की यह क्रिया-शीलता स्वयं उस रासायनिक द्रव्य की प्रकृति है जो प्राणी का शरीर है, अथवा यह कि क्योंकि क्रिया प्राणी के शरीर में प्रयुक्त द्रव्यों के रासायनिक संघर्षण के कारण होने वाले शक्तिशाली विस्फोट की परिणाम है, इसलिए इसकी प्रत्येक प्रक्रियात्मकता जहाँ भीतरी धकेल को निकास देती है वहाँ इसमें कुछ अनिवार्य परिवर्तनों को भी सम्भव करती है। यह विस्फोट प्राणी में क्रमशः वासना, क्रियाशीलता और प्रक्रियात्मक व्यय को जन्म देता है। यदि इस विस्फोट से उत्पन्न वासना और तज्जन्य क्रियाशीलता को निकास का साधन न मिले तो प्राणी के लिए जीना ही कठिन हो जाए, इसी से वह असीम व्याकुलता से अपनी वासनात्मक धकेल से प्रेरित हुआ अपने निकास का साधन खोजता है। और यही क्रिया शीलता तथा अनुक्रम में प्राप्त प्रक्रियात्मक व्यवहार विभिन्न अंगों के विकास का मनोवैज्ञानिक कारण कहा जा सकता है। जब एक वासना है, अवश्य ही उसकी कोई अभिव्यक्ति भी होगी ही, जब मैथुन वासना है तब उसकी अभिव्यक्ति के प्रक्रियात्मक अंग भी होंगे ही। किन्तु हम एसा कहने में इस प्रकार जल्दी नहीं करते, नहीं तो अमोयवा भी बिना किसी अंग के ही अपनी वासनाओं की सन्तुष्टि करता ही है। शायद कहा जाए कि बड़ी वासना के लिए बड़ी तृप्ति चाहिए, किन्तु यह बड़ी वासना आई कहाँ से ? क्या यहाँ विकास की मूल प्रेरणा, जो स्वयं जीवन पदार्थ की अन्तर्निहित प्रकृति ही है, इन दोनों का मूल स्रोत नहीं कही जा सकता ?

इन वासनाओं के अतिरिक्त भी ऐसा बहुत कुछ है जिसे हम प्रक्रियात्मक योजना के अन्तरगत रख सकते हैं किन्तु जो सर्वथा यांत्रिक है, इसे हम पीछे Reflexive behavior के प्रकरण में देख आए हैं। इस प्रकार यह विकास और प्रक्रिया इतने विभिन्न स्तरों पर और इतने विभिन्त तत्वों से निर्धारित होती हैं कि हम सहज ही एक को देखते हुए दूसरे के महत्व को भूल जाते है! पालतू मुर्गों के पँखों की अस्थियां जंगली मुर्गे के पंखों की अस्थियों से शरीर के शेष पिंजर के अनुपात में छोटी होती हैं जब कि पैर और टांगों की अस्थियां अधिक भारी और सशक्त होती हैं, इसे हम परिवृत्ति के द्वारा यांत्रिक ढंग से निर्धारित जेनेटिक विकास—व्यवहार का परिणाम कह सकते हैं ? जब कि श्वेत बिल्ली के बहरेपन का कारण शरीर वैज्ञानिक संयोजन को कहा जा सकता है।

किन्तु वासना या तज्जन्य प्रक्रिया से उत्पन्न परिवर्तन, उन्हें परिवर्तन ही कहा जाए तो, मौलिक और महत्वपूर्ण नहीं होते, ये केवल प्रक्रिया—केन्द्रों में आवश्यकतानुसार सामान्यव्यवस्थात्मक परिवर्तन होते हैं। जैसा कि हम पिछले अध्याय में भी देख आए हैं, ये परिवर्तन जेन में उस प्रकार 'निहित' नहीं होते जैसे म्यूटेशन-जन्य अन्तर, प्रत्युत ये उनसे एक दम भिन्न हैं। जहाँ तक हेतुहेतु मद् अभिवृद्धि (Law of co-ordinated development) का संबंध है, वह पूर्णतः जेन की प्रकृति में केन्द्रित योजना उद्घाटन भर होता है। इन सबको हम और भी विस्तार से अगले अध्यायमें देखेंगे।

REFERENCES

1. *Beaty. John . Y* .. Nature is Stranger than Fiction. 1943 George G. Harrap and Co., London.

2. *Bergson* .. Creative Evolution, 1944 2nd Impression. The Modern Library, New York.

3. *Do.* .. Matter and Memory 6th Impression 1950, Library of Philosophy, London.

4. *Do.* .. Time and Free Will 6th Impression 1950, Library of Philosophy, London.

5. *Cheesman* .. Every Day Doings of Insects 1st Ed. 1924, Georg G. Harrap and Co., London.

6. *Darwin* .. Origin of Species 1948. 3rd Impression, Thinker's Library, London.

7. *Hebb D. O.* .. Organization of Behavior, 1949. New York.

8. *Macdougal* .. Psychology, sixth Impression 1933, London.

9. *Madowall* .. General Physiology and Bio Chemistry, 3rd Ed. 1946, Johan Murray, London.

10. *Morgon T. and Stillar* Physiological Psychology 2nd Edition. MacGraw Hill Co New York.

11. *Murphy* .. General Psychology, 2nd Ed. 1938. New York.

12. *Russell E. S.* .. Behaviour of Animals 2nd Ed. 1938, Edward Arnold and Co., London.

13. *Sympson* .. Meaning of Evolution, 1st Ed. 1949, Yale University Press.

14. *Tinbergen* .. The Study of Instinct 1st Ed. 1951. Oxford University Press London.

३–जेनेटिक्स: विकास की यांत्रिक प्रक्रिया

पिछले अध्याय में हमने विकास का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करन का प्रयास किया। यह स्पष्ट है कि हमारी स्थापना और निर्णयों पर कुछ आपत्तियाँ उठाई जा सकती हैं, किन्तु फिर भी हम इस विषय को काफी दूर तक समझने में सफल हो सके हैं। इसमें एक मुख्य बाधा यह भी थी कि इस ओर वैज्ञानिकों का अभी पर्याप्त ध्यान नहीं गया, प्रवृत्ति का अध्ययन यद्यपि काफी प्रामाणिक स्तर पर हो रहा है किन्तु उसका विकास के साथ क्या संबंध है, यह विषय अभी तक अध्ययन का विषय नहीं बनाया गया।

वहां हमने देखा था कि प्राणी की कोई भी प्रक्रिया या तो यांत्रिक व्यापार मात्र है अथवा वासना की धकेल (Appetitive Push) के उपभोग (consumption) का बाध्यता जन्य व्यवहार। किन्तु इस व्यापार या व्यवहार के निर्धारण में परिवृत्ति का भी बहुत बड़ा हाथ है क्योंकि प्राणी की प्रक्रिया के विषय परिवृत्ति से ही उपलब्ध होते हैं।[१] किन्तु परिवृत्ति न तो क्रिया की धातृ है और न विधायक, वह केवल उसके क्रियान्वित होने के उपकरण जुटाती है। इससे सुरक्षात्मक व्यवहार (Adaptive-Behavior) प्राणी के व्यवहार का प्रेरक और प्रत्यक्ष निर्धारक न होकर केवल परोक्ष रूप से संशोधक (Modifier) है। जहाँ तक परिवृत्ति के अधिक उत्तम उपयोग का संबंध है, वहाँ भी हम प्राणी की 'मनःस्थिति' या वासना को ही उसका पदार्थ कह सकते है, परिवृत्ति केवल उसकी आत्मव्ययी प्रक्रिया की आकृति––उसके घटित होने के प्रकार का एक सीमा तक निर्धारण मात्र करती है, यद्यपि अधिक उत्तम उपयोग का कौशल इस दिशा या प्रकार से ही अधिक संबंध रखता है।

किन्तु इस अध्याय में हम विकास के उन मूल कारणों को समझने का प्रयास करेंगे जो स्वयं जीवन-पदार्थ की प्रकृति और उसके परिवर्तन से संबंध

---

[१] यश देव 'शल्य'––पन्त का काव्य और युग 1951, किताब महल, इलाहाबाद। इस पुस्तक में हमने परिवृत्ति को बहुत अधिक महत्व देते हुए संबंध का विवेचन किया है।

रखते हैं, जब कि अगले अध्याय में वासनात्मक प्रक्रिया और मनस्थिति के मूलतत्वों के विवेचन का प्रयास किया जाएगा।

'विकास' में हम पहले से ही एक ऐतिहासिक प्रक्रिया और क्रम (chronological order) को स्वीकार कर चलते हैं। हम यह स्वीकार करते हैं कि प्रतींयमान भिन्नताओं का कोई एक स्रोत है और इस शृंखलता में कोई नियम और शृंखला विद्यमान है जिसका एक इतिहास है। मनुष्य प्रारंभ से ही विभि न्न जीवों की आश्चर्य जनक भिन्नता और समता को देखता और अनुभव करता आया है, जैसाकि "धर्मोहि तेषामधिको विशेषः, धर्मेण-हीनाः पशुभिः समानाः" से भी स्पष्ट है। किन्तु इस 'ज्ञान' में किसी प्रकार की वैज्ञानिक दृष्टि न थी, जिसका उद्भव १९वीं शताब्दि में हुआ। उस युग में केवल मनुष्य और पशु इसी अर्थ में समान समझे जाते थे कि दोनों समान रूप से पीड़ा या सुख अनुभव करते हैं, किन्तु मनुष्य ईश्वर की ओर से ही वर प्राप्त कर अवतीर्ण होता था, जैसा कि "का जाने कछु पुन्न प्रगटे, मानुसा अवतार" से प्रकट होता है। इन लम्बे युगों में बड़ी श्रद्धा और आश्वस्तता से यह स्वीकार किया जाता रहा कि संसार ईश्वर की कृति है और मनुष्य को ईश्वर नें विशेष रूप से इस सृष्टि रचना के उद्देश्य को समझने के लिए बनाया हैं। यह आश्चर्य की बात है कि एक भी ऐसा दार्शनिक इन हजारों वर्षों की अथाह परम्परा में नहीं उत्पन्न हुआ जो जीवन में ऐतिहासिक शृंखला को देख सकता। सौभाग्य से १८वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में (1744--1829) लामार्क ने इस ओर महत्वपूर्ण कदम उठाया। लामार्क यद्यपि ऐतिहासिक क्रम को अच्छी प्रकार से समझता था किन्तु उस पर उस युग का प्रभाव होना भी आवश्यक था। दूसरे, उस समय जेनेटिक्स, आकृति विज्ञान (Morphology) शिलाओं के नीचे दबे अवशेष या फोस्सिल (Fossile) तथा शरीर विज्ञान physiology — Anatomy के तथ्यों का उतनी दूर तक ज्ञान नहीं था। वह समझता था कि मनुष्य इस विकास-प्रक्रिया की चरम् सीमा है और जो शृंखला मानव की ओर विकास शृंखल से टूटकर दूसरी ओर बढ़ गई है इसका कारण जीवन की सामयिक परिवृत्ति की बाध्यता है। वह समझता था कि सामयिक परिबृत्ति प्राणी के व्यवहारों का और उसके तथा अन्य स्रोतों के द्वारा विकास का निर्धारण करती है। उसके अनुसार परिवृत्ति के उपभोग के लिए उचित प्रवृत्तियों की आवश्यकता है और प्रवृत्तियों के प्रयोग और अप्रयोग Use and Disuse के द्वारा यह प्राणी की

आकृति और प्रकृति को निर्धारित करती है। डारविन लामार्क से बहुत आगे बढ़ा और उसने प्राकृतिक चुनाव, उत्तराधिकार का प्राणी की शरीर रचना पर सीधा प्रभाव (परिवृत्ति से निर्धारित होकर) तथा प्रयोग और अप्रयोग को विकास के कारण रूप में अपने प्राणी—व्यवहार के अध्ययन के बाद प्रस्तुत किया।

इससे जीव-विज्ञान लामार्क और डारविन का बहुत आभारी रहेगा, किन्तु वे दोनों अपने युग की सीमाओं से बँधे थे, इसलिए उन्होंने जो कुछ कहा, आज उसका ऐतिहासिक महत्व ही अधिक है। आज प्राणियों की भिन्नता और एकता के कुछ दूसरे ही स्रोत समझे जाते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि भिन्नता आश्चर्य जनक रूप से बहुत अधिक है—एक ओर विशाल-काय हाथी और ह्वेल मछलियाँ हैं तो दूसरी ओर अनुवीक्षण यंत्र से भी कठिनाई से दीख पड़नेवाले कीटाणु। इसी प्रकार प्राणी अपने व्यवहारों और जीवन के प्रकारों में भी असीम भिन्नता लिए हुए हैं। पिछली, लगभग अढ़ाई शताब्दियों से आकृति वैज्ञानिक (Morphologist) और शल्य वैज्ञानिक (Anatomist) वर्तमान जीवों का अध्ययन कर उनके शारीरिक निर्माण के नियमों को जानने का प्रयास करते रहे हैं और उनकी शिला-अवशेषों से तुलना करते रहे हैं, किन्तु अभी तक उसकी कोई सीमा दिखाई नहीं पड़ती। शिला अवशेषों को अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों (Paleontologists) ने अथक परिश्रम से शिलाओं के नीचे दबे-छिपे या अन्यत्र भीषण वनों में पड़े करोड़ों वर्ष पुराने जीवों की जातियों को खोजा है, किन्तु इनका समन्वय डारविन से पूर्व बिलकुल भी नहीं हो सका था और इनके समन्वय का रहस्य जेनेटिक्स के वर्तमान अध्ययन से पूर्व, जिसका प्रवर्तन मुख्यत: मैंडल (Mendal) से हुआ, नहीं जाना जा सका था।

डारविन ने जीव विज्ञान में एक अभूतपूर्व और अकल्पनीय रूप से महत्वपूर्ण युग का प्रारम्भ करते हुए जिस अन्तर्निहित एकसूत्रता की ओर संकेत किया और जिस योग्यता से उसको प्रमाणित किया, वह उसे सभी युगों के महानतम और प्रथम श्रेणी के प्रतिभाशाली व्यक्तियों में प्रतिष्ठित कर सकता है। उसने बड़ी योग्यता से कुछ निश्चित नियमों और कार्यकारण संबंधों की स्थापना और व्याख्या की और दिखाया कि यह दृश्यमान भिन्नता किसी ईश्वरीय सनक की परिणाम नहीं है, इसमें एक निश्चित कारण-कार्य संबंध शृंखला ह। (Simpson)

जीवित पदार्थ की सबसे बड़ी विशेषता है—पुनरुत्पादन, आत्मोघाटन के रूप में विकास (Development) और परिवृत्ति से भोजन के रूप में (भोजन विस्तृत अर्थ में) कुछ ग्रहण कर उसे आत्मसात करने की शक्ति। पुनरुत्पादन की प्रक्रिया एक बड़ी विचित्र प्रक्रिया है, क्योंकि उत्पादक तत्व या पदार्थ (Germ) परिवृत्ति से एकदम अपरिवर्तनशील है, इसलिए पुनरुत्पादन में उसका झुकाव ठीक उत्पादक की प्रतिलिपि प्रस्तुत करना होता है। यदि कहा जाय कि परिवर्तन उस पर ठूंसा जाता है, तो भी अत्युक्ति न होगी। इसके विपरीत अभिवृद्धि बाह्य परिवृत्ति के समीकरण से ही संभव होती है, जिससे उसकी प्रकृति का परिवृत्ति पर निर्भर होना अनिवार्य हो उठता है। इतना ही नहीं, जर्म भी पुनरुत्पादन में उसका आश्रय लेता है, नहीं तो जर्म-सेलकी द्विधाविभक्ति कभी संभव ही न हो। आत्मजनन या पुनरुत्पादन के इस विज्ञान को जेनटिक्स कहते हैं और इस विज्ञान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसने आत्मोपादक तत्वों की आणविकता को, इसके मौलिक घटकों को, जिन्हें जेन कहते हैं, खोज निकाला हैं। उस रासायनिक प्रक्रिया को, जिसके द्वारा जेन अपनी प्रतिकृति—संन्तानों का जनन और उनकी प्रकृति का निर्धारण करता है, जानने में अभी तक जेनेटिक्स समर्थ नहीं हो सका है, किन्तु फिर भी सर्वमान्य रूप से उसके विषय में जितना ज्ञान हैं, Dobzhansky उसे इस प्रकार चित्रित करता है—

क + ख = २ क + ग

यहाँ 'क' जब कि जेन का प्रतीक है 'ख' समीकृत परिवृत्ति का। जेन कुछ निश्चित समय के बाद द्विधाविभक्त हो जाता है और २"क" का रूप धारण कर लेता है, जब कि अतिरिक्त उपज (By Product) के रूप में यह गया शारीरिक कोषों को जन्म देता है। यद्यपि यह मात्र प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, किन्तु इससे जेन-आत्मजनन और अतिरिक्त उपज के रूप में शारीरिक सेल या (Soma cells) के जनन की प्रकृति को समझने में बहुत अधिक सहायता मिलती है, क्योंकि यह एक महत्वपूर्ण तथ्य को चित्रित करता है कि जेन सदैव आत्म-जनन परिवृत्ति से अप्रभावित रह कर कैसे करता है। जेन कोष के घटक तत्वों में सबसे अधिक सक्रिय और मौलिक रासायनिक कण हैं। जेन प्रत्येक अनुगामी कोष विभाजन के अन्तर काल में आत्म-जनन की एक निश्चित प्रक्रिया में से बीतते हैं, जो कि अन्ततः पूरे कोष विभाजन का रूप ग्रहण करती है। वही जेन न

केवल अभिवर्धमान (Developing) शरीर के प्रत्येक शरीर सेल (Some cell) को जन्म देते हैं प्रत्युत अक्षुण्ण रूप से सन्तान में हस्तान्तरित भी किये जाते हैं। यह परिवर्तन और अपरिवर्तन का एकत्र मिलन जेन की विचित्र रासायनिक विशेषता के कारण ही सम्भव हो सका है। प्रायः शून्य अपवादों के अतिरिक्त जेन अपनी अपरिवर्तित प्रतिकृति को ही जन्म देते हैं। यह विशेषता जीवन पदार्थ को अपनी एकता और अविच्छिन्नता को बनाये रखने की शक्ति प्रदान करती है और इससे न केवल वह परिवृत्ति के थपेड़ों को सहन करने में ही समर्थ होता है प्रत्युत उसे बदलने में भी कभी कभी सफल होता है। आत्म-जनन जीवन का आधारभूत गुण है, इससे कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर प्रथम आत्मोपादक अणु का उद्भव जीवन का प्रथम संदेश था। (Muller)

जैसा कि क + ख = २क + ग से स्पष्ट है, जेन के आत्म-जनन में उस की एकता भंग न होने पर भी परिवृत्ति उसकी अभिव्यक्ति—शरीर की प्रकृति (Phenotype)--में बहुत अधिक प्रभावशाली और निर्णायक हो सकती है। जो व्यक्ति एक जैसे दिखाई पड़ते हैं, उन्होंने अपने पुनरुत्पादक पदार्थ में कुछ ऐसे तत्व प्राप्त किये हैं जो परिवृत्ति के प्रभाव को समान रूप से ग्रहण करते हैं, अथवा जो एक विशेष परिवृत्ति में एक विशेष शरीर-स्थिति (Phenotype) को जन्म देते हैं। इस प्रकार दो ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने पुरुत्पादक पदार्थ में समान तत्व प्राप्त किये हैं ठीक एक ही परिवृत्ति में एक ही जैसा शारीरिक विकास करेंगे, यहाँ तक कि उनका मानसिक विकास तक एक सा होगा। अनेक बार तो ऐसा देखा गया है कि दो युग्म (twin) भाई सर्वथा भिन्न परिवृत्ति में बहुत कम बदलते है और रोगी तक एक साथ होते है। बर्मिंघम विश्व विद्यालय के शिशु-जन्म-संबंधी विषयों के डाक्टर प्रो० डेमहिल्डा लायड ने तो दो युग्म लड़कियों की अन्तर्यामिता का भी एक उदाहरण दिया है। उन्होंने बताया कि एक बार एक कक्षा की युग्म बहनों को एक विषय की आधी-आधी पुस्तक दी गई। इससे उन्हें वे बातें भी ज्ञात हो गईं जो उन्होंने व्यक्तिशः नहीं पढ़ी थीं। अध्यापिका को सन्देह हुआ कि उन्होंने एक दूसरे की नकल की हैं, किन्तु बाद में उसका यह भ्रम निवारण कर दिया गया, क्योंकि दोनों दूर दूर बैठी थीं, यह सिद्ध हो गया* । किन्तु यह या ऐसे ही उदाहरण अस्पष्ट हैं, इससे हम यहाँ इन पर विचार नहीं करना

---

* हिन्दुस्तान (दिल्ली; अक्तूबर २२, १९५२।

चाहते। किन्तु यह एक प्रयोग सम्मत तथ्य है कि एक ही जेनोटाइप के दो व्यक्तियों में एक ही परिवृत्ति में प्रायः कोई अन्तर नहीं होगा, किन्तु दो भिन्न परिवृत्तियों में उनकी शरीर-प्रकृति में तदनुकूल कुछ अन्तर होगा और इस प्रकार मूलतः एक ही पदार्थ दो कुछ भिन्न आकृतियों में अपनी अभिव्यक्ति करेगा। जेन जीवन का मूल बीज होने से शरीर की सम्पूर्ण अभिवृद्धि की दिशा का इस प्रकार निर्धारण करते हैं जो कि उनमें सिमटे तथ्य का ही उद्घाटन हैं। परिवृत्ति के प्रभाव के लिए यदि यह भी कहा जाय कि विभिन्न परिवृत्तियों में जेन की विभिन्न अभिव्यक्तियां उसमें पहले से ही निहित रहती हैं, तो यह अनुपयुक्त न होगा; अब यह परिवृत्ति पर निर्भर हैं कि वह असीम संभावनाओं में से किसे अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करती है। इसलिए उत्तराधिकार व्यक्ति का अपने जनक के समान शारीरिक प्रकृति प्राप्त करना नहीं है प्रत्युत वह "प्रवृति" प्राप्त करना है जो अपने जनक के समान एक विशेष (अथवा किसी भी) संभावित परिवृति में सन्तान में एक संभावित अभिव्यक्ति को क्रियान्वित करती है। (sinnot and Dunn) यदि एक पौधा उत्तराधिकार में ऐसे बीज प्राप्त करता है जिनकी अभिव्यक्ति (phenotype) फुंगस (एक घातक कीटाणु) के जीवन के लिए अनिवार्य है, तो पौधे के लिये परिवृत्ति में इस कीटाणु की उपस्थिति उन विशेष गुणों के विकास के लिये अनिवार्य हो उठेगी जिनका विकास उसके पूर्वजों में उस कृमि के कारण हुआ था। जैसा कि हम आगे देखेंगे, कुछ कीटाणुओं के लिए तो वीरुस आदि घातक कीटाणु परिवृत्ति में केवल इसलिए अनिवार्य हो उठते हैं क्योंकि वे उनके उन पूर्णजों की परिवृत्ति में विद्यमान थे जिनके लिए यह घातक थे और जिनके प्रतिरोध के लिए उन्होंने अपनी सन्तानों को भिन्न गुणों के साथ 'उत्पन्न किया'। परिवृत्ति पर इतनी निर्भता यद्यपि उन जीवों और पौधों में दृष्टि गोचर नहीं होगी जो काफी स्थिर और सुनिश्चित परिवृत्ति में रहते हैं, किन्तु उनमें भी यह बात आसानी से देखी जा सकती है, यदि परिवृत्ति में सामान्य सा अन्तर लाया जाए तो। जब मक्की खेतों में बोई जाती है तो उसका रंग सूर्य से लाल हो जाता है, किन्तु यदि उसे धूप न लगने दी जाए तो उसमें लाल रंग की अभिव्यक्ति नहीं होती। इस प्रकार मक्की लाल रंग उत्तराधिकार में प्राप्त करते हुए भी सूर्य के बिना उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाती। इसी प्रकार खरगोश की एक जाति, हिमालयन खरगोश, जिनमें कि गहरी भूरी आँखें और कान, पैर तथा पूंछ काले और शेष शरीर श्वेत होता है अपनी

स्थान पर काले और काले के स्थान पर श्वेत उत्पन्न होंगे। सामान्यतः यह समझा जाता है कि रंग और दूसरे गुण भी ठीक उसी प्रकार उत्तराधिकार में प्राप्त किए जाते हैं जैसे वे जनक में किसी विशेष परिवृत्ति में विद्यमान होते हैं, किन्तु यह धारणा एकदम गलत है। वास्तविकता यह है कि जनक सन्तानों को वह पदार्थ उत्तराधिकार में देते हैं जिसमें अपनी कुछ विशेष संभावनाएं हैं और जो विभिन्न परिवृत्तियों में उसी प्रकार क्रियान्वित होती हैं जैसे कि उनमें उनके जनक की होतीं। यदि हम उत्तराधिकार के निर्णायक पदार्थ और परिवृत्ति के संबन्ध की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति देना चाहें तो वह इस प्रकार होगा —

$$\text{क} + \text{ख}_1 = \text{२क} + \text{ग}_1$$
$$\text{क} + \text{ख}_2 = \text{२क} + \text{ग}_2$$
$$\text{क} + \text{ख}_3 = \text{२क} + \text{ग}_3$$

इस प्रकार यदि जेन की परिवृत्ति बदल भी दी जाती है तो भी स्वयं जेन में कोई परिवर्तन नहीं होता, अन्तर केवल उसकी अभिव्यक्ति में पड़ता है। जेन बड़ी वफादारी से अपनी प्रतिलिपियाँ बनाता रहता है। किन्तु यदि परिवृत्ति में परिवर्तन इस प्रकार का हो कि जेन अपनी प्रतिलिपि ही नहीं बना पाए तो उसकी पुनर्जनन की क्रिया रुक जाएगी और अतिरिक्त उपज (By-produt) के रूप में प्राप्त होने वाले सोमा सेल (कोष) भी नहीं उत्पन्न होंगे। जेन बहुत कम ही अपनी परिवर्तित प्रतिलिपि (वह भी अल्पतम मात्रा में) का निर्माण करता है। जेन की इस स्थिरता के विपरीत इसकी परिणति (Phenotype) विभिन्न परिवृत्तियों में तदनुसार बदलती रहती है— ग१, ग२, ग३,......।

किन्तु शारीरिक प्रकृति में यह परिवर्तन स्थायी नहीं होता, क्योंकि शरीर के उत्पादक जेन नहीं बदले होते, अतः इसे वास्तविक विकास नहीं कहा जा सकता, वास्तविक विकास तो तभी होता है जब जेन अपनी परिवर्तित प्रतिलिपि उत्पन्न करता है—अर्थात जनक अपने से भिन्न जेनोटाइप (जेन—प्रकृति के या समूह के) की सन्तान्त को उत्पन्न करते हैं; यह भिन्नता मूल में ही होने से एक दम स्थायी होती है। किन्तु यह परिवर्तन भी अपने अस्तित्व की सूचना अपनी अभिव्यक्ति में परिवर्तन के रूप में ही देता है। जेनोटाइप में

यह परिवर्तन परिवृत्ति से उस प्रकार प्रभावित नहीं होता जैसे शरीर में परिवर्तन, इस प्रभाव को सुदीर्घ अतीत से विभिन्न परिवृत्तियां और जेनोटाइप की अपनी प्रकृति के विविध संकलनों की एक अन्विति कहा जा सकता है। किन्तु प्राणी की मृत्यु या जीवन, परिवृत्ति में उसकी उपयुक्तता या अनुपयुक्तता उसके शरीर की प्रकृति पर निर्भर करती है, जिसका विकास अन्ततः जेनोटाइप की प्रकृति पर ही आधृत है। मेरे विचार में परिवृत्ति के परिवर्तन से प्रेरित फिनोटाइप (शरीर) में परिवर्तन किसी प्रकार के सुविधात्मक चुनाव (Adaptive selection) के रूप में नहीं होता, बल्कि यह उसी प्रकार जेन की रासायनिक प्रकृति और परिवृत्ति की प्रकृति के सम्मिश्रण का परिणाम होता है जैसे कोई भी रासायनिक द्रव्य विभिन्न द्रव्यों के साथ सम्मिश्रण में विभिन्न अभिव्यक्तियाँ करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि इससे प्राणी की Adaptability--unadaptability में कुछ अन्तर 'नहीं पड़ता, संभव है रंग में Phenotypic फिनोटाप संबंधी परिवर्तन विशेष परिवृत्ति में प्राणी के लिए लाभदायक प्रमाणित हो सके, किन्तु यह केवल संभावित है और फिर यह इसका कारण तो कभी भी नही है। फिनोटाइप में यह प्रभावात्मक परिवर्तन यद्यपि जेनोटाइप में परिवर्तन का सूचक नहीं है, किन्तु यह परिवर्तन जेनोटाइप की प्रकृति में निहित सम्भावित अभिव्यक्ति की प्राप्ति का सूचक अवश्य है और इस प्रकार वह एक ऐसे प्रति--प्रक्रिया 'यंत्र' Reaction Norm का विधायक बनता है जो परिवृत्ति के प्रति एक विशेष प्रति-प्रक्रियात्मक रुख अपनाता है, जिसका अपना कुछ विशेषसुरक्षात्मक मूल्य (survival value) होता है। जेनोटाइप, फिनोटाइप और परिवृत्ति के इन सापेक्ष संबंधों को यदि हम प्रतीकों में उपस्थित करें तो यह कुछ इस प्रकार होगा

$$\text{क}_{\text{य}} + \text{ख}_{\text{र}} = \text{ग}_{\text{यर}} + \text{स} \;(\text{प—अ})$$

यहाँ क जबकि जेनका प्रतीक है तो ख परिवृत्तिका, तथा य और र 'क' तथा 'ख' की अपनीं अपनी प्रकृति के। य प्रकृति का र प्रकृति के ख के योग से जिस प्रति-प्रक्रियात्मक यंत्र या फिनोटाइप को जन्म देगा वह न केवल परिवृत्ति की प्रकृति र से युक्त ही होगा प्रत्युत् जेन की य प्रकृति से भी निर्धारित होगा, और यह प्रति-प्रक्रियात्मक यंत्र य र एक विशेष सुरक्षात्मक मूल्य (प-अ) से संयुक्त होगा, अर्थात् प्राणी की सुरक्षा उसकी अपनी प्रकृति और शक्ति तथा परिवृत्ति

× प्रति-प्रक्रियात्मक = प्रतिक्रियात्मक + प्रक्रियात्मक

की सापेक्षता से निर्धारित होगी। अब यह प (परिवृत्ति) के सापेक्ष मूल्य पर निर्भर है कि वह सत्ताशील प्राणी के अस्तित्व का क्या मूल्य निर्णय करता है।–अ परिवृत्ति के संभावित अपकारकत्व का प्रतीक है।

विभिन्न प्रकार की फिनोटाइप का सुरक्षात्मक मूल्य Survival value एक ही जेनोटाइप होने पर भी सर्वथा भिन्न हो सकता है, इस प्रकार जैसे जैसे र में अन्तर आता जाएगा वैसे वैसे य और उससे ग में भी अन्तर पड़ेगा जो अन्ततः स के लिए प के मूल्य को घटायेगा। जो फिनोटाइप उस परिवृत्ति में अभिवृद्धि का अवसर प्राप्त करता है जो उसके पूर्वजों की अभिवृद्धि के समय वर्तमान रही है उसकी अवस्थिति और उपयुक्तता अपेक्षाकृत अधिक निश्चित होगी - अर्थात उसके लिए प का मूल्य––अ से अधिक हो जाएगा, जबकि ऐसी परिवृत्ति की, जो उसके पूर्वजों के जीवन में सामान्य नहीं रही, उपयुक्तता और अवस्थिति के लिए पोषक होने की बहुत कम संभावना है। प्रत्येक प्रति-प्रक्रिया––यंत्र परिवृत्ति के उपयुक्त या अनुपयुक्त ढलने की सहस्रों सँभावनाएं रखता है, किन्तु उपयुक्त रूप में ढलने की संभावनाएं अनुपयुक्त रुप से ढलने की संभावनाओं से कहीं कम रहती हैं। जिससे स्पष्ट है कि ये परिवर्तन कभी इच्छित (मानसिक) न हो कर एक दम यांँत्रिक होते हैं, किन्तु ये परिवर्तन, चाहे उपयुक्त हों या अनुपयक्त, जनोटाइप पर कोई प्रभाव नहीं डालते। जेनोटाइप ऐसे किसी भी प्रकार के फिनोटाइप की अपेक्षा के बिना, जिसे वह विभिन्न परिवृत्तियों में विभिन्न रूपों में जन्म देता है, अपरिवर्तित आत्म-जनन की प्रक्रिया को जारी रखता है।

जो प्राणी अपनी परिवृत्ति में उपयुक्ततम है और जिसकी प्रवृत्तियाँ उसके अनुसार ढलकर स्थिर हो चुकी हैं, आवश्यक है कि परिवृत्ति में परिवर्तन उसके लिए घातक ही होगा, क्योंकि जेनोटाइप उसके अनुसार नहीं बदल चुका होगा और फिनोटाइप में जो परिवर्तन होगा अनिवार्य रूप से वह परिवर्तन सन्तुलन स्थापित करने के 'उद्देश्य' से न होकर भौतिक और रासायनिक कारण-कार्य के अनुसार होगा; जिसका अर्थ है कि परिवर्तन कुछ भी हो सकता है। इस परिवर्तन के अनुसार प्राणी की वासना की प्रकृति और मात्रा में भी अन्तर पड़ेगा और उसकी आत्म-व्ययी प्रक्रिया को क्रियान्वित होने के लिए नये सिरे से प्रारम्भ करना होगा। इस प्रकार प को केवल परिवृत्ति के प्रतीक होने का भार न सँभालकर परिवृत्ति में और जेनोटाइप तथा फीनोटाइप में परिवर्तन मात्र के प्रतीकत्व का भार सँभाला जा सकता है। वास्तव में अपकारक परिवर्तन सामान्यतः उन प्रतिक्रियाओं के रूप में होते हैं जो

आकस्मिक हों जबकि उपकारक परिवर्तन प्राणी के जर्म में धीरे-धीरे होते विकास से अस्तित्व में आते हैं (किन्तु यह केवल संभावित है, आवश्यक नहीं, जैसा कि हम आगे देखेंगे ।) परिवृत्ति में परिवर्तन के प्रति प्रति-प्रक्रियात्मक यंत्र का रुख और स्वरूप प्राणी के अपने जेनोटाइपिक इतिहास और प्रकृति से संबंध रखते हैं, जैसे चींटियों में घर बनाने की प्रवृत्ति का इतना विकास और उसमें उनकी इतनी योग्यता यद्यपि उनकी शरीर रचना पर बहुत अधिक निर्भर करती है, किन्तु यह शरीर रचना, जो कि उनकी सामजिक योग्यता को इतना उत्कृष्ट बनाती है, उनकी किसी परिवृत्ति के प्रभाव से विकसित नहीं हुई, होगी प्रत्युत् यह चींटी के जेनोटाइप की ही अपनी विशेषता होगी। चींटियों में अधिकांश सदस्य अनुत्पादक मादा होते हैं जबकि .०१प्रतिशत उत्पादक तथा कुछ नर होते हैं । इन अनुत्पादक मादाओं में भी दो वर्ग होते हैं, जिनमें एक वर्ग बड़े आकार की चींटियों का होता है और दूसरा छोटे आकार की । ये दोनों वर्ग केवल सामाजिक श्रम के संयोजक होते हैं । इस भिन्नता का एक मात्र कारण नर और मादा में क्रीमोसोम्ज़ का असमान अनुपात में होना ही प्रतीत होता है जिससे कि उनके मिलने से और न मिलने से दो भिन्न अनुपात के क्रोमोसोम के प्राणी उत्पन्न हो सकते हैं। संभव है इसका कारण उनके जेनोटाइप की कोई ऐसी ही और विशेषता हो, किन्तु निश्चित है कि इसका कारण एक जेनोटाइप की त्रिधा अभिव्यक्ति नहीं है ।

परिवर्तन के जेनोटाइपिक कारण

इस प्रकार स्पष्ट है कि शरीर-रचना में और प्रवृत्तियों में भिन्नताओं का आधार जर्म प्लास्म (जीवन कोष) के संयोजक क्रोमोसोम्ज का नर मादा में अनुपात तथा अन्य बहुत सी विशेषताएँ (+ हाइब्रिडाइजेशन, *म्यूटेशन, क्रोमोसोम स्थिति परिवर्तन, तथा जेन–संख्या परिवर्तन) हैं जिनका विवेचन हम अब यहाँ करेंगे ।

उत्तराधिकार की प्रकृति या जर्म प्लास्म के संयोजक जेन का प्रथम अध्ययन हाइब्रिडाइज़ेशन से प्रारम्भ हुआ था, क्योंकि यह एक सबसे अधिक सुविधा जनक प्रयोग है । मैंडल के इन प्रयोगों से यह प्रमाणित हो गया कि विभिन्न आकृतियां और प्रकृतियाँ, जो हम प्राणी-सन्तानों में पाते हैं, उनके उद्भव का कारण परिवृत्ति या वातावरण नहीं है, और न उन परिवर्तनों को

+ विजातीय मिलन । *मौलिक परिवर्तन ।

जेनम्यूटेशन या मौलिक परिवर्तन ही कहा जा सकता है, प्रत्युत् इनका श्रेय किन्हीं कारणों से दबे पड़े जेन के पुनरुद्धार या उनके क्रम-परिवर्तन को ही दिया जाना चाहिए। ऐसे परिवर्तन या विविधताएँ ऐसी सन्तानों में ही अधिकतर देखी जाती हैं जिनके जनक किन्हीं ऐसे पूर्वजों की सन्तान हों जो दो भिन्न जेनोटाइप के थे। किन्हीं भिन्न प्रकृति के क × ख माता पिता के अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, इत्यादि विभिन्न प्रकार की सन्तानों का यही रहस्य है, अथवा यह भी संभव है कि किन्हीं क × क प्रकृति के माता पिता का कोई पूर्वज अ × इ प्रकृति का रहा हो और उनकी विभिन्न सन्तानों में से एक क में उनकी कोई विशेषता दबी रह गई हो, जो शेष सभी सन्तानों से भिन्न एक व्यक्ति सन्तान में उद्घाटित हो गई। कुछ पीढ़ियों से गोरे रंग के जनक जननी के मिलन से अचानक एक काले रङ्ग का बच्चा उत्पन्न होने का तथा काली आंखों वाले जनक × जननी से भूरी आँखें वाला बच्चे उत्पन्न होने का यही रहस्य है। इस प्रकार सन्तान में प्राप्त ऐसी भिन्नता किसी मौलिक परिवर्तन की अथवा परिवृत्ति जन्य परिवर्तन की द्योतक न हो कर पहले से ही विद्यमान गुण की अभिव्यक्ति है।

बहुत संभव है कि पूर्वजों के गुणों की इस अभिव्यक्ति की प्राप्ति में इतना विलंब हो जाए कि वह जब प्रगट हो तो जेन म्यूटेशन का भ्रम उत्पन्न करे। Lotsy ने वनस्पतियों में ऐसी अनेक सन्तानों को देखा और हाइब्रिड-सिद्धान्त के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। वह तो यहाँ तक कहता है कि मौलिक परिवर्तन (म्यूटेशन) या तो कल्पना मात्र है अथवा बहुत कम प्रभाव शाली परिवर्तन है; उसके अनुसार बड़े से बड़े परिवर्तन पहले से ही विद्यमान ऐलीलज़ (Alleles) की क्रम-भिन्नता के कारण ही उत्पन्न होते हैं। उसके पश्चात हाइब्रिडिटी के कितने ही ऐसे उदाहरण अनेक वैज्ञानिकों ने वनस्पतियों में प्राप्त किये जिनका भौगोलिक क्षेत्र या तो बिल्कुल समीप है अथवा एक ही है। Anderson ने तो हाइब्रिडाइज़ेशन को बहुत ही अधिक महत्व दिया है, जब कि लाइसेंको (Lysanko) परिवृत्ति के प्रभाव को सबसे अधिक महत्व देता है। Riley न इरिस फुल्वा (Iris fulva) और हैक्सागोना (Haxagona) जातियों में यह सम्मिलन और क्रम भिन्नता बहुत योग्यता से प्रदर्शित की है। इनमें पहली जाति चिकनी मिट्टी की भूमि पर उत्पन्न होती है और छाया को अधिक पसंद करती है, जब कि दूसरी बहुत गीले कीचड़ में तेज़ धूप के नीचे रहना पसन्द करती है। परिवृत्ति की यह भिन्नता एक स्थान पर जंगलों के नष्ट होने तथा कीचड़ों के सूख जाने से समाप्त हो गई। परिवृत्ति की इस भिन्नता के समाप्त होने पर इनके

सम्मिलन से उत्पन्न सन्तान (FI) आंशिक अनुर्वरता को लेकर उत्पन्न हुई, किन्तु इन्हें अपनी जनक जातियों से मिलाने (Crossकरने) पर उनकी सन्तानों में इरिस हैक्सागोना के विभिन्न रूपों को प्राप्त किया गया जिनमें इरिस फुल्वा के भी जेन विभिन्न अनुपातों और रूपों (गौण और प्रधान Recessive and Dominent) में विद्यमान थे। (Dobzhansky)

किन्तु क्रम–भिन्नता की उत्पत्ति के रोचक उदाहरण उन इज्जड़ों में पाये जाते हैं जहाँ सर्वथा एक से नर-मादा का या भिन्न किन्तु नियत नर-मादा का मिलन कराया जाता है। अमेरिका में केवल काले या सफेद रंग के ही (Holstein Friesian) ढोर रजिस्टर किये जाते हैं तथा उन्हीं को सन्तानोत्पत्ति का अवसर दिया जाता है, किन्तु अचानक लाल-श्वेत रंग का बच्चा उत्पन्न हो जाता है, जब कि पिछली सात आठ पीढ़ियों में ऐसी कोई सन्तान उस इज्जड़ में नहीं देखी गयी होती। यदि यह पता न हो कि (Holstien) डच इज्जड़ों के उत्तराधिकारी हैं, जिनमें काले और लाल दोनों रंग के बछड़े समान रूप से पाए जाते हैं और यह कि लाल रंग जर्म में निहित होने पर भी काले से आच्छादित रहा, तो स्वभावत: लाल बछड़ा जेन में परिवर्तन के कारण उत्पन्न समझा जाता। किन्तु अब यह बात नहीं है, अब लाल रंग के बछड़े की उत्पत्ति केवल प्राचीन और काले रंग के जेन से आच्छादित लाल जेन के प्रगट हो जाने के कारणसमझी जाती है। (Sinnot and Dunn) इसलिए जिन व्यक्यिों काजेनोटाइप दो भिन्न जातियों के संयोग से निर्मित हुआ हैं उनकी दूसरी पीढ़ी (F2) में और अगली पीढ़ियों में भी वितरण के द्वारा अधिक भिन्नताओं की उत्पत्ति की संभावनाएं छिपी रहेंगी और इनकी प्राप्ति में क्रमश: भिन्नता बढ़ती जाएगी। एफ२ (दूसरी पीढ़ी) में या अगली पीढ़ियों में किन्हीं ऐसी विशेषताओं की उत्पत्ति, जो उसके जनक व्यक्तियों में नहीं पाई जाती, या किसी बहुत दूर की आगामी पीढ़ी में किसी विचित्रता की उत्पत्ति, संभव है किसी मौलिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न हो और संभव है क्रम—भिन्नता मात्र हो किन्तु मौलिक परिवर्तन की संभावना विकसित प्राणियों मेंतो बहुत ही कम होती है, यद्यपि कम विकसित प्राणियों में भी मौलिक परिवर्तन बहुत कम ही संभावित रहता है। इसलिए विभिन्नताओं की उत्पत्ति में पुनरुद्भव या क्रम-भिन्नता ही सामान्यत: महत्व पूर्ण भाग लेते हैं।

किसी गौण recessive जेन के पुनरुद्भव और जेन में क्रम-भिन्नता की उत्पत्ति को आकस्मिक या चाँस कहना, हमारे विचार में, संगत

नहीं है क्योंकि इसका अर्थ कुछ ऐसा हो जाता है मानो यह कोई कारण-कार्य संबंध-रहित रहस्य मय घटना हो, किन्तु वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यह स्वीकार करना आवश्यक है कि कोई भी घटना कारण-कार्य संबंध से स्वतन्त्र नहीं है। इससे किसी प्रकार की क्रम-भिन्नता या पुनरुद्भव के लिए यह प्रश्न किया जाना स्वाभाविक ही है कि अ + ब से स ही उत्पन्न क्यों हुआ स र क्यों नहीं। हमारे विचार में इसके अनेक कारण हो सकते हैं – जैसे, जर्म-कोषों की रासायनिक स्थिति, जो उनके इतिहास पर निर्भर है, रज और वीर्य ova-sperm के मिलन काल में उनके मिलन की प्रकृति, किरणों तथा गामा किरणों Gama ray इत्यादि का प्रभाव इत्यादि। यद्यपि कारण-कार्य संबंध इन में हो सकते हैं, किन्तु किरणें किन जेन्ज़ पर आक्रमक होंगी यह केवल आकस्मिक और चांस है, क्योंकि वे कहीं अन्यत्र हो सकती थीं, इस प्रकार यह बहुत कुछ आकस्मिक हो सकता है कि उनका ही पारस्परिक सम्पर्क क्यों हुआ अन्य का क्यों नहीं, किन्तु अ + ब से स की उत्पत्ति आकस्मिक घटना नहीं हो सकती। इसके लिए कहा जा सकता है कि बच्चों में विशेष रज-वीर्य कोषों की रासायायनिक प्रकृति एक विशेष समय एक विशेष प्रकार की थीं और क्योंकि इनका मिलन एक विशेष प्रकार की तदीय स्थितियों में हुआ इससे एक विशेष परिणाम निकला इत्यादि। यह बात और है कि अब हम वह सब कुछ नहीं बता सकते, किन्तु लाइसैंको जिस तरह परिवृत्ति के प्रभाव पर बल देता है उससे हम सहमत नहीं है। वह कहता है––पौधों में उनके विशेष गुण अथवा तदीयता की विद्यमानता का कारण यह है कि वे गुण और विशेषताएँ उनकी जनक दम्पति में विद्यमान होती हैं और संघर्षण तथा रासायनिक प्रक्रियाओं (metabolism) के द्वारा वे गुण और विशेषताएँ उनके भी रज और वीर्य में निहित हो जाती हैं जो कि आगे नवीन सन्तति को जन्म देते हैं। किन्तु, वह आगे कहता है, "ऐसे बहुत से उदाहरण देखे जा सकते हैं जब कि सन्तान सर्वथा या बहुत अधिक भिन्नताओं के साथ जन्म लेती है। ये आकस्मिक विशेषताएँ किन्हीं पूर्वजों में विद्यमान रह चुकी होती हैं और केवल दुबारा नवीन रूप में कुछ सन्ततियों के बाद उत्पन्न होती हैं। ये विशेष गुण और तदीयताएँ, मैंडलिस्ट-मोर्गनिस्टों के अनुसार, अन्तर्गुह्य रहती हैं, यह एकदम ग़लत है। इसके कारणों की व्याख्या करने के लिए हमें अपने उस उदाहरण की आवृत्ति करनी चाहिए जिसमें हम दिखा आए हैं कि कैसे कनक के पत्ते ठीक धूप मिलने पर हरे निकलते हैं अन्यथा सफेद या पीले ही रह जाते हैं। जब छोटे पत्ते पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं तब हरे नहीं होते, उनमें क्लोरोफिल Chlorophyle

नहीं होता, किन्तु उनमें एक पदार्थ Plastid रहता है जो कि धूप और तापमान मिलने पर हरे रंग में विकसित हो जाता है।" वह आगे कहता है कि "यदि आप इसके एक भाग को छाया में उत्पन्न करें और दूसरे को धूप में तो छाया में बढ़ने वाले पौधे के पत्ते लाल नहीं होंगे जब कि धूप में बढ़ने वाले के लाल रंग के होंगे। इसी पीले पत्तों वाले पौधों में उत्पन्न बीजों को यदि बोया जाए और उनको धूप में बढ़ाया जाए तो वे पुनः हरे रंग के पत्ते उत्पन्न करेंगे, अर्थात् क्लोरोफिल (Chlrophyle) के कण अपनी उचित विकास कर सकेंगे। यहाँ हम देखते हैं कि हरे पत्ते वाले पौधों के जनक के पत्ते हरे नहीं हैं जब कि उसकी सन्तान के पत्ते हरे हैं, अर्थात् पहले में प्लास्टिड-क्लोरोफिल में विकसित ही नहीं हुई जब कि दूसरे में वह हो गई। स्पष्ट रूप से इसका यही अर्थ समझा जाएगा कि क्लोरोफिल प्लास्टिड और धूप के सम्मिलन का परिमाण है। प्लास्टिड में विकास की यह सम्भावना पहले भी विद्यमान थी, किन्तु उसे उचित परिवृत्ति न मिलने से उसका विकास या विस्फोट रुक गया जो कि अगली पीढ़ी में उसके प्राप्त हो जाने से वह क्रियान्वित हो गया।" वह बड़े निश्चय से आगे कहता है कि "इस प्रकार की तर्क प्रणाली से हम बड़ी आसानी से उन व्यक्तियों को समझ सकते हैं जो अपनी विशेष प्रकार की तदीयता और गुणों के कारण अपनी जनक दम्पति से प्रतीयमान रूप से भिन्न किसी पुरानी पीढ़ी से संबंधित प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि वे अन्तर्गुह्य गुण, जो कि इतनी सन्तानों में छिपे रहते हैं अपने उपयुक्त परिवृत्ति नहीं प्राप्त कर सके होते।"

किन्तु यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती, क्योंकि किन्हीं पौधों के या किन्हीं विशेष प्राणियों के इस प्रकार के रंगों की धूप या तापमान में अभिव्यक्ति उनकी फिनोटाइपिक अभिवृद्धि (Development) से संबंध रखती है जो अन्ततः जेनोटाइप पर निर्भर करती है, यहाँ लाइसैंको न केवल यही मानता है कि Soma cells (शारीरिक कोष) जर्मसेल्ज को उत्पन्न कर सकते हैं और करते हैं, (जैसा कि उसके इस कथन से प्रतीत होता है कि प्राणी में परिवर्तन और विकास का कारण उसकी समीकृत परिवृत्ति में परिवर्तन हैं, और प्रत्येक अंग और कोष लिंग कोष को जन्म देता है इत्यादि) बल्कि यह भी कि जेन विशेष का पुनरुद्भव केवल परिवृत्ति पर निर्भर है। प्रथम तो पुनरुद्भव को स्वीकार करना ही समीकरण सिद्धान्त का खंडन करता है, दूसरे यह न केवल सभी अवस्थाओं में ठीक नहीं है प्रत्युत अधिकतर अवस्थाओं में भी ठीक नहीं है। फिर लाइसैंको का यह उदाहरण विजातीय मिलन के बारे में कुछ भी नहीं बताता जिसे कि मैंडल का अन्तर्गुह्यता

का सिद्धान्त से ठीक ठीक निरूपित करता है। लाइसैंको के उदाहरण में प्लास्टिड वर्तमान है, किन्तु वह धूप न मिलने से क्लोरोफिल में विकसित नहीं हो सका, जबकि हाइब्रिडिटी (विजातीय मिलन) में या भिन्न क्रम में जेन्ज़ के मिलन में यह बात नहीं है—विजातीय मिलन से उत्पन्न होने वाली सन्तानों में विभिन्नता की संभावनाएं किसी भी परिवृत्ति में ठीक ठीक क्रियान्वित हो जाएंगी। पुनरुद्भव और भिन्न क्रम में मिलन केवल उचित परिवृत्ति के अभाव में जेन की आत्माभिव्यक्ति न कर सकने की क्रिया से सर्वथा भिन्न बात है। अभिवृद्धि और अभिव्यक्ति के लिए जहाँ केवल परिवृत्ति के आत्मीयकरण की आवश्यकता है और यह आत्मीयकरण जहाँ प्रतिपल इस अभिव्यक्ति और अभिवृद्धि को निर्धारित करता है वहाँ पुनरुद्भव और क्रम भिन्नता इस प्रकार परिवृत्ति से एक दम प्रभाविक नहीं होते, जैसा कि हम पीछे देख आए हैं। जहाँ तक विभिन्न रंगों के व्यक्तियों में जेन की गौणता और प्रधानता का प्रश्न है वहाँ भी परिवृत्ति में अभिव्यक्ति से उस का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि मैंडलियन विभाजन (Segregation) के सिद्धान्तानुसार, जिसे सभी जेनेटिस्ट उसकी प्रयोगसिद्धता के कारण स्वीकार करते हैं, यह भिन्नता एक दम परिवृत्ति से स्वतंत्र और नियमित है। मैंडल दो गुणों वाले एक ही जाति के नर और मादा का मिलन Cross करवाता था और उनकी प्रथम हाइब्रिड सन्तान प१ को देखता था। यह सन्तान निश्चित रूप से अपने दोनों विजातीय जनकों की विशेषताओं को अभिव्यक्त या अनभिव्यक्त रूप में सँजोए रहती है। किन्तु यदि इस पीढ़ी के दो व्यक्तियों को सन्तानों के लिए मिला दिया जाए तो प२ में एक दम नियत संख्या में अपने जनक दम्पति तथा विजातीय पितामहों का प्रतिनिधित्व होता है और यह नियमितता असंख्य वैज्ञानिकों के असंख्य प्रयोगों पर उतरी है उसने Pure breeding (अपनी विशेषताएं ठीक ठीक हस्तांतरित करने वाले) लाल फूलों के पौधों को सफेद फूलों वाले पौधों से मिलाया और देखा कि प१ में सभी बच्चे लाल रंग के उत्पन्न हुए। इसके पश्चात इस पीढ़ी के विभिन्न व्यक्तियों का मिलन करवाया गया और प२ की सन्तानों की प्रतीक्षा की गई। इस पीढ़ी में न केवल लाल रंग के ही बच्चे उत्पन्न हुए प्रत्युत श्वेत रंग के भी, जिनका अनुपात क्रमशः $\frac{9}{16}$ और $\frac{7}{16}$ था। इस अनुपात में भी आगे कुछ और भिन्नताएँ थीं जिनका कारण लाल और श्वेत ऐल्लेल्ज (Alleles) का भिन्न भिन्न व्यक्तियों में गौणता और प्रधानता का भिन्न भिन्न अनुपात था। स्पष्ट है कि प १ में ल×स से उत्पन्न होने वाली लाल सन्तान में प्रधान और गौण ऐल्लैल्ज

ल और स का अनुपात ल ल स स रहा होगा जबकि प २ में विभिन्न व्यक्तियों में यह अनुपात ल ल स स , ल ल स स , ल ल स स तथा ल ल स स और ललसस के रूप में विभक्त हो गया । प १ की सन्तानों में तथा प २ की सन्तानों में स्पष्ट रूप से दोनों ही विजातीय तत्व विद्यमान हैं किन्तु उनकी अभिव्यक्ति भिन्न भिन्न है और फिर यह अभिव्यक्ति एक दम नियमित है फिर चाहे उसका प्रयोग किसी भी प्राणी पर क्यों न किया जाए। यहाँ प१ में लाल रंग के फूल उत्पन्न होने का कारण यह है कि लाल ऐल्लैल श्वेत पर पूर्णत: प्रभावशाली (Dominant) हैं किन्तु ऐसे बहुत से उदाहरण हो सकते हैं कि किसी रंग संबंधी या अन्य गुण संबंधी ऐल्लैल समानरूप से प्रभावशील हों , उस अवस्था में प१ में दोनों जनक दम्पति से भिन्न प्रकार की सन्तान होगी और प २ में यह अनुपात थोड़ा सा बदल जाएगा , जिसमें कुछ संतानें प १ जैसी होंगी और कुछ जनक-दम्पति जैसी । इनमें यह अनुपात ६,४,२, का होगा । इनका ऐल्लल–विभाजन प्राय: इस प्रकार होता है ।

	लाल			श्वेत
	ललसस			ललसस
		मिश्र		
प १		ललसस		
	मिश्र	मिश्र	मिश्र	मिश्र
प २	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस
	मिश्र	लाल	मिश्र	लाल
	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस
	मिश्र	मिश्र	सफेद	सफेद
	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस
	मिश्र	लाल	सफेद	सफेद
	ललसस	ललसस	ललसस	ललसस

यहाँ यद्यपि मिश्ररंग के फूल ६ हैं किन्तु इनमें एक श्वेत ललसस भी वास्तव में मिश्र ही है क्योंकि इसमें दोनों ओर के ऐल्लैल गौण हैं । इस प्रकार यह विभिन्नता परिवृत्ति के संमीकरण का, अतएव आकस्मिक, परिणाम नहीं हैं प्रत्युत् यह विभिन्न व्यक्तियों और जातियों के अपने अपने जेनोटाइप की विशेषता है जो वास्तविक कारण है ।

डोब्जहेंस्काई, हारलैंड और सिन्नट तथा डन ने जेन की प्रधानता और

गौणता के विषय में यह सिद्ध कर दिया है कि यह सर्वथा जेनोटाइप की अपनी विशेषताओं पर निर्भर है, जैसा कि हमने ऊपर दो उदाहरणों में देखा है। एक ही रंग, संभव है दो भिन्न विजातीय मिलनों में एक में प्रधान प्रमाणित हो और दूसरी जाति में उस मिलन में गौण। विभिन्न प्राणियों में विभिन्न जेन प १ में किसी स्थान पर प्रधानता कहीं गौणता और कहीं सम्मिश्रण पाते हैं जबकि प २ में सार्वभौकि रूप में विभाजन के द्वारा ३ : १। अथवा ९ : ७ के अनुपात में विभक्त हो जाते हैं। इस प्रकार जब दो भिन्न गुणों वाले और जन वाले दो व्यक्ति एक दूसरे के साथ मिलते हैं, इनमें अपनी मिश्र सन्तानों में आत्माभिव्यक्ति की योग्यता भी भिन्न होती है, जैसा कि हम लाल और सफेद रंग के फूलों के मिलन में देख आएहैं। जैसे गोस्सिपियम—वार बेडेंस × गोस्सिपियम हिर्सुटम पौधों के पत्ते लाल धब्बों से युक्त होते हैं और इनसे रहित व्यक्तियों पर हावी रहते हैं। इन रहित और सहित व्यक्तियों के मेल से प१ में छोटे लाल धब्बों वाली सन्तान उत्पन्न होती है जबकि प२ में तीन प्रकार की सन्तान उत्पन्न होती है—बड़े धब्बेवाली, धब्बे से सर्वथा रहित और इन दोनों के बीच कड़ी मिलाने वाली व्यक्तियों की शृंखला रूप अनेक आकार के धब्बों वाली। मैंडिलियन विभाजन (Segeagation) का यही नियम कुक्कुटों के इस चित्र में भी देखा जा सकता है। गो० बार-बेडेंस और गो०हिर्सुटम के मिलन से प२ में उत्पन्न सन्तानें यद्यपि प्रतीयमान रूप से अनुपात के मैंडिलियन नियम को प्रमाणित नहीं करतीं, और स्वयं मैंडलको इसका पता था, किन्तु ऐल्लैल-विभाजन वास्तव में ठीक उसी प्रकार और उसी अनुपात में हुआ है, यह केवल उनकी सापेक्ष प्रभाव शालिता और अप्रभाव शालिता में अन्तर होने से भिन्न परिणाम में परिणत हुआ है।

दूसरी पीढ़ी में लाल रंग के हाइब्रिड जनक से ठीक पितामहों जैसे श्वेत और लाल फूलों का सर्वथा भिन्न उत्पन्न होना प्रमाणित करता है कि प्रत्येक प्राणी में ये विशेषताएं अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के साथ विद्यमान रहती हैं। जब किन्हीं भिन्न जेन्ज़वाले प्राणी आपस में मिलकर एक तीसरी प्रकार के मिश्र व्यक्ति को उत्पन्न करते हैं तब भी प २ में उत्पन्न होने वाली सन्तानों में से कुछ प १ जैसी और शेष उनकी जनक दम्पति में से एक या दूसरे जैसी उत्पन्न होती हैं। किन्तु, हमारे विचार में यह अधिक उपयुक्त होगा कि हम उनकी प्रतीयमान आकृति की बजाय जेन विभाजन को गणना के लिए इकाई बनाएं। इससे प्रायः कोई भी अनियमितता नहीं रहेगी, जैसा कि हम पीछे देख ही आए हैं।

यह प्राय: सर्व विदित ही है कि जनक और सन्तानों के बीच की संबंध-विधायक कड़ी केवल जर्मसेल या गेमेट (Gamete) हैं, जोकि उस प्रत्येक गुण को, जो जनक से सन्तान में हस्तान्तरित होता है, धारण करते हैं। इस प्रकार यह सुविधा से कहा जा सकता है कि जिस लाल फूल से सजातीय मिलन में केवल लाल फूल ही उत्पन्न हों उसके जेन-ऐल्लैल्ज़ में लाल ऐल्लैल्ज पूर्ण रूप से प्रधान हैं, इसी प्रकार सभी रंगों के लिए। इसी से जब लल × लल व्यक्तियों का सम्मिलन करवाया जाता है तो उनकी सभी सन्तानें लल ऐल्लैल वाली ही उत्पन्न होती हैं। किन्तु लाइसैंको जर्मसेल और सोमासेल की कल्पना तक से इन्कार करता प्रतीत होता है (यद्यपि पीछे दिये गए उद्धरण में वह इनमें किसी न किसी प्रकार गंभीर अन्तर करता प्रतीत होता है) वह कहता है कि "मैंडलिस्ट-मोर्गनिस्ट जेन-वैज्ञानिक प्राणी को दो भिन्न पदार्थों—सामान्य शरीर और उत्तराधिकार में प्राप्त पदार्थ (Hereditary Substance) से युक्त मानते हैं। प्रथम पदार्थ (Soma) अथवा सामान्य शरीर प्राणी के क्रिया व्यापारों को क्रियान्वित करने वाला यंत्र है, यह अपनी परिवृत्ति पर निर्भर करता है और उसमें परिवर्तन के साथ साथ परिवर्तित होता रहता है। दूसरा, उत्तराधिकार में प्राप्त पदार्थ, इन जेनेटिस्टों के अनुसार, केवल सन्तानोत्पादन और पूर्वजों के गुणों को हस्तान्तरित करने का कार्य करता है। इसी से उनकी उत्तराधिकार की परिभाषा है—प्राणी की वह सम्पत्ति, जो उसको आत्मजनन की शक्ति प्रदान करती है।

"किन्तु, इसके विपरीत," वह आगे कहता है," हमारे विचार में संपूर्ण शरीर केवल एक ही पदार्थ, सामान्य शरीर या सोमा से युक्त है। इसके अतिरिक्त उसमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं होता जो सामान्य शरीर से भिन्न हो। इसके विपरीत प्रत्येक कण या परमाणु, वास्तव में प्रत्येक छोटी से छोटी बूंद जब एक बार जीवन युक्त हो लेती है, वह उत्तराधिकार संबंधी पदार्थ से भी युक्त हो जाती है, अर्थात् वह अपने जीवन-धारण के लिए, अपने विकास और अभिव्यक्ति के लिए विशेष परिवृत्ति की मांग करती है।" अपनी पुष्टि में वह वेजिटेटिव हाइब्रिड्ज़ (Vegetative hybrids) को, जिन में कि एक से अधिक पौधों के शरीर कोष या शरीर के भागों (शाखाओं इत्यादि) को मिला कर एक पौधे के रूप में बढ़ाया जाता है प्रस्तुत करता हैं। किन्तु लाइसैंको ने जो यह उदाहरण दिया है इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि उत्तराधिकार संबंधी पदार्थ सोमा (Soma) से भिन्न नहीं है, इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि अनेक बनस्पतियों में एक पौधे की शाखा दूसरे पौधे में भी अपना भोजन प्राप्त कर बढ़ सकती है। और यदि अब यह कहा जाय

कि यह उदाहरण उत्तराधिकार सम्बन्धी सिद्धान्त की और भी पुष्टि करता है तो अधिक ठीक होगा, क्योंकि इस प्रकार एक या अनेक शाखाएं किसी पौधे में जोड़ देने पर भी मूल पौधे के बीज शाखाओं के उत्तराधिकार को धारण नहीं करेंगे। आश्चर्य की बात यह है कि लाइसैंको स्वयं यह स्वीकार भी करता है कि सेक्सकोष या कलियाँ, जिनसे सम्पूर्ण शरीर विकसित होता है, सम्पूर्ण शरीर के विकास का प्रतिनिधित्व करती हैं,' और स्वयं इससे इन्कार भी करता है। संभवतः उसके इस कथन का अभिप्राय यही है कि सेक्सकोष यद्यपि अन्य कोषों से भिन्न हैं किन्तु यह भिन्नता केवल यही है कि ये उनके विकास की और प्रत्येक तदीयगुण की अन्विति हैं। किन्तु जब वह कहता है कि इसी से ये सेक्सकोष उस प्राणी के सम्पूर्ण अंगों का और शरीर का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो इन्हें उत्पन्न करता है और यह कि वपित कोष से शरीर का विकास और उस विकास में प्रकट होते हुए परिवर्तन घटनाओं की केवल आवृत्तियाँ हैं जो उसके पूर्वजों ने अपने जीवन के विकास-पथ में अनुभूत की थीं, और जब वह इस आवृत्ति की उपमा लिपटे हुए उस कागज के पुलिन्दे से देता है जिसमें लिखित योजना, ज्यों ज्यों वह खुलता है, उद्घाटित होती जाती है, तब केवल आश्चर्य होता है कि वह कहना क्या चाहता है। यहाँ स्पष्ट है कि उपमा और उपमित, दोनों उसके पूर्व कथन से मेल नहीं खाते क्योंकि अनुद्घाटित योजना का उद्घाटन कभी भी परिवृत्ति का समीकरण नहीं है, जिसमें प्रत्येक क्षण नवीन और आकस्मिक है।

इससे चाहे और कुछ भी क्यों न अर्थ लिया जाए, यह अर्थ कभी नहीं लिया जा सकता कि सेक्स सेल सोमासेल से भिन्न नहीं हैं, जबकि वह आगे यह स्पष्ट लिखता है कि सोमासेल्ज़ में नवीन प्राणी को जन्म देने की शक्ति नहीं होती। लाइसैंको शायद कम्यूनिस्ट रूस और स्टालिन का पूर्ण वफादार होने के लिए और स्टालिन-मार्क्स सिद्धान्त को एक मात्र सत्य सिद्ध करने के लिये यह आवश्यक समझता है कि परिवृत्ति के महत्व को बढ़ा चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाए। किन्तु हम पीछे प्रधानता और गौणता के तथा Segragation

---

* Dialectical Materialism, developed and devoted to a new high plants by the workers of comrade Stalin, is the most valuable, most patent theoretical weapon in the hands of Soviet biologists, and this is the weapon they must use in solving the profound problems of biology including the problems of the descent of one species from another. The Science of biologica ispecies P. 12.

के जो उदाहरण दे आए हैं उनसे उसका यह प्रयास एकदम भ्रान्ति पूर्ण हो जाता है।

अस्तु, प्राणी का कोई गुण या विशेषता किस सीमा तक अपनी अभिव्यक्ति करेंगे यह इसके जेन-ऐल्लैल की दूसरे साथी ऐल्लैल्ज़ के साथ सापेक्ष स्थिति पर निर्भर करता है। यदि कोई ऐल्लैल अपने साथियों के ऊपर पूर्ण रूप से हावी हो जाए तो वह दो ऐल्लैल्ज़ के समान प्रभावशाली होगा जबकि दो की एक सी स्थिति होने पर वे सम्मिलित अभिव्यक्ति करेंगे। किन्तु संभवत: यह प्रधानता और गौणता कभी भी पूर्ण नहीं होतीं। ऐसे बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं जहाँ पर एक स्थान पर एक ऐल्लैल प्रधान होता है और दूसरे पर वही गौण रहता है। वास्तव में प्रधानता या गौणता एक दम उलझन पूर्ण स्थितियाँ हैं और अभी तक इनके निश्चित नियम या Law का पता नहीं चल सका है। इस पर परिवृत्ति के प्रभाव के उदाहरण रूप में हम हिमालयके खरगोश और कुछ फूल प्रस्तुत कर आए हैं, किन्तु इसमें अनेकानेक आन्तरिक कारण भी हो सकते हैं, जैसे भेड़ की कुछ जातियों में नर सींगवाले ऐल्जैल से रहित होने पर भी सींगयुक्त होते हैं जबकि मादा उन्हीं ऐल्लैल के साथ भी सींग रहित रहती है। इसी प्रकार कोई ऐल्लैल प्राणी में बचपन में गौण प्रभाव वाला हो सकता है और यौवन में या उसके पश्चात् केवल आयु के मुख्य हो सकता है।

जेन्ज़ और ऐल्लैज़ के स्वतंत्र होने पर भी सेक्सकोष केवल एक ऐसा डब्बा नहीं है जिसमें जेन अपने अपने स्थान पर एक दूसरे से अप्रभावित पड़े रहते हों अथवा ऐसा खगोल नहीं है जिसमें तारे अपने अपने वृत्तपर घूमते रहते हैं, बल्कि ऐसी अविभाज्य इकाई है जिसमें तारों के समान जेन एक दूसरे की क्रियाओं पर प्रभाव डालते रहते हैं, जैसा किसी भी जीव में देखा जा सकता है। स्वीट पी पौधे अनेक रंगों के पाए जाते हैं और वे प्राय: सभी स्वतंत्र जातियाँ हैं। स्वीटपी की ये विभिन्न जातियाँ एक जंगली जाति के पूर्वज से विकसित हुई हैं जिसके फूल गहरे लाल रंग के होते हैं तथा डोडी के पंख लाल होते हैं। इसमें गहरा लाल रंग श्वेत के ऊपर हावी रहता है। यदि जंगली जाति की विकसित पीढ़ियों की स्वीटपी जातियों में लाल और श्वेत का अथवा श्वेत की दो भिन्न जातियों का मिलन करवा दिया जाए तो प १ में जंगली जाति की गहरी लाल स्वीटपी के पौधे उत्पन्न हो जाते हैं और प २ में यह अनुपात गहरी लाल और श्वेत में क्रमश: $\frac{९}{१६}$ और $\frac{७}{१६}$ में विभाजित हो जाता है। किन्तु यहाँ आश्चर्य कीं बात यह है कि गहरे लाल (Purple)

रंग के पौधे केवल तभी उत्पन्न होते हैं जब कि श्वेत रंग युक्त ऐल्लैल (र) और गहरेलाल ऐल्लैज (ल) में से या तो दोनों ओर का एक एक मुख्य हो या दोनों मुख्य हों, किसी भी एक ओर के ऐल्लैल होने पर फूल केवल श्वेत रंग के ही उत्पन्न होंगे।

जैसे—
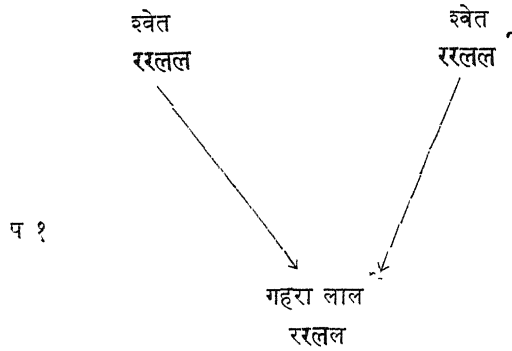
ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल
ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत
ररलल ग० लाल	ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत
ररलल ग० लाल	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत	ररलल श्वेत

(Sinnot and Dunn-Principles of Genetics 1939)

स्वीटपी की प १ में एक भिन्न रंग की उत्पत्ति किसी मौलिक परिवर्तन की परिणाम नहीं है बल्कि दो भिन्न ऐल्लैज़ के मिश्रण से उत्पन्न प्रभाव भिन्नता है, जब कि वे पृथक पृथक एक ही प्रभाव (श्वत रंग) उत्पन्न करते हैं (Sinnot and Dunn)

स्वीटपी में दो भिन्न प्रकार के जेन--ऐल्लैज् के मिलन से एक तीसरे गुण की उत्पत्ति आश्चर्य जनक होने पर भी सामान्य है, क्योंकि रसायण विज्ञान में ऐसे अनेक रासायनिक पदार्थ स्वयं रंग रहित होकर भी मिलाए जाने पर रंग उत्पन्न कर देते हैं। इसी प्रकार इज्जड़ों या उद्यानों में भी हाइब्रिड उत्पन्न होते रहते हैं।

अनेक प्राणिग्रों में, और एक ही प्राणी की अनेक विशेषताओं में अनेक बार विभिन्नताओं की अनेक संभावनाएं विद्यमान रहती हैं। इनका अधिक तर श्रेय जेंज़ के उस बड़े संग्रह को है जो दूसरे जेंज़ के प्रभाव में छिप रहते हैं, अथवा अन्य अनेक कारणों से, जिनमें परिवृत्ति भी एक कारण हो सकती है, अपनी अभिव्यक्ति नहीं कर पाते। जेंज के ये संग्रह व्यक्ति की आकृति पर बहुत अधिक प्रभाव डाल सकते हैं, अनेक जेन तो व्यक्ति को नपुंसक या अत्यन्त दुर्बल तक बना देते हैं (यह प्रभाव जेंज की पारस्परिक अन्तः प्रतिक्रियाओं से संबंधित हैं)। इतना अधिक प्रभाव डालने वाले जेंज् के अतिरिक्त ऐसे भी बहुत से जेन प्राणी के जर्म में रहते हैं, जो व्यक्ति की किसी विशेषता को सम्मिलित रूप से निर्धारित करते हैं, जो यद्यपि प्रभाव की गंभीरता में बहुत कम होते हैं किन्तु विविधता में अनेक और विस्तृत होते हैं। ये सामूहिक प्रभाव भी विकास में महत्व पूर्ण योग दान की अनेक संभावनाएं रखते हैं। कुछ जेनेटिस्ट प्रमख (Major) और समष्टि जेंज् को दो भिन्न श्रेणियाँ मानते हैं, किन्तु यह बात कुछ ठीक नही जान पड़ती। यद्यपि यह ठीक है कि समष्टि जेंज का व्यक्तिशः प्रभाव आंकना कठिन है, किन्तु वे उसी प्रकार क्रोमोसोम्ज़ में विद्यमान रहते हैं जैसे प्रमुख, और वे कभी भी प्रमुख हो सकते हैं।

सम्मिलित जेंज की एक बड़ी विशेषता यह है कि इनमें परिवर्तन की संभावनाएं बहुत अधिक विद्यमान रहती हैं। मान लीजिए कि किसी जाति के कुछ संबद्ध व्यक्ति चार जेन-युगलों में भिन्न हैं, जो कि उनमें आकारगत (लंबाई या चौड़ाई) गत विशेषता को उत्पन्न करते हैं, तो उनमें इस भिन्नता की अनेकानेक संभावनाएं निहित रहेंगी,– यह स्वाभाविक भी है। मान लीजिए कि एक वंश की यह जेन सम्पत्ति आ आ इ इ उ उ तथा ए ए है और दूसरे की अ अ ई ई ऊ ऊ तथा ऐ ऐ और बड़े स्वरों में प्रदर्शित जेंज का प्रभाव समान है तो इन वंशों के ये दोनों व्यक्ति आकार में समान होंगे किन्तु यदि इनको आपस में मिला दिया जाए तो दूसरी पढ़ी प २ में विभिन्न आकारों के व्यक्ति उत्पन्न हो सकेंगे, जैसे अ अ ई ई ऊ ऊ ऐ ऐ' आ आ

इ इ ऊ ऊ ऐ ऐ, आ आ ई ई उ उ ऐ ऐ, आ आ ई ई ऊ ऊ ए ए तथा आ आ ई ई ऊ ऊ ऐ ऐ +इत्यादि । इसी प्रकार अन्य परिवर्तनों में भी, जो बहुत महत्वपूर्ण हो सकते हैं समष्टि-जेन बहुत प्रभाव डाल सकते हैं (Dobzhansky)

पीछे हमने देखा था कि एक ही क्रोमोसोम की गुणित (Multiple) इकाई प्राणी में आकारगत, मुद्रागत तथा अन्य गुणों में बहुत बड़े परिवर्तन उत्पन्न कर सकती है, इसी प्रकार संख्या में कमी भी कम गंभीर प्रभाव नहीं छोड़ती ।

हमने अब तक के अपने संक्षिप्त से अध्ययन में देखा कि कैसे जेन किसी मौलिक परिवर्तन के बिना भी केवल क्रम, संख्या, सापेक्षता तथा प्रधानता-गौणता इत्यादि में परिवर्तन के द्वारा भी प्राणी में गंभीर परिवर्तन के कारण हो सकते हैं । जेंज़ में इन अमौलिक परिवर्तनों के कारण आन्तरिक भी हो सकते हैं और बाह्य भी, किन्तु संभवतः विजातीय व्यक्तियों का मिलन, व्यक्तियों के जेनोटाइप की रासायनिक प्रकृति और रासायनिक प्रक्रिया इत्यादि का इसमें अधिक हाथ रहता है । किन्तु परिवृत्ति इस परिवर्तन में कम महत्वपूर्ण भाग लेती है । परिवृत्ति यद्यपि कभी कभी जेन में मौलिक परिवर्तन (Gene mutation) तथा क्रोमोसोम के दिशा परिवर्तन तक को संभव कर देती है, जैसा कि हम अब देखेंगे, किन्तु यह परिवृत्ति के विशेष उपकरण ही कर सकते हैं, जैसे गामा किरणें इत्यादि । इस से यह सहज ही कहा जा सकता है कि जेनोटाइप और फिनोटाइप में परिवृत्ति की सापेक्षता में भी एक मौलिक अन्तर है, और यह अन्तर केवल यही नहीं है कि एक (जेनोटाइप) सन्तानोत्पत्ति का कारणभूत पदार्थ है और दूसरा उस पदार्थ में बीज रूप में निहित वह पदार्थ, जो कि परिवृत्ति के संयोग से उससे फूट निकलता है । यदि एक प्राणी को परिवृत्ति से उसका आवश्यक भोजन न मिले तो यह बिलकुल ठीक है कि उसका विकास रुक जाएगा, इससे भी अधिक, यदि एक बीज को गर्भपात्र और उसमें उपलब्ध होने वाला आवश्यक भोजन न मिले तो बीज कभी भी सन्तानोत्पादन नहीं कर सकेगा । किन्तु यह भी सत्य है कि परिवृत्ति पीपल के बीज में से आम उत्पन्न नहीं कर सकती । इस से भी अधिक महत्वपूर्ण यह बात है कि यदि एक बीज को उसकी प्राकृतिक परिवृत्ति से भिन्न परिवृत्ति में रखा जाए और अपने फिनोटाइप का विकास

+यहाँ दीर्घ और ह्रस्व स्वर एक ही जेन की प्रमुख Dominant तथा गौण Recessive प्रतियों के लिये प्रयुक्त किये गये हैं ।

करने दिया जाए तो वह कुछ भिन्न प्रकार के फिनोटाइप को जन्म देगा, किन्तु उसके बीज पहले बीज से भिन्न नहीं होंगे, अर्थात् उसका जेनोटाइप परिवृत्ति से प्रभावित नहीं होगा। यही क + ख१ = २ क + ग १ का अर्थ है और यही प्राणी का उत्तराधिकार है। इसलिए लाइसैंको जब कहता है कि प्राणी की प्रकृति में परिवर्तन का कारण उसकी समीकृतपरिवृत्ति में परिवर्तन है तो यह केवल तथ्य पर जबरदस्ती मालूम पड़ती है। लाइसैंको अन्यत्र कहता है कि सन्तानों के रूप में आत्मसृजन और नवीन जातियों की उत्पत्ति प्राणी के शारीरिक विकासकाल में परिवृत्ति के द्वारा उत्पन्न होने वाले प्राणी में के रासायनिक परिवर्तनों के साथ बँधी है। इसकी पुष्टि में वह २८ क्रोमोसोमवाली ड्यूरम कनक (Durum wheat) का उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो यदि पतझड़ के अन्तिम दिनों में बोई जाए तो तीन-चार पीढ़ियों के बाद ४२ क्रोमोसोम वाली ड्यूरमकनक में परिवर्तित हो जाती है। वह इससे भी अधिक आश्चर्यजक बात कहता है कि—ड्यूरम कनक की बालियों में नरम कनक (Soft wheat) के एक या दो कण कभी कभी आकस्मिक रूप से पाए जाते हैं। वह आगे बताता है कि जब ड्यूरम कनक की बालियों में भटके हुए नरम कनक के कणों को बोया गया तो इन्होंने नरम कनकको ही जन्म दिया ड्यूरम को नहीं। इसी प्रकार वह ड्यूरमकनक और नरमकनक की बालियों में Rye wheat के कणों की उपस्थिति भी बताता है। वह कहता है कि १९४९ में फुटहिल ज़िले में ड्यूरम कनक और नरम कनक की बालियों में रे कनक के कण पाने का प्रयास किया गया। इस ज़िले में नरम कनक के साथ साथ रे कनक भी प्रायः उत्पन्न देखी जाती है। कुछ वर्षों तक इन ज़िलों में इसका कारण ज्ञात नहीं हो सका। किन्तु हाल के वर्षों में ही V. K. Karapetian और V. N. Gromocheusky इत्यादि ने ड्यूरम और नरम कनक की बालियों में रे के कण प्राप्त किये और ये कण पुनः बोए गए। इन कणों या बीजों से सामान्य बीजों के समान सन्तानें उत्पन्न की गईं, जब कि Hybrid (विजातीय मिलन से उत्पन्न) रे के बीज नपुंसक अथवा अनुत्पादक होते हैं। कुछ बीजों से भिन्न जाति की कनक भी यद्यपि उत्पन्न हुई, किन्तु ऐसे बीज बहुत कम थे। ठीक इसी प्रकार के और भी दो चार उदाहरण लाइसैंको ने दिये हैं। किन्तु उन्होंने इसका कोई भी ठोस या थोथा कारण नहीं दिया, यद्यपि प्रत्येक पृष्ठ पर वह कारण बताने का आवश्वामन देता है। केवल इतना कह देने मात्र से कि प्राणी परिवृत्ति का समीकरण करता है इसलिए परिवृत्ति में परिवर्तन समीकरण (Assimilation) के द्वारा प्राणी में परिवर्तन संभव करता है,

निरर्थक है क्योंकि तब तो कनक में केवल यही अन्तर पड़ना चाहिए था कि बदली हुई परिवृत्ति में विशेष जाति की कनक में कुछ विशेष अन्तर उस कनक की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति पर पड़ता, किन्तु यहाँ ड्यूरम कनक और नरम कनक की पूरी वाली में एक भटके हुए विजातीय कनक-कणों की उपस्थिति के अतिरिक्त और किसी प्रकार के परिवर्तन की सूचना वह नहीं देता, इसी प्रकार ड्यूरम और रे की बालियों में नरम कनक-कणों के लिए भी। फिर आश्चर्य की बात यह है कि ड्यूरम की वालियों में भटके हुए नरम कनक के कणों के लिए तो वह केवल इतना ही लिखता है कि वे बोए जाने पर अपनी सन्तानों में नरम कनक ही उत्पन्न करते हैं जबकि रे कनक-कणों में कुछ, उसके कथनानुसार, ठीक रे के पौधों को उत्पन्न करते हैं जबकि शेष विभिन्न जातियों के कनक के पौधों को जन्म देते हैं। इसका क्या कारण है, लाइसैंको ने न केवल यही नहीं बताया, प्रत्युत इसे कुछ महत्व भी नहीं दिया। पाठक को भ्रम होने लगता है कि रे और नरम कनक के भटके कणों में यह भिन्नता केवल लेखक के नरम कनक की सेक्स-प्रकृति बताने में भूल करने के कारण ही तो नहीं ? संभवतः इसका यही कारण है, अवश्य नरम कनक के बीज भी रे के समान भिन्न भिन्न प्रकार की सन्तानों को जन्म देते होंगे। किन्तु लाइसैंको ने जिस प्रकार विभिन्न पौधों के रे के कणों से उत्पन्न होने की बात लिखी है वह अपने आप में भी कम संशयास्पद नहीं है क्योंकि वह इसे एक पैरे के अन्त में एक दो लाइनों में बताकर आगे बढ़ जाता है।

लाइसैंको की उक्त सूचना में सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि २८ क्रोमोसोम वाली ड्यूरम कनक की किसी किसी बाली में ४२ क्रोमोसोम वाली नरम कनक के कण पाए जात हैं और इन दोनों में भिन्न संख्या के क्रोमोसोमवाली रे कनक के कण उत्पन्न होते हैं। हमने अब तक प २ में विभाजन (segregation) के द्वारा ऐसी भिन्न सन्तानों के उत्पन्न होने के उदाहरण दिए थे जिनमें एक या दूसरे प्रकार का एल्लैल मुख्य है और यही भिन्नता शरीर में प्रतीयमान भिन्नता का भी कारण है। एक दूसरी प्रकार का उदाहरण हमने चींटियों में एक ही जेनोटाइप से तीन भिन्न प्रकार की -- छोटी वंध्या, बड़ी वंध्या और छोटी अवंध्या—चींटियों की उत्पत्ति का भी दिया था, जिनमें स्पष्ट रूप से क्रोमोसोम की संख्या में नर-मादा में अन्तर ही कारण हो सकता है। इसी प्रकार का एक और उदाहरण मधु मक्खियों का दिया जा सकता है। इनमें मादा के जर्मसेल में जहां ३२ क्रोमोसोम होते हैं नर के जर्म सेल में केवल १६, इसलिए जब मादा नर से मिलन के बिना ही बच्चा देती है तो Reduction division जर्म

सेल में एक विशेष अवस्था में विभाजन हो जाता है और क्रोमोसोम लगभग अन्धे रह जाते हैं) के द्वार १६ क्रोमोसोम वाला नर उत्पन्न होता है जब कि नर से मिलन होने पर ३२ क्रोमोसोम वाली मादा। ड्यूरम कनक और नरम कनक के बीच का भेद भी यद्यपि वैसा ही प्रतीत होता है किन्तु यहां यह बात नहीं है। फिर भी एक बात स्पष्ट है—कि जहां ड्यूरम कनक की क्रोमोसोम संख्या २ N=२८ है वहां नरम कनक की क्रोमोसोम संख्या ३N =४२ है अर्थात एक दुहरी (Diploid) है और दूसरी तिहरी (Triploid) है। इन दोनों में इकाई N = 14 है, इससे इनमें का अन्तर भी मात्रात्मक है गुणात्मक नहीं, जैसा कि लाइसैंको कहता है। तिहरे (Triploid) प्राय: दुहरे × तिहरे या दुहरे × चौहरे के संयोग से उत्पन्न होते हैं, इससे यही संभव प्रतीत होता है कि नरम कनक के कण किसी प्रकार से उस खेत में आ गए होंगे या पहले से ही विद्यमान रहे होंगे और उनके ड्यूरम कनक के साथ मिलन से यह घटना संभव हुई होगी, यद्यपि लाइसैंको इससे इन्कार करता है। किन्तु रे कनक-कणों के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि हमारे बताए कारण के होने की संभावनाएं बहुत अधिक हैं, क्योंकि लाइसैंको के अपने ही कथनानुसार ये बीज न केवल सजातीय सन्तानें ही उत्पन्न करते हैं प्रत्युत विजातीय सन्तानें भी उत्पन्न करते हैं, जो स्पष्ट रूप से विजातीय मिलन और वितरण (Segregation) का उदाहरण है।

इसी प्रकार के हम एक दो उदाहरण और प्रस्तुत करते हैं जिससे हमारी बात स्पष्ट हो सके। (Galeopsis) गेल्योप्सिस पौधे की आठ जातियां पाई जाती हैं जिनमें से छ: की क्रोमोसोम संख्या आठ (इकहरी=Haploid) है जब कि शेष दो में २ n=16 है। प्रथम छ: में दो जातियां गे-प्यूबेस्सेंस G. Pubescens) और गे स्पेश्योसा (G. speciosa) हैं और दूसरी दो जातियों में से एक गे-टेट्राहिट (G. Tetrahit) है। प्यूबेस्सेंस × स्पेश्योसा प्रथम पीढ़ी में एक दम नपुंसक सन्तान को उत्पन्न करती हैं, किन्तु पोलिनेशन* (Pollination) से प २ में तिहरा (Triploid) पौधा (3N=२४) उत्पन्न होता है। डोब्जहेंस्काई के अनुसार इसकी उत्पत्ति का कारण संभवत: यह होगा कि इसके जर्म सेल और प १ के सोमासेल के

---

* × पौधों में नर लिंग से मादा लिंग में पोलन लगाना।

भाग आपस में मिल जाते होंगे। इस त्रि-क्रोमोसोम पौधे का पुनः एक क्रोमोसोम पौधे (Pubescens) से मिलन करवाया गया, जो कि इसके पूर्वजों में से एक था। इससे केवल एक ही जेनोटाइप का पौधा उत्पन्न हुआ जिसकी क्रोमोसोम संख्या ४ अथवा 4 N = ३२ थी। यह चौहरे क्रोमोसोम वाली जाति अनुत्पादक नहीं थी और इसी से टेट्राहिट जाति, जिसकी क्रोमोसोम संख्या ४ या 4 N = ३२ हैं उत्पन्न हुई। इसकी उत्पत्ति का कारण त्रिक्रोमोसोम वाले जर्म का बिना विघटित हुए एक-क्रोमोसोम वाले पौधे गेप्यूबेस्सेंस से मिलन होना है। (Dobzhansky) संभवतः ड्यूरम कनक में नरम कनक के कण उत्पन्न होने का भी यही कारण है, यद्यपि यहां यह भिन्नता है कि ये कण दूसरे पौध की बालियों में भटके हुए मिलते हैं। इससे कम से कम यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता कि क्रोमोसोम का द्विगुणित या त्रिगुणित होना परिवृत्ति विशेष के समीकरण का परिणाम है। फिर यहां जो केवल कुछ बालियों में कहीं कहीं ही एक दो कण उपलब्ध हुए हैं उससे तो यह बात बिल्कुल भी प्रमाणित नहीं होती।

इसका अर्थ यह नहीं कि हम विकास में या परिवर्तन में परिवृत्ति के प्रभाव से निषेध कर रहे हैं, सम्पूर्ण दूसरे अध्याय में और प्रथम में भी कहीं कहीं हमने परिवृत्ति के प्रभाव को पूरी तरह से स्वीकार किया है, किन्तु हम यह स्वीकार नहीं कर सकते कि प्राणी परिवृत्ति का उसी प्रकार एक समीकरण मात्र है जैसे पत्थर। और फिर परिवृत्ति का समीकरण भी पृथक् पृथक् प्राणियों में पृथक् पृथक् महत्व रखता है। उसका जो प्रभाव गुलाब या बेरी में देखा जा सकता है वह मनुष्य या गाय में नहीं और जो कीटाणुओं में देखा जा सकता है वह इनमें नहीं। विकास स्तर पर जो प्राणी जितना आगे होगा, अथवा यों कहें कि जिसका जेनोटाइप जितना ही अधिक विशिष्ट होगा उसमें परिवृत्ति पर निर्भरता उतनी ही कम होती जाएगी।

फिर भी ऐसी व्यक्ति भिन्नताएँ, जो उत्तराधिकार से संबंध नहीं रखतीं, जैसे अच्छा या बुरा भोजन मिलने से, किसी घातक रोग से या चोट से अथवा कार्य की प्रकृति से उत्पन्न, ये परिवृत्तिपर निर्भर करती हैं और कभी कभी काफी गंभीर फिनोटाइपिक प्रभाव छोड़ जाती हैं। पहले अध्याय में हम कुछ ऐसी कृमि जातियों के उदाहरण दे आए हैं जहाँ पर केवल भोजन का अन्तर व्यक्ति को रानी या दासी अथवा उत्पादक और अनुत्पादक बना देता है। इतना ही नहीं, यदि शैशव के बाद में भी दासी को रानी का भोजन दिया जाए तो भी वह

थोड़े ही समय में रानी बन जाती है,--उसमें सन्तानोत्पादन की योग्यता आ आती है, जो परिवृत्ति के प्रभाव का स्पष्टतम प्रमाण हैं। फिर भी परिवृत्ति जनित अन्तर आनुवंशिक नहीं होता। यदि हम एक निचले भूमि स्तर पर उत्पन्न हुए पौधे को, जिसके पत्ते पतले तथा चौडे हैं और जिसके फूलों के वृन्त लम्बे हैं, दो भागों में विभक्त करलें और उसके एक भाग को ऊँचे पार्वत्य प्रदेश में लगादें, जहाँ परा तापमान, प्रकाश, नमी तथा भोजन की प्रकृति सर्वथा भिन्न हो, कुछ पीढ़ियों बाद ही हम पाएंगे कि एक ही उत्तराधिकार के बावजूद यह पौधा अपने पूर्वज से इतना अधिक भिन्न होगा कि हम उसे पहिचान तक न सकेंगे। (Sinnot and Dunn) इस प्रकार परिवृत्ति का प्राणी पर प्रभाव काफी स्पष्ट और कभी कभी काफी गंभीर भी हो सकता है। हम प्रायः ही एक ही उत्तराधिकार के व्यक्तियों में लंबाई, चौड़ाई, पत्तों की संख्या में भिन्नता, फलों की संख्या आकार और स्वाद तथा बीज के रूप आकार इत्यादि में भिन्नता देख सकते हैं और इसमें परिवृत्ति का बहुत बड़ा हाथ रहता है। यह प्रभाव मनुष्य में भी देखा जा सकता है। अमरीका में कुछ पीढ़ियों से बसे जापानियों के कद दो से तीन इंच तक अपनी मूल जाति से बड़े हो गए हैं।

मौलिक परिवर्तन

हमने अब तक प्राणी में परिवर्तन या विकास की कुछ अवस्थाओं को देखा जिनमें परिवृत्ति का या तो कुछ भी हाथ नहीं है अथवा बहुत कम हाथ है ; किन्तु परिवृत्ता कभी कभी गंभीर और स्थायी प्रभाव भी छोड़ती है जो जेनेटिक सिस्टम को आधार से ही बदल देता है और इस प्रकार अब तक वर्णित सभी परिवर्तनों से अधिक मौलिक होता है —इसे हम मौलिक परिवर्तन या म्यूटेशन कह सकते हैं। किन्तु यह परि-वर्तन परिवृत्ति के वैसे स्थूल समीकरण से नहीं होता जैसे सामान्यतः फिनोटाइप की अभिवृद्धि तथा लंबाई चौड़ाई तथा स्वास्थ्य इत्यादि में होता है, इस परिवर्तन के लिये अधिक गंभीर प्रहारों की आवश्यकता होती है जो जेनोटाइप की सुरक्षा के सभी दुर्भेद्य आवरणों को चीर कर उसे सीधे आक्रान्त करें। ऐसे प्रहार उसके आकार को ही बदल देते हैं। परि-वृत्ति के पास जेन पर प्रहार के साधन X रश्मियाँ, गामा रश्मियाँ, कास्मिक रश्मियाँ तथा अल्ट्रा वायलट रश्मियाँ हैं जो अपनी चोट से जेन के परमाणुओं को तोड़ कर उन्हें दूसरे प्रकार से मिलने के लिए बाध्य करती हैं और उन पर अपना तथा अपनी चोट का भौतिक तथा रासाय-

निक प्रभाव भी छोड़ती हैं। सामान्य समीकरण, जैसा कि हम पीछे कह आये हैं, कोई प्रभाव यद्यपि जेन परिवर्तन पर नहीं डालता किन्तु उससे ज़ेन को अपना कार्य ठीक प्रकार से करते रहने में कुछ सहायता अवश्य मिलती है जो अन्ततः उस पर एक अत्यन्त परोक्ष प्रभाव छोड सकती
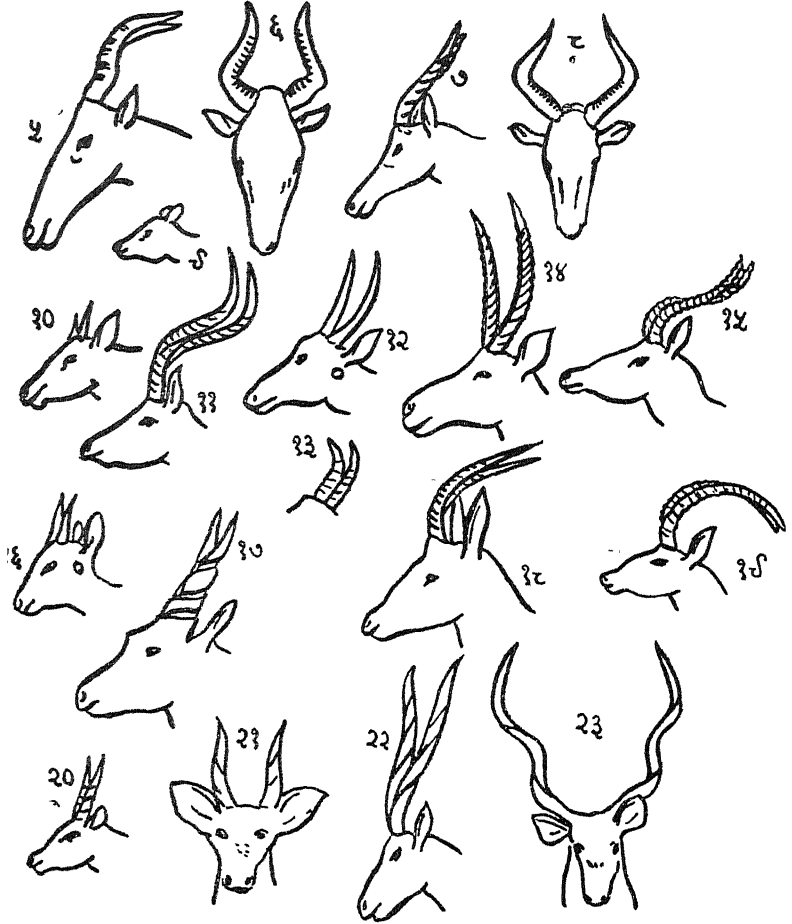
है, यह प्रभाव इतना अल्प और परोक्ष होता है कि उसे परिवृत्ति का प्रभाव कहना व्यर्थ है, उसे जेनोटाइप की अपनी ही प्रकृति की व्यंजना या अतीत की प्रगति कहना अधिक उपयुक्त होगा। प्राकृतिक परिवृत्तियों में ऐसे परिवर्तन प्रायः बहुत कम होते है क्योंकि वहाँ जेनो—टाइप स्वाभाविक रुप से अपना कार्य करता है, किन्तु बस्तियों में रहने

वाले, विशेषतः पालतू प्राणियों में मनुष्य उन पर दबाव डालता है अथवा उसके कारण कभी कभी परिवृत्ति में अन्तर पड़ जाता है जिससे प्राणी का या तो प्राकृतिक क्रम बिगड़ता है या विजातीय मिलन-जन्य अन्तर

पड़ता रहता है। किन्तु एक्सकिरण (x Rays) इत्यादि से चोट खा कर जब एक बार जेन के परमाणु टूटने लगते हैं तब उसके परिवर्तन

की गति अपेक्षाकृत तीव्र और असंख्य संभावनाओं से युक्त हो उठती है। और यह परिवर्तन तब तक रुक नहीं पाता जब तक कि प्राणी एक या अनेक झुंडों में किसी परिवृत्ति में एक दम स्थायी नहीं हो जाता। स्पष्ट रूप से इस परिवर्तन के मूल में किसी प्रकार के चुनाव की संभावना नहीं है, किन्तु परिवर्तन को स्थायी करने में और अनुपयुक्त परिवर्तनों से प्रभावित व्यक्तियों या झुंडों को समाप्त करने में प्राकृतिक-चुनाव (Natural selection) का बहुत बड़ा हाथ रहता है, किन्तु प्राकृतिक चुनाव में उत्तीर्ण होने वाले प्रत्येक परिवर्तन का कोई सुरक्षात्मक मूल्य (Survival value) हो ही यह अवश्यक नहीं है, और प्रायः ही बहुत से परिवर्तनों की Survival value एक दम शून्य और अनेक बार तो –xस* होती है, जैसा कि साथ के चित्रों से स्पष्ट है। इसके हम असंख्य उदाहरण पिछले अध्याय में भी दे आए हैं।

चित्र में ऐंटीलोप हरिण के सींग उसके जीवन-संघर्ष में सामान्यतः उसके सब अंगों से अधिक प्रभावशाली होते हैं, क्योंकि इनसे वे अपने साथियों के ऊपर आक्रमण कर उन पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करते हैं और विजातीयों से आत्म रक्षा करते हैं। चित्र में की सब जातियों के सींग हैं किन्तु किन्हीं भी दो जातियों के सींग आपस में मेल नहीं खाते। इनमें किसी एक जाति के सींग संभवतः शेष के सींगों से अधिक अच्छे होंगे, यद्यपि यह बिल्कुल ठीक है कि सींगों की सार्थकता की दृष्टि से वे या कोई भी आदर्श नहीं हैं। फिर इनमें तो ऐसे सींग ही अधिक हैं जो उलटी ओर झुके होने से बहुत कम उपयोगी प्रतीत होते हैं। इन सभी जातियों के ही सींगों में बहुत कमियाँ हैं। फिर सबसे अधिक कुतूहल जनक बात यह है कि १४ और १८ नंबर के हरिणों में मुद्रा में सर्वत्र बहुत अधिक समानता होने पर भी १४ के सींग आगे की ओर झुके हुए हैं जब कि १८ के पीछे की ओर को झुके हैं। इसी प्रकार ११ और १५ के सींगों में दुहरा मोड़ है जब कि ऐसे सींग इकहरे और एक मोड़ वाले ७ तथा १७ नंबर के सींगों से कहीं कम उपादेय हो सकते हैं। दस और सोलह नंबर के सींग इतने छोटे हैं कि इनसे वे प्रायः कोई भी लाभ नहीं उठा सकते। इसी प्रकार १५ और १९ के सींग इतने अधिक पीछे की ओर मुड़े हुए हैं कि वे इनसे संघर्ष में किसी भी प्रकार का लाभ नहीं उठा सकते। इसी प्रकार कुक्कुटों में कलगी, केश और चोंच तथा लटकन के लिए भी। इस चित्र में कुछेक के कलगी या तो बिल्कुल भी नहीं हैं अथवा

×स = सुरक्षामूल्य

इतनी छोटी है कि इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि कलगी और लटकन को सेक्सुअल चुनाव* (Sexual Selection) से उत्पन्न माना जाए तो ६, १४, १६, २२, २३, २४, २५, २७, और २९ में कलगी का सर्वथा अभाव है जब कि अन्य बहुत सी जातियों में वह बहुत छोटी है । फिर कलगी के लिए इस चुनाव विशेष का पक्षपात स्वीकार करने पर, केशों के लिए किस चुनाव का पक्षपात कल्पित किया जाए ? पन्द्रह नंबर की कलगी ७,८,९,१०,११, १६,१७,१८,१९ तथा बीस की अविकसित कलगियों का ही विकसित रूप है जब कि बीस तथा २५ का भी प्रारूप उसे कहा जा सकता है । इसी प्रकार चोंच. तथा लटकनों में भी काफी अन्तर है । कुछेक के तो लटकनें बिल्कुल भी नहीं हैं । कलगी यद्यपि प्राकृतिक चुनाव की दृष्टि से अपकारक है और कुक्कुट आपस में लड़ते भी बहुत अधिक हैं, किन्तु डरविन के अनुसार सेक्सुअल चुनाव के कारण ये स्वीकार कर ली गई या उत्पन्न कर ली गई । किन्तु बड़े बड़े बालों वाले कुक्कुटों में जहाँ प्राकृतिक चुनाव को अर्धचन्द्र दे दिया गया प्रतीत होता है वहाँ सेक्सुल चुनाव को भी । हरिणों में तो यह बिल्कुल ही स्पष्ट है । यदि हम एक जाति में किसी विशेषता की विद्यमानता का कारण किसी विशेष उपयोगिता को मानेंगे तो दूसरी जाति में उसकी अविद्यमानता का कारण भी हमें बताना चाहिए । एक ही जाति (Specie) के भिन्न भिन्न वर्गों (Varieties) में एक में एक लाभदायक विशेषता का विद्यमान होना तथा दूसरे में न होना और ऐसा आकस्मिक रूप से नहीं सामान्य रूप से होना प्रमाणित करते हैं कि चुनाव संबंधी इन कल्पनाओं में कोई बड़ी भूल है । वास्तव में किसी भी प्राणी में मानसिकता संबंधी अनुमान काफी सोच समझ कर करना चाहिए क्योंकि उसके किसी भी पहलू की कल्पना में अपनी मानसिकता के आरोपण का भय रहता है । फिर किसी अंग की विद्यमानता का कोई मानसिक कारण बताते हुए तो बहुत ही अधिक सावधानी की आवश्यक्ता है । कुक्कुटों में जैसे तेज और सशक्त पंजों वाला व्यक्ति न केवल शत्रु को परास्त ही कर सकता है, काम-सखा को दबोच भी सकता है, जैसा कि कुक्कुटों में मैथुन का ढंग है । + इससे सेक्सुअल चुनाव में किसी ऐसे अंग की रक्षा

*सेक्सुल चुनाव या सिलेक्शन = अपनी काम सखी को प्रसन्न या आकर्षित करने के लिए किसी विशेषता को अपनाना ।

+कुक्कुट प्राय: सदैव ही मैथुन के लिए मादा के पीछे तीव्रता से दौड़ता है जब कि वह आगे आगे भागती है, और तब वह बलात उसका धर्षण कर उससे मैथुन करता है ।

करना जो उसके शत्रु के लिए लाभदायक हो, उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि विकास में न तो कोई योजना है और न सुरक्षा-मूल्य का आग्रह ही, यह केवल जेनोटाइप और परिवृत्ति की अथवा केवल जेनोटाइप की रासायनिक स्थिति की यांत्रिक क्रिया-प्रतिक्रिया का ही परिणाम है। यह ठीक है कि सींग ऐंटीलोप की प्रायः सभी जातियों में विद्यमान हैं और यह भी कहा जा सकता है, जैसा कि सिम्पसन कहता भी है, कि विभिन्न दिशाओं में विकास की बाध्यता के बावजूद सुरक्षामूल्य (Survival value) के कारण सींग सभी जगह बचा लिए गए हैं, और यह कि कार्य-क्षमता में अपूर्णता होने पर भी इनका महत्वपूर्ण सुरक्षा-मूल्य है, किन्तु यह केवल संभावना है, निश्चित तथ्य नहीं, क्योंकि दूसरे चित्र में कुक्कुटों में हम स्पष्ट रूप से इसका प्रत्याख्यान पाते हैं। फिर उन हरिणों में, जिनके सींग लगभग न के बराबर हैं (१० और १६) यह कहना एक दम ज्यादती प्रतीत होता है कि विकास की विभिन्न दिशाओं में बाध्यता के बावजूद महत्वपूर्ण सुरक्षामूल्य के कारण सींग सभी जगह बचा लिए गए, क्योंकि इनमें ये प्रायः समाप्त हैं। यह ठीक है कि सहज चुनाव अपकारक तत्वों या असमर्थ व्यक्तियों को निष्का-सित कर देता है, और यह भी ठीक है कि प्राणी प्राप्त सुविधा और अवसर को उपयुक्त से उपयुक्ततर उपयोग करने का प्रयास करता है, किन्तु मौलिक परिवर्तन इनसे एकदम निरपेक्ष है, सापेक्ष नहीं।

किन्तु इस विषय में और अधिक कुछ कहने से पूर्व हमें म्यूटेशन की परि-भाषा निश्चित कर लेनी चाहिए। जैसा कि हम पीछे अनेक स्थलों पर कह आए हैं, हमारा जेनोटाइप विभिन्न और स्वतंत्र इकाइयों का संकलन है और इन स्वतंत्र इकाइयों में मिलानेवाली कड़ियाँ कोई नहीं हैं, यद्यपि ये आपस में संपर्क में रहती हैं। म्यूटेशन इन इकाइयों में से एक या अनेक में स्वल्प या गंभीर मौलिक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है। यह परिवर्तन, तापमान, ऐक्स-किरण तथा अल्ट्रावायलट किरण इत्यादि के प्रभाव से जेन में उत्पन्न हो जाता है। किन्तु इसकी संभावनाएँ बहुत कम रहती हैं, और जब कभी यह अस्तित्व में आ भी जाता है तो जैसे भौतिक वातावरण में X किरणें या कॉस्मिक किरणें किसी भी परमाणु पर आकस्मिक प्रहार कर उसे तोड़ देती हैं उसी प्रकार जेनोटाइप में भी न तो उनका आक्रमण चुनाव द्वारा निर्दिष्ट जेन पर ही हुआ होता है और न उनका प्रभाव ही किसी लाभ-हानि की अपेक्षा रखता है। जब कभी यह परिवर्तन दुहरे (Diploid) प्राणी के जर्मसेल में होता है, वहाँ क्रोमोसोमयुगल के केवल एक सदस्य को प्रभावित करने पर भी, जिस युगल का यह क्रोमोसोम सदस्य होता है उसका परिवर्तित जेन उस

सम्पूर्ण क्रोमोसोम को ही प्रभावित करता है और इस प्रकार उसे इकहरा और (Haploid) भी बना देना है। एक्स-किरणें जेन में क्रमिक और सहज अन्तर उत्पन्न न कर उसे एकदम तोड़ देती हैं, इससे उनसे उत्पन्न परिवर्तन सहज (Spontanious) नहीं होता। अल्ट्रावायलट (Ultra Violet) किरणें यद्यपि जेन को एक दम तोड़ नहीं देतीं और उनसे प्रेरित परिवर्तन सहज सा प्रतीत होता है, किन्तु उसकी गति तीव्र और प्रभाव पर्याप्त गंभीर होता है, जितना कि सहज का नहीं होता। एक्स किरणों से प्रेरित परिवर्तन का अनुपात यद्यपि किरणों की संख्या के अनुपात में होता है, किन्तु वहाँ इस बात की कोई अपेक्षा नहीं रहती कि क्रोमोसोम कितने समय तक उनसे प्रभावित हुआ या किरणों का लहर प्रसार (wave length) कितनी थी, जबकि अल्ट्रावायलट किरणों में समय और लहर प्रसार का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। वास्तव में अल्ट्रावायलट किरणें बहुत कम प्रभावशाली होने से अनेक बार काफी गंभीर परिवर्तनों की कारण नहीं होतीं। किरणों के अतिरिक्त तापमान का भी म्यूटेशन में महत्वपूर्ण स्थान है। जितनी गर्मी ड्रोसोफिला के स्वभावानुकूल है उस से अधिक गर्मी मिलने पर उसमें मौलिक परिवर्तन की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। म्यूटेशन यद्यपि रासायनिक द्रव्यों से भी उत्पन्न किया जा सकता हैं, किन्तु इस प्रकार के प्रयोगों की संभावनाएँ प्रकृति में बहुत कम ही रहती हैं। इससे म्यूटेशन में एक्सकिरणें, अल्ट्रावायलट, गामा तथा कॉस्मिक किरणें, और तापमान बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

किन्तु म्यूटेशन की परिभाषा करने के लिए उसकी सीमाएं निश्चित करनी आवश्यक हैं। बहुत से ज़ेनेटिस्ट म्यूटेशन के अन्तर्गत उन परिवर्तनों को भी ले लेते हैं जो मौलिक नहीं हैं और जो परिवृत्ति के इन प्रभावों से कोई संबंध नहीं रखते, दूसरे शब्दों में ज़ो विजातीय मिलन जन्य क्रोमोसोम अथवा ज़ेन की संख्या वृद्धि से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु हम म्यूटेशन को केवल मौलिक परिवर्तन ही कहेंगे, ज़ो परिवर्तन मौलिक न हो कर संख्या इत्यादि से संबंध रखते हों उन्हें हम मौलिक परिवर्तन या म्यूटेशन नहीं कहेंगे। किन्तु यदि किसी क्रोमोसोम में X किरणों की चोट से ज़ेन-संख्या घट जाती है तो उस क्रोमोंसोम का अपने युगल साथी से भिन्न हो जाना स्वाभावित ही रहेगा, उस अवस्था में केवल संख्या में परिवर्तन भी मौलिक परिवर्तन का कारण हो सकेगा। इस प्रकार हम म्यूटेशन के अन्तर्गत व्यक्ति में निहित वैविध्य की संभावनाओं लौर संख्या परिवर्तन को (यदि वह विजातीय मिलन से हुआ हो) नहीं रखते। म्यूटेशन तो प्राणी को मूलतः ही अपने पूर्वज़ों से भिन्न कर देता है, फिर चाहे वह भिन्नता कितनी भी स्वल्प क्यों न हो। किन्तु

म्यूटेशन के ऐसे उदाहरण भी संभव हैं जिनमें म्यूटेशन की उत्पत्ति एकदम आकस्मिक हो और यह कहना कठिन हो कि इसका क्या कारण है। ऐसे उदाहरण बड़े बड़े इज्जड़ों में प्रायः ही पाए जा सकते हैं। डन (Dunn) के अनुसार, इस प्रकार से म्यूटेशन से प्रभावित व्यक्ति न तो परिवर्तित कहे जा सकते हैं, न अपने जातीय इतिहास से ही उन्हें सम्बन्धित किया जा सकता है और 'न उन्हें अपनी जाति या विजातीय मिलन में निहित वैविध्य की सामान्य संभावनाओं का ही परिणाम कहा जा सकता है' ('—' यशदेव)। वह कहता है कि वनस्पतियों या पशुओं के जातीय जीवन में ऐसे परिवर्तनों की घटनाएं प्रायः ही घटती रहती हैं। उदाहरणतः, १८वीं शताब्दि के उत्तरार्ध में इंगलैंड के एक किसान के घर एक मेढा[1] उत्पन्न हुआ जिसकी टाँगें बहुत अधिक छोटी और झुकी हुई भी थीं। किसान ने उसे ध्यान से पाल लिया और उससे उसकी जाति बढ़ानी प्रारम्भ की, किन्तु लगभग ६० वर्ष पूर्व (१९३९ में यह लिखा गया था) यह जाति समाप्त हो गई, किन्तु लगभग ५० वर्षों बाद अथवा दस वर्ष पूर्व एक नार्वेजियन किसान के घर एक और इसी जाति की सन्तान उत्पन्न हुई जो कि लगभग उसी का नवीन संस्करण थी। इस व्यक्ति का पुनः नवीन वंश बढ़ाया जा रहा है। इस उदाहरण में स्पष्ट ही परिवृत्ति का कोई हाथ प्रतीत नहीं होता यद्यपि किरणों इत्यादि का प्रभाव अवश्य संभावित है। किन्तु दो बार एक ही प्रकार की म्यूटेशन की किरणों के प्रभाव से उत्पत्ति असंभव नहीं तो आश्चर्यजनक अवश्य है। यदि उसे किसी गौण जेन के प्रमुख होने का प्रभाव कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा क्यों कि इस जाति के मेष मलाया में पहले से ही विद्यमान थे, जिससे संभव है इन दोनों जातियों का एक ही मूल हो और इंगलैंड तथा नार्वे की भेड़ जातियाँ अपने मूल से धीरे-धीरे भिन्न हो गई हों। किन्तु इससे भी आश्चर्यजनक उदाहरण और हैं जो कम से कम यह अवश्य प्रमाणित करते हैं कि उनकी उत्पत्ति में परिवृत्ति का कोई हाथ नहीं है। दुलकी चाल रहित घोड़े, दो अंगूठे वाली बिल्ली, श्वेत रोम और लाल आँखों वाले चूहे तथा सींग युक्त जातियों से सींग रहित सन्तानें ये सभी मौलिक परिवर्तन जन्य जातियाँ अपनी ही प्रतिनिधि सन्तानें उत्पन्न करती हैं, ये (True breader) हैं। इनमें चूहे में श्वेतता के अतिरिक्त किसी भी म्यूटेशन में परिवृत्ति के समीकरण की संभावना नहीं कही जा सकती, यद्यपि इनकी ठीक प्रतिनिधि सन्तानें उत्पन्न करना बताता है कि यह समीकरण मौलिक परिवर्तन का ही द्योतक है, जो कि लाल आँखों से और भी अधिक निश्चित हो जाता है।

---

[1] नर भेड़।

दो अंगूठे वाली बिल्ली को भी किसी न किसी प्रकार से परिवृत्ति का (किरणों इत्यादि का) प्रभाव कहा जा सकता है, इसी प्रकार सींग युक्त जातियों से सींग रहित व्यक्तियों के लिए भी, किन्तु दुलकी चाल रहित घोड़ों को एक दम आकस्मिक ही कहा जा सकेगा जो रज-वीर्य के मिलन की विशेष मिलन--परिस्थितिं (भौतिक या रासायनिक परिस्थित नहीं) के कारण उत्पन्न हो गए। इसे जेन की अपनी ही रासायनिक प्रक्रिया से उत्पन्न केवल अभि-व्यक्ति में परिवर्तन भी कहा जा सकता है। वास्तव में प्रत्येक जाति या वर्ग में ऐसे जेन होते हैं जो अधिक परिवर्तनशील होते हैं जब कि अधिकाँश जेन परिवर्तन से बचते हैं। इनके अनुपात से ही जाति के संभावित परिवर्तनों की गति निर्धारित होती है। किन्तु परिवर्तनों की इस गति का ठीक गणित खोजना काफी कठिन और उलझन पूर्ण कार्य है क्योंकि सभी जेन समान रूप से प्रभावित नहीं होते, और क्योंकि उनका प्रभाव मिश्रित और बहुमुखी दोनों ही प्रकार का है, इसलिए जेनोटाइप की सामान्य और एक जेन की विशेष परिवर्तन शीलता का अनुमान करना सहज नहीं है। जब प्रत्येक जेन एक पृथक इकाई है और प्रत्येक की परिवर्तनशीलता भिन्न है तो जेनोटाइप की सामान्य गतिका अनुमान बहुत अधिक कठिन है, क्योंकि उसके लिये न केवल प्रत्येक व्यक्ति-जेन का निकट परिचय ही आवश्यक है प्रत्युत कठिन गणित का प्रयोग भी आवश्यक है। उस अवस्था में भी यह अनुमान केवल उसके परिवृत्ति से अप्रभावित रहने पर ही ठीक हो सकता है। जहाँ तक एक जेन की गति का संबन्ध है वहाँ भी अनेक उलझनें रहती हैं, प्रथम तो प्रत्येक जेन आयु के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न अभिव्यक्तियाँ करता है, दूसरे, उसके प्रभाव की सीमाएं निश्चित करना भी प्राय: असंभव कार्य है, और आगे जितनी दूर तक भविष्य में हम झांक सकते हैं, यह असंभव रहेगा, ऐसा प्रतीत होता है। मनुष्य जाति में भी हम प्राय: देखते हैं कि आयु के एक स्तर पर बच्चें के कान पहिले छोटे और सीधे हैं जब कि दूसरे स्तर पर बड़े और टेढ़े हो सकते हैं। इसी प्रकार अन्य अंगों के लिये भी, रंग में भी अनेक बार बिल्कुल परिवर्तन हो जाता है। इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि कभी-कभी बच्चा पहिले माता या पिता पर होता है जब कि बाद में पिता या माता पर और कभी-कभी बिल्कुल किसी अन्य पर हो जाता है। इतना ही नहीं, कभी-कभी आयु के साथ-साथ क्रीमोसोम और जेन इत्यादि की संख्या और स्थिति इत्यादि में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे इन्हीं दिनों स्त्री के पुरुष और पुरुष के स्त्री हो जाने के दो चार समाचार आए हैं। जो कि

प्राय: १५-१६ वर्ष की आयु के बाद परिवर्तित हुए हैं। स्पष्ट रूप से ये उदाहरण संख्या परिवर्तन और अभिव्यक्ति परिवर्तन के हैं। इसी प्रकार यदि अत्यल्प परिवर्तन होता है तो वह जानना कठिन है कि इस परिवर्तन में किस जेन ने कितना और क्या भाग लिया। यदि एक ही जेन के प्रभाव को देखना हो तब तो यह कार्य बहुत ही कठिन हो जाता है, क्योंकि यह प्रभाव इतना कम होता है कि उसे जानने के लिए बड़े तीव्र अणुवीक्षणों की आवश्यकता हो सकती है।

मौलिक परिवर्तन से संबंधित अनुसंधानों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनसे विकासवाद की अब तक की कल्पना में निहित 'प्राणी के लाभ' की धारणा समाप्त हो गई है। अब यह एक दम निश्चित है कि म्यूटेशन का कारण किसी भी प्रकार का चेतन या अचेतन प्रयास नहीं है और न किसी प्रकार का चुनाव ही। वास्तव में अच्छी प्रकार से अपनी परिवृत्तियों में सुरक्षित और उनके अनुसार ढली हुई जातियों में मौलिक परिवर्तन सदैव एक अपकारक तत्व के रूप में ही आ सकता है, क्योंकि तब वे परिवृत्ति की सापेक्षता में परिवर्तित न होकर नये सिरे से अपने आपको उसमें ठीक बैठाने में कठिनाई पाएंगी। संभव है उनके लिए यह परिवर्तन पूर्ण मृत्यु का भी कारण बन जाए और वह जाति धीरे धीरे जीवन के प्रगतिशील क्षेत्र से बहिष्कृत कर दी जाए।

इसके विपरीत आवश्यकता होने पर भी अनेक बार प्राणियों में परिवर्तन नहीं होता और वह जाति जो एक समय में अपनी परिवृत्ति में उपयुक्ततम रही होती है, पैरों तले से उपक्तता के लिए सापेक्ष जमीन खिसक जाने से, अनुपयुक्त हो जाती है और इस प्रकार अस्तित्व के क्षेत्र से पराभूत करके निकाल दी जाती है। रूपकात्मक अभिव्यक्ति में हम कह सकते हैं कि उसके पैरों तले की जमीन खिसक जाती है जब कि उसके पैर नवीन के अनुसार नहीं ढल पाए होते, उसके खाद्य भंडार की सब वस्तुएं बदल जाती हैं जब कि उसके स्वाद की प्रकृति तथा पाचनशक्ति उसके अनुसार नहीं बदल पाई होती। दूसरे शब्दों में, वह उपयुक्तता के शिखर से गहरी तलहटी में धकेल दी जाती है। उस अवस्था में वह जाति समाप्त तक हो सकती है यदि वह अपनी बदली परिवृत्ति के अनुकूल अपने जेनोटाइप में संभावनाएं नहीं रखती या उनका उपयोग उसके अनुसार नहीं कर पाती। किन्तु पुन: उपयुक्तता की चोटी पर पहुंचने के लिए, दूसरे शब्दो में अपने पैरों को उस तल के और मुंह को उस स्वाद तथा पाचन शक्ति को उस भोजन के अथवा अन्य उपयोग के पदार्थों का

अधिक से अधिक लाभ उठा सकने के उपयुक्त बनने के लिए न केवल प्राणी के लिए अपने जेन भंडार में परिवर्तन करना ही अवश्यक हो जाता है प्रत्युत प्रवृत्तियों में परिवर्तन भी अनिवार्य हो उठता है, जिनमें एक सर्वथा उसके बस के बाहर है और दूसरा एक सीमा तक प्रयास साध्य है। जबकि प्राणी के जेनोटाइप में परिवर्तन प्राणी के लिए नवीन शिखर या घाटी के द्वार खोलता है वहाँ दूसरा परिवृत्ति का उसे नवीन चोटी पर पहुंचने का आव्हान करता है।

नवीन उपयुक्तताओं की संभावनाओं का अर्थ है असीम अभुक्त परिवृत्तियों अथवा अनुपयुक्त रूप से अध्युषित परिवृत्तियों की विद्यमानता की संभावनाओं का होना, दूसरे शब्दों में, जेंज् और परिवृत्ति की असंख्य सापेक्ष स्थितियों की संभावनाएं, जो अभीतक चरितार्थ नहीं की गई। इसका केवल यही अर्थ है कि प्राणी की प्रकृति और परिवृत्ति में एक सापेक्ष संबंध है; यदि प्राणी की प्रकृति में परिवर्तन हो जाए तो परिवृत्ति में परिवर्तन हुए बिना भी संबंध की सापेक्ष स्थिति में अन्तर आ जाएगा और इस प्रकार एक अन्य सापेक्ष संबंध अस्तित्व में आ जाएगा। क्योंकि प्रत्येक प्राणी में असंख्य जेन हैं और प्रत्येक जेन की प्रतिलिपियाँ और असंख्य संबंध--संभावनाएं हो सकती हैं इससे असंख्य भिन्नताओं से युक्त प्रतिलिपियों की संभावनाएं हो सकती हैं। इसी प्रकार विशेष परिवृत्तियों में उन्हें अध्युषित करने वाले सभी प्राणी उन परिवृत्तियों में उपयुक्ततम नहीं होते और इस प्रकार उनके संबंधों में सुधार की अथवा उपयुक्तता की मात्रा में अधिक विभिन्न स्तरों के जेनोटाइप की संभावनाएं भी निहित हैं। इसका एक प्रमाण यह भी है कि विदेशों से लाये गए अनेक पौधे अपनी जन्म भूमि से अधिक अन्य देश की पृथ्वी पर फूलते हैं और जहाँ वे इस प्रकार अधिक उपयुक्त होते हैं वहाँ वे कम उपयुक्त पौधों को अस्तित्व के क्षेत्र से निकाल फेंकते है। अर्थात न केवल यही कि उनकी उत्पत्ति की अधिक ठीक परिस्थितियाँ होने पर भी उनकी वहाँ कभी उत्पत्ति नहीं हुई, अथवा उनकी उत्पत्ति की पूरी संभावनाएं होने पर भी वे कभी क्रियान्वित नहीं हुईं प्रत्युत यह भी कि उनमें उत्पन्न प्राणी एक तो अनुपयुक्त रूप से उसे अध्युषित किये रहे और दूसरे अनेक संभावित संबंधों को शून्य छोड़े रहे। इससे यह भी परिणाम निकलता है कि 'जो हो सकता है वह अवश्य होता है' का सिद्धान्त गलत है। यह केवल संयोग है, यद्यपि ठीक कारण – कार्य संबंध से बँधा हुआ, कि एक घटना

घटित हो जाती है और दूसरी ९९ केवल प्रतीक्षा में रह जाती हैं। जब एक पौधे की उत्पत्ति की उपयुक्ततम संभावनाएं भारत में हैं जब कि उससे बहुत कम उपयुक्त इंगलैंड में, और तब भी वह इंगलैंड में ही उत्पन्न होता है तो यही कहा जाएगा कि संयोगवश, यद्यपि किन्हीं निश्चित कारणों से, वह पौधा इंगलैंड में उत्पन्न हो गया और भारत में उत्पन्न नहीं हुआ। यह विरोधाभास सा है किन्तु यह हम फिर निश्चित रूप से कहेंगे कि जो होता है न तो उसका होना आवश्यक था और न जो नहीं होता उसके होने की संभावनाएं नहीं थीं, इस लिए, यह केवल संयोग है कि असँख्य समान संभावनाओं में से एक संभावना क्रियान्वित हो जाए और शेष प्रतीक्षा में पड़ीं रहें। +

अस्तु, प्राणियों के विभिन्न वर्ग और जातियां जेंज़ की संख्या और प्रकृति में बहुत भिन्न होती हैं, इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति के जेन इस प्रकार समवेत होते हैं कि उसकी उपयुक्तता-अनुपयुक्तता उसके सम्पूर्ण जेनोटाइप की सामान्य विशेषता पर निर्भर करती है। विकास या परिवर्तन प्राणी में केवल जेंज़ की संख्या को घटाता बढ़ाता ही नहीं है उनको समवेत और शृंखलित भी करता है। इस एक उपयुक्त अवस्था से दूसरी अधिक उपयुक्त अवस्था में संक्रमण भी अन्तर काल में अनेक विषमताएँ उत्पन्न करता है, क्योंकि इसके लिए जेनोटाइप का पूर्णतः नव-निर्माण करना पड़ता है जो कि दो उपयुक्तताओं के अन्तर में प्राणी को असन्तुलित रखता है। इस प्रकार उस जाति में, जो अपनी परिवृत्ति में पूर्णतः उपयुक्त है, म्यूटेशन का परिणाम यदि अन्ततः लाभदायक भी होने को हो, एक बार हानिकारक अवश्य होगा। इसलिए उनमें इस परिवर्तन को न तो प्राकृतिक चुनाव ही कहा जा सकता है और न सहज चुनाव (Adaptation)।

प्राकृतिक चुनाव के विरुद्ध मुख्य आपत्ति यह है कि उसमें अनेक पूर्वकल्पनाओं की अवैज्ञानिकता निहित है। जैसे, उसके लिए पहिले से ही यह

+ भूत विज्ञान में क्वाँटम् सिद्धान्त (Quantum theory) का Law of Probability भी कुछ इसी प्रकार के मत की पुष्टि करता है, किन्तु आईंस्टीन की unified theory, जो अभी तक पूर्ण विकसित नहीं हुई, 'संयोग शब्द का प्रत्याख्यान करने के लिए कटिबद्ध है, यद्यपि अभी तक आईंस्टीन इसमें बिल्कुल भी सफल नहीं हो सके। एक तरफ जब कि Whitehead और Eddington इत्यादि दार्शनिक इसका तीव्र समर्थन कर रहे हैं, आईंस्टीन संयोग शब्द को साइंस में उपहासास्पद समझते हैं।

मान लेना पड़ता है कि प्राणियों में सामान्य परिवर्तन (विजातीय मिलन इत्यादि से) तथा मौलिक परिवर्तन (mutation) की संभावनाएँ अनिवार्य रूप से निहित हैं, जिन पर कि चुनाव क्रियान्वित होता है। किन्तु भिन्नताओं की उत्पत्ति, फिर चाहे वे कैसी भी क्यों न हों, किसी भी प्रकार के चुनाव से प्रेरित नहीं होती, यह बात और है कि यह उत्पत्ति प्राकृतिक चुनाव की कसौटी पर कसी जाती है। इस प्रकार प्राकृतिक चुनाव विकास का कारण नहीं है, विकास तो मुख्यतः मौलिक परिवर्तन और सामान्य परिवर्तन Hybridizdation and Recombination के द्वारा क्रियान्वित होता है। प्राकृतिक चुनाव का कार्य तो केवल छँटनी करना है। जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, मौलिक परिवर्तन परिवृत्ति में उपयुक्त जातियों के लिए प्रायः ही हानिकारक होता है, प्राकृतिक चुनाव उस अवस्था में उन जातियों को अस्तित्व विहीन कर देता है। आश्चर्य की बात है कि आज भी बहुत से वैज्ञानिक विकास का कारण सहज चुनाव या प्राकृतिक चुनाव को मानते हैं, जिसका अर्थ है कि प्राणी का प्रयास परिवृत्ति की सापेक्षता में विकास-प्रक्रिया को क्रियान्वित करता है। निश्चित रूप से हम प्राकृतिक चुनाव की शक्ति में अविश्वास नहीं करते, किन्तु वह अस्तित्व में आ ही तब सकता है जब परिवर्तमान व्यक्ति या जातियाँ उसे क्रियान्वित करने के लिए अस्तित्व में आ जाएँ, जहाँ तक सहज चुनाव का संबंध है, हम उसे पूर्णतः अस्वीकार नहीं करते, इसका प्राणी के परिवृत्ति को अपने लिए उपादेय बनाने के प्रयास के रूप में महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु जैसा कि हम पीछे देख आए हैं (अध्याय दो) यह स्वयं अन्ततः प्राणी की शारीरिक प्रकृति और जेनोटाइप (अध्याय ४) से निर्धारित होता है।

यह प्रायः सर्व-विदित है कि डारविन ने सहज चुनाव का सिद्धान्त माल्थस (Malthus) से ग्रहण किया था, जैसा कि उसने स्वयं भी उरिजन ऑफ स्पीसीज़ में लिखा है, जिसके अनुसार सभी प्राणी अधिक से अधिक सन्तानोत्पत्ति करने का प्रयास करते हैं, जिससे वे अधिक से अधिक प्रदेश घेर सकें और अपकारक परिस्थितियों से बच सकें। इस धारणा के मूल में सामान्यतः उस शताब्दि के संघर्षशील और क्रान्तिकारियों के युग के 'जीवन के लिए संघर्ष' और 'उपयुक्त तम की अवस्थिति' तथा 'जीवो जीवस्य भोजनम्' इत्यादि नारे कार्य कर रहे थे, जो कि प्राकृतिक चुनाव तथा सहज चुनाव के भी प्राण हैं। क्योंकि इनकी धारणा के मूल में, जैसा कि डारविन 'ओरिजिन आफ स्पीसीज़' में जीवन के लिए संघर्ष की

सार्वभौमिकता बताते हुए कहता है, शक्तिशाली की विजय और निर्बल की पराजय का भाव कार्य कर रहा था।

किन्तु, सिम्पसन और डोब्जहेंस्काई के अनुसार, सहज चुनाव को आज इस रूप में कोई भी स्वीकार नहीं करता। इसके विकल्प में वे इसकी दूसरी व्याख्या देते हैं,—वे कहते हैं, एक बस्ती Population में विभिन्न जेनोटाइप हो सकते हैं जो कि बस्ती के सामान्य जेन-भंडार में अपना दाय भाग देते हैं, जिस भंडार में से सन्तानें अपना प्राप्य पाती हैं। इनमें कुछ व्यक्ति (Genotype) अपेक्षाकृत अधिक सशक्त होते हैं और अधिक सन्तानें उत्पन्न कर सकते हैं जब कि दूसरे कम उत्पन्न कर पाते हैं। जेनोटाइपों की यह भिन्नता उनकी सापेक्ष अवस्थिति की उपयुक्तता का अनुपात निर्धारित करती है, इसी को प्राकृतिक चुनाव कहा जा सकता है। इस प्रकार प्राकृतिक चुनाव-जन्य उपयुक्तता अधिक सन्तानोत्पत्ति पर निर्भर करती है इत्यादि। किन्तु यदि सुरक्षात्मक मूल्य और प्राकृतिक चुनाव का अभिप्राय प्राणी की परिवृत्ति विशेष में उपयुक्तता समझा जाय तो हमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि यह प्राणी की अप्रयास-जन्य-यांत्रिक-योग्यता पर निर्भर है, जो उसे उसके जेनोटाइप के ऐतिहासिक निर्धारण और परिवृत्ति के अनुसार प्रवृत्तियों के विकास के आधार पर प्राप्त होती है। इसमें इस बात का भी बहुत बड़ा महत्व है कि वह जाति संख्या के अनुपात में कितने विस्तार में फैली हुई है, उसके विभिन्न वर्गों के बीच कैसी दैशिक बाधाएँ हैं और उसका संख्याबल कितना है। कोई जाति कम उत्पादक होकर भी यदि एक घिरी हुई और उपयुक्ततम परिवृत्ति में रहती है तो उसका जीवन अत्यधिक सुरक्षित होगा और उसमें परिवर्तन की गति अत्यन्त धीमी होगी जब कि अधिक संख्यावाली विस्तृत प्रदेश में फैली जाति में परिवर्तन की गति तीव्र और कभी उपकारक तथा अपकारक होगी। इस जाति के स्तर भी अनेक होंगे। किन्तु छोटी और परिवृति में उपयुक्ततम जाति में दूसरी कमी होती है, वह परिवृत्ति में परिवर्तन आने पर अपना अस्तित्व अक्षुण्ण नहीं रख पाती। किन्तु सिम्पसन या डोब्जहेंस्काई जो अधिक सन्तान उत्पन्न करने की बात करते हैं वहाँ जाति के स्थान पर व्यक्ति आ जाता है, जैसे—'जो व्यक्ति अधिक सशक्त होते हैं वे अधिक सन्तानें उत्पन्न कर सकते हैं' इत्यादि, किन्तु सन्तानों की अधिक या कम उत्पत्ति का महत्व व्यक्ति के लिए न होकर जाति के लिए होता है, व्यक्ति के लिए तो महत्वपूर्ण केवल अपनी वासना तृप्ति और दीर्घजीवन का उपभोग हैं। जो भी हो, डारविन 'जीवन के लिए संघर्ष' को जो इतना अधिक महत्व देता

था, उसे आज संभवतः कोई भी स्वीकार नहीं करता, क्योंकि प्राकृतिक चुनाव के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसमें संघर्ष का कोई योग हो ही, प्राकृतिक चुनाव, जो कि डारवीनियनिज्म की रीढ थी, आज न तो वह अर्थ ही रखता है और न वह महत्व ही। सहज चुनाव में अनेक तथ्य काम करते हैं, जैसे समान क्रोमोसोम युगल वाली (Homozygous) जाति में अपकारक (lethal) जेन की उत्पति उसके लिए पूर्णतः घातक हो सकती है जब कि असमान क्रोमोसोमवाली (Heterozygous) उस विपत्ति में से बच निकलती है। इसी प्रकार, सम्भव है कोई अपने जेनोटाइप में परिवर्तन की संभावनाएं रहने पर भी कम सन्तानोत्पादन के कारण समाप्त हो जाय, अथवा सम्भव है उसको अपने विस्तार के लिए प्रदेश और भोजन के लिए उपयुक्त सामग्री न मिल सके और वह समाप्त हो जाय। दूसरी ओर, कम सन्तानोत्पादन के बावजूद किसी जाति के लिए सम्भव है कि वह प्राकृतिक चुनाव की कुदृष्टि से बची रहे। इस प्रकार अधिक सन्तानोत्पादन को हम भी जाति के अस्तित्वमूल्य के लिए महत्वपूर्ण समझते हैं, किन्तु इतना अधिक नहीं जितना अन्य अनेक वैज्ञानिक। सबसे बड़ी बात यह है कि इसको हम किसी प्रकार के निहित उद्देश्य के द्वारा प्रेरित नहीं समझते।

अब तक हम पर्याप्त विस्तार से यह दिखा आए हैं कि विकास के मूल में प्राणी के पुनरुत्पादक-पदार्थ या जेनोटाइप में यांत्रिक और आकस्मिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण भाग रहता है। किन्तु सिम्पसन के विचार में विकास की प्रक्रिया उभय-पक्षीय है—आकस्मिक और यांत्रिक भी तथा निर्दिष्ट और सोद्देश्य भी। वह कहता है कि जीवन की ऐतिहासिक प्रक्रिया न तो पूर्णतः यांत्रिक और आकस्मिक है और न पूर्णतः निर्दिष्ट, प्रत्युत—इन दोनों का विषम समिश्र है। जब कि एक पक्ष को एक स्थान पर प्रधान देखा जा पकता है वहां दूसरे स्थान पर गौण, किन्तु जेनेटिक-सिस्टम में दोनों अवि-भाज्य रूप से विद्यमान रहते हैं। सोद्देश्यता का यह तत्व परिवृत्ति के अनुसार ढलने और उसके उपयुक्त होने की प्रक्रिया में निहित है न कि किसी तथा—कथित जीवन की लहर और निश्चित उद्देश्य की ओर बढ़ने की प्रक्रिया में (निश्चित उद्देश्य की ओर बढ़ने (Finalism) से तात्पर्य है, जीवन की उत्पत्ति और विकास का जीवन की मूल प्रकृति में ही निहित होना)। किन्तु, सिम्पसन के ही शब्दों में, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि जब जेन में परिवर्तन की प्रक्रिया एक दम आकस्मिक है, जैसा कि प्रमाणित किया जा चुका है, तो यह कैसे कहा जा सकता है कि इसमें उपयुक्ततम स्थिति की प्राप्ति के लिये प्रयास का भी कुछ स्थान है और यह प्रयास उसे एक सुनि-

श्चितता तथा दिशा देता है ? वह अन्यत्र कहता है कि विकास में एक निश्चित क्रम है, उसे आकस्मिक और विशृंखल नहीं कहा जा सकता, चाहे वह उतना निश्चित और नियोजित नहीं हैं जितना उसके लिये कहा जाता है।

यहाँ फिर वही भूल है जिसका संकेत हम पिछले अध्याय में कर आए हैं—इसमें कारण और कार्य को घपला दिया गया है और इस प्रकार कार्य की गलत व्याख्या की गई है और कारण को भुला दिया गया है। यह ठीक है कि विकास और मौलिक परिवर्तन कुछ नियमित और निश्चित दिशा की ओर तथा कुछ क्रम से होते हैं, क्योंकि उनमें इस नियमितता की कुछ संभावनाएं हैं जिसका कारण उनके जेनोटाइप की रासायनिक प्रकृति है, जो एक प्रकार से क्रियान्वित हो सकती है और दूसरी प्रकार से नहीं हो सकती। जैसे मछली के जेनोटाइप में कभी ऐसा परिवर्तन नहीं हो सकता कि उससे मनुष्य उत्पन्न हो सके और अमोयबा के भेड़िया उत्पन्न हो जाए, यद्यपि मछली के जेनोटाइप में, या किसी भी प्राणी के जेनोटाइप में परिवर्तन की और प्रकारों की असंख्य संभावनाएं रहती हैं। यद्यपि मछली के जेनोटाइप में मनुष्य की उत्पत्ति की संभावना विद्यमान है, तभी मछली और मनुष्य के बीच हम शृंखला मान सकते हैं, किन्तु यह संभावना अनेक क्रमिक संभावनाओं के क्रियान्वित होने के पश्चात् ही क्रियान्वित हो सकती है, जैसे दसवाँ एक के बाद एक दम संभव नहीं हो सकता जब तक पहले और दसवें के बीच दूसरा, तीसरा......और नवाँ क्रम में नहीं आते। इस प्रकार मछली के जेनोटाइप में मनुष्य की संभावना विकल्प से और असंख्य क्रमिक अन्तरायों के साथ विद्यमान हैं। इसी प्रकार हमारी पृथ्वी पर जीवन की एक विशेष भौतिक प्रकृति है जो हमारी पृथ्वी की और उसकी खगोल से सापेक्ष भौतिक स्थिति की सापेक्षता में निर्धारित होती है। क्योंकि यदि हमारी पृथ्वी के कीचड़ को सूर्य की विभिन्न किरणों का संपर्क प्राप्त न होता तो संभवतः कभी भी जीवन की उत्पत्ति न हो पाती। संभव है किसी और तारे में, यदि किसी में जीवन का अस्तित्व है तो, जीवन की सर्वथा भिन्न और अकल्पनीय स्थिति और प्रक्रिया हो और सर्वथा भिन्न संभावनाएं हों। निश्चित रूप से हम उन संभावनाओं को इस पृथ्वी पर कभी भी क्रियान्वित होते नहीं देख सकते, क्योंकि हमारी पृथ्वी की संभावनाएं उसकी अपनी प्रकृति और परिवृति के साथ बँधी हुई हैं, और हम स्वयं इस

× विकल्प से इसलिए क्योंकि विकास केवल मनुष्य की ओर ही नहीं हुआ, सम्भव था मनुष्य कभी भी उत्पन्न न होता!

पृथ्वी की प्रकृति के एक अंग हैं। इस प्रकार यह केवल जीवन में नहीं प्रत्येक कण में उसकी विकास शृंखला है और उसकी निश्चित संभावनाएं हैं। इसीलिए किसी भी प्रकार का परिवर्तन किसी भी प्राणी में एक दम विशृंखलित सन्तान संभव नहीं कर सकता। यदि कोई विशृंखलता कभी देखी जाती है, जैसे किसी के दो सिर वाले बच्चे की उत्पत्ति या नाक इत्यादि का एक से अधिक या अपने स्थान से हट कर होना इत्यादि, तो ऐसे बच्चे या तो मृत ही उत्पन्न होते हैं या शीघ्र ही मर जाते हैं; इसका कारण यह है कि जेन अपनी अभिव्यक्ति और विकास का स्वाभाविक अवसर न प्राप्त कर सकने से अपनो प्रतिलिपि और अतिरिक्त उपज को उत्पन्न नहीं कर पाते; इसीसे विकास कभी भी विशृंखलित नहीं हो सकता। किन्तु प्रश्न यह है कि विकास और मौलिक परिवर्तन की कारण भूत प्रक्रिया की कोई योजना, उद्देश्य या शृंखला है? क्या परिवर्तन सदैव एक ही निश्चित और निर्दिष्ट संभावना से युक्त है? इसका उत्तर हमें कभी भी सकारात्मक नहीं मिल सकता। यदि हम किसी सोद्देश्यता या नियमितता और निर्दिष्टता की संभावना मानलें तो न हम यही कह सकते हैं कि जो हो सकता है वह अवश्य होता है और न यही कि असंख्य समान संभावनाओं में से किसी का भी क्रियान्वित-होना केवल संयोग है, क्योंकि तब 'हो सकने' का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। सिम्पसन का भी निर्दिष्टता से यद्यपि वही अर्थ नहीं है जो हमारे इस वाक्य से प्रतीत होता है, किन्तु जिस निर्दिष्टता और निश्चित दिशोन्मुखता (Orientation) की वह बात करता है, वह कितने ही वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत की जाने पर भी ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहती।

वास्तव में यह केवल जेन और परिवृत्ति का आकस्मिक और सर्वथा अनियमित संघर्ष है अथवा जेन के अपने इतिहास की आकस्मिक और अनिर्दिष्ट प्रक्रिया है जो एक प्रतीयमान क्रम में अथवा नियमितता में परिणत होती हैं। शृंखला और नियमितता के पक्षपाती इयोहिप्पस (Eohippus) से वर्तमान घोड़े तक इस जाति के विकास को उदाहरण रूप में प्रस्तुत करते हैं, किन्तु यह विकास-शृंखला उसी प्रकार एक प्रतीयमान परिणति है जैसे मौलिक परिवर्तन के अन्य उदाहरण, जिनमें अनेक बहुत अधिक विच्छिन्न से प्रतीत होते हैं। इयोहिप्पस से घोड़े तक का विकास अत्यन्त क्रमिक सा और निर्दिष्ट सा प्रतीत होता है; यह या तो (Ultra Violet) इत्यादि किरणों से एक बार जेनोटाइप के व्याकुल होने से उसकी स्थिर होने तक की शृंखला हो सकती है अथवा इसे छोटे और सामान्य से मौलिक-परिवर्तनों के कारण उदित कहा जा सकता है। यह प्रतीयमान रूप से नियोजित विकास परिणाम

में अस्तित्व-मूल्य की दृष्टि से प्रायः निष्पक्ष सा है अथवा कुछ उपकारक है, किन्तु यह इसकी मूल प्रेरणा और प्रतीयमान शृंखला का कारण या परिणाम है, यह कहना ऐसा ही है जैसे कार्य का कारण से अथवा परिणाम का प्रारंभ से पहले होना हो सकता है। जातियों में अनेक अन्य मौलिक परिवर्तन, जो कि अपकारक होते हैं, किस अन्तः प्रेरणा और योजना से होते हैं? मौलिक परिवर्तन सर्वथा विच्छिन्न और अनियमित होते हैं। ये परिवर्तन भयानक और घातक से लेकर स्वल्पतम और तटस्थ तक हो सकते हैं। इसलिए यह कहने में हमें कुछ सार्थकता प्रतीत नहीं होती कि विकास में कुछ सुनिर्दिष्टता है। पीछे हमने जो एंटीलोप और कुक्कुट के उदाहरण दिए हैं उनसे भी यही बात प्रमाणित होती है।

मैं प्राकृतिक चुनाव और सहज चुनाव से इंकार नहीं करता, जैसा कि भ्रम हो सकता है। सहज चुनाव परिवृत्ति की सापेक्षता में प्राणी की वासना तृप्ति की प्रक्रियाओं का निर्धारण करता है, इस चुनाव की छालनी से केवल वही प्रक्रियाएं निकल पाती हैं जो वासना-तृप्ति में सहायक और उपकारक होती हैं जब कि दूसरी पुनकर फेंक दी जाती हैं। इस प्रकार सहज चुनाव का संबंध केवल वासना-तृप्तिकरी प्रक्रिया से है स्वयं वासना से नहीं। जैसा कि हैब्ब कहता है—प्राणी सीखते हुए (जीवों की बुद्धिमता की परीक्षा लेने के लिए उसे एक विशेष समस्यापिंजर में बंद कर दिया जाता है, जहाँ से वह दौड़ धूप कर निकलता है, दुबारा वह पहले से कम दौड़ता है और निकलने में सफल हो जाता है, इस प्रकार देखा जाता है कि वह कितनी बारियों में बिना किसी गलती के सीधे द्वार पर ही पहुँचता है) कुछ गलत हरकतें करता है और कुछ ठीक हरकतें करता है; वह कौन सी चीज है जो उसे ठीक हरकतें याद रखने में और गलत भुलाने में समर्थ करती है, अथवा ठीक शब्दों में, गलत हरकतों को निरुत्साहित करती है और ठीक को करने के लिए उत्साहित करती है? क्यों उसे ठीक याद रह जाती हैं और गलत क्रमशः भूलती जाती हैं। यह समस्या अत्यन्त उलझन पूर्ण है तथा प्राणी व्यवहार के अध्ययन में आगे बढ़ने के लिए इसका सुलझाव आवश्यक है।" हम इस उलझन पूर्ण समस्या का सुलझाव देने का साहस नहीं करते, किन्तु इसमें सहज-चुनाव (Adaptation) की संभावना निहित प्रतीत होती हैं। हमारे विचार में सहज चुनाव प्राणी की आत्मव्ययी प्रक्रिया की दिशा का निर्देश करता है, जैसा कि हम विस्तार से पिछले अध्याय में देख आए हैं। किन्तु वहाँ भी हमने यह स्वीकार करने से बार-बार इंकार किया है कि सहज चुनाव का स्वयं वासना से भी कोई संबंध हो सकता है। इसीलिए हम

अस्तित्व-रक्षा की प्रवृत्ति से, जिसके लिए सहज चुनाव के सिद्धान्त का जन्म हुआ, इस रूप में इन्कार करते हैं कि वह सार्वभौम है और प्राणी की वासना और प्रक्रिया का निर्देश करती है।

यह एक आश्चर्य की बात है कि मौलिक-परिवर्तन (म्यूटेशन) की प्रकृति के ज्ञान के बाद भी, यह पूर्व कल्पित क्यों कर लिया जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति की प्रत्येक प्रक्रिया और उसका प्रत्येक अंग उसके लाभ की दुर्निवार प्रेरणा से ही उत्पन्न हुए होंगे। इसके विपरीत प्रवृत्तियों और विकास को वे या तो उसी पूर्व कल्पना पर घटित करने का प्रयास करते हैं या फिर उसे अपवाद और प्रकृति की भूल कह कर शान्त हो रहते हैं। यह लगभग जीवन की लहर के सिद्धान्त*, उसकी सोद्देश्यता और मनस्विता को स्वीकार करने जैसा ही है। डोब्सहेंस्काई कहता है कि मिश्रित Hybrid और विशुद्ध (primitive) जातियों और वर्गों में प्राप्य विभिन्नताएं प्रायः ही ऐसी विशेषताएं प्रदर्शित करती हैं जो सहज चुनाव की दृष्टि से एकदम समस्यात्मक होती हैं। सहज चुनाव की ओर यह स्पष्ट तटस्थता, जो कि विकास क्रम में उत्पन्न जेनिक भिन्नताएं प्रदर्शित करती हैं, सहज चुनाव को प्राकृतिक चुनाव के द्वारा विकास का एकमात्र कारण समझने वालों के लिए बड़ी समस्या उत्पन्न कर देती हैं। वह आगे कहता है—यह एकदम उपहासास्पद प्रतीत होता है कि इस प्रकार शरीर के प्रत्येक भाग को ही इस सिद्धान्त पर परखने की कोशिश की जाय। किन्तु यह भी ठीक है कि प्रत्येक जेन एक ही समय में शरीर के विभिन्न स्थलों पर अपनी अभिव्यक्ति करता है, इसलिए सहज चुनाव से तटस्थ विशेषता जेन की असंख्य अभि-व्यक्तियों में से केवल एक अभिव्यक्ति है। विकास प्रक्रिया में किसी जेन का भाग्य उसके शरीर रूप में आत्माभिव्यक्ति के अस्तित्वमूल्य (Survival Value) से निर्धारित होता है। किन्हीं अंगों की पूर्णता जाति विशेष को इतनी लाभप्रद हो सकती है कि वह उसके कारण अपनी परिवृत्ति का श्रेष्ठतम प्राप्त करने योग्य हो जाए, किन्तु इसी कारण से उसके दूसरे अंग अप्रयोग के कारण असमर्थ भी हो सकते है (use और disuse)," किन्तु ऐसी असंख्य जातियों के विकासों के लिए क्या कहा जाय जाए, जिनमें कोई अंग वैसा नहीं होता ? लेखक ने जिन आधारों पर प्रयोग अप्रयोग संबंधी इस सिद्धान्त को उठाया है उसी पर अन्य सिद्धान्त और

---

*Elan Vital Bergson इसका प्रमुख समर्थक था।

अधिक उपयुक्त रूप से, स्थिर किये जा सकते हैं। किन्तु इस पर एक आपत्ति उठानी भी आवश्यक है, क्योंकि जब वह जेन की असंख्य अभिव्यक्तियों की बात करता है जिनमें कुछ तटस्थ और कुछ उपकारक या अपकारक हैं तब यह केवल जेन का ही कार्य है न कि किसी प्रयोग–अप्रयोग संबंधी प्रक्रिया का। वह शायद कहेगा कि जेन की विशिष्ट अभिव्यक्ति ने जो पंखों और पैरों पर एक साथ प्रभाव डाला उससे प्रयोग अप्रयोग सबंधी प्रक्रिया को अवसर मिला, दूसरे शब्दों में, पंख के सशक्त तथा पैरों के निर्बल होने से पक्षी ने पैर पर निर्भर करना इतना कम कर दिया कि वे अप्रयोग से और भी असमर्थ हो गये। किन्तु यह बात संभव होने पर भी जँचती नहीं, क्योंकि पक्षी कितना भी पंखों पर निर्भर करें उसे प्रत्येक बार जमीन से उड़ने के लिए और भोजन प्राप्त करने के लिए तथा सोने के लिए पृथ्वी पर उतरना ही पड़ेगा। बाज या चील तथा गिद्ध जैसे आकाश में ही या उड़ते उड़ते ही भोजन प्राप्त कर लेने वाले पक्षियों के प्रायः ही पैर भी खूब सशक्त होते हैं जबकि सिलारा चिड़िया के, जिसे अपने भोजन के लिए अवश्य उतरना पड़ता होगा, पैर अत्यन्त अशक्त होते हैं। पीछे हमने एक ही जेन के कारण बिल्ली के श्वेत होने तथा अंधप्राय होने और श्वेत सूअर के एक विशेष पौधा खाने से खुर और हड्डियाँ गलने के उदाहरण दिये थे। बिल्ली में श्वेत रंग संभवतः उसमें किसी प्रकार के भी अस्तित्वमूल्य को नहीं बढ़ाता, यह केवल संबद्ध जेन की यांत्रिक अभिव्यक्ति है, और उसी जेन के अन्तः—संघर्ष (Interaction) के कारण या बहुमुखी प्रभाव के कारण उसमें एक विघातक विशेषता, अन्धेपन, की उत्पत्ति भी हो गई। इससे भी अधिक चौंकादेने वाला उदाहरण दूसरा है—र जेन सूअर के रंग औरहड्डियों पर एक ही साथ प्रभाव डालता है, अथवा हड्डियाँ और रंग एक ही जेन के प्रभाव-क्षेत्र बनते हैं। किन्तु न तो सूअर उन अपकारक पौधों को खाने से विरत होता है और न अपने जेन की अभिव्यक्ति को ही बदलता है। इस प्रकार न वह हैंब्ब की बात मानता है न डोव्जहेंस्काई और सिम्पसन की इस प्रकार सफेद सूअर और बिल्ली डोव्जहेंस्काई के पूर्वपक्ष और परिणाम दोनों का खंडन करते हैं। डोव्जहेंस्काई अपने कथन का आगे समर्थन करते हुए कहता है कि "सहज चुनाव से एक दम तटस्थ प्रतीत होने वाले गुण की उपयोगिता का बहुत स्पष्ट चित्रण जोंज और वाकर ने दिया है। प्याज में एक विशेष जेन एल्लैल। और i उसकी फुँगस (Fungus) की सापेक्षता में

दृढ़ता और सामना करने की शक्ति को निर्धारित करते है । सम क्रोमोसोम (Homozygous) (ıı) कलियों का रंग सफेद होता है और ये कलियाँ फुँगस (Fungus) के आक्रमण की सहज ही अहेर हो जाती हैं, विषम क्रोमोसोम (Heterogygous) कलियाँ (ii) कुछ भूरे रंग की होती हैं और फुँगस के प्रति अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ होती है तथा समक्रोमोसोम (ii) बहुत गहरे लाल रंग की होती है और फुँगस से आक्रांत नहीं होतीं । इसका कारण यह है कि रंगीन कलियों के पत्तों में Protocatechuic तेजाब होता है और यह फुंगस के लिए अपकारक होता है ।" किन्तु इस से यह कब प्रमाणित होता है कि समक्रोमोसोम (ii) जेनो टाइप की उत्पत्ति का कारण फुंगस से बचाव अथवा आत्मरक्षा की प्रवृति है; यदि ऐसा होता तो सम ।। और विषम ।i की उत्पत्ति होनी ही न चाहिए थी अथवा उन्हें अब तक अपने आप को ढाल लिया होना चाहिए था । स्पष्ट है कि यह पौधा (ii) किसी यांत्रिक प्रक्रिया (किन्हीं दो वस्तुओं की क्रिया-प्रतिक्रिया) से इस प्रकार जेन की शारीरिक Phenotypic अभिव्यक्ति करता है; इस यांत्रिक प्रक्रिया का कोई सुरक्षा-मूल्य भी है या नहीं, इसकी उसे कोई अपेक्षा नहीं होती । वास्तव में डोब्जहेंस्काई भी जेन के परिवर्तन को यांत्रिक प्रक्रिया–जन्य ही मानता है, और अ-रक्षा अ-मूल्य केवल परिणाम रूप में महत्त्व रखते हैं, कारण रूप में नहीं । जैसा कि हम पिछले अध्याय में भी अनेक स्थानों पर, देख आए हैं, इनका भी कुछ महत्व अवश्य है, किन्तु यह महत्व इनके कारण रूप में होने में नहीं प्रत्युत कार्य रूप में होने में है, और इस अन्तर को उपेक्षित करने के कारण घपला उत्पन्न होना स्वाभाविक है ।

इस विस्तृत अध्ययन के पश्चात हम पाते हैं कि जीवन एक ऐसा अनगढ़ पदार्थ है जिसकी अपनी कुछ विशेषताएं हैं, किन्तु वह निरन्तर परिवृत्ति के संपर्क में आता है जिसे हम अ × इ के रूप में रख सकते हैं । किन्तु उसकी विशेष परिवृत्ति के अतिरिक्त कितनी ही संभावित परिवृत्तियाँ भी रहती हैं जिनके संपर्क में आने की शतशः संभावनाएं होती हैं। इसके अतिरिक्त वह परिवृत्ति के साथ साथ अपने संबंध को निरन्तर क्रियान्वित करता है अर्थात् अ × इ एक नवीन परिणाम उ को धारण करते हैं । निश्चित रूप से अब वह अपने पूर्व रूप (अ) से भिन्न है, इसलिए इ के साथ उसकी सापेक्ष स्थिति में भी अन्तर आ जाता है, और इस प्रकार वह अब नवीन पदार्थ के रूप में इ के संपर्क में आता है । इसलिए परिवृत्ति नहीं भी बदलती तो भी इ की सापेक्ष स्थिति वह नहीं रहती जो वह अ के प्रसंग में थी । अतः स्वभावतः ही

उसकी संभावनाएँ भी बदल जाती हैं। इसलिए न तो कभी इ अ से वह परिणाम ला सकती है जो उ से और न अ इ से उ के समान वस्तु प्राप्त कर सकता है। यह एक सामान्य सी बात है जिसे बहुत ही बड़े रूप में हम मनुष्यों और पौधों के 'एक ही' परिवृत्ति के संपर्क में उनकी सापेक्षता जन्य भिन्नता में देख सकते हैं। किन्तु इससे भी आगे बढ़कर यह कहा जा सकता है कि अ कभी भी किसी भी परिवृत्ति में उस स्थिति में नहीं हो सकता जो उ किसी भी परिवृत्ति में होगा। किन्तु यह संभव है कि अ इ १ के स्थान पर इ १०० के संपर्क में आए और उ१ के बजाय उ१०० के रूप में परिणत हो। इस प्रकार जीवन के क्रियान्वित होने की असंख्य किन्तु निश्चित संभावनाएं हैं जिनमें से किसी एक या किन्हीं एक को ही वह क्रियान्वित कर पाता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि जो हो सकता है वह अवश्य होता है और न यही कि जो होता है उसका होना निश्चित ही था, यह उसके भाग्य में बदा था, इसके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता था। तत्व की बात केवल इतनी ही है कि जीवन को अपनी ऐतिहासिक प्रक्रिया में कुछसंभावनाओं को क्रियान्वित करने का अवसर मिला और कुछ को नहीं। आज जीवन की जो स्थिति हमारे सम्मुख जैसी हैं वह इसीलिए ऐसी है क्योंकि संयोगवश— जिसमें कार्य-कारण संबंध केवल इतना ही है कि अ×इ१ कारण उ१ में क्रियान्वित होता है उ२ में नहीं, किन्तु यह केवल संयोग ही है कि अ का संपर्क इ१ से ही क्यों हुआ इ २ से क्यों नहीं, इसीसे वह संपर्क और फिर अनुगामी संपूर्ण कारण कार्य श्रृंखला कुछ और हो सकती थी और उसके लिए भी उतने ही संयोग थे। इस प्रकार विकास की प्रमुखतम विशेषता है—प्राप्त अवसर और उसका उपयोग। इस 'अवसर-प्राप्ति' और उसके उपयोग में किसी भी प्रकार के प्रयास को लेना अभिप्रेत नहीं है, यह केवल एक प्रतीक है जिसका अर्थ हमारी पिछली सम्पूर्ण स्थापना के आधार पर ही समझना चाहिए। इस उपयोग और अवसर प्राप्ति में किसी भी प्रकार से उपयुक्ततम अवसर प्राप्ति और उपयुक्ततम उपयोग का अर्थ निहित नहीं है, जब संयोग ही है संयोग केवल निर्दिष्ट या सोद्देश्य के विपरीत अर्थ में तो कम उपयुक्त और अनुपयुक्त अवसर भी आ सकते हैं, किन्तु अनुपयुक्त अवस्था में प्राणी या तो समाप्त हो जाएगा अथवा प्रवास करने को बाध्य होगा, जहाँ उसे जीवन निर्वाह का कुछ भी अवसर मिल सकता होगा। यदि उसमें कुछ संभावनाएं निहित हैं जो क्रियान्वित होने पर उस जाति की रक्षा कर सकती हैं, तो यह केवल संभव है कि वे क्रियान्वित हो जाएं, किन्तु इसके लिए भी उतने ही चांस हैं कि वे कभी भी क्रियान्वित न हों। इस प्रकार विकास किसी उद्देश्य

अथवा योजना के बजाय अवसर का अनुसरण करता है। जीवन का विस्तार ज्यों ज्यों अधिक होना जाता है त्यों त्यों उसकी संभावनाएं भी विस्तृत होती जाती हैं और विभिन्नताएं भी, किन्तु दूसरी ओर वह उन संभावनाओं से वंचित भी हो जाता है जिनसे वह एक बार बीत चुका हो अथवा बीत रहा हो। जैसे अ×इ=उ, और कभी भी अब अ और इ सम्मिलित नहीं हो सकेंगे और अ×इ कभी भी उ नहीं होंगे। इसी के साथ साथ अ के साथ इ के अतिरिक्त और भी कितने ही अवसर संपर्क स्थापित कर सकते थे जिनकी संभावना अ और इ के संपर्क के पश्चात समाप्त हो गई। किन्तु जीवन की विकास-प्रक्रिया में इस गणित मे कुछ अन्तर है और वह यह कि अ इ के साथ मिलकर उ का सृजन कर के भी अस्तित्व विहीन नहीं हो जाता जबकि इ अस्तित्व विहीन हो जाती है। किन्तु फिर भी अ अपनी प्रति-लिपियाँ उत्पन्न करता रह सकता है और परिवृत्ति के कुछ वदल जाने पर भी एक सामान्य से परिवर्तन के साथ अपना अस्तित्व बनाए रह सकता है। इस प्रकार यदि यह कहा जाए कि अ×इ उ का सृजन करते रहेंगे और अ अपनी कुछ विशिष्ट संभवनाओं क के साथ अपनी नवीन परिवृत्ति इ१ के अथवा अन्य नवीन संयोगों के संपर्क में आता रहेगा, तो अधिक उपयुक्त होगा।

यहाँ स्पष्टत ही हमने प्रतीयमान रूप से एक विरोधाभासपूर्ण बात कही है, और वह है परिवृत्ति के अनुसार अपने आपको ढालने की प्रक्रिया। यह विरोधाभास इससे पहले अध्याय को ध्यान में रखते हुए तो और भी बड़ा प्रतीत होता है, यद्यपि हमने इसका इस अध्याय में कुछ स्थानों पर सामंजस्य बिठाने का प्रयास किया है। किन्तु यदि थोड़ी सी गंभीरता से भी इसे देखा जाए तो इसमें विल्कुल भी विरोधाभास नहीं है, क्योंकि हमने यह तो कभी भी नहीं कहा कि प्राणी एक दम निर्जीवयंत्र है, प्रत्युत यह कि उसकी प्रक्रियाएं जिन तत्वों से निर्धारित होती हैं उनका व्यापार एक दम यांत्रिक है। पिछले अध्याय में हमने यांत्रिक प्रतिक्रिया व्यापार (Reflexive Mechanism) का विस्तार से अध्ययन करते हुये बताया था कि प्राणी पीड़ा और सुख का अनुभव करता है; निश्चित रूप से वह पीड़ा से बचना चाहता है और सुखानुभूति की आवृत्ति चाहता है, इससे वह उसका कुछ उपाय भी करता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इसे हम विकास का मूल, एक मात्र या प्रधान भी, कारण मानते हैं। इसका केवल इतना ही अर्थ है कि प्राणी में कुछ सामान्य और शरीरिक परिवर्तन हो जाते हैं और कभी कभी ये स्थायी भी हो जाते हैं, किन्तु यह स्थायिता बहुत शीघ्र समाप्त भी हो

सकती है जब उसकी आवश्यकता न रहे। यह परिवर्तन-प्रक्रिया कुछ उतनी ही चेतन है जितनी एक राजकुमार से किसान बनने वाले किशोर में उसके शरीर में धीरे धीरे होते हुए परिवर्तन में होगी। यद्यपि यह परिवर्तन कभी भी जोनोटाइप में प्रविष्ट नहीं होगा किन्तु उसकी शरीर रचना में अवश्य यह कुछ स्थायिता बना लेगा। किन्तु अविकसित प्राणियों में ऐसे परिवर्तन कुछ और कभी कभी बहुत भी, जेनोटाइप में निहित हो जाते हैं। यहां लाइसैंको का समीकरण और डारविन का सहज-चुनाव दोनों ही बहुत दूर तक चरितार्थ हो जाते ह; किन्तु, जैसा कि सभी जानते हैं, जितने कम प्राणी विकसित होते हैं उतनी अधिक इनकी मानसिक प्रक्रिया यांत्रिक होतो है। किन्तु मामान्य परिवर्तन की, जो कि 'प्रयास जन्य' है, आधार भूत और प्रतिनिधि प्रक्रिया को हम एक दूसरे उदाहरण में भी देख सकते हैं, और वह है अधिक सर्दी या अधिक गर्मी में हमारे शरीर का प्रतिरोध और आत्म सन्तुलन (Equilibrium) स्थापित करने का 'प्रयास'। अधिक ठंडी हवा चलने पर हमारे रक्त का दबाव बाहर की ओर को हो जाता है, निश्चित रूप से यह सन्तुलन और प्रतिरोध का प्रयास नहीं है, यह केवल एक यांत्रिक प्रक्रिया है। शीत-प्रधान देशों में पशुओं के बड़े बड़े बाल होना और खुश्क देशों में वनस्पतियों की गहरी जड़ें और गर्म खुश्क देशों में गहरी जड़ें तथा मोटे पत्ते होना, ये सब उदाहृण इसी प्रकार की यांत्रिक प्रक्रिया के परिणाम भी हो सकते हैं, यद्यपि अधिक संभावना यही है कि ये उनके विशेष जेनोटाइप के कारण उत्पन्न हुए और उन देशों में वे स्थायी हो गये जब कि दूसरों में नहीं हो पाए। अथवा जहाँ ये ऐसे पाए जाते हैं वहाँ का रासायनिक समीकरण ही ऐसा हुआ कि ये इन विशेषताओं के साथ उत्पन्न हुए। किन्तु इसका प्रयास जन्य होना भी उतना ही स्वाभाविक है, क्योंकि शरीर सदैव सामंजस्य बैठाने के प्रयास जन्य तनाव में जीवित नहीं रह सकता, उसमें स्थायी सामंजस्य प्रवृत्या ही स्थापित हो जाता है। किन्तु कृमियों, मछलियों और पक्षियों इत्यादि का अपने प्रबल शत्रु से बचने के लिए परिवृत्ति के अनुसार अथवा शत्रु के लिए भय-जनक वस्तु अथवा प्राणी के अनुरूप रंग बदल लेना, स्पष्ट रूप से हमारी इस सम्पूर्ण स्थापना को चैलेंज है, किन्तु इसमें अधिक अत्यारोपण ही प्रतीत होता है। क्योंकि पहले तो यही कहना कठिन है कि वे अपने शत्रुओं को भी उसी रंग के उसी प्रकार के दिखायी पड़ते हैं जैसे अपने विकासवादी मित्रों को; संभव है वे अपने शत्रुओं के लिए उस प्रकार से भी उतने ही गम्य हों जितने वे हमारे लिए भिन्न होकर होते; दूसरे, संभव है, उनके परिवृत्ति के अनुरूप रंग

होने का कारण उनके भोजन इत्यादि का उन पर प्रभाव हो, क्योंकि उनके शरीर का रंग परिवृत्ति के समीकरण पर निर्भर करता है। इसका प्रमाण वे कृमि हैं जो यूरोप के औद्योगीकरण से पूर्व श्वेत थे और पश्चात् धूएं से काले हो गए। इंगलैंड, फ्राँस तथा जर्मनी के इन कृमियों को इस प्रकार बदले देखकर सहज चुनाव के पक्षपातियों ने सोचा कि इसका कारण अवश्य सहज चुनाव ही हो सकता है, किन्तु हैरीसन ने इसका कारण उनके भोजन इत्यादि का धूम्रवर्ण हो जाना तथा उससे कुछ ऐसे रासायनिक परिवर्तन हो जाना दर्शाया है जिन से उनके रंग में यह परिवर्तन आया। उसने श्वेत कृमियों को मेंगानीस तथा कुछ और रासायनिक द्रव्यों से मिश्रित भोजन देना प्रारंभ किया; इससे अगली ही पीढी में उसने पाया कि उनकी सन्तानें काली थीं और ये मेंगानीज के बिना ही काली सन्तानें उत्पन्न करती थीं। वास्तव में कृमियों में किसी प्रकार के प्रयास की कल्पना एक दम व्यर्थ है, यह केवल 'आत्मवत सर्व भूतेषु' देखने की भूल के कारण उत्पन्न भ्रम है। कृमियों के जीवन की प्रेरणाएं हमारे लिए संभवतः इतनी अपरिचित और अगम्य भी हैं कि उनके लिए कोई ऐसा निर्णय देना व्यर्थ है जो उनकी मनस्प्रक्रिया से संबंधित है। जहाँ तक विज्ञान की प्रयोगात्मक पहुँच का प्रश्न है, उसके अनुसार उनकी प्रक्रियाएँ यांत्रिक ही अधिक प्रतीत होती हैं।

किन्तु डोब्जहेंस्काई कीटाणुओं में मौलिक परिवर्तन (Mutation) के कुछ ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करता है जो प्रतीयमान-रूप से सहज चुनाव जन्य प्रतीत होते हैं, जैसे कोलन नामक कीटाणु वीरुस (कोलन के लिए घातक कीटाणु) से, जो कि उनके कोषों में रहते और सन्तानोत्पत्ति करते हैं, प्रायः ही आक्रान्त होते रहते हैं और इस प्रकार समाप्त होने का खतरा मोल लेते हैं। यदि ये रोग-कीट उनमें प्रविष्टि कर दिये जाएँ तो वे अपवादात्मक रूप से ही बच पाते हैं। किन्तु जो कीटाणु बच जाते हैं और सन्तानोत्पत्ति करते हैं, उनकी सन्तानें अपनी परिवृत्ति में उपस्थित वीरुस के आक्रमण से प्रभावित नहीं होतीं। Luria के अनुसार, यह सामर्थ्य उनमें मौलिक परिवर्तन (Mutation) से उत्पन्न होती है। यह म्यूटेशन उनमें ल्यूर्या के अनुसार, २×१०—८ के दर से कीटाणु नाशकों (वीरूस) के परिवृत्ति में विद्यमानता से निरपेक्ष रूप में होता है। इससे स्पष्ट है कि वीरुस कीटाणुओं में इस परिवर्तन का कारण नहीं है, प्रत्युत यह कि वह केवल प्राकृतिक-चुनाव का प्रतिनिधित्व करता है। जिन कीटाणुओं में परिवर्तन की उपयोगिता- अस्तित्वमूल्य—कम होगी वे निष्कासित कर दिये जाएंगे, जब कि शेष परिवृत्ति की घातकता के लिए दृढ़ प्रमाणित होंगे।

किन्तु कीटाणुनाशकों की विभिन्न जातियाँ हैं जो अपनी शारीरिक-प्रकृति और आकृति में पर्याप्त अन्तर रखती हैं। इस प्रकार इनमें से किसी एक से युक्त परिवृत्ति में जीवित और प्रबल कीटाणु केवल उस वीरूस के लिए ही प्रबल होंगें जो उनकी परिवृत्ति का घातक अंश था जबकि शेष के लिए वे भी उतने ही निर्बल होंगे जितने वे परिवर्तन से पूर्व अपनी परिवृत्ति में उपस्थित शत्रु के लिए थे। इस प्रकार एक ही जाति के कीटाणु विभिन्न शत्रुओं की परिवृति में अगली पीढ़ियों में प्रतिरोध शक्ति की दृष्टि से भिन्न हो उठेंगे। इस प्रकार यदि ये कीटाणु विभिन्न शत्रुओं की परिवृत्ति में रखे जाएं तो उनकी विभिन्न सन्तानें थोड़े ही समय में प्राप्त की जा सकेगीं।

क्योंकि शत्रु के प्रतिरोध की शक्ति मौलिक परिवर्तन से उत्पन्न होती है, जो मौलिक परिवर्तन स्वयं शत्रु की परिवृत्ति में विद्यमानता का सापेक्ष नही, और क्योंकि प्रतिरोधक कीटाणु शत्रुओं से बच जाते हैं, जोकि शेष नहीं बच पाते, इस लिए स्वभावतः ही बड़ी जल्दी सभी कीटाणुओं को शत्रु—प्रतिरोधक हो उठना चाहिये, किन्तु ऐसा होता नहीं, क्योंकि, एंडर्सन के अनुसार, इन कीटाणुओं की प्रबलता या अस्तित्व मूल्य वीरूस की (जोकि अब शत्रु नहीं रह गए होते, प्रत्युत जीवन के लिए अनिवार्य हो आते हैं) उपस्थिति के बिना, वीरूस के लिये निर्बल, अथवा स्वाभाविक परिवृत्तिओं में विकसित होते कीटाणुओं से कम होता है। उसके अनुसार, इन कीटाणुओं को अपने जीवन के लिये विशेष और मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता होती हैं, जैंसी उन्हें अपनी परिवृत्ति में वीरूस की उपस्थिति से हुई थी।

परिवर्तन और चुनाव की इस क्रिया—प्रतिक्रिया का उदाहरण एक्स-किरणों और अल्ट्रा वायलट किरणों के प्रभाव में भी देखा जा सकता है। यदि इ—कोली कीटाणु पर एक्स किरणों से आक्रमण किया जाय तो उनमें अधिकांश मर जाएंगे और शेष जिन सन्तानों को जन्म देंगे वे अपेक्षाकृत अधिक सबल और प्रतिरोधक होंगी। यहाँ भीं प्रतिरोध-शक्ति परिवर्तन से उत्पन्न होती है जो परिवर्तन स्वयं किरणों के आक्रमण से होता है। यद्यपि यहाँ परिवर्तन की गति स्वाभाविक या वीरुस वाली परिवृत्ति से काफी अधिक होती है—जैंसा कि किरण—आघात से सभी प्राणियों में होता है, किन्तु प्रतिरोध शक्ति और किरण— आधात में कोई मनोवैज्ञानिक संबंध नहीं है।

कीटाणुओं के इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि मलत: परिवर्तन की प्रेरणा में चुनाव का कोई हाथ नहीं है, यह केवल वह सांचा है जो उस परिवर्तन को अपने अनुसार ढाल लेता है, जहाँ तक कीटाणुओं में शत्रु-प्रतिरोध के रूप

का प्रश्न है। संभवतः शत्रु की उपस्थिति रासायनिक कारणों से उसमें कुछ विशेषता उत्पन्न कर देती होगी जिससे शत्रु उसके लिए घातक रसायण न हो कर उपकारक रसायण बन जाता है। वीरुस की उपस्थिति जन्य परिवर्तन और अवशिष्ट सन्तान के लिए उसका उसके जीवन के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता हो उठना यही प्रमाणित करता है।

किन्तु कीटाणुओं में चुनाव या साँचा जितना प्रभावशाली होता है, अधिक विकसित प्राणियों में यह इसके पासंग में भी नहीं होता। परिवर्तन भी इन प्राणियों में बहुत कम होता है, किन्तु परिर्वतन और चुनाव का अनुपात फिर भी वह नहीं होता जो कीटाणुओं में विद्यमान है। कीटाणुओं को तदनुकूल ढलने में अधिक सुविधा उनका शरीर-निर्माण देता है, क्योंकि वे इतने कम विकसित अथवा इतने कम सजीव होते हैं कि उनके लिए विभिन्न आकृतियों में ढलना अथवा विभिन्न रासायनिक पदार्थों का समीकरण करना पानी के विभिन्न गिलासों में ढलने अथवा वायु के विभिन्न गंधों को ग्रहण करने के समान है। उनके जीवन के लिए चुनाव के बाद शत्रु का उनकी परिवृत्ति में आवश्यक हो उठना बताता है कि शत्रु-कीटाणु की उपस्थिति का उन पर उसी प्रकार रासायनिक प्रभाव पड़ता है जैसे अन्य किसी भी रासायनिक द्रव्य का होता है। कुछ मनुष्य विष खाते हैं और उनके लिए यह एक दिन इतना आवश्यक हो उठता है कि वे उसके बिना जीवित नहीं रह सकते। यद्यपि यह परिवर्तन उनके जेनोटाइप में सरलता से निहित नहीं होता किन्तु एक ही सेल वाले अथवा इतने सरल शरीर रचना वाले सोमा और जर्म कोष के कीटाणुओं में परिवर्तन की लगभग वही रीति है, जो हमारे उलझनपूर्ण शरीर यंत्र की।

हम इस बात को तो कुछ दूर तक समझ सकते हैं कि मनस्प्रक्रिया पर परिवृत्ति का कम या अधिक —जैसा पिछले निबंध में हम विस्तार से देख आए हैं — प्रभाव पड़ता है, किन्तु कोई वासना या आत्म-रक्षा की प्रेरणा इत्यादि किसी प्रकार के मौलिक परिवर्तन की भी कारण हो सकती हैं यह हम स्वीकार नहीं कर सकते। पिछले दोनों अध्यायों में हम इसको मनस्प्रक्रिया के संबंध में देख आए हैं। प्राणियों के अपनी परिवृत्ति के समान रंग होना, और उससे भी अधिक, अपनी परिवृत्ति में परिवर्तन के अनुसार रंग में परिवर्तन हो जाना, जहाँ हमारे इस निबंध के लिए चुनौती के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है वहाँ पिछले दो निबंधों के लिए भी, ' और बहुत से समझदार वैज्ञानिक भी ऐसा ही समझते हैं, किन्तु हम इस प्रक्रिया

या इस व्यवहार के हेतु भूत यंत्रों को यहाँ कुछ विस्तार से दे कर दिखाएंगे कि यह भी उतनी ही यांत्रिक प्रक्रिया है जितनी अन्य कोई; और इसका प्रयास से कोई संबंध नहीं है।

'गिरगिट के समान रंग बदलना' एक मुहावरा ही हो गया है, और शायद सब कहेंगे कि हमारी स्थापना के खंडन के लिए यही एक काफी बड़ा प्रमाण है, किन्तु वास्तव में अनेक रंग बदलने वाले गिरगिट की यह चतुराई एक दम याँत्रिक प्रक्रिया है जैसे मनुष्य की त्वचा का सर्दियों में काली और गर्मियों में कुछ निखरी हुई हो उठना। सामान्यत: गिरगिट पत्तों के समान हरित रंग से लाल, भूरे और काले रंग का हो सकता है। इसी प्रकार एक अन्य छिपकली कारोलिना एनोलस (Carolina Anols) भी कुछ ही मिनटों में चमकीले हरित रंग से क्रमश: नसवारी और काले रंगों में बदल सकती है, 'इसी प्रकार काले या हरित से क्रमश: भूरे और फिर कुछ मैले सफेद में परिवर्तित हो सकती है। यह मादा से प्राथमिक मैथुन के समय अपने गले में गहरा लाल रंग भी उत्पन्न कर सकता है, किन्तु J. Porus और J. Milne के अनुसार, गिरगिट के इन रंगों में परिवर्तन का कारण उसके तापमान में परिवर्तन और कभी कभी उसकी स्नायविक अस्थिरता है, और यह केवल संयोग ही हो सकता है यदि वे कभी अपनी परिवृत्ति के रंगों से मेल खाते हों, किन्तु सामान्यत: वे उससे नहीं मिलते। गिरगिट का यह रंग बदलना उतना ही मानसिक है जितना मनुष्य का क्रोध से लाल रंग हो उठना। वह आगे कहता है कि–पृथ्वी पर रहने वाले जन्तुओं का आत्म रक्षा के लिए रंग बदलना एक दम अत्युक्ति है। शत्रु को छलने के लिए रंग बदलने का कृमियों और मछलियों की अनेक जातियों की योग्यता के बारे में बहुत कुछ भावोक्तियां लिखी और कही जाती हैं, किन्तु लेखक इस बात तक का ध्यान नहीं करते कि इन्हें शत्रुओं से कितना कम वास्ता पड़ता है। इससे कहीं अधिक समय इन्हें अपने जीवन की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति में बिताना होता है। किन्तु यह हमारा तर्क नहीं है, हम तो केवल यही कहना चाहते हैं कि इस प्रकार की योग्यता प्रथम तो जेन्ज की याँत्रिक क्रिया या उनकी प्रकृति की (जो कि मानसिक शासन से स्वतंत्र है) परिणाम है और फिर उनकी उत्पत्ति रूप शरीर के कोषों और हार्मंज इत्यादि के क्रिया व्यापार की परिणाम। इसके लिए हम रंगों के अधिष्ठाता कोषों का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

त्वचा के रंग क्रोमेटोफोर नाम के कोषों की प्रकृति के ऊपर निर्भर हैं जिनमें रंग को उत्पन्न करने वाले पदार्थ निहित रहते हैं। ये कोष ठीक त्वचा के नीचे होते हैं। सामान्यतः क्रोमेटोफोर तारे की आकृति का होता है जिसकी लंबी लंबी भुजाएं केन्द्रीय बिन्दु से निकल कर दूर दूर तक फैली रहती हैं। इनके रंग बनाने वाले पदार्थ अत्यन्त छोटे छोटे कणों के होते हैं। ये कण सम्पूर्ण कोष में विकीर्ण किए जा सकते हैं और केन्द्र में एक स्थान पर भी एकत्रित रह सकते हैं। रंगों के ये कण एक कोष में एकही प्रकार के होते हैं—काले, लाल, हरे या भूरे, जिस किसी भी प्रकार के फिर चाहे वे हों। किन्तु शरीर में, और विभिन्न प्राणियों के शरीरों में भिन्न संख्या में, अनेक रंगों वाले रंग–कोष या क्रोमेटोफोर होते हैं जिनके अपने अपने रंग के समान नाम हो सकते हैं। शरीर को काले रंग का करने वाले कोष मेलानोफेर्ज (Milanophores) कहे जाते हैं, जोकि काले रंग (Melanin) शब्द से बना है। जब ये मेलानिन कण कोष के सम्पूर्ण शरीर और भुजाओं में विकीर्ण हो जाते हैं तो शरीर का रंग काला हो जाता है, जब ये कोष के केन्द्र में एक बिन्दु के रूप में केन्द्रित हो जाते हैं तो प्रकाश इन कोषों के भीतर से होकर गुजरता है जिससे शरीर का रंग पीला दिखाई पड़ता है। रंग के काला होने के लिए केवल इन केन्द्र स्थित कणों का विकीर्ण हो जाना ही पर्याप्त नहीं होता, इसके लिए अन्य ऐसे ही कणों की आवश्यकता होती है, यही वह क्रिया व्यापार है जो मनुष्य के शरीर को गहरे रंग का और मछली के शरीर को काले रंग का बना देता है। एक काली मछली कुछ ही घंटों में काली से भूरी हो सकती है जोकि केवल इन काले कणों के केन्द्रीकरण का परिणाम है। यदि इसे काफी समय के लिए स्वच्छ पानी में रखा जाय तो इसमें यह परिवर्तन सहज ही देखा जा सकता है। इसी प्रकार मनुष्य का रंग भी, यदि उसे अल्ट्रावायलेट किरणों में रखा जाय तो, उसका रङ्ग निखर आता है।

दूसरा महत्वपूर्ण त्वचा–रंग–कण है पीत (Xanthophyll)—जो कि पतझड़ के पत्तों में भी पीतरंग का कारण होता है। काले रंग-कण वाले कोष से भिन्न इस रंग के कोष संख्या में घटते बढ़ते नहीं—इनकी संख्या स्थिर रहती है, ये रंग में परिवर्तन अपने रंग-कणों के विकीर्ण और संकोचन के द्वारा ही करते हैं। पीत–रंग कणों वाले कोष कृष्ण-रंग-कणों के साथ मिलकर मछली के रंग प्रदर्शन की विविधताओं की संभावनाओं को बहुत अधिक बढ़ा देते हैं। इनके विभिन्न अनुपातों में मिलने से मछली या अन्य जीव नीले, भूरे तथा काले रंग के अनेक आभास (Shades) प्रस्तुत कर सकते हैं।

तृतीय प्रकार का रंग-कण-कोष गोआनिन (Guanine) है जिसका रंग हिम-धवल होता है। यह रंग प्राय: चित्रकारों के चित्रों के रंग के लिए चित्र फलक के आधार रंग के समान अन्य रंग के धब्बों के उभार के लिए भूमिका प्रस्तुत करता है। गुआनोफर कोष पीत रंग के कोषों (Xanthophore) के नीचे की तह में बड़ी घनता मे सटे हुए होते हैं। ये गुग्रनोंफर परिवर्तित नहीं होते प्रत्युत् एक तीव्र हिम धवल भूमिका के रूप में रहते हैं। त्वचा में गहरे होने के कारण इनके श्वेत कोष आकाश-नील रंग का चित्रपट प्रस्तुत करते हैं, किन्तु यह नीलिमा ऊपर के पीत कोषों में छन कर हरित रंग--जैसा हरित गिरगिट का होता है—की अभिव्यक्ति करती है। इन हिम धवल श्वेत रंग–कणों वाले कोषों के नीचे विभिन्न आभासों के काले कोषों की तह होती है; जिनमें कृष्ण रक्त और लोहित सम्मिलित हैं। इन कोषों की बाहें लम्बी लम्बी होती हैं। गिरगिट इनके रंग कणों के संकोच--विस्तार से विभिन्न रंगों की अभिव्यक्ति करता है। अब कृष्ण–रंग–कण पूरी तरह से कोषों की बाहों में फैल जाते हैं और गुआनो (श्वेत रंग कण) को ढंक लेते हैं किन्तु पीत को नहीं ढँक पाते, तो उनका रंग हलका लाल हो जाता है, किन्तु जब पीत को भी ढॅक लेते हैं तब इनका रंग लोहित या काला हो जाता है। परिवर्तन शायद ही कभी सम्पूर्ण शरीर में समरस होता हो। इसलिए ये रंग प्राय: छोटे-छोटे धब्बों या लहरों के रूप में ही धीरे-धीरे विस्तृत होने आरम्भ होते हैं।

ये रंग-परिवर्तन किन कारणों से निर्धारित होते हैं ?--यह प्रश्न यहाँ महत्वपूर्ण है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इसका कारण दृष्टि, तापमान इत्यादि भी हो सकते हैं और आन्तरिक ग्रंथियों का स्राव भी। साधारणत: धमनियां बाह्य उकसाहट की सूचना इन कोषों को प्रेषित करती हैं, जो कि शरीर के रासायनिक संदेशवाहक--हार्मोंज के द्वारा होता है। किन्तु कुछ प्राणी ऐसे भी हैं जिनमें ये धमनियाँ सीधे इन रंग–कोषों का नियंत्रण करती हैं, ये प्राणी मोल्लुस्क (Mollusk) हैं। इनके रंग-कोष लचकदार थैलों के रूप में होते हैं जिनमें कि प्रत्येक में एक विशेष रंग का तरल रंग रहता है। प्रत्येक थैले के साथ एक स्नायु की पतली तार सी जुड़ी रहती है जो कि इसे फैलाकर चौड़े आकार में भी ला सकती है, जिससे कि तदीय रंग प्रकट हो जाते हैं, और उन्हें संकुचित भी कर सकती है। इनमें से प्रत्येक थैले का नियंत्रण एक पृथक् स्नायु तार करती है। सेफोलोपोड (Cepholopod) या स्नायु-संबद्ध--रंग कोषवाले प्राणियों में आवेगों को इनके रंगों में पढ़ा जा सकता है। जैसे मनुष्य में छोटे स्तर पर

आवेगों में रंग परिवर्तित होते हैं, उसी प्रकार बड़े स्तर पर इन प्राणियों में होते हैं।

जिनमें रंग परिवर्तन दृष्टि (Vision) से नियंत्रित हैं उनमें यह संदेह हो सकता है कि इनमें रंग-परिवर्तन का कारण आत्म रक्षा की प्रवृत्ति है, जैसे कैटफिश में। ये मछलियाँ जिस रंग की परिवृत्ति में होती हैं उसी रंग की बन जाती हैं। यहाँ तक कि यदि इन्हे धब्बों वाली परिवृत्ति में भी रखा जाय, इनके शरीर पर वैसे ही धब्बे प्रकट हो जाएगे। (Cott) ऐसा कहने के प्रयोगात्मक आधार हैं। और यह भी प्रयोग सिद्ध है कि परिवृत्ति के रंग की मछलियाँ अपने शत्रुओं से बचने में बहुत अधिक सफल हो जाती हैं। किन्तु क्या इन आधारों पर कहा जा सकता है कि इन रंग-परिवर्तनों का आधार या हेतु आत्म-रक्षा की प्रवृति है? एक मानसिक प्रयास है?

जैसा कि हम पीछे सर्वत्र कहते आए हैं, यह ठीक प्रतीत नहीं होता। हार्मजं के द्वारा दृष्टि से प्रभावित होने वाले इन रगों में परिवर्तन का कारण पिच्युइटरी ग्रन्थि है (पीछे हार्मजं की अनुक्रमणिका में देखें) और यह ग्रंथि केवल प्रकाश के प्रभाव में यांत्रिक रूप से अपने स्राव की प्रकृति को बदलती रहती है। यदि मछलियों के रंग परिवर्तन का कारण किसी प्रकार की 'प्रवृत्ति' होती तो इन कोषों का सम्बन्ध सीधे स्नायु तन्तुवाय से होना चाहिए था, जैसा कि मोल्लुस्क जातियों में है। किन्तु क्योंकि मोल्लुस्क इत्यादि में यह आवेगात्मक रंग-परिवर्तन किसी भी प्रकार से उपकारक नहीं है, क्योंकि उसका परिवृत्ति के साथ मेल से कोई संबंध नहीं होता, इसलिए उसे भी केवल यान्त्रिक प्रक्रिया ही कहा जा सकता है, जैसे मनुष्य में लज्जा, क्रोध भय इत्यादि के समय रंग-परिवर्तन में। मान लीजिए कि किसी मछली के शत्रु को विशेष रंगों के लिए अँधा कर दिया जाता है, जैसे काले तालाब की मछली के शत्रु को काले के अतिरिक्त अन्य सभी रंगों के लिए अँधा बना दिया जाता है, और ऐसा मछली की दस सन्तानों के लिए किया जाता है, तो स्वभाव: काली मछली ही केवल अक्रान्त होगी अन्य सभी रगों की मछलियाँ बच जाएँगी। उस अवस्था में, यदि मछली का रंग-परिवर्तन किसी प्रकार की मानस-प्रक्रिया-जन्य है, तो उस मछली की आगे आने वाली सन्तानों को काले तालाव में भी काले रंग से भिन्न किसी भी रंग की होना चाहिए। किन्तु ऐसा १०वीं नहीं किसी भी बाद की सन्तान में नहीं होगा। यद्यपि यह केवल कल्पना है, किन्तु यह तर्क सम्मत संभावना है, क्योंकि अन्य

अनेक जातियाँ, जैसे थ्री स्पाइंड स्टिक्कल बैक और मेंडक में मैथुन ऋतु में शरीर का रंग लाल हो जाता है, और वे सुविधा से शत्रुओं के वशवर्ती हो जाते हैं। यहाँ कहा जायगा कि वे प्रेयसी को आकर्षित करने के लिए ऐसा करते हैं (Tinbergen) किन्तु यह उचित प्रतीत नहीं होता, क्योंकि यह केवल उनके गोनाड्ज़ इत्यादि से स्रवित होने वाले हार्मंज का ही प्रभाव हैं जिसमें स्टिक्कलवैंक की इच्छा या वासना को कुछ भी नहीं करना है।

जैसा कि हम अगले निबन्ध में विस्तार से देखेंगे, इन सबका आधार केवल जेंज़ हैं, क्योंकि ये ही प्राणी के कोषों, ऐंज़ाइम्ज और हार्मंज का निर्धारण करते हैं, और जैसा कि हम इस निबंध में पीछे देख आये हैं, जेंज का यह क्रिया—व्यापार एकदम स्वतः चालित है, प्रेरित नहीं। इस प्रकार रंग--परिवर्तन वासना और प्रक्रिया जन्य नहीं है, इनके कारण भूत यन्त्रों से नियन्त्रित भले ही हो।

इस प्रकार मानसिक चुनाव (Adaptation and Sexual-selection) इत्यादि के लिए जीव विज्ञान में कहीं भी स्थान नहीं है।

—:o:—

REFERENCES

1. *Cott H. B.* .. Adaptive Colouration in Animals. 1st Ed. 1940 (Oxford University Press, London.)

2. *Darwin* .. Origin of Species (Watts & Co. London.)

3. *DobzhanskryT.* .. Genetics & Origin of Species. 1st Ed. 1951 (Colombia University Press.)

4. *Lysenko-T. D.* .. Developments in the Science of Biological Species. 1st Ed. 1951 (Moscow.)

5. ,, .. Heredity & Its Variability. 1st Ed. 1951 (Moscow.)

6. *Sinnot & Dunn* .. Principles of Genetics 1st Ed, 1939. (Macgraw Hill Book Co. New York.)

6. *Sympson* .. Meaning of Evolution 1st Ed. 1949. (Yale University Press.)

४—फिनोजेनेटिक्स और व्यक्तित्व-

पिछले निबंध में हमने यद्यपि मुख्यतः प्राणी—विकास के आधार भूत कारणों को देखने का प्रयास किया है किन्तु उसमें जेन (Gene) की प्रकृति और शारीरिक-विकास (Development) पर उसके प्रभाव को भी यत्र तत्र देखते आए हैं। इससे स्पष्ट है कि प्राणी का 'भाग्य' कितना अधिक 'निर्धारित' होता है और कितना कम स्वतंत्र। इस निबंध में हम इन जेन्ज़ के प्राणी के उन प्रक्रिया-स्रोतों पर नियंत्रण और संबंध को देखेंगे, जिनका वर्णन हम पहले निबंध में कर आए हैं, और इस प्रकार हम वंशानुक्रम और मानसिक प्रवृत्तियों (Heredity and Mental traits) की सापेक्षता को कुछ दूर तक समझ सकेंगे। इससे हम न केवल प्राणी—व्यवहार की प्रकृति को ही अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे प्रत्युत प्राणी की मानसिक योग्यता और इसकी वासनाओं की वंशानुक्रम में एकता के कारण को भी समझ सकेंगे। प्राणी व्यवहार की ठीक ठीक व्याख्या के लिए वास्तव में उत्तराधिकार की सीमाओं और प्रकृति को जान लेना अत्यावश्यक है, क्योंकि इसके बिना हम यह नहीं जान सकते कि प्राणी किस प्रकार अपने पूर्वजों के समान व्यवहार करता है और व्यवहार किस रूप में शारीरिक पदार्थ में निहित (Physiologically Rooted) होता है।

जबकि यह विषय इतना अधिक महत्वपूर्ण है, इस ओर इतना कम कार्य हो सका है कि निश्चितता से कुछ भी कह सकना असंभव है। तो भी, जो कुछ भी आज ज्ञात है उसके आधार पर हम इस अत्यन्त कठिन समस्या पर कुछ विचार करेंगे।

जेनेटिक्स सामान्यतः उस पदार्थ की प्रकृति का अध्ययन करता है जो पूवजों और सन्तानों को एक श्रृंखला के रूप में संबंधित करता है और इस प्रकार यह पदार्थ प्राणी के जीवन का वह आधार भत बीज है जिसमें प्राणी का जीवन केन्द्रितहोता और पुनः आत्मोद्घाटन करता है, यह आत्मोद्घाटन वपित रजकोष (Fertilized Egg) और पूर्ण विकसित व्यक्ति में के अन्तर को नापता है, जिस अन्तर में जेन अपनी अभिव्यक्ति या आत्मोद्घाटन करते हैं और इस प्रकार शरीर को संभव करते हैं। जेंज़ के इस आत्मोद्घाटन या शारीर निर्माण का अध्ययन एक बहुत बड़ी समस्या है, जिसके बारे में जवैज्ञानिक हु अब त

कम जानते हैं। तथापि गोल्डश्मिट (Goldschmidt) और बीडल (Beadle) तथा अन्य भी जीव–रसायर्णशास्त्री (Biochemist) इस ओर कुछ दूर तक समस्या की व्याख्या करने में समर्थ हो सके हैं।

जेंज् एक विशेष प्रकार के, किन्तु एक दूसरे से भिन्न, रासायनिक कण हैं और संभवतः प्रोटीन (Protein) के बने हैं। इन प्रोटीन कणों से ही शरीर निर्माण होता है और शरीर में उसके क्रिया व्यापार को चलाने वाले अन्य रासायनिक रस Enzymes, Co-enzymes, Hormones बनते हैं। ये रासायनिक द्रव्य भिन्न भिन्न जेंज् से निर्मित होने के कारण विभिन्न प्रकृतियों के होते हैं, किन्तु इन जेज् का यह सृजन एकदम परिवृत्ति से स्वतंत्र नहीं होता, क्योंकि जैसा कि हम पिछले निबंध में देख आए हैं, ये परिवृति से ही भोजन प्राप्त कर शारीरिक कोषों और इन रसों का सृजन करते हैं। तो भी इनका यह निर्माण बहुत कुछ अप्रभावित ही रहता है। जेंज् और इन शारीरिक रसों के संबंध-ज्ञान से यद्यपि जीव-रसायनों में नवीन क्षेत्रों का उद्‌घाटन संभव हुआ है, किन्तु स्वयं इनके बारे में या तो कुछ भी नहीं जाना जा सका या इतना कम ज्ञान हो सका है कि उससे प्रायः कुछ भी अनुमान करना असंभव है। बीडल इत्यादि विद्वानों के विचार में, जेज् के सामान्य एलैल (Allel) एंज़ाइम्ज़् का निर्माण करते हैं, जिससे कि विभिन्न शारीरिक क्रिया-व्यापारों का संचालन होता है। जब कोई जेन परिवर्तित या गौण हो जाता है तो उससे संवद्ध ऐंज़ाइम का भी निर्माण नहीं हो पाता और इससे शरीर का संवद्ध क्रिया-व्यापार भी बंद हो जाता है। वह आगे कहता है कि—एक जेन एक ही ऐंज़ाइम का निर्माण करता है जो शरीर में निश्चित और विशिष्ट रासायनिक क्रियाओं-प्रति-क्रियाओं को जन्म देता है, किन्तु अभी तक इसे प्रमाणित नहीं किया जा सका है। यद्यपि आगे कार्य करने के लिए इसे एक संभावना के रूप में स्वीकार किया जा सकता है किन्तु इसे अन्तिम समझने के लिए किसी ठोस प्रमाण की अनिवार्य आवश्यकता है। फिर अभी तक तो यह भी निश्चित नहीं सका कि विशिष्ट जेन और विशिष्ट ऐंज़ाइम में क्या संबन्ध है।

जैसा कि हम पिछले निबंध में भी देख आए हैं, जेन आणविक आकार का एक रासायनिक द्रव्य है जो कि जर्म कोष के केन्द्र में क्रोमोंसोम्ज् (Chromosoms) के डिब्बों में बन्द होता है। इस प्रकार का एक रासायनिक कण कैसे शरीर में के छोटे से छोटे और बड़े से बड़े परिवर्तनों का निर्धारण करता है, यह आश्चर्य की बात है। गोल्डश्मिट (Goldschmidt) के अनुसार जेन की रासायनिक क्रिया कोषों के भीतरी प्रदेशों से ही प्रारंभ होती है,

जो कि बाद में शरीर में की अन्य क्रियाओं में अनूदित हो जाती है। जेज़ की ये क्रियाएं कोषों के भीतर से क्रोमोसोम्ज़ तथा साइटोप्लास्म (Cytoplasm) के संघर्षण से कैसे प्रारंभ होती हैं, इस विषय में अभी कुछ भी ज्ञात नहीं हो सकता। सब जेन एक जैसे ही क्रिया शील होते हैं या कुछ कम और कुछ अधिक क्रियाशील होते हैं, तथा क्या ये जेन निरन्तर क्रियाशील रहते हैं या विभिन्न और नियत समयों पर क्रिया शील होते हैं और क्या जेन-क्रिया कोषों के और इस प्रकार जेज़ के भी द्विधा विभाजन की अतिरिक्त उपज (Byproduct) मात्र हैं या कुछ और ? इस संबंध में अभी तक वैज्ञानिक प्रायः अनिश्चय में ही हैं। ऐसी अवस्था में हम कम से कम जेंज़ के बारे में कुछ भी निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते।

तो भी इस में प्रायः सभी सहमत हैं, और यह प्रयोग-सिद्ध भी है कि जेंज़ शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं का निर्धारण करते हैं। और य रासायनिक प्रक्रियाएं न केवल प्राणी की आकृति और मुद्रा को ही बदल सकती हैं प्रत्युत भोजन इत्यादि के समीकरण, परिवृत्ति के दबाव में उसे सहने के लिए शक्ति संचय, मस्तिष्क तंतुओं की दुर्बलता या सबलता तथा वासना की प्रकृति और शक्ति का भी निर्धारण करती हैं। इस प्रकार हम यह विश्वास करते हैं कि जेंज़ और ऐंज़ाइम्ज़ का निकट सम्बन्ध हैं। जेन किस प्रकार रासायनिक द्रव्यों को जन्म देते और प्रेरित करते हैं, इस विषय में निश्चित ज्ञान न होने पर भी सामान्यतः दो संभावनाएँ हो सकती है—(१) या तो जेन शान्त जर्म-केन्द्र (Nucleus) में क्रियाशील होते है अथवा (२) कोष विभाजन के समय साइटोप्लास्म (Cytoplasm) से क्रोमोसोम्ज़ का सीधा सम्पर्क होने पर ये रसायनिक रसों का सृजन करते हैं। संभवतः जेन के लिए ये दोनों संभावनाएं सत्य हैं—वह दोनों ही अवस्थाओं में क्रियाशील होता है। प्रथम को जहाँ हम रज कोष (egg cell) के सन्तति पर प्रभाव के रूप में देख सकते हैं वहाँ दूसरे को वपन (Fertilization) के पश्चात् प्रायः प्रत्येक रासायनिक क्रिया में देख सकते हैं। संभवतः वपन से पूर्व भी रज कोष में जो निर्णायक शक्ति उसके जेंज की रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण उत्पन्न हो गई होती है उसमें कोष-विभाजन से तो संभवतः साइटोप्लास्म और प्रोटाप्लास्म का संपर्क सम्भव नहीं होता किन्तु तो भी उसके केन्द्र (Nucleus) में विशेष विस्फोट से यह संपर्क संभव होता है अवश्य, जिससे कि रासायनिक प्रक्रिया संभव होती है। इस प्रकार जेन व्यापार के दो भिन्न प्रकार होने पर भी उनमें मूलतः कोई भिन्नता नहीं है।

जेन-प्रक्रिया या व्यापार को कुछ और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम उनका कुछ इस प्रकार से भी वर्णन कर सकते हैं—जेन स्वयं ही उन रासायनिक प्रतिक्रियाओं को जन्म देते हैं या नहीं जिन्हें हम ऐंज़ाइम सिस्टम से संबद्ध मानते हैं, इस बारे में निश्चित न होने पर भी यह निश्चित है कि उनके व्यापार निर्णायक रूप से एकदम एक विशेष रसायनिक क्रिया (catalyses) में परिणत हो जाते हैं। इन रासायनिक व्यापारों को क्रियान्वित करने वाले ऐंज़इम्ज़ बहुत अधिक विशिष्ट (specialised) प्रकृतियों के होत हैं, इसलिए वे तदनुकूल स्थिति में ही क्रियाशील हो सकते हैं। इसके लिए न केवल वह पदार्थ ही उपस्थित होना चाहिए जिस पर वे क्रियाशील हों प्रत्युत तदनुकूल विशेष तापमान भी होना चाहिए जिसमें वे अपनी रासायनिक क्रियाओं को क्रियान्वित कर सकें। इसी प्रकार उनकी अन्य भी ऐसी अनेक आवश्यकताएं हैं जिनका पूरा होना उनकी रासानिक प्रक्रियाओं के क्रियान्वित होंने के लिए आवश्यक हैं। अनेक ऐंज़इम्ज़ को तो कुछ अन्य सहायक रासायनिक रसों की भी आवश्यकता होती हैं जिन्हें (Co Enzymes) या सहायक ऐंज़ाइन भी कहते हैं। जब ये सम्पूर्ण शर्तें पूरी हो जाती हैं तो ऐंज़इम अपने उस व्यापार को क्रियान्वित करते हैं जो कि रज ♀ में वीर्य ♀ के वपन के पश्चात् संभवतः सदैव निष्क्रिय अवस्था में विद्यमान रहता है और अपनी उन शक्तियों और क्रियाओं के क्रियान्वित होने के लिए उपयुक्त परिस्थिति और अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है। इसी को हम जेन का क्रियाशील होना कहते हैं। किन्तु यदि जेनिक क्रिया वपन से पूर्व भी प्रारंभ हो सकती है तो इसमें केवल माता के जेन ही उत्तरदायी होते हैं और इसमें शिशु में उत्पन्न हुए प्रभाव माता के स्वतंत्र जेंज़ के प्रभाव ही होते हैं।

इस प्रकार वपन के पूर्व ही माता के जेन किसी अंग–निर्माण पर अथवा किसी अन्य पहलू पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं या नहीं, यह संशयास्पद होने पर भी आज प्रायः यह सर्व सम्मत है यद्यपि इसके पक्ष में पर्याप्त प्रमाण नहीं हैं किन्तु जो कुछ भी प्रमाण उपलब्ध हैं उनसे यह एक सीमा तक प्रमाणित हो चुका है। सिल्क के कीड़े में गर्दन का रंग इसी प्रकार का माता से प्राप्त गुण है, इसी प्रकार सांप इत्यादि में लिपटनेअथवा कुंडील में मुड़ने की दिशा माता से प्राप्त गुण है।

कौन सा जेन किस ऐंज़ाइम का निर्माण करता है यह सीधे जेन और ऐंज़ाइम पर प्रयोग से ज्ञात न होने पर भी परिवर्तित जेंज़ का और तदनुसार परिवर्तित ऐंज़ाइम का अध्ययन कर वैज्ञानिक कुछ दूर तक तो यह जान सके ही हैं कि किस जेन का किस ऐंज़ाइम से सम्बन्ध हैं। कभी तो ये

परिवर्तित जेन सम्पूर्ण जेन-समवाय में इतने विदेशी हो उठते हैं कि वे किसी रासायनिक द्रव्य और अन्य किसी प्रकार के क्रिया-व्यपार को जन्म ही नहीं दे सकते और इसका प्राणी पर अनिवार्य और गंभीर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए न्यूरोस्पोरा क्रासा (Nurospora Crassa) थियाजोल पिरिमिडाइन (Thiazole Pyrimidine से अपना निजी थियामिन (Thiamin एक विशेष सहायक ऐंज़ाइम अथवा विटामिन बी) बनाता है, किन्तु एक ऐसा परिवर्तित वंश भी उत्पन्न किया गया जो थियामिन नहीं बना सकता था। जीव रसायण विज्ञान के अनुसार थियामिन के निर्माण के लिए एक विशेष ऐंज़ाइम (Thiazole Pyrmidine) की आवश्यकता है और इस विशेष जाति में थियामिन न बन सकने या थियाजोल की अनुपस्थिति से सहज ही यह अनूमान किया जा सकता है कि परिवर्तित जेन का इस ऐंज़ाइम की उपस्थिति अनुपस्थिति से सीधा संबंध है। (Morgan) इस प्रकार आज इस तथ्य में किसी को संदेह नहीं है कि जेंज़ और ऐंज़ाइम्ज में सीधा संबंध हैं, किन्तु वैज्ञानिक इस संबंध की प्रकृति से पूर्णतः अभिज्ञ नहीं हैं। बहुत से वैज्ञानिक अब यह विश्वास करने लगे हैं कि जेन प्रोटीन के विशेष आकारों के अणु (Molecules) हैं जो कि विभिन्न ऐंज़ाम्ज़ का स्वयं निर्माण करते हैं। जो भी हो, ऐंजाइम्ज की उपस्थिति —अनुपस्थिति तथा उनकी विशेश प्रकृति जेन निर्धारित करते हैं। इसलिए जेन में परिवर्तन ऐंज़ाइम की उत्पत्ति को भी प्रभावित कर सकता है और इस प्रकार शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं को बन्द कर देता है।

संभवतः परिवर्तित जेन दो प्रकार से रासायनिक क्रियाओं को प्रभावित करते हैं यदि हम इनकी क्रियाओं से उत्पन्न पदार्थों की प्रकृति का विचार न कर केवल उत्पन्न पदार्थ की रासायनिक क्रिया पर ही ध्यान केन्द्रित करें तो। इसमें एक तो यह संभावना की जा सकती है कि जेन से निर्धारित रासायनिक क्रिया व्यापार केवल उन कोषों तक केन्द्रित है जिनमें यह जेन बन्द होते हैं, इसे हम जेन की आत्म-केन्द्रित प्रक्रिया भी कह सकते हैं, और जेन-क्रिया व्यापार का दूसरा प्रकार उन द्रव्यों या रसों की उत्पत्ति हो सकता है जो केन्द्र से फैल कर शरीर के सुदूर प्रदेशों तक में रासायनिक क्रियाओं को जन्म देते हैं। जहाँ तक प्रथम संभावना का सम्बन्ध है, यह प्रमाणित करना अत्यन्त कठिन है कि जेन कोष के भीतर कैसे कार्य करते हैं, क्योंकि जेन को न किसी ने देखा है और न उस पर कोई प्रयोग ही किया जा सका है, इसलिए हमारे पास केवल एक ही रास्ता है जिससे हम जेन के क्रिया-व्यापारों को जान सकते हैं और वह है उन विचित्र और असामान्य व्यक्तियों

का अध्ययन जो या तो विश्रृंखलित रूप से अकेले दुकेले पाये जाते हैं अथवा जो किसी वंश श्रृंखला के रूप में देख जा सकते हैं। इस ओर गोल्डश्मिट, बीडल और डोब्जहेंस्की तथा मोर्गन और डन इत्यादि ने अपने प्रयोगों से रास्ता साफ कर दिया है। जैसे ड्रोसोफिला का वपित रज-कोष (Fertilized Egg cell) मादा बच्चे के रूप में XX क्रोमोसोम्ज के साथ बढ़ने लगता है, कभी कभी अचानक ही एक X क्रोमोसोम वर्ग कोष-विभाजन के समय परिवर्तित हो जाता है और नर क्रोमोसोम (y chromosome) के रूप में विकास करने लगता है। इस प्रकार ऐसा व्यक्ति उभयलिंगी हो जाता है। ये परिवर्तमान जेन या क्रोमोसोम्म अन्य जेंज् या क्रोमोसोज् से सर्वथा स्वतन्त्र अपनी अभिव्यक्ति करते हैं, फिर चाहे ये कितने भी थोड़े क्यों न हों। इन अवस्थाओं में परिवर्तित जेंज् अनिवार्य रूप से कोष के भीतर ही क्रियाशील होते होंगे जिनमें कि वे स्थित हैं। यह भी कहा जा सकता है कि जेंज के ये प्रभाव ऐसे हैं जो केवल कोष-विभाजन से ही क्रियान्वित होते हैं। इस प्रकार ये कोषस्थ (Intracellular) क्रियायों के परिणाम न होकर कोष-बाह्य क्रिया व्यापारों के परिणाम होते हैं, जैसा कि ऐसे व्यक्तियों के पंखों पर उत्पन्न वर्ण-भिन्नता और पुरुष लिंग की उत्पत्ति से भी स्पष्ट है। इस प्रकार ऐसे क्रिया व्यापार, जो जेंज् के शरीर पर प्रभाव और उसके विकास से सम्बन्ध रखते हैं कोषस्थ नहीं हो सकते।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण विभिन्न वैज्ञानिकों ने अपने प्रयोगों से प्रस्तुत किये हैं, जिनसे यह प्रमाणित होता है कि जेंज् से नियंत्रित क्रिया-व्यापार गर्भस्थ शिशु (Embroy) के विभिन्न किन्तु निश्चित अंगों में निश्चित समयों पर क्रियान्वित होते हैं और क्रमशः अन्य अंगों पर भी प्रभाव डालते हैं। हम्बर्जर Humburger ने ट्रिटुरुस—क्रिस्टाटुस (Triturus cristatus) टि. टेन्याटुस (T. Taniatus) और ट्रिटुरुस पामाटुस (T. Palmatus) का मिलन करवाया और परिणाम में देखा कि गर्भस्थ शिशु बिलकुल उत्तरावस्था में ही एक दूसरे से कुछ भिन्न होने प्रारम्भ होते थे, पूर्वावस्थाओं में वे माता के रज-जेंज् से ही निर्धारित होते थे। (Goldschmidt) इससे स्पष्ट है कि गर्भस्थ शिशु में आयु की प्रारम्भिक और कुछ बाद की अवस्था में भी केवल माता के जेन केन्द्र (Egg Nucleus) में के जेंज् ही एक मात्र नियामक होते हैं। इसी प्रकार गोल्डश्मिट ने उभयलिंगियों पर अपने प्रयोगों से देखा कि लाइमेस्ट्रिया (Limestria) में नरत्व और स्त्रीत्व का निर्धारण तदीय जेंज की विशेष गति (Velocity)

से निर्णीत होता है । जेंज़ के ये गति-क्रम (Velocity) इस प्रकार अपना क्रिया-व्यापार क्रियान्वित करते हैं और इस प्रकार अपने प्रभाव को अन्तिम रूप से व्यापारित करने के काल-बिन्दु निश्चित करते हैं कि इनमें से कोई एक आगे बढ़कर दूसरे पर विजयी हो जाता है। क्योंकि कृमियों में उभयलिंगिता की यह उत्पत्ति स्वतः उत्पन्न प्रतीत होती है इससे यह कल्पना की जा सकती है कि लिंग-निर्धारण की क्रिया प्रत्येक कोष में होती है जिससे कि तदीय प्रकृति के और तदीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य रासायनिक और शारीरिक परिवर्तन भी उत्पन्न होते हैं । इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि ये कोषस्थ लिंग-निर्णायक पदार्थ (× – ५ जेन) इन हार्मज़ के किसी न किसी प्रकार समान रासायनिक गुण के ही होंगे । इनमें अन्तर केवल यही है कि एक सम्पूर्ण शरीर के कोष में विस्तृत होते हैं और दूसरे अपने निश्चित कोषों में केन्द्रित रहते हैं ।

इस प्रकार के प्रमाणों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है जिन में जेनिक क्रिया और उनसे प्रेरित हार्मज़ का पारस्परिक संबंध स्पष्ट होता जा रहा है । ड्रोसोफिला की अनेक जातियों में ऐसे उभय-लिंगी व्यक्ति स्पष्ट देखे जा सकते हैं जिनकी काम-ग्रंथियां (gonads) यदि अंडकोष हों तो वे सदैव गहरे लाल रंग के होते हैं और यदि ओवरी (ovary) हों तो हल्के रंग के होते हैं । इसी प्रकार, यदि ड्रोसोफिला नर (अंडकोष) हो तो उसकी आँखों में भी गहरे लाल रंग के धब्बे होते हैं जबकि मादा (ओवरी) होने पर ये धब्बे नहीं होते । इसका कारण यह है कि ओवरी के रस लाल रंग के जेन की अभिव्यक्ति को दबाये रहते हैं, अथवा और भी ठीक शब्दों में, ओवरी में उपस्थित जेन इस प्रकार का हार्मन बनाता है जोकि आंखों में लाल रंग उत्पन्न करने वाले जेन की अभिव्यक्ति को रोक देता है ।

जेंज़ का स्थिति-परिवर्तन और क्रोमोसोम्ज़ का रुख-परिवर्तन भी प्राणी पर बड़े गंभीर प्रभाव छोड़ते हैं जिनकी व्याख्या जेनेटिक्स के पुराने तर्कों के साथ नहीं हो सकती । क्योंकि इन परिवर्तनों में केवल क्रम ही परिवर्तित होता है कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता । इससे जिन व्यक्तियों के शरीर में इन परिवर्तनों से प्रेरित परिवर्तन हुआ हो उनमें जेन वही रहते हैं जो उनके पूर्वजों में थे । यद्यपि कभी कभी इस प्रकार के स्थिति-परिवर्तनों से कोई विशेष अन्तर नहीं भी दिखाई पड़ता किन्तु अनेक बार काफी गंभीर

परिवर्तन भी देखे जाते हैं। जेंज़ इस प्रकार अपनी स्थिति-परिवर्तन से शरीर पर जो प्रभाव डालते हैं वह पुनः जेंज़ और हार्मंज़ के पारस्परिक संबंध को प्रभावित करता है ।

इसी प्रकार ड्रोसोफिला में चक्षु-रंग का प्रधान जेन (अ अ) गौण (अ अ) हो जाने पर रंग में परिवर्तन का कारण होता है, इससे आँखों का रंग काले के वजाय लाल हो जाता है और (अंड कोष) का रंग गहरे लाल से सफेद हो जाता है। गास्पेरी ने दो भिन्न जाति के ड्रोसोफिला के (अंड कोषों) को एक दूसरे में मिलाकर देखा। जब अ अ अंडकोष अ अ अंडकोष वाले व्यक्ति में स्थानान्तरित किया गया तो उसकी आंखों का रंग काला हो गया। चक्षु-रंग को प्रभावित करने वाले ये जेन अन्यभी अनेक स्थानों पर इसी प्रकार प्रभाव डालते हैं। इनसे कैटरपिल्लर की त्वचा पीली हो जाती है, ओप्टीक स्नायुओं (Optic Nerves) के कोष-गुच्छों का रंग भूरे से गहरा लाल हो जाता है तथा वृद्धि की गति (Rate of Development) और सशक्ता का स्तर गिर जाता है। इससे स्पष्ट है कि जेन शारीरिक वृद्धि या विकास में किस प्रकार हार्मंज़ के द्वारा क्रमशः निर्णायक होते हैं। जैसा कि गाँस्पेरी ने दिखाया है अ अ जेन वाले व्यक्ति के अंडकोष अ अ व्यक्ति में स्थानान्तरित करने पर आंखें काली हो जाती हैं, जब कि अ अ (Dominant) के अअ (Recessive) में स्थानान्तरित करने पर काली ही रहती हैं–उनमें कोई परिवर्तन नहीं आता। इस प्रकार प्रधान (dominant) जेन वाले अँडकोष के रंग –जेन ऐसे हार्मंज़ का निर्माण करते हैं जो कि सम्पूर्ण शरीर पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं केवल आँखों और पंखों के रंगों को प्रभावित करने तक सीमित नहीं रहते। और ये केवल अंडकोष ही नहीं है जो इस प्रकार के हार्मंज़ बनाते है प्रत्युत अन्य भी कितनी ग्रंथियाँ हैं जो इसी प्रकार के रस बनाती हैं। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह है कि ये हार्मन संबंधी प्रभाव कोष (Egg cell) पर भी उसके वपन (Fertilization) से पूर्व प्र ाव शाली हो सकते हैं। यदि अ अ मादा में अ अ जेन स्थानान्तरित कर दिया जाए तो उसके शुद्ध अ अ (Recessive) जेन वाले अंडकोष-युक्त बच्चों की आँखें भी बहुत शीघ्र लाल धब्बों से युक्त हो सकती हैं जो कि अ अ (प्रधान जेन) में ही हो सकता है। गोल्डश्मिट के अनुसार अ अ अंडकोष का हार्मन ओवरी में निहित रज-कण के साइटोप्लास्य (Cytoplasm) में प्रविष्ट हो कर गर्भस्थशु (Embroy) पर प्रभाव डालता है।

संभवतः हार्मंज़ की जेंज़ पर आश्रितता और उनका शरीर पर प्रभाव उससे भी अधिक प्रभावशाली होते हैं जितने वे स्पष्टतः प्रतीत होते हैं। ये प्रभाव मानसिक व्यापार-प्रक्रिया, प्रवृत्ति (Instinct इत्यादि) और बौद्धिक योग्यता (सीखने की योग्यता, learning capacity) जैसी अधिक उलझन पूर्ण समस्याओं को समझने में भी बहुत अधिक सहायक होते हैं। इसका हम एक उदाहरण देंगेः—फेनाइल पाइरूविक एसिड (Phenyl Pyruvic Acid) में ऑक्सीजन के मिलाने और हाइड्रोजन परमाणुओं के अपसारण की क्रिया एक विशेष ऐंजाइम करता है। जिस व्यक्ति में इस ऐंज़ाइम के उत्पादक जेन अनुपस्थित रहते हैं उनमें यह ऐंजाइम भी उत्पन्न नहीं होता और इस प्रकार फेनाइल पाइर्यूविक एसिड की अन्तर्वर्तिनी क्रिया उन व्यक्तियों में नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि इस अभाव से युक्त व्यक्तियों में इस विशेष एसिड की अधिकता हो जाती है जिससे उस व्यक्ति पर घातक प्रभाव होता है और वह दुर्बल हृदय का हो जाता है। इस उदाहरण से स्पष्ट देखा जा सकता है कि जेंज़, ऐंजाइम्ज़ और शरीर की रासायनिक क्रियाओं में कितना घनिष्ट संबंध है।(Morgan) सामान्यतः मनुष्य में फेनाइल पाइरूविक तेजाव को ऐंज़ाइम्ज़ हाइड्रोजन-परमाणु-रहित करके ऑक्सीजन और पानी बना सकते हैं, इससे शरीर का सामान्य व्यापार जारी रहता है, किन्तु ऐसा न कर सकने वाले व्यक्तियों के मन पर इसका घातक प्रभाव होता है।

इस प्रकार के रोगी परिवारों का अध्ययन बताता है कि यह बीमारी उत्तराधिकार (Heredity) से संबंध रखती है। जिनमें इन ऐंजाइम्ज़ के उत्पादक जेन गौण (Recessive) रहते हैं उनमें यह रोग अनिवार्य रूप से उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि अभी तक यह स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं हो सका है कि कैसे इस रासायनिक क्रिया की कमी स्नायु तंतुओं को भी दुर्बल कर देती है और इस प्रकार मन को निर्बल करती है किन्तु हम यह जानते हैं कि फेनाइल-पाइर्यूविक तेज़ाब एसेटाइल्कुलाइन (Acetyl choline:—एक विशेष रासायनिक द्रव्य जो कि स्नायु कोषों में आवेग या उकसाहट के समय उत्पन्न हो जाता है) रस के प्रवाह को रोक देता है और संभवतः इस प्रकार स्नायुओं की क्रिया-शक्ति को घटा देता है। इसी प्रकार थाइराइड की कमी या अधिकता और इंसुलिन (Insulin) की अधिकता सीखने की शक्ति और बुद्धिमत्ता को कम कर देती है। यद्यपि खोई हुई योग्यता को इन हार्मंज़ के इंजेक्शन लौटा नहीं सकते और इस प्रकार के कितने ही प्रयोग असफल हो चुके हैं किन्तु इससे कोई सिद्धान्ततः अन्तर नहीं पड़ता। उदाहरणतः, परिपक्व आयु के चूहों में इन ग्रंथियों के स्वल्पापसारण या हार्मंज़ के अभिवर्धन

से कोई अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु बचपन में इस प्रकार का अपसारण काफी गंभीर और घातक प्रभाव डालता है। वास्तव में थाइराइड के किसी भी आयु में अपसारित करने पर भी उनके हार्मन एक दम बन्द नहीं हो जाते, इससे यदि पिच्यूइटरी के अपसारण द्वारा अथवा अन्य रासायनिक द्रव्यों से इस ग्रंथि की क्रिया को सर्वथा बन्द कर दिया जाए तो इसका अवश्यंभावी प्रभाव होगा—और यह प्रयोग सिद्ध भी है। Morgan

इसी प्रकार उत्तराधिकार या वंशानुक्रम (Heredity) का प्रभाव आवेगात्मक निर्वलता (Schizophranic) और स्मृति भ्रंश (Mnemic Deprissive) इत्यादि मानसिक रोगों में भी देखा जा सकता है। जैसा कि सहज ही अनुमान किया जा सकता है, इस प्रकार के मानसिक पहलुओं का जेनिक अध्ययन बहुत कठिन कार्य है। फिर इस प्रकार के मानसिक दुर्बलता जनित आचरणों को परिवृत्ति का प्रभाव भी कहा जा सकता है, यद्यपि यह एक दम व्यर्थ है, क्योंकि परिवृत्ति का प्रभाव जब एक विशेष परिवार के सभी सदस्यों के अन्य आचरणों या शारीरिक रोगों में समान दृष्टिगोचर नहीं होता, इसी एक विशेष पहलू में वह समान क्यों हो। इस लिए, और अन्य अनेक प्रमाणों से भी, यही ठीक प्रतीत होता है कि इस प्रकार के रोग वंशानुक्रम में ही निहित होते हैं। इसका प्रमाण यह भी है कि सहजात (Fraternal) शिशु युगलों में इस पहलू में उतनी ही समता होती है जितनी युग्म बच्चों में और अन्य पृथक् उत्पन्न भाइयों में, जो कि पुनः इस बात को प्रमाणित करता है कि यह रोग माता पिता में होने पर ही उनकी सन्तानों को प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, इन भाइयों में तथा युग्म (Twins) तथा सहोत्पन्न (Fraternal) भाइयों में एक ही परिवृत्ति अथवा भिन्न परिवृत्तियों में भी रखने पर यह रोग एक निश्चित समय पर और निश्चित मात्रा में ही होता है।

यद्यपि इस समस्या का अभी तक कोई समाधान नहीं हो सका है कि इस रोग का शरीर-वैज्ञानिक आधार क्या है, तो भी इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों के तथा इससे रहित व्यक्तियों के हार्मन सिस्टम में कुछ अन्तर देखा जा सकता है। इस रोग के रोगी में महत्वपूर्ण कुछ कमियां ये हैं—ऑक्सीजन की खपत को क्रियान्वित करने वाले आधार भूत रासायनिक परिवर्तन (Basic Metabolic rates of oxygen consumption) बहुत कम हो जाते हैं, (२) ऐसे व्यक्ति व्यायाम के पश्चात् लैक्टिक रस (Lactic Acid)

को खपाने में सफल नहीं होते जिससे रक्त में इस रस की अधिकता हो जाती है, इससे वह व्यक्ति अपने किसी आवेग को संभाल नहीं पाते। (३) वे थाइराइड ग्रंथि के विशेष हार्मन थाइरोक्साइन तथा इंसुलिन की बड़ी बड़ी खुराकों से प्रभावित नहीं होते। और (४) वे अपने रासायनिक शरीर को सामान्य रूप से कार्य करते रखने में अपेक्षाकृत अधिक अस्थिरता और विविधता का प्रदर्शन करते हैं— दूसरे शब्दों में, वे रासायनिक क्रियाओं में तीव्रता आने पर उन्हें सामान्य स्तर पर लाने में अन्य व्यक्तियों से अधिक अशक्त प्रमाणित होते हैं। (Morgan)

ये कुछ शारीरिक गुण या दोष हैं जिन्हें उपयुक्त आधारों पर जेनिक कहा जा सकता है, किन्तु इस का अर्थ यह नहीं कि केवल यही अवस्थाएं जेन सिस्टम की उत्पित्त हैं अथवा ऐसी सभी अवस्थाएं जेन सिस्टम की उपज होती हैं, प्रत्युत् यह कि हम इनसे शरीर और मन तथा मस्तिष्क के निर्माण में जेंज् का और वं शानुक्रम (Heredity) का कुछ महत्व समझ सकते हैं और यह जान सकते हैं कि जेन किस प्रकार शरीर और मन के आधार भूत अथवा मौलिक द्रव्य कहें जा सकते हैं। अनेक बार दो भाइयों में आकृतिगत समता इतनी अधिक पाइ जाती है कि उन्हें एक दूसरे के स्थान पर भूल से समझ लिया जाता है। कभी-कभी माता तक इसमें भूल कर जाती है। युग्म बच्चों में तो ऐसा प्रायः होता ही है। इस प्रकार की बाह्य समता रखने वाले बच्चों या भाइयों में मानसिक समताकी भी संभावना की जा सकती है। युग्म भाइयों में तो यह प्रायः होता ही है (बाह्य समता भी प्रायः उन में पूर्ण होती है) फिर चाहे उन्हें कितनी भी भिन्न परिवृत्तियों में क्यों न रखा जाय। यह होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि मानसिकता, जैसा कि हम पहले दो निबंधों में भी देख आये हैं, मस्तिष्क के विशेष प्रबंध, स्नायुओं के विशेष संस्थान और हार्मंज़ के विशेष अनुपात पर बहुत निर्भर करती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिनका शरीर-यंत्र पूर्णत. समान होगा उनकी मानसिक योग्यता (Mental capacity) भी ठीक एक ही सी होगी।

किन्तु अनेक लेखक इस समता और वंशानुक्रम-प्राप्ति (Heritage) को बहुत गलत रूप में समझते हैं, वे ससझते हैं संगीत, काव्य और शास्त्र-ज्ञान में निपुणता इत्यादि भी ज्यों की त्यों वंशानुक्रम में प्राप्त की जा सकती है—यह शायद गलत है, अथवा कमसे कम इसका कोई भी प्रयोग-सिद्ध आधार नहीं हैं। एक 'संगीतज्ञ' वंशका बच्चा वंशानुक्रम में जो प्राप्त करेगा, वह है संगीतज्ञ होने की शारीरिक योग्यता,—जैसे उसका

कण्ठ-स्वर मधुर होगा (जैसाकि हम जानते हैं, कण्ठ-स्वर प्रायः ही बच्चे का माता-पिता में से किसी एक से, जिस लिंगका वह हो, मिलता ही होता है, कभी-कभी तो पहचानना तक कठिन हो जाता है कि बोलने वाली माता है या लड़की), उसका आवेग संस्थान भी इस प्रकार का होगा कि वह गाना अधिक पसंद करेगा—और यह सब केवल इसी रूप में कि उस की शरीर-रचना ही इस प्रकार की होगी। जैसा कि हम पीछे हार्मज के प्रभाव को व्यक्तित्व पर देखते हुए शेली, कीट्स और विल्सन के व्यक्तित्वों का उस आधार पर वर्गीकरण कर आए हैं उसी आधार पर प्रत्येक व्यक्तित्व का और आचरण का वर्गीकरण वंशानुक्रम के आधार पर हो सकता है, क्योंकि बच्चा माता-पिता से यही प्राप्त करता है। इस प्रकार व्यक्ति वंशानुक्रम में केवल विशेष शारीरिक परिस्थितियाँ प्राप्त करता है जो परिवृत्ति के प्रभाव में किसी दिशा विशेष की ओर ढलती या विकसित होती हैं। जैसे आईस्टीन के लिए; संभव था कि वह एक महान गणितज्ञ और वैज्ञानिक न बन कर वेदान्ती बनता, यह केवल उसकी परिवृत्तिपर निर्भर करता है कि वह वेदान्ती नहीं बना, किन्तु वह कवि कभी नहीं बन सकता था, फिर चाहे कोई भी परिवृत्ति उसको क्यों न प्राप्त होती। यौवन में गोनाड्ज़ के स्राव में तीव्रता होने पर और धमनियों में रस-स्राव तीव्र होने पर किसी रमणी के होंठ प्रिय लगने स्वाभाविक और संभावित हैं और उस अवस्था में यह आशा की जासकती है कि आईस्टीन भी कविता लिख डालता, किन्तु वह केवल अस्थायी वृत्तिही हो सकती थी। इस का अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति एक ऐसी निश्चित प्रवृत्ति के साथ उत्पन्न होता है जो उसमें प्रारंभ से ही निश्चित और स्पष्ट होती है। कई एक व्यक्ति तो बिल्कुल घपला भी होते हैं—इतने अधिक कि वे कवि और वैज्ञानिक दोनों ओर की संभावनाएं रखते हैं, किन्तु संभवतः उस अवस्था में उन में दोनों संभावनाएं उतनी प्रखर नहीं हो सकतीं। यह भी आत्यंन्तिक नहीं है, कुछ व्यक्ति अनेक दिशाओं में सफल और महत् कार्य कर . डालते हैं। जैसे अनेक व्यक्ति इतिहास में प्राप्त किए जा सकते हैं जो कवि, उपन्यासकार, गणितज्ञ और वैज्ञानिक साथ-साथ ही थे। न्यूटन कवि और वैज्ञानिक दोनोंही था, यद्यपि सफल कवि उसे नहीं कहा जा सकता। ऐसे व्यक्ति जैसी परिवृत्ति प्राप्त कर लेते हैं उसी ओर अधिक सफल हो जाते हैं जब कि दूसरीं ओर कम सफल रहते हैं। इस प्रकार व्यक्ति एक ऐसा चित्र-पट होता है जिस पर कुछ विशेष प्रकार के चित्र ही अंकित किये जा सकते हैं और अन्य किसी प्रकार का चित्र उन पर ठीक नहीं उभर सकता। किन्तु उन विशेष प्रकार के चित्रों में से कौन सा उन पर अंकित होगा, यह केवल

संयोग की बात ही हो सकती है। महात्मा गाँधी अपनी जिस विशेष योग्यता (निष्ठा और ज़िद्द) से एक महान नेता बने उसी के कारण वे एक पुजारी या भक्त भी बन सकते थे और सनकी व्यक्ति भी, यह केवल संयोग ही की बात है कि वे नेता बने। इसी प्रकार यह सब के लिए कहा जा सकता है। इस प्रकार वंशानुक्रम में प्राप्त शरीर के जेनिक निर्धारण से विकसित मानसिक योग्यता को समझना एक कठिन और उलझन-पूर्ण कार्य होने पर भी एक निश्चित और सुदृढ़ आधार पर स्थित है, यह हम इस अध्ययन से सहजही अनुमान कर सकते हैं।

अब हम कुछ प्रयोगों को देखेंगे और उनके कारणों पर पहुँचने का प्रयास करेंगे जिससे यह स्पष्ट हो जायेगा कि कैसे एक अपराधी का पुत्र अपराधी और विवेकी का पुत्र विवेकी होने की संभावनाएँ अपने अन्तः शरीर में निहित ले कर उत्पन्न होता है।

मानसिक दौर्बल्य—मानसिक रोगों में बहुत सामान्य रोग है, जिसके अनेक प्रकार हो सकते हैं। इनमें से कुछ परिवृत्ति के कारण जैसे अल्कोहल इत्यादि नशीली और विषैली वस्तुओं के अधिक प्रयोग से भी हो सकते हैं। किन्तु अधिकतर हमारे शारीरिक निर्माण में निहित रहते हैं—जैसे थाइराइड ग्रंथिके अधिक बढ़ जाने से व्यक्ति में मानसिक दौर्बल्य उत्पन्न हो जाता है जो कि वंशानुक्रम में चलता है।

अब हम इसके समर्थन में कुछ प्रयोग सम्मत तथ्य उद्धृत करेंगे। गोड्डर्ड (Goddard) ने कुछ परिवारों में, जिनमें कि प्रवर्तक माता-पिता (Progenitor) दोनों ही दुर्बल हृदय व्यक्ति थे, पाया कि उनमें से ४७० बच्चे दुर्बल हृदय के और केवल ७ बच्चे सामान्य मानसिक योग्यता के थे। संभव है, ये बच्चे अगली किसी पीढ़ी में माता के किसी अन्य स्वस्थ मानसिक स्तर के व्यक्ति के साथ विवाह के कारण उत्पन्न हुए हों। दूसरे परिवारों में, जहाँ माता पिता में केवल एक दुर्बल हृदय का व्यक्ति था और दूसरा सामान्य मानसिक योग्यता का, ११३ बच्चे दुर्बल हृदय थे और १४४ सामान्य थे।

हृदय का यह दौर्बल्य निश्चित रूप से प्राणी के व्यवहार को भी प्रभावित करता है, जो अपनी प्रकृति के आधार पर और परिवृत्ति की सापेक्षा में उसे विभिन्न दिशाओं में प्रेरित करता है। उदाहरणतः दुर्बल हृदय व्यक्ति चोर, हत्यारा और शराबी भी हो सकता है और सामाज या ईश्वर से डरकर बुरे कार्यों से बचने वाला भी, किन्तु जिनका स्नायु और अग्रिम मस्तिष्क (Fore Brain) दुर्बल होता है वे व्यक्ति अधिक आवेगात्मक

और रासायनिक प्रक्रियाओं में सन्तुलन खो बैठने वाले होते हैं, और अपनी इन दुर्बलताओं से हत्या, चोरी, इत्यादि अपराधों में प्रवृत्त हो जाते हैं। किन्तु कोई व्यक्ति कैसे अपराध में प्रवृत्त होगा, यह उसकी परिवृत्ति पर निर्भर करेगा। परन्तु परिवृत्ति के प्रभाव को कभी कभी आवश्यकता से अधिक महत्त्व दे दिया जाता है। किन्तु एक व्यक्ति, जिसका मानसिक निर्माण उसे दूसरों के अधिकारों पर आक्रमण करने को वाध्य करता है, वह प्रत्येक अवस्था में वैसा ही करेगा, फिर चाहे कोई भी कानून उसे रोकने वाला क्यों न हो। शिक्षा और भय से ऐसे अपराधियों में बहुत अन्तर तो लाया जा सकता है किन्तु अधिक प्रयास से। इस प्रकार के उपायों से तो उन्हीं को सरलता से प्रभावित किया जा सकता है जो परिवृत्ति के कारण ही अपराधी बने हों। जन्मतः अपराधी व्यक्ति परिवृत्ति से बनते नहीं परिवृत्ति को बनाते हैं। कोई व्यक्ति अपराधियों के संसर्ग में जाता ही क्यों है?——अन्य क्यों उस प्रकार की परिवृत्ति में नहीं जाता और कभी कभी फँस जाने पर भी उसमें खप नहीं पाता?——यह बात कम महत्वपूर्ण नहीं है। एक अपराधी-जिस सुविधा से एक अपराध-पूर्ण परिवृत्ति में पहुँच जाता है यह अपनी अन्तर्निहित अथवा शरीर-रचना में विकसित अपराधी प्रवृत्ति के कारण ही। जेनेटिक शरीर–निर्माण न केवल व्यक्ति की अपनी परिवृत्ति चुनने की योग्यता ही होता है प्रत्युत न मिलने पर उसे बनाने के लिए वाध्य भी करता है। यह ठीक है कि एक विशेष समाज-व्यवस्था में ऐसे व्यक्तियों को अपनी परिवृत्ति बनाने और खोजने में अधिक सुविधा रहती है और दूसरी में कम, किन्तु यह व्यवस्था उसे अपराधी बनाने की एक मात्र उत्तरदायी नहीं कही जा सकती। इसका अर्थ यह नहीं कि अपराधी को कम अपराधी नहीं किया जा सकता या उसे बिल्कुल ठीक नहीं किया जा सकता, किन्तु जब तक आप उसके अन्तः शरीर को नहीं बदलते तबतक उसे स्वस्थहृदय (Sound Minded) नहीं बना सकते और इस प्रकार उसमें से अपराध-वृत्ति निर्मूल नहीं कर सकते।

ऐसे कुछ निश्चित कारण और प्रमाण दिये जा सकते हैं, जिनमें कि वंशानुक्रम में प्राप्त कमियाँ स्वभावतः ही व्यक्ति को अपराध में प्रवृत्त करती हैं। एक निर्दय क्रूरता और अविचार-पूर्ण हिंसावृत्ति, जो कि शिजोफ्रेनिया (Schizophrania) के कारण व्यक्ति में उत्पन्न हो जाती है, बड़ी सुविधा से उसे अपराधी बना सकती है। अस्वस्थ मानसिक-स्थिति वाला व्यक्ति (Psychopathic), जो कि स्वतः ही चिड़चिड़ा है, प्रायः ही यह समझलेता है कि समाज ने उसे बहुत सताया है और उसकी

इस अस्वस्थता का उत्तरदायित्व उसी पर है। क्योंकि वह स्वभावतः ही चिड़चिड़ा और असामाजिक होता है इससे उसे प्रायः ही इसकी पुष्टि में ठीक प्रमाण मिलते रहते हैं, क्योंकि उसके साथी उससे बोलना तक पसन्द नहीं करते और न उसकी कभी सहायता ही करते हैं। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि वह समाज से बदला लेने का तर्क लेकर अपराध में प्रवृत्त हो जाता हैं। इपिलेप्टिक (Epilaptics) प्रायः ही हत्या इत्यादि अपराधों में फंस जाते हैं। वास्तव में दुर्बल हृदय व्यक्ति थोड़ी सी प्रतिक्रिया या उकसाहट से ही इतने अधिक अवश और आवेग-पूर्ण हो उठते हैं कि उनके लिये अपने आपको रोक सकना कठिन हो जाता है—वे अपने पर ऐसी किसी प्रतिक्रिया को होने से रोकने में असमर्थ हो जाते हैं। यदि वे इस आवेग की तीव्रता का व्यय न करलें तो कभी २ यह दिनों तक उनमें बन रहता है और अन्त में और भी अधिक स्नायविक दुर्बलता के रूप में परिणत होता है। इसलिये यदि वे कुछ विवेक रखते भी हों तो भी वे उसका उपयोग करने में असमर्थ रहते हैं और क्रमशः अधिक निर्बल होते जाते हैं। अनेक अपराधियों के अध्ययन से देखा गया है कि उनमें काफी संख्या दुर्बल-हृदय व्यक्तियों की ही होती है, जब कि उससे भी बड़ी संख्या उन व्यक्तियों की हीती है जिनके मस्तिष्क का विकास अपनी आयु के अनुसार बहुत कम हो पाया होता है। शल के अनुसार, ऐसे ४७० व्यक्तियों का अध्ययन करने के पश्चात् पाया गया कि उनमें से केवल ३० प्रतिशत तो बिल्कुलही स्पष्ट रूप से दुर्बल हृदय व्यक्ति थे, जब कि ७० प्रतिशत व्यक्ति अविकसित बुद्धि वाले थे। यद्यपि हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि बुद्धि से उसका अभिप्राय शरीर वैज्ञानिक बुद्धि है या सामाजिक; जो भी हो, संभवतः कम बुद्धि का अर्थ अदूरदर्शिता और कम मानसिक योग्यता (Mental capacity) ही होना चाहिये जिसका परिणाम कम से कम इस रूप में दुर्बल हृदयता होता है कि वह अपना मानसिक सन्तुलन ठीक नहीं रख पाता और न आवेग (Emotion) की अवस्था में तदीय क्रिया के परिणामों को समझने में ही समर्थ होता है। वेश्याएं और अन्य अपराधी भी, जिनमें आत्म हत्या करने वाले भी सम्मिलित हैं, प्रायः ही इस प्रकार मानसिक रोगों और मानसिक दौर्बल्य के शिकार होते हैं। ५०० वेश्याओं के वंशानुक्रम का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि उनके परिवारों में अधिकतर व्यक्ति मानसिक अस्वास्थ्य (Psychopathy) और (Insanity) (Oligophrania) अल्कोहल-सेवन तथा आत्महत्या इत्यादि से पीड़ित रह चुके थे। युग्म लड़कों में अपराधवृत्ति का अध्ययन करते हुये

इस विचार की और भी अधिक पुष्टि हो चुकी है कि अपराध की जड़ भी बहुत कुछ मनुष्य की शरीर-रचना या जेनेटिक सिस्टम में ही निहित है। इस प्रकार के एक अध्ययन में पाया गया कि युग्मजों के दस युगलों में सभी युगल अपराधी थे, जबकि एक अन्य अध्ययन में युगल का केवल एक सदस्य अपराधी था। दो सहजात युगलों के अध्ययन में दोनों ही अपराधी थे जबकि एक अन्य अध्ययन में १५ ऐसे युगलों में प्रत्येक का केवल एक ही सदस्य अपराधी थां। स्पष्टतः ही यह अपराध परिवृत्ति के महत्व की स्थापना करता है, किन्तु यह अन्तर वास्तविक न होकर केवल प्रतीयमान है, क्योंकि इससे केवल यही प्रमाणित होता है कि इसमें परिवृत्ति भी एक (Factor) है, यह नहीं कि जेनिक सिस्टम नहीं है। संभव है कि शेष व्यक्ति अज्ञात अपराधी हों, क्योंकि ऐसे अनेक 'अच्छे' व्यक्ति देखे जा सकते हैं जो समाज में काफी प्रतिष्ठित हैं, वे वास्तव में ही समझदार भी हैं किन्तु फिर भी छोटी मोटी वस्तुओं की चोरी, हस्त मैथुन, गुप्तद्वेष-भावना इत्यादि में प्रवृत्त होते हैं। यह केवल इसलिये कि वे 'बड़े' दोषों में अपनी प्रतिष्ठा के कारण या सामाजिक चेतना के कारण प्रवृत्त नहीं हो सकते। 'सामाजिक चेतना' शब्द यद्यपि यहाँ विचित्र प्रतीत होगा, क्योंकि छोटी मोटी चोरियों के लिये भी यह लागू होता है, किन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि छोटी चोरियों को वे बुरा समझते हुये भी उससे अपने आप को रोक नहीं पाते और धीरे धीरे उनके लिये अभ्यस्त हो जाते हैं। यह भी हो सकता है कि युगलों में ज्ञात अपराधी व्यक्ति शरीर-रचना से अपराधी न हो कर केवल परिवृत्ति के कारण ही अपराधी बने हों और इससे दूसरे उससे बच गये हों।

इससे, और अन्य भी अनेक उदाहरणों से हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि कैसे जेन-सिस्टम और शरीर-वैज्ञानिक प्रकृति अपराध-वृत्तियों को प्रेरणा दे सकती है। इसका प्रमाण हम ऐसे परिवारों में और भी स्पष्टता से प्राप्त कर सकते हैं जिनमें अपराध-वृत्ति एक पेशा ही बन चुकी हो। Dugdale के एक अध्ययन के अनुसार, एक परिवार में अपराध-वृत्ति कुल-क्रमागत थी। उसने इस अपराधी परिवार पर अपना अध्ययन १८७५ में समाप्त किया। उसके पश्चात् १९१५ में इस्ट ब्रुक ने इस परिवार पर फिर से अध्ययन प्रारंभ किया। इन दो अध्ययन-कालों के अन्तर में उस परिवार में संख्या के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं हुआ। इसके २१०० व्यक्तियों में से ३७८ वेश्याएँ थीं, १८१ अल्कोहल सेवन के अपराधी थे, १७० परोपजीवी अथवा भिखारी, १२९ सामान्य अपराधों में और १८१

घोरअपराध वृत्तियों में व्यस्त तथा ८६ कुत्सित तथा गंदे साथियों और स्थानों पर रहने वाले थे। इस परिवार के लगभग आधे व्यक्ति दुर्बल हृदय के थे और घोर अपराधियों में आधे से कहीं अधिक व्यक्ति काफी दुर्बल हृदय के थे। वास्तव में, इस्टब्रुक के अनुसार तो इन सभी व्यक्तियों में किसी न किसी सीमातक मानसिक दौर्बल्य वर्तमान था। इस परिवार की आदि स्रोत-स्त्री एक वेश्या थी और इसका पति जंगल-विभाग में नौकर एक डच था, संभवतः ये दोनों ही मानसिक दौर्बल्य से पीड़ित थे। इसी प्रकार, मैं व्यक्तिगत रूप से तीन भाइयों को जानता हूँ जिनके माता-पिता का पता नहीं था, किन्तु संभवतः माता एक मुसलमान के साथ घर से भाग गई थी और बच्चे भी उन्हीं के पास चले गए थे। कुछ ही दिनों के पाश्चात् आर्य समाज को उनका पता लगने पर वे मुकदमा कर के लौटा लिये गए और एक शिक्षण-संस्था में भेज दिए गए। तब उनमें सबसे बड़े लड़के की आयु दस वर्ष से कुछ कम थी जब कि छोटा लगभग ५ वर्ष का रहा होगा। ये तीनों भाई आकृति में काफी भिन्न थे। इनमें पहले का मुख जब कि कुछ चौड़ा और माथा चपटा था, बिचले का मुँह तीक्ष्ण और माथा कुछ चौड़ा था, छोटे का मुँह कुछ गोल और कुछ लंबाई में था। रूप में तो इनमें बहुत काफी अन्तर था। जव ये लड़के शिक्षण संस्था में आये तब से मुझे उन्हें देखने का अवसर मिला है। उनमें बड़ा लड़का काफी क्रोधी (crazy), लड़ाका और चोर तथा सिगरेट पान करने वाला था, जबकि बिचला कुछ अपेक्षाकृत भला यद्यपि गुस्सैल था, छोटा तब अभी स्पष्ट नहीं था। बड़े लड़के को सुधारने के काफी प्रयास किये गए, किन्तु वह ठीक नहीं किया जा सका और लगभग ६ वर्ष तक उस शिक्षण संस्था में रह कर एक दिन भाग गया। अब वह मिलट्री में है और अनेक बार अपने मित्रों के यहाँ से छोटी मोटी वस्तु चुरा कर ले जाता रहा है।

बिचला लड़का प्रायः प्रायः काफी भला रहा, वह कुछ सुन्दर भी था (बड़ा भी सुन्दर था)। कुछ ही दिनों में वह पढ़ने में भी होशयार हो गया और संगीत में सबसे आगे बढ़ गया। वह सितार तो सबसे अच्छी बजाता था। किन्तु दुर्भाग्यवश एक व्यक्ति ने उससे सेक्सुअल संबंध स्थापित कर लिये और कुछ समय बाद वह उसे वहाँ से भगा ले गया। तब लड़के की आयु १२-१३ रही होगी। इस बीच में ही उसे किसी सेठ ने अपने लड़के के रूप में स्वीकार कर लिया था। अस्तु वह कुछ देर तक उसी कामुक व्यक्ति के साथ रहा, किन्तु, संभवतः २½ वर्ष के बाद वह उसके चंगुल से छूट आया और अपने अभिभावक सेठ के पास पहुँच गया। सेठ ने उसे स्वीकार कर

लिया और अब वह कलकत्ता में उसके व्यापार का बड़ी योग्यता से संचालन कर रहा है।

तीसरा और सबसे छोटा लड़का अभी उस शिक्षण संस्था में ही है। वह लगभग अपने बड़े भाई के समान ही बना है। अब वह फौज में भर्ती होने का प्रयास कर रहा है। गत वर्ष उसे आयु छोटी होने से अस्वीकार कर दिया गया था, इस वर्ष वह भर्ती हो जाने की आशा करता है।

इन तीनों भाइयों में पूर्ण निश्चय के साथ कहा जा सकता है, कि अन्तर परिवृत्ति जन्य नहीं था। इसका प्रमाण बिचला लड़का है। बिचले लड़के के भिन्न होने का कारण यह भी हो सकता है कि उसके पिता का उस पर प्रभाव हो (हम उसके पिता के बारे में कुछ नहीं जानते) अथवा उस पर माता का प्रभाव न हो सका हो, वास्तव में इन लड़कों के बौद्धिक स्तर और स्वभाव में भी काफी अन्तर है। आवेग का स्तर, आचरण और व्यवहार की प्रकृति तथा बौद्धिक स्तर सभी कुछ आपस में भिन्न थे। जब कि सबसे बड़ा और छोटा लड़का कभी भी संगीत में अच्छे नहीं हो सके, बिचला उस संस्था भर में सबसे अच्छा रहा।

इसी प्रकार एक अन्य परिवार की दो शाखाओं को भी इसकी पुष्टि में रखा जा सकता है जिसका प्रवर्तक पिता (Progenitor) एक किन्तु माताएं भिन्न-भिन्न थीं। इस व्यक्ति (पिता) ने पहले किसी दुर्बल हृदय लड़की से अवैधानिक संभोग के द्वारा एक पुत्र उत्पन्न किया और उसके पश्चात् किसी अन्य स्वस्थ लड़की से शादी करली। परिणाम-स्वरूप दो वंशा-वलियाँ चल पड़ीं। इनमें से एक—दुर्बल हृदय लड़की की शृंखला—में जबकि अनेक मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति पाये जा सकते हैं वहां दूसरी की वंशा-वली में सभी के सभी व्यक्ति स्वस्थ हैं। पहली की सन्तानों में स्वस्थ व्यक्तियों के होने का कारण यह है कि आगे जिन व्यक्तियों से इन शृंखला के स्त्री पुरुष शादियाँ करते रहे उनमें से कई एक स्वस्थ भी रहे होंगे। इससे इस शृंखला के स्वस्थ व्यक्ति हमारे वंशानुक्रम-प्राप्ति के सिद्धान्त का खंडन नहीं करते।

इसी प्रकार वंशानुक्रम में विवेक शीलता और स्वस्थ हृदयता जैसे अच्छे गुण भी प्राप्त किये जा सकते हैं और इसका बहुत बड़ा महत्व है, किन्तु ऐसे किन्हीं भी परिक्षणों में काफी सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि अनेक बार इस प्रकार के सद्‌गुण या दुर्गुणों का कारण परिवृत्ति भी हो सकता है। जैसे, मर्फी (Murphy) के अनुसार, अमेरिका के स्कूलों में हब्शी

और यूरोपियन लड़कों की बुद्धि-परीक्षा ली गई; जिन प्रान्तों में हब्शी विद्यार्थियों के लिये पृथक-स्कूल थे, और उन्हें यूरोपियनों से नीचा समझा जाता था उन स्कूलों के विद्यार्थी यूरोपियनों से इस परीक्षा में बहुत पीछे थे, किन्तु जिन प्रान्तों में हब्शियों के साथ समान व्यवहार होता था और सब जातियों के विद्यार्थी इकट्ठे ही स्कूलों में पढ़ते थे, वहा समान सुविधाएं मिलने के कारण सभी जातियों के विद्यार्थी सामूहिक रूप से समान थे।* (व्यक्ति-भिन्नता तो सदैव रहती ही है, और वंशानुक्रम का अध्ययन भी व्यक्तियों या विशेष वंशों पर होता है--समूह पर नहीं, समूह पर उस समूह की आनुवंशिक या जातीय उत्तराधिकार की योग्यता का अध्ययन होता है)। इस प्रकार, परिवृत्ति भी व्यक्ति के निर्माण में एक कारण हो सकती है। किन्तु इससे वास्तव में हमारे उपर्युक्त कथन का खंडन नहीं होता और न किसी प्रकार की अन्य संभावना ही उसे फीका करती है, क्योंकि मर्फी के प्रयोगों का उद्देश्य जातीय स्तर को नापना है किन्तु हम व्यक्तियों का अध्ययन कर रहे हैं। शल के अनुसार ४१ उत्तमश्रेणी के बुद्धिमान लड़कों में से केवल दो ऐसे थे जिनका कोई निकट संबंधी उत्तम श्रेणी का बुद्धिमान नहीं था। इसी प्रकार, एक अन्य प्रयोग में एक जौड़े की बुद्धि परीक्षा की गई। दोनों को आयु के आठवें मास से ही न केवल बिल्कुल पृथक् रखा गया था प्रत्युत उनकी शिक्षा-दीक्षा भी सर्वथा भिन्न हुई थी। उनमें से एक व्यापार कालिज में पढ़ी थी और इस प्रकार की कुछ नौकरियाँ भी कर चुकी थी जबकि दूसरी अध्यापिका थी। इसके बावजूद इनकी आकृति प्रायः प्रायः समान थी और बुद्धि-परीक्षा में भी ये प्रायः प्रायः बराबर ही थीं, किन्तु अपने सामान्य व्यवहार और रहन सहन में ये एक दूसरे से काफी भिन्न थीं, जिसका कारण उनकी परिवृत्ति को कहा जा सकता है। इसी प्रकार एक अन्य जौड़े की समानता के लिये कहा गया है कि न केवल उसके दोनों व्यक्तियों की आकृति और स्वभाव में ही पूर्ण समानता है प्रत्युत उन्होंने एक ही समान पुरुषों से विवाह करवाया है, उनके एक ही जैसे कुत्ते हैं और एक ही जैसे वे कपड़े और भोजन पसंद करती हैं। इससे भी अधिक समता का एक उदाहरण हमने पिछले निबंध के प्रारंभ में दिया था। किन्तु अनेक प्रयोगों में ऐसी स्पष्ट समता कभी कभी प्राप्त नहीं होती, और कभी कभी तो आकृति में भी कुछ अन्तर आ जाता है। यदि ध्यान से देखा जाए तो यह कोई आश्चर्य

---

* यद्यपि अनेक वैज्ञानिक इससे सहमत नहीं हैं और उनके प्रयोगों के अनुसार, इन स्कूलों में भी यूरोपियन अफ्रीकनों से अधिक कुशल हैं।

की बात नहीं है, क्योंकि किसी के समान होने का अर्थ प्रत्येक प्रक्रिया में समान होना नहीं है, प्रत्यत स्तर में समान होना है, कभी कभी इसमें भी स्पष्ट समानता नहीं पाई जाती, जिसका कारण संभवतः यह हो सकता है कि उन दोनों के समान जेंज ने समान शरीर का निर्माण नहीं किया। कभी कभी आकृति में पूर्ण समता होने पर भी संभव है दो भाइयों का बौद्धिक स्तर बिल्कुल समान न हो। संभव है उनकी आकांक्षाएं और स्वभाव भी कुछ भिन्न हों––उस अवस्था में संभवतः इसका कारण यह होगा कि उनके ग्रंथि-जेन और मस्तिष्क-जेन समान विकसित नहीं कह सके। अन्य भी अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे संभव है वे दोनों युग्म-भाई न होकर केवल सहोत्पन्न भाई हों, संभव है वह भिन्नता जेनिकन ण होकर परिवृत्ति संबंधी हो, और सबसे अधिक, संभव है उनके मन भौतिक (physical) परिवृत्ति भिन्न होने से, भोजन भिन्न होने से, भिन्न रूप में विकसित हुए हैं।

जब हम किसी भी प्रकार से वंशानुक्रम में प्राप्त (Hereaitary) विशेषताओं के बारे में कुछ कहते हैं तब हमें यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि यह समता या भिन्नता प्रक्रियात्मक न होकर प्रक्रिया के स्रोतों में निहित हैं। जेन स्वयं न प्रक्रिया हैं और न प्रक्रिया के स्रोत हैं, प्रत्युत प्रक्रिया स्रोतों के उन्नायक अथवा आधार हैं, यह हम इस निबंध के प्रारंभ में ही देख आए हैं। और ये प्रक्रिया-स्रोत किस प्रकार प्रक्रियाओं को जन्म देते हैं, यह हमने पहले निबंध में देखा था। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रक्रिया अनगढ़ पदार्थ के समान इन प्रक्रिया-स्रोतों में निहित रहती हैं, जब कि वह रूप ग्रहण परिवृत्तिकी सापेक्षता में, व्यक्ति की सुविधानुसार करती हैं। स्पष्ट ही परिवृत्ति भी इस प्रकार एक निर्णायक तथ्य (Factor) है, किन्तु पर्याप्त सापेक्ष। एक व्यक्ति जिसमें गोनाड्ज़ का प्रवाह अपेक्षा कृत अधिक तीव्र है, निश्चितरूप से ही अधिक कामी होगा और अपनी आवश्यकतानुसार अपनी परिवृत्ति खोजने के लिए संघर्ष करेगा, किन्तु संभव है एक व्यक्ति उतना कामी न हो और परिवृत्ति उसे अधिक कामी बना दे। इसी प्रकार प्रकृत्या एक अधिक कामी व्यक्ति भी अपनी इस प्रवृत्ति की अपेक्षा कम काम-प्रवृत्त हो सकता है। इस प्रकार हम इससे सहमत नहीं हैं कि परिवृत्ति व्यक्ति की एक मात्र नियामक है।

किन्तु वंशानुक्रम को केवल माता पिता तक सीमित नहीं रखना चाहिए, जैसा कि प्रायः किया जाता है, इसमें मेंडिलियन से छंटनी (Segregation) और पुनरुद्भव तथा जेंज़ का भिन्न क्रम में होना

इत्यादि भी बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं। उदाहरणार्थ आईस्टीन की महानतम प्रतिभा को सामान्य श्रृंखला में नहीं देखा जा सकता।

किन्तु सामान्यतः लोग, जिनमें कभी कभी लेखक भी योग दे देते हैं, वंशानुक्रम में प्राप्त प्रवृत्तियों के बारे में समझते हैं कि वे वैसी की वैसी ही प्रक्रिया रूप में प्राप्त होती हैं, जैसे-"एक संगीतज्ञ का पुत्र भी संगीतज्ञ ही होता है" इत्यादि। यह गलत हैं, संभव है एक संगीतज्ञ का पुत्र एक संगीतज्ञ न होकर कवि हो, संभव है वह केवल एक भावुक प्रेमी हो और यह भी संभव है कि वह बिल्कुल सामान्य व्यक्ति हो। यदि एक संगीतज्ञ का पुत्र भी संगीतज्ञ होता है तो वह केवल इसलिए कि उसे शैशव से ही उस परिवृत्ति में रहने का अवसर मिला होता है और शैशव से ही उसे इस ओर लगाया जाता है। उसे स्वयंचुनाव का अवसर नहीं मिलता यह ठीक है कि यदि उसका वंश अपनी संगीत की योग्यता के कारण संगीतज्ञ रहा है तो उसमें भी ऐसे जेन होंगे जिनके कारण वह संगीत में दूसरों से आगे बढ़ जाएगा। किन्तु एक संगीतज्ञ या कवि का पुत्र वैज्ञानिक या दार्शनिक भी हो सकता है जिसके कारण हम पिछले निबंध में और कुछ इस निबंध में भी देख आए हैं।

यद्यपि इस प्रकार के अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ हैं किन्तु एक निश्चित और वैज्ञानिक निर्णय पर पहुँचने का यही एक मात्र रास्ता है। इसलिए किसी भी मानसिक योग्यता के लिए हमें यह मानकर ही चलना चाहिए कि इसके कुछ भौतिक-रासायनिक आधार हैं और यह केवल उनकी विशेष अभिव्यक्ति मात्र है। तोते को कुछ प्रयास से मनुष्य की भाषा के शब्द बोलना सिखाया जा सकता है और इन शब्दों के प्रयोग की एक विशेष प्रणाली भी सिखाई जा सकती है जिसे कि निर्धारित प्रभाव (Conditioned Effect) कहा जा सकता है, जैसे तोता किसी के आने पर कहे चलो चलो' इत्यादि किन्तु कबूतर या कुत्ते को यह कभी नहीं सिखाया जा सकता—यद्यपि कुत्ता काफी बुद्धिमान पशु है। संभवतः इसके दो कारण हो सकते हैं-प्रथम तो कुत्ते या कबूतर के मुँह में वह योग्यता न हो और दूसरे उसके मस्तिष्क में ऐसा कोई विशेष विभाग न हो। नहीं तो कोई कारण नहीं कि वे क्यों तोते के समान बोल न सकें। तोता भी इन शब्दों के अर्थ कभी नहीं समझ सकेगा जब की मनुष्य बड़ी सुविधा से समझ सकता है और इसका कारण केवल यही है कि उनके मस्तिष्क में इसकी योग्यता है। योग्यता अयोग्यता को हम जेनिक कह सकते हैं।

किन्तु कुछ वैज्ञानिक, यद्यपि अधिकतर पुराने--व्यक्तित्व-निर्माण या प्रक्रिया निर्धारण में परिवृत्ति को अत्यधिक महत्व देते हैं, यहाँ तक कि वे प्रयोग-अप्रयोग के लामार्कियन सिद्धान्त को भी इसमें खींच लाते हैं। वे अपने पक्ष में ऐसे व्यक्तियों का उदाहरण देते हैं जो शैशव से ही पृथक् रखे जाने पर बोल तक नहीं सकते। संभवतः यह तो कोई भी नहीं कहता कि भाषा उसी प्रकार सहजात है जैसे भूख, सहजात तो भाषा सीखने की योग्यता है। किन्तु वे कहते हैं कि यह योग्यता भी शैशव से निरन्तर परिवृत्ति मिलने के कारण ही मनुष्य में विकसित हो जाती है, यदि उसे वह परिवृत्ति न मिले तो न केवल उसमें तत्संबंधी योग्यता ही नहीं आ पाती प्रत्युत् उसके तदीय यंत्र भी अविकसित रह जाते हैं। इसके पक्ष में वे एक फ्रेंच वैज्ञानिक इटार्ड(Itard)के एक प्रयोग का उदारहरण देते हैं। उसने एक ऐसे लड़के पर अपने परीक्षण किये जो ग्यारह वर्ष की आयु में जंगल से पकड़ा गया था। वह बिल्कुल पशु के समान था, उन्हीं के समान भीरु और जंगली। उसके शरीर की परीक्षा करने से ज्ञात हुआ कि उसके शरीर के प्रक्रिया यंत्रों का ठीक विकास नहीं हुआ था—ज्ञान तंतु, प्रक्रिया तंतु (motar) मस्तिष्क तंतु और अन्य भी कुछ यंत्र ठीक तरह से विकसित नहीं हो पाए थे। इटार्ड ने लड़के को पांच वर्षों तक शिक्षित करने का अविरत प्रयास किया, किन्तु वह उसे उस सीमा तक शिक्षित नहीं कर सका जितनी उससे आशा की जा सकती थी। वह अपने पूर्ण प्रयास के बाद भी उसे शब्द स्पष्ट रूप से बोलना नहीं सिखा सका, यद्यपि वह सामान्य लिखी भाषा समझ सकता था और उसी के द्वारा अपनी आवश्य-कताएँ अभिव्यक्त कर सकता था। सब मिलाकर, लड़का सामान्य स्तर तो क्या उसके समीप भी नहीं लाया जा सका, यद्यपि उसे उत्तम-तम परिस्थितियां प्रदान की गईं। इस उदारहण से प्रायः सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है कि परिवृत्ति, और वह भी शैशव के प्रारंभ से, कितनी अधिक प्रभावशाली हो सकती है। किन्तु इस उदाहरण से हम किसी भी परिणाम पर नहीं पहुँच सकते, क्यों कि इसमें यह तो स्वीकार किया गया ही है कि उस का स्नायु तंतुकाय पर्याप्त विकसित नहीं था, और इस बारे में यह कहना कि उसके विकसित न होने का कारण उसका अप्रयोग है—हमें उपयुक्त नहीं जान पड़ता। जैसा कि हम पिछले निबंध में देख आए हैं, इसका कारण केवल यही कहा जा सकता है कि उसके कुछ जेंज़ किसी कारण से या तो गौण रह गए अथवा अपना ठीक विकास नहीं कर पाए, जेंज के क्रिया व्यापार में परिवृत्ति कितनी प्रभावशाली हो सकती है, इस विषय में हम पिछले निबंध

में काफी विस्तार से लिख आए हैं। इस लड़के के उदाहरण में यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है—यह हम नीचे एक और उदाहरण से देखेंगे।

एक १७ वर्ष का लड़का न्यूरंबर्ग के बाज़ार में पागलों की तरह घूमता देखा गया। वह प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में केवल एक ही बात कहता था—मेरा पिता एक फौजी था, मैं भी वही बनूंगा। उसका जन्म और वंश उसके लिए भी एक रहस्य था। उसके लिए कहा गया कि वह क़िसी अत्यन्त समृद्ध परिवार का सदस्य था और उनके शत्रुओं के द्वारा वह शैशव से ही अँधेरी गुफा में बंद कर दिया गया था। ट्रैडगोल्ड (Tredgold) ने उसे रख लिया और सिखाना-पढ़ाना आरम्भ किया। थोड़े ही समय में उसने बड़ी तीव्रता से प्रगति करनी आरम्भ कर दी। यद्यपि वह सामान्य स्तर पर नहीं लाया जा सका किन्तु वह इस योग्य हो गया कि अपना दैनिक-जीवन ठीक प्रकार से चला सके। तब उसे एक कचहरी में कार्य पर लगा दिया गया। वहाँ वह ठीक तरह से अपना कार्य करता रहा। कुछ वर्षों के पश्चात् उसे एक व्यक्ति यह कह कर कहीं दूर निर्जन में ले गया कि वह उसे उसकी उत्पत्ति का रहस्य बताएगा और वहाँ उसे छुरा घोंप कर मार डाला गया।

उसका पोस्ट मार्टम करने पर पाया गया कि उसका मस्तिष्क सामान्य से छोटे आकार का था और उसके विभिन्न भाग ठीक प्रकार से विकसित नहीं हुए थे। ट्रैडगोल्ड के अनुसार, यह उसके अप्रयोग के कारण था, जो कि उसके प्रारम्भ से ही बंदी होने से उस पर ठूँसा गया था। उसके अनुसार, मस्तिष्क के छोटा होने का कारण यह हो सकता है कि दीर्घ एकान्तवास और अप्रयोग के कारण उसके मस्तिष्क के कोष विकसित नहीं हो पाए, जिससे उसका मस्तिष्क छोटा रह गया। किन्तु ऐसा मान लेने के लिए जैसे ठोस आधार की आवश्यकता है, वह उसने प्रस्तुत नहीं किया, उसके विरुद्ध कुछ ठोस तर्क अवश्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं—प्रथम तो, जब उसके शरीर के अन्य भागों और अंगों का विकास अप्रयोग के बावजूद ठीक हुआ तो केवल मस्तिष्क का विकास ही ठीक क्यों नहीं हुआ? दूसरे, उसकी खोपड़ी की आपेक्षाकृत मोटी थी—जिसका अर्थ हैं कि उसके मस्तिष्क-कोष के अविकसित रहने का कारण कुछ और है, क्योंकि खोपड़ी के मोटा रहने न रहने का मस्तिष्क के प्रयोग-अप्रयोग से कोई संबंध नहीं है। इसलिए यह अधिक तर्क-सम्मत प्रतीत होता हैं कि मस्तिष्क के अविकसित रहने का कारण किसी प्रकार के प्रयोग-अप्रयोग को न समझ कर किसी अन्य कारण की खोज की जाए। इस उदाहरण से परिवृत्ति के महत्व के बारे में चाहे कुछ भी कहा जाए, इससे कम से कम यह प्रमाणित

हो जाता है कि पहले लड़के के भाषा न सीख सकने और सामान्य स्तर से बहुत-अधिक कम रहने का कारण प्रयोग-अप्रयोग या परिवृत्ति नहीं है, क्योंकि दूसरा लड़का पहले से छः वर्ष अधिक आयु से प्रारम्भ करके भी न केवल ठीक भाषा तथा रहने-रहने की ठीक रीति ही सीख सका प्रत्युत् वह सामान्य मनुष्य की तरह कचहरी में कार्य भी करने लग गया। यदि किसी स्वस्थ बच्चे को इसी प्रकार सामाजिक-संपर्क से वंचित रखा जाए तो हम अपने पिछले अध्ययन के आधार पर सहज ही यह कल्पना कर सकते हैं कि वह ठीक और पूरे मनुष्य के समान अपना विकास करेगा। जहाँ तक सामाजिक रीति-नीतियों को जानने का संबंध है, वह उस ज्ञान से अवश्य ही वंचित होगा क्योंकि मनुष्य और शिपेंजी जैसी विकसित जातियां अपने जीवन में बहुत कुछ सीखती हैं, बचपन से ही वे अपनी जातीय प्रवृत्तियों से अभिज्ञ नहीं होती हैं। जैसा कि हम अगले निबंध में देखेंगे, एक जन्मान्ध मनुष्य दृष्टि-शक्ति प्राप्त हो जाने पर जहाँ दृष्टिगत संबंधों (Visual Relations) को महीने तक भी ठीक प्रकार से स्थापित नहीं कर पाता वहाँ चूहा कुछ घंटों में और कृमि बिना एक क्षण के विलंब से ही अपने जातीय स्तर पर दृष्टिगत संबंधों को जान लेता है। स्पष्टतः ही इसका एक मात्र कारण शारीरिक विकास का स्तर है। जब कि कृमि अपने जीवन को एक निर्धारित यंत्र के समान बिताता है, विकसिक प्राणी बहुत कुछ अपनी शिक्षा और इस प्रकार स्वतंत्र इच्छा शक्ति (Free will) के अनुसार बिताते हैं, मनुष्य में विचारणा (Intellect) होने से, इसमें और भी स्वतंत्र हो सकत है क्योंकि वह क्रमशः विकास करता है। किन्तु यह शिक्षा जिस व्यक्ति को प्राप्त होती है उसकी योग्यता और पात्रता का प्रश्न बहुत अधिक महत्व पर्ण है, जिसे हम पीछे इस निबंध में और प्रथम तथा द्वितीय निबंधों में काफी विस्तार से देख आए हैं।

यद्यपि मनुष्य को एक दम उसी स्तर पर शरीर-विज्ञान का विषय नहीं बनाया जा सकता जैसे कृमियों या पक्षियों को बनाया जा सकता है, किन्तु उसके वे सब प्रक्रिया यंत्र और स्रोत तथा नियामक अन्ततः उसी प्रकार शरीर-विज्ञान के विषय हैं जैसे कृमियों के। यदि उसकी बहिर्वाहिनी धमनियां (Centrifugal nerves) ठीक कार्य करना बंद कर दें तो वह देखते हुए भी उसकी अनुभूति नहीं कर सकेगा, सुनते हुए भी उसको प्रक्रियात्मक रूप नहीं दे सकेगा—इत्यादि। उसके मस्तिष्क का केवल एक भाग अपसारित किये जाने पर भी उसकी सम्पूर्ण विचारणा (Intellect) समाप्त की जा सकती है। इसलिये उसमें और अन्य प्राणियों में अन्तर पहिले शरीर-वैज्ञानिक है और फिर उसके परिणाम स्वरूप प्रक्रियात्मक भी। मनुष्य में, बाह्य

प्रभाव को केन्द्र तक ले जाने वाला अन्तर्वाही स्नायु तन्तु वाय(Centripetal Nervous System) और प्रतिक्रिया को बाहर लाकर शरीर को कार्य में प्रवृत्त करने वाला बहिर्वाही स्नायु तंतु वाय(Centrifugal Nervous system)न केवल असंख्य स्नायुओं से बुने असंख्य कोषों वाले केन्द्र(मस्तिष्क) से ही बंधा है, प्रत्युत अपने आप में भी असंख्य उलझी हुई स्नायुओं और कोषों का जाल है, जिससे कोई भी प्रतिक्रिया भीतर अनेक पथों में उलझ कर चुनाव का विषय हो जाती है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के मस्तिष्क में विभाग भी बहुत अधिक हैं जो विभिन्न प्रक्रियाओं के नियंत्रण के लिए विशेष विकास कर चुके हैं (इसका अर्थ केवल यही है कि वे विभिन्न और विशिष्ट प्रक्रियाओं के लिए पृथक पृथक प्रयुक्त होते हैं) जैसा कि प्रथम निबंध के अन्त में दिए मस्तिष्क के चित्र से भी देखा जा सकता है। स्नायुओं के विस्तृत जाल और मस्तिष्क के अधिक योग्य होने से ही मनुष्य में कोई भी प्रतिक्रिया उस प्रकार निर्धारित रूप से क्रियान्वित नहीं होती, और इस लिए मनुष्य प्रत्येक कार्य केवल अभ्यास वश या आन्तरिक प्रेरणा (Internal Stimuli) से नहीं करता। यांत्रिक प्रक्रिया (Reflex action) में और वैचारिक प्रक्रिया में अन्तर जान लेने पर हम यह भी सहज जान लेंगे कि मनुष्य के और पशु के व्यवहार में या प्रवृत्ति और विचारणा में क्या अन्तर है। यांत्रिक प्रक्रिया में केन्द्रानुगामिनी उकसाहट केन्द्र के द्वारा एक दम केन्द्रापगामिनी स्नायुओं में पहुँचा दी जाती है और पेशियों इत्यादि में खिचाँव के द्वारा प्रक्रिया में परिणत हो जाती है। किन्तु मनुष्य के विशाल मस्तिष्क का कार्यालय इस क्रम को बहुत कुछ बदल देता है–उसमें बाहर के स्नायुओं पर होती हुई कोई भी उकसाहट केन्द्रापगामिनी स्नायुओं के कोषों और फिर पेशियों को प्रभावित करने की अपेक्षा पहले बुद्धि या मस्तिष्क तंतुओं में उलझती है और वहाँ व्यक्ति के चेतन चुनाव का विषय होकर केन्द्रापगामिनी स्नायुओं में प्रविष्ट होती है। इस उलझन से कैसे लाभ पहुँचता है ? यह निश्चतरूप से कहना कठिन है, फिर भी यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि मस्तिष्क के अग्र भाग के ज्ञानतंतुओं के कोष जो कि केन्द्रानुगामिनी स्नायुओं के और रोलेंडिक प्रदेश (Rolandic Area) के प्रक्रियात्मक कोषों को मिलाने वाले तंतुओं के मोड़ों पर रहते हैं और बाहर से आने वाली उकसाहट को स्नायुओं के प्रक्रिया यंत्र के किसी भी ऐच्छिक पथ की ओर प्रेरित करते हैं, जिससे प्रतिक्रिया निर्धारित न होकर व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर हो जाती है, जितने अधिक से अधिक

होंगे और जितनी अधिक देर ये प्रतिक्रिया ग्रहण कर प्रक्रिया यंत्रों को संचालित करने वाली स्नायुओं तक पहुँचने में लगाएंगे, उतने ही अधिक और विविध पथ उस प्रतिक्रिया के क्रियान्वित होने के लिये खुल जाएंगे और परिणामतः चुनाव की संभावनाएं बढ़ जाएंगी। क्योंकि प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय अपने प्रत्येक प्रभाव को मष्तिष्क-केन्द्र तक भेजती है, और क्योंकि सभी केन्द्रीय स्नायुतंतु और मीडुला ओब्लोंगांडा (Medulla Oblonganda) अपने प्रतिनिधि इसमें रखते हैं इससे यह एक पूर्ण केन्द्र है, जिसमें उकसाहट किसी भी एक या दूसरे प्रतिक्रियात्मक स्नायुयंत्र के विभाग में चुनाव के अनुसार, न कि पूर्व निर्धारित रूप से स्वतः ही, पहुँचती है। इस प्रकार मष्तिष्क या बुद्धि-यंत्र प्राप्त उकसाहट का विश्लेषण करता है और बाहर जाने वाली उकसाहट के लिये रास्ते का और दिशा का तथा मात्रा का निर्णय करता है, इसलिये मनुष्य का प्रायः कोई भी व्यवहार या कार्य ऐसा नहीं है जो उसके जर्म में प्रविष्ट होकर उस प्रकार आनुवंशिक हो जाए जैसे कृमियों इत्यादि में होता है।

यद्यपि यह मस्तिष्क की केवल यांत्रिक प्रक्रिया का कुछ विवरण है, उसकी सजीव प्रक्रिया (कि कैसे वह किसी प्रक्रिया का चेतन चुनाव करता है) के बारे में अभी तक हम बहुत कम जानते हैं। वैज्ञानिक आगे कभी जान सकेंगे, यह केवल अनुमान की बात है। तो भी हम इन यंत्रों की अन्य प्राणियों से तुलना करके और विभिन्न प्रदेशों को अपसारित कर यह जान सकते हैं कि इसका प्रक्रिया यंत्रों पर कैसा और कितना नियंत्रण है।

इस प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व केवल शारीरिकता से कुछ अधिक कहा जा सकता है, यद्यपि यह 'कुछ अधिक' एक दम इस शारीरिकता पर ही आश्रित है। अब हमें इस 'कुछ अधिक' और व्यक्तित्व का निर्णय करना है, जिसके लिये हमने यह भूमिका तैयार की है।

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग हम प्रायः अहम् (Ego) और आचरण या प्रक्रिया के एक सम्मिश्र के अर्थ में करेंगे। अहम् को जेनेटिक उत्तराधिकार, उससे विकसित शारीरिक प्रकृति और परिवृत्ति (Environment) का एक सम्मिश्र कहा जा सकता है और आचरण व्यक्ति का वह व्यवहार विशेष है जिसे हम इस सब की क्रिया-प्रति-क्रिया की प्रक्रियात्मक योजना कह सकते हैं। हम अहम् को किसी ऐसे अन्तर्मन के रूप में स्वीकार नहीं कर रहे जो किसी प्रकार की अपदार्थिक चेतना है, जैसा कि बर्गसां मानता है

(Matter and Memory), और न फ्रायड के समान कोई ऐसा रहस्य ही जिसकी अनेक तहों (Conscious, Subconscious Unconscious) में व्यक्ति उलझा रहता है। फ्रायड का मन भी वास्तव में एक रहस्यमय अपदार्थिक वस्तु है, जिसे उसने कभी भी स्पष्टतः नहीं बताया। (Lectures by Freud)

मनुष्य की प्रवृत्तियां और शोक, आल्हाद तथा प्रेम द्वेष इत्यादि भावनाएँ या मानसिक परिस्थितियां भी बहुत कुछ मनुष्य के शारीरिक संस्थान और स्नायविक व्यवस्था पर निर्भर करती हैं, क्योंकि, जैसा कि हम पीछे भी कह आए हैं, मनुष्य का स्वभाव और व्यवहार तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण तक बहुत अधिक उसके हार्मंज़ इत्यादि पर और अन्ततः जेंज़ पर अवलंबित है। इसलिए जब हम किसी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हैं, तब हमारे सम्मुख इन स्थितियों के कारण का अथवा स्रोतों का, तथा उपमा रूप में, पशुओं की प्रवृत्ति का भी, एक चित्र रहना आवश्यक है, यद्यपि इन मानसिक प्रवृत्तियों के स्रोतों को कभी भी हम मानसिक अनुभव का विषय नहीं बना सकते। अस्तु, यदि हम इनकी प्रकृति को ठीक तरह से समझ सकें तो हम मानसिक प्रक्रियाओं की प्रकृति को भी ठीक तरह से समझ सकते हैं, क्योंकि यह शारीरिक प्रकृति ही बहुत कुछ मानसिक क्रियाओं का निर्धारण करती हैं।

किन्तु कुछ वैज्ञानिक प्रवृत्ति (Instinct) से एक प्रकार के यांत्रिक अभ्यास को अधिक महत्व देते हैं। ये वैज्ञानिक हमारी साधारण से साधारण और सहज से सहज प्रवृत्ति को भी अभ्यास जन्य मानते हैं। उदाहरणतः होल्ट हमारी हथेली के खुलने तथा बन्द होने तक के व्यापार को अभ्यास जन्य मानता है। उसके अनुसार, शैशव में निरन्तर किसी वस्तु को पकड़ने का प्रयास हमें इस व्यापार में अभ्यस्त कर देता है और इस प्रकार हथेली की खुलने-बन्द होने की उकसाहट (Stimuli) पकड़ने के साथ संबद्ध हो जाती है। इसी प्रकार अन्य प्रक्रियाओं को भी अभ्यास के साथ जोड़ने के कितने ही विद्वानों ने प्रयास किये हैं। किन्तु आज हम जानते हैं कि हमारी प्रक्रियाओं और प्रवृत्तियों का एक बहुत बड़ा भाग हमारी शरीर-रचना से निर्धारित होता है। हाथ वाले उदाहरण में ही पूछा जा सकता है कि पकड़ने वाले में किसी वस्तु को पकड़ने की प्रवृत्ति ही क्यों हुई? फिर, वह पकड़ने में हाथ से ही क्यों प्रवृत्त हुआ?—पैरों या अन्य कहीं से क्यों नहीं?—यह सब आकस्मिक नहीं है। जैसे देखने की प्रवृत्ति होने पर आँखें

प्रवृत्त होती हैं, जैसे काम प्रवृत्ति होने पर तदीय इंद्रियां क्रियाशील होती हैं, और इनमें एक निश्चित और अनिवार्य संबंध है, उसी प्रकार पकड़ने की प्रवृत्ति और हाथ के उसको क्रियान्वित करने में प्रवृत्त होने में भी एक निश्चित कारण-कार्य संबंध है। इसी प्रकार, किसी उत्तेजना या अनुभूति में हम जो पेशियों में एक खिचाव सा अनुभव करते हैं, वह इसलिये नहीं कि हमारी पेशियां इस प्रकार खिचाव के लिए हमारी हँसने, रोने या अनुभव करने इत्यादि की क्रियाओं से अभ्यस्त होने के कारण वैसी होती है और इसलिए इनमें का खिचाव तदीय प्रक्रिया और तदीय अनुभूति को उकसा देता है, प्रत्युत् यह कि यह प्रक्रिया रक्त के रासायनिक रसों और ग्रंथि रसों के संतुलन (Endocrine balance) तक में होने वाले परिवर्तनों के साथ बँधी है। इस प्रकार के परिवर्तन में एड्रेनल (Adrenal) ग्रंथि के मध्य भाग से उत्पन्न होने वाले रस रक्त के प्रवाह में तीव्रता, हृदय की धड़कन में वेग इत्यादि लहर प्रसार (Sympathetic Reaction) को उकसाते हैं और स्वयं भी इनके साथ शरीर पर उसी प्रकार की उकसाहट के लिये प्रभाव डालते हैं। प्रयोगों से सिद्ध हो चुका है कि शरीर में ग्रंथि-रसों की आनुपातिक क्रिया और आवेगात्मक (Emotional) तथा वासनात्मक (Appetitive) अभिव्यक्तियों में निकटतम संबंध है। एक बार प्रयोग के लिए अधिक और कम भीरू चूहे पकड़े गए और पृथक् ही पाले गए तथा उनकी सन्तानोत्पत्ति को उनके अपने अपने गोत्रों तक ही सीमित रखा गया। तीसरी-चौथी पीढ़ी में ही उनकी शल्य-परीक्षा करने पर देखा गया कि अधिक डरपोक चूहों की ऐड्रेनल, थाइराइड, और पिच्यूइटरी इत्यादि ग्रंथियां अन्य चूहों से कहीं अधिक बढ़ी हुई थीं और वे पहले से कहीं अधिक भीरू थे, जब कि दूसरा वर्ग बिल्कुल ठीक था। इस प्रकार आवेग और शरीर-रचना तथा वंशानुक्रम (Heredity) कितने अधिक परस्पराश्रित हैं, हम अनुमान कर सकते हैं। इस 'बुद्धिमान' मनुष्य के लिए भी यही सत्य है। मैं एक व्यक्ति को जानता हूँ, जो काफी समझदार और सज्जन है, किन्तु वह अँधेरे में अकेले जाने से बहुत डरता है, वह कहता है कि मैं जानता हूँ वहाँ कुछ नहीं है, फिर भी नहीं जा सकता। उसकी पत्नी में यह रोग नहीं है, उसके कुछ बच्चे इससे एकदम मुक्त हैं, कुछ उतना ही डरते हैं और कुछ कम डरते हैं। इस प्रकार ये रस-स्राव करने वाली ग्रंथियां (Endocrine glands) एक ओर, रक्त में अपने रस छोड़ कर उसमें रासायनिक परिवर्तन संभव करती हैं और दूसरी ओर केन्द्रीय स्नायुतंतुओं

और अन्य भी स्नायुतंतुओं पर प्रभाव डालती हैं। इस सब के आधार पर यह सुविधा से कहा जा सकता है कि मनुष्य का व्यक्तित्व भी बहुत कुछ उसकी शरीर-रचना पर निर्भर करता है। मनुष्य भी अन्य साधारारण से साधारणतम पशुओं के साथ ही, उन्हीं के स्तर पर खड़े होकर अपने सुख-दुख, भूख-प्यास और अभाव-आकांक्षाएँ इत्यादि अनुभव करता है। जो इसमें अन्य पशुओं से विशेषता है, जिसे कि यहाँ हम देखेंगे, वह भी इसकी शरीर-रचना के कारण ही।

इस विशेषता को एक शब्द में कहा जा सकता है—'निर्वैयक्तिकता' या साधारणीकरण अथवा वस्तु-विशेष की अपेक्षा वस्तु-सामान्य के संबंधों का विधान। ये शब्द ऐसे हैं जिनके बारे में देर से कुछ न कुछ लिखा जाता रहा है और आज तक इस संबंध में एक बहुत बड़ा साहित्य तैयार हो गया है। हम यहाँ इनके विस्तार में न जाकर संक्षेप में इनकी व्याख्या भर करेंगे।

इन तीनों ही शब्दों को यहाँ हम एक अन्य नाम देंगे—विचारणा (Intellect)। विचार या अनुभूति से भिन्न निर्विशिष्ट और Abstract ज्ञान है—ज्ञान को बिलकुल साधारण अर्थ में लेते हुए—नवीन संबंधों को स्थापित करने तथा पूर्व कल्पित संबंधों में नवीन संबंधों को अन्तर्हित करने का गुण हैं। प्यार या दुख का इस विभाग में स्वयं एक अनुभूति के रूप में कोई मूल्य नहीं, इनका मूल्य यहाँ ठीक उसी रूप में है जो मूल्य गणितज्ञ के लिए १–२–३ या ५३ का होता है। इसमें मोहन की एक विशेष अनुभूति और क्रिया, जिसे हम प्यार कहते हैं, केवल सोहन की एक विशेष अनुभूति और क्रिया की एक दूसरी आवृत्ति हैं जो हम में एक ऐसे संबंध ज्ञान को जन्म देती है जो अपनी निर्वैयक्तिकता और निर्विशिष्टता के कारण विशेषों (Particulars) से स्वतंत्र और असंपृक्त है। "मोहन सुशीला से प्यार करता है" इसमें स्वयं मोहन की अनुभूति से कोई संबंध न हो कर, जो अपने आप में एक और अद्वितीय है, केवल सोहन और श्यामा की एक विशेष क्रिया के पुनः होने का संकेत है जिसमें उन विशेष व्यक्तियों या उनकी क्रियाओं से कोई सम्बन्ध न होकर केवल इस और उस का संबंध ज्ञान है। बर्गसां इसे एक दूसरे ढंग से कहता है—"हम अपनी अभिव्यक्ति शब्दों के द्वारा करते हैं और किसी घटना को दैशिक प्रतीकों (Spacial terms) के द्वारा समझते हैं। शब्दों की उपयोगिता केवल उनके निवयक्तिक और निर्विशिष्ट प्रयोगों में ही है। एक शब्द कुत्ता 'एक ही जैसी' सहस्रों घटनाओं का ज्ञान देता है

और इसी से उसका किसी से भी संबंध नहीं है। देश केवल ज्यामितिक बिन्दुओं की समष्टि मात्र है—अर्थात् हम किसी वस्तु को केवल उसकी अवस्थाओं के रूप में देखते और समझते हैं,—मैं कुत्ते का मुँह आदमी के लगा सकता हूँ, इसी प्रकार एक ऐसे तिकोन की कल्पना कर सकता हूँ जिस के कोने २७० या ३६० डिग्री के हों इत्यादि। वास्तव में मनुष्य की प्रत्येक 'नवीन' कल्पना इस तथ्य को प्रमाणित करती है जिससे कि उसके किसी वस्तु को 'जानने' की प्रकृति का भी अनुमान किया जा सकता है। पशु के लिए प्रत्येक वस्तु या घटना अथवा अवस्था एक निश्चित और वैयक्तिक तथा अद्वितीय है, एक पक्षी के लिए एक घोंसला तीन पृथक् दैशिक स्थितियों में तीन पृथक्, भिन्न या अद्वितीय वस्तुएँ हैं। मनुष्य के लिए इससे भिन्न प्रत्येक घोंसला अपनी किसी भी ऐसी विशेषता से रहित केवल एक विचार है, शब्द है। विचारणा की इस प्रकृति को निम्न कविता और भी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत कर सकती है—

Let x denote beauty, Y manners well bred,
z fortune (this last is essential)
Let L stand for love—Our philosopher said
Then L is a function of x, y and z
of the kind that is known as potential.
Now integrate L with respect to dt
(t stands for time persuasion)
Then, between proper limits, tis easy to see
The definite integral marriage must be
(A very concise demonstration).

By Prof. W.J.M. Rankine, quoted by Eddington in the Philosophy of Physical Science from 'Songs and Fables.

इस कविता को हम विचारणा की निर्वैयक्तिक प्रकृति का एक अच्छा उदाहरण कह सकते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि हम अपने या दूसरों के सुख दुख का अनुभव नहीं कर सकते, किन्तु यह एकदम दूसरी बात है, जिसका विचारणा से कोई संबंध नहीं। एक भयपूर्ण चीख़ को सुनकर हम भी भय-भीत हो सकते हैं और यह एक दम उसी स्तर की प्रतिक्रिया है जिस स्तर की पशुओं में होती है, इसे हम सहानुभूतिक ज्ञान (Sympathetic knowledge) भी कह सकते हैं। किन्तु हम इसकी क्षीणतम अनुभूति के बिना भी

इसका स्मरण कर सकते हैं, जब कि पशु में इसका 'स्मरण' केवल उसी प्रकार की अनुभूति के रूप में ही हो सकता है।

अपनी इस विशेषता के कारण मनुष्य जहां अपनी आकांक्षाओं और वासनाओं को पचला देता है और अपने 'वास्तविक' जीवन से अनेक बार अनुपस्थित रहता है वहाँ वह ऐसा एक सामान्य और सामाजिक स्तर बना लेता है जो उसकी अपनी शारीरिक वासनाओं को कुछ दूर तक प्रभावित करता है। यह उसकी एक नवीन परिवृत्ति है जो अन्य प्राणियों के लिए प्रायः नहीं है।

संभवतः यही पचला फ्रायडियन मन का निर्माण करता है, और यही ऐड्लर की हैल्यूसीनेशन (Hallucination) की कल्पना को जन्म देता है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य में कुछ ऐसी वासनाएं भी उत्पन्न हो जाती हैं जिन्हें हम 'सामाजिक' वासना का नाम देंगे, जैसे अधिकार भावना और यशोलिप्सा इत्यादि। ऐड्लर और जुंग इत्यादि वैज्ञानिक (समाज-वैज्ञानिक) इन्हें इतना महत्व देते हैं कि इन्हें ही मानव-मनकी एक मात्र प्रेरक वृत्ति मानते हैं, जैसे फ्रायड काम को मानता है। इस संबंध में हम अन्यत्र लिख आये हैं यहाँ हमें केवल यही कहना है, कि यद्यपि हम इन वृत्तियों को इतनी प्रधानता नहीं देते, किन्तु ये महत्वपूर्ण हैं, इसमें संदेह नहीं। इतना महत्व न देने का कारण हमारे पिछले संपूर्ण अध्ययन से ही देखा जा सकता है। किन्तु जो भी महत्व इसका है, उससे जहां एक ओर समाज का व्यक्ति के मानसिक निर्माण में महत्व ज्ञात होता है, वहाँ दूसरी ओर व्यक्ति का सदैव समाज से विद्रोही होना भी प्रमाणित होता है।

वास्तव में ये सामाजिक वासनाएं अन्ततः व्यक्ति की उन शारीरिक वासनाओं की तृप्ति की पूरक भर हैं जिनका अस्तित्व उसे सदैव अपनी तृप्ति के लिये पुकारता रहता है। संभवतः समाज का निर्माण ही मनुष्य में उसके इस स्वार्थ का परिचायक है, अथवा कम से कम आज उसके लिए समाज का यही महत्व है। फ्रायड जिस प्रवृत्ति (Instinct) को वासना-तृप्ति के प्रयास (ढंग) की प्रवृत्ति कहता है, वही व्यक्ति में समाज के प्रति उसके दृष्टिकोण या व्यवहार को बनाती है। इसलिये व्यक्ति का दृष्टि कोण समाज की ओर सदैव व्यक्तिगत स्वार्थों से

---

*व्यष्टि और समष्टि-प्रतीक--फर्वरी-मार्च १९५२।

ही निर्धारित हो सकता है। यद्यपि इससे समाज और व्यक्ति के स्वार्थों में निरन्तर चलने वाले अन्तर्विरोध का समर्थन होता है, क्योंकि समाज का अस्तित्व व्यक्ति के आत्म समपर्ण से ही सुरक्षित रह सकता है जब कि व्यक्ति समाज को केवल व्यक्तित्व-साधना के लिए ही स्वीकार करता है। किन्तु यह एक अनिवार्य सत्य है जिसका प्रमाण प्रारम्भ से आजतक व्यक्ति और समाज में चला आता हुआ संघर्ष स्वयं है।१

किन्तु, जिस किसी भी तरह से हो, यह तो स्वीकार करना पड़ेगा ही कि व्यक्ति पर 'सामाजिक वासनाएं' अपनी पूर्ति के लिए निरन्तर दबाव डालती रहती हैं; दूसरे, उसकी शारीरिक वासनाएं भी केवल समाज में ही ठीक तरह से सन्तुष्ट हो सकती हैं, फिर चाहे वे किसी तरह से क्यों न हों, इस लिए उसके व्यक्तित्व निर्माण में भी समाज का बहुत बड़ा महत्त्व है—यह महत्व प्रक्रियात्मक योजना की दृष्टि से भी है और इस दृष्टि से भी कि विचारों का सामाजिक सम्मिश्र उस पर शैशव से हावी रहती हैं। इसके अतिरिक्त, समाज भौतिक परिवृत्ति का भी निर्माण करता है-एक अर्थाभाव से पीड़ित व्यक्ति के लिए यह बड़ा कठिन है कि वह उतना ही अपनी अन्तर्निहित योग्यताओं (Capacities) का विकास कर सके जितना संपन्न व्यक्ति कर सकता है। आईस्टीन यदि किसी भारतीय अछूत के घर उत्पन्न होता और ग्रामवृद्ध उसको पढ़ता देखकर उसपर आक्रमण कर देते तो वह कभी भी आईंस्टीन नहीं बन सकता था। इसी प्रकार व्यक्ति पर सामाजिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है। डारविन यदि सौ वर्ष भी पहले उत्पन्न हुआ होता तो भी संभव था कि वह बिकासवाद के सिद्धान्त की खोज न कर पाता।

किन्तु डारविन की विकास वाद की खोज या आईंस्टीन का सापेक्षता वाद के सिद्धान्त का आविष्कार उनके व्यक्तित्व से कोई बड़ा सम्बन्ध नहीं रखती, इस लिए किसी भी समाज में उपयुक्त परिस्थितियाँ मिलने पर आईंस्टीन या डारविन वही होते जो वे अब हैं, उनका वैसा व्यक्तित्व होना उनके जेंज़, जेंज़ के विकास और उपयुक्त सामाजिक परिस्थियों के त्रित्व पर निर्भर करता है यद्यपि इनके महत्व का अनुपात काफी भिन्न-भिन्न है। सभी जानते हैं कि अनेक व्यक्ति निर्धन परिवारों में जन्म लेकर भी अपने लिए परिस्थितियों का स्वयं निर्माण कर लेते हैं, यद्यपि इस के लिए काफी अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है।

१व्यक्ति और समाज-अजन्ता, सितम्बर १९५६।

REFERENCES

1. *Dobzhansky* T. .. Genetics and Origin of Species.
2. *Goldschmidt* .. Phenogenetics (New York.)
3. *Shull* .. Heredity. (New York)
4. *Sinnot and Dunn* .. Principles of Genetics (New York)
5. *Sympson* .. Meaning of Evolution (New York)

ः—प्रवृत्ति की प्रकृति

पिछले निबन्धों में हमने जो कुछ भी कहा, उसे इस निबन्ध की भूमिका कहा जा सकता है, क्योंकि हमने वहाँ शरीर के उन व्यवहारों के कारणों को देखने का प्रयास किया है जो हमें प्राणी के 'मन' के अस्तित्व का बोध कराते हैं। इसके साथ ही, दूसरे निबन्धों में हमने उन व्यवहारों की प्रकृति के विषय में भी किसी निर्णय पर पहुँचने का प्रयास किया है, जो कि अत्य-धिक विवादास्पद हैं। इस निबन्ध में हम प्राणी-व्यवहार का केवल समान्य विवरण मात्र देंगे और ऐसे व्यवहारों या प्रवृत्तियों को देखेंगे जिन्हें हमने या तो पिछले निबन्धों में देखा नहीं और या उन निबन्धों के बताए कारणों पर पूरे नहीं उतरते। कुछ व्यवहार तो ऐसे हैं जो एक दम अकारण और विचित्र प्रतीत होते हैं, कुछ व्यवहार ऐसे भी हैं जो मनुष्य की शब्दावली में केवल समझदारी पूर्ण ही कहे जा सकते हैं, किन्तु उन प्राणियों की अन्य प्रवृत्तियों का अध्ययन सिद्ध करता है कि वे व्यवहार भी उसी प्रकार रिजिड और प्रवृत्यात्मक हैं जिस प्रकार ऐसे अन्य व्या- पार होते हैं।

प्राणी-व्यवहार या प्रक्रिया के हम तीन भेद कर सकते हैं—प्रवृत्यात्मक अभ्यास-जन्य और विचारणात्मक (Intellectual or In-telligent)। इन तीनों में भेद करने से पूर्व अथवा इनकी परिभाषा देने से पूर्व हम इनका एक एक उदाहरण देगें—पुँस्कोकिल का वसन्त ऋतु के अंतिम दिनों में काम पीड़ा से व्याकुल होकर गाना अथवा मैंटिस (Praying Mantice) का मैथुन के पश्चात् मैथुन-साथी (नर) को खा जाना प्रवृत्या-त्मक व्यवहार कहा जा सकता है; घोड़े का टांगे में जुत कर आखें बन्द होने पर भी ठीक रास्तों पर चलते जाना अभ्यास जन्य प्रक्रिया है जब कि बन्दर और शिंपेंजी का भोज्य पदार्थ के अधिक ऊंचे स्थल पर पड़े होने पर किसी सहायक वस्तु को नीचे रख कर अथवा अपने साथी के कन्धों पर चढ़ कर ऊपर कूदना विचारणात्मक व्यवहार कहा जा सकता है। स्पष्टतः इन तीनों प्रकार के व्यवहारों में काफी बड़ा अन्तर है। विशेषतः पहले और तीसरे तथा दूसरे और तीसरे में। इस भेद को हम कुछ इस प्रकार रख सकते हैं—जब कि प्रवृत्यात्मक व्यवहार सहज है वहां अभ्यास जन्य व्यवहार अभ्यास के पश्चात् सहज बना लिया जाता है। इन दोनों में प्राणी प्रायः मशीन के समान कार्य

करता है। इसे इस प्रकार भी रखा जा सकता है कि यह व्यवहार केवल क्रिया रूप में ही जन्म लेता है, उससे पूर्व प्राणी को उसका कुछ अनुभव नहीं होता जबकि तीसरे में प्राणी क्रिया को क्रियान्वित करने से पूर्व उसकी रूप रेखा अथवा योजना बनाता है, अर्थात्, विचारणात्मक क्रिया पहले मानसिक रूप में अथवा एब्स्ट्रेक्ट रूप में जन्म लेती है और तब क्रिया रूप में परिणत की जाती है। इस प्रकार विचारणात्मक क्रिया एक सूक्ष्म विचारणा का अनुवाद मात्र होती है। मनुष्य में यह विचारणा इतनी अधिक विकसित अवस्था में पहुंच चुकी है कि उसका क्रिया से आज अनिवार्य सम्बन्ध भी नहीं रहा—मनुष्य सम्पूर्ण संसार भर को मानसिक रूप में रख सकता है, किसी भी अनस्तित्व की कल्पना कर सकता है, कोई भी योजना बना सकता है और उसे क्रियान्वित होने से रोक सकता है। जैसे—वह गधे के सिर वाले मनुष्य की कल्पना कर सकता है, एक विशाल महल को एक धान्य कण में कल्पित कर सकता है, वह सम चतुर्भज गोल की या २७° अथवा ३६° डिग्री के त्रिकोण की कल्पना भी कर सकता है और देवदत्त में गधे का बिल्कुल भी विचार किए बिना गधेपन का आरोप कर सकता है, इत्यादि।

प्रवृत्ति को सहज और यांत्रिक प्रक्रिया कहने से हमारा अभिप्राय केवल यही है कि प्रवृत्ति, चाहे उसे केवल शरीर-रचना की भौतिक और रासायनिक परिस्थितियों का परिणाम कहा जाए, चाहे केवल बाह्य विषयों के साथ उसके प्रक्रियात्मक संबन्ध का और चाहे किसी सजीव प्रेरणा का, प्राणी को विशेष भौतिक-रासायनिक और बाह्य परिवृत्ति सम्बन्धी परिस्थितियाँ यन्त्र के समान विशेष क्रिया—व्यापार में नियोजित करती हैं। ल्लायड मोर्गन प्रवृत्ति की परिभाषा करते हुए कहता है—"प्रवृत्ति हम कुछ ऐसी प्रक्रिया को कह सकते हैं जो अपने प्रथम प्रवर्तन में, पिछले सभी अनुभवों से स्वतन्त्र हो। जो व्यक्ति के लाभ और जाति की सुरक्षा में सहायक हो सकती हो, जिसका आविर्भाव जाति के सभी सदस्यों के समान प्रयास द्वारा हुआ हो और जो अनुभव के आधार पर संशोधित होती रहती हो।" स्पष्टतः ही यह परिभाषा बहुत कुछ अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोनों ही दोषों से दूषित है। प्रवृत्ति को पिछले अनुभवों से स्वतंत्र कहने का क्या अभिप्राय है जब कि वह स्वयं ही कहता है कि 'जो अनुमव के आधार पर संशोधित होती रहती हो?' यद्यपि यह एक सीमा तक उन प्रवृत्तियों के लिए ठीक भी है जो अभ्यास से अपनी पूर्णता के लिए सहायता लेती हैं जैसे चलना-उड़ना इत्यादि, किन्तु-यहाँ शब्द संशोधन है, जो कि प्रवृत्ति में कम या अधिक लचक और परिवर्तन की संभावना को बल देता है और इस प्रकार प्रवृत्ति और अनुभव

को स्वतन्त्र नहीं रहने देता। अथवा, कम से कम यह स्वीकार करता है कि प्रवृत्ति को समझदारी के समान ही बदला भी जा सकता है। इसके अतिरिक्त जाति के लाभ या सुरक्षा के लिए होना भी प्रवृत्ति पर कोई शर्त नहीं ह, ऐसी कितनी ही प्रवृत्तियों के उदाहरण हम दूसरे निवन्ध में दे आए हैं जो जाति या व्यक्ति के लिये अपकारक हैं। प्रवृत्ति सभी व्यक्तियों में यद्यपि समान रूप से पाई जाती है, और यह बात उसकी यांत्रिकता को और भी अधिक प्रमाणित करती है; किन्तु प्रवृत्ति के विकास का जातीय स्तर पर होना प्रवृत्ति का कारण नहीं है, प्रवृत्ति तो केवल व्यक्ति से सम्बन्ध रखती है, यद्यपि वह संपूर्ण जाति में समान रूपसे और निरपवाद रूप से पाई जाती है। जैसे, प्रवास की प्रवृत्ति कोयल की संपूर्ण जाति में पाई जाती है, किन्तु यदि किसी भी व्यक्ति की परिवृत्ति में तापमान और प्रकाश को बदल दिया जाय तो वह प्रवास नहीं करेगा; इसी प्रकार, यदि किसी पक्षी की परिवृत्ति में तापमान और हार्मंज को बदल दिया जाय तो वह घोंसला नहीं बनाएगा। इस प्रकार प्रवृत्ति को एक ऐसा जातीय-व्यापार कहा जा सकता है जो व्यक्तिगत स्तर पर विकसित होता है। किन्तु हम मोर्गन के इस कथन को एक दम गलत नहीं समझते, क्योंकि यदि प्रवृत्ति व्यक्ति की शरीर रचना मे निहित है तो जेनिक आदान-प्रदान के द्वारा वह जातीय संपत्ति भी हो जाती है। किन्तु हमें प्रवृत्ति की लैश्ली द्वारा की गई परिभाषा अधिक उपयुक्त जान पड़ती है; वह रीफ्लेक्स और प्रवृति में भेद करते हुए कहता है—"रीफ्लेक्स सहज रूप से शरीर की अन्तः प्रकृति से निर्धारित ऐसा व्यवहार है जिसका नियमन ज्ञान तंतुओं का एक विशेष विभाग करता है और जो पेशियों के खिचाव के रूप में पहले से ही निर्धारित किया जा सकता है। प्रवृत्यात्मक व्यवहार रीफ्लेक्स से कुछ अधिक है, यद्यपि इसमें रीफ्लेक्स-प्रक्रिया भी अन्तर्निहित रहती है किन्तु इसे सदैव किसी विशेष उकसाहट से नियमित नहीं कहा जा सकता, प्रत्युत इसे बाह्य आवश्यकता (Perceptual lack) अथवा अभावानुभूति के द्वारा अनुप्राणित कहा जा सकता है। प्रवृत्यात्मक व्यवहार पेशियों के खिंचाव का एक पूर्व निर्धारित अनुक्रम मात्र नहीं हैं, किन्तु यह एक पूर्व-ज्ञात (Predictable) व्यापार है।" किन्तु यह परिभाषा भी पूर्ण नहीं है, क्यों कि यह केवल उन प्रवृत्तियों को प्रवृत्तियाँ स्वीकार करती है जो बाह्य उकसाहट अथवा केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय में उकसाहट से उत्पन्न होती है; किन्तु, जैसा कि हम अपने प्रथम निबन्ध में देख आए हैं, शरीर की रासायनिक परिस्थितियाँ भी प्रवृत्ति को उत्पन्न करने में बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण कारण हैं। तो भी लैश्ली की परिभाषा मोर्गन के समान अस्पष्ट नहीं है।

हम यहां प्रवृति की परिभाषा बनाने की उलझन में पड़ना नहीं चाहत, प्रवृत्ति के कारणों के संबन्ध में हम पीछे काफी विस्तार से देख ही आए हैं, यहां हम केवल लैश्ली की परिभाषा को उनके साथ और जोड़ लेते हैं। इन कारणों के आधार पर संभवत: सभी प्रवृत्तियों की, अथवा कम से कम अधिकांश प्रवृत्तियों की व्याख्या की जा सकता है। किन्तु हम यहाँ सामान्यत: विवरण ही अधिक देना चाहेंगे।

प्रवृत्ति की संभवत: सबसे बड़ी विशेषता हैं उसमें लचक का अभाव और सहजता (ऑटोमेटिज्म)जिससे अनेक बार वह आश्चर्य जनक रूप से कौशल पूर्ण प्रतीत होती है, किन्तु वह कौशल या चातुर्य ने होकर केवल एक यांत्रिक व्यापार है जो या तो प्राणी की शरीर-रचना की प्रेरणा है अथवा ऐसा प्रक्रियात्मक-व्यापार जिसका कारण ज्ञात नहीं। अनेक वैज्ञानिक ऐसी प्रक्रियाओं या प्रवृतिओं को भी प्रवृत्ति रूप में ही वंशानुक्रम में प्राप्त मान लेते ह, उदाहरणत: काडाव (Cadow) पक्षियों की प्रवास की प्रवृत्ति को वंशानुक्रम में प्राप्त गृह की मधुर स्मृति समझता है। किन्तु ऐसी 'मधुर' कल्पनाओं में हम यहाँ व्यर्थ ही नहीं उलझेंगे, जो या तो प्रयोग सम्म नहीं हैं अथवा जो अधिक रहस्यमय हैं। संभवत: प्रवृत्ति की परिभाषा जानने का सबसे अच्छा उपाय यही है कि विभिन्न प्रवृत्तियों का अध्ययन किया जाए। इसके लिए हम, यद्यपि कम प्राणियों में प्राप्य किन्तु टिपिकल प्रवृत्ति, कृमियों के समाज-निर्माण को पहले लेंगे।

जैसा कि हम सब जानते हैं, मधुमक्खियाँ एक छत्ते में इकट्ठी रहती हैं। चींटियाँ भी एक बस्ती में इकट्ठी ही रहती है; इनका इकट्ठा ही भोजनालय होता है, इकट्ठा ही भंडार-घर होता है और इकट्ठ ही बच्चे होते हैं, इस प्रकार इनमें एक व्यक्तिगत स्वार्थ से भिन्न सामूहिक स्वार्थ भी है, जिसे कि हम समाज निर्माण का नाम देते हैं। यह समाज कैसे और क्यों अस्तित्व में आया, इस बारे में हम कुछ भी अनुमान करने में असमर्थ हैं।

एक कृमि–समष्टि एक प्रवृत्यात्मक प्रक्रिया है, इससे उसमें एक पूर्ण रिजिडिटी है। इस समाज की सामूहिकता अथवा सामाजिकता पूर्ण है। हम उसे गुणित-इकाई (मल्टीपलयूनिटी) भी कह सकते हैं जिसमें व्यक्ति सामाजिक इकाई का केवल अंश मात्र है, स्वत: वह कुछ भी भिन्न नहीं है। अथवा इस समष्टि को एक ऐसी सावयव इकाई (ऑर्गेनिक यूनिटी) कहा जा सकता है, जिसमें व्यक्ति एक ऐसा अंग मात्र है जो एक सजीव प्रेरणा से अथवा एक ऐसे नियम की अनिवार्य बाध्यता से, जो उसके स्नायुतंतुवाय के निर्माण में ही निहित हैं, एक निश्चित व्यापार को

क्रियान्वित करने के लिए एक साधन मात्र है। इन समष्टियों में जनन-व्यापार भी या तो एक ही व्यक्ति करता है, अथवा कुछ थोड़े से निश्चित व्यक्ति ही करते हैं, और शेष उस छत्ते की सामाजिक और आर्थिक आवश्यकताओं (जैसे भोजन इकट्ठा करना, बच्चों को पालना और छत्ते की रक्षा करना इत्यादि) को बड़े सुचारु रूप से पूरा करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे ये सब व्यक्ति एक निश्चित और अविभाज्य प्रक्रिया-योजना की पूर्ति के साधन भर हों। एक ही की सन्तान होने से सब मक्खियों की एकता और भी पूर्ण हो जाती है। यदि इस समष्टि की उपमा एक संगतरे से दी जाए, जिसके विभिन्न भागों को उसका छिलका एक बनाए हुए हैं तो अनुचित न होगा, क्योंकि मक्खियों के इस बहुत्व पर भी एक अदृश्य छिलका विद्यमान रहता है। उनका अपने छत्ते के निर्माण की प्रक्रिया का रूप बड़े रोचक ढंग से इस पहलू को सामने लायेगा। यह तो सभी जानते हैं कि मधुमक्खियों का छत्ता कितना कलापूर्ण होता है। डारविन इसका वर्णन करते हुए कहता है "यह एक ध्यान देने की बात है कि एक चतुर कारीगर अपने हथियारों की पूर्ण कलात्मकता और माप तौल की पूर्ण सम्यक्ता के साथ भी इस प्रकार का सन्तुलित और सुघड़ मोम का छत्ता बना सकना बहुत कठिन कार्य पायेगा, किन्तु उसे अँधेरे में कार्य करती हुई विभिन्न मक्खियों का एक झुण्ड बना लेता है। डारविन ने परीक्षण के रूप में एक मोम का टुकड़ा छत्ते में फेंका और थोड़ी देर बाद पाया कि उसको दोनों ओर से और सभी कोठरियों में बराबर काटा गया था, उसकी प्रत्येक कोठरी एक जैसी थी।" डारविन आगे कहता है—इस विषय में कुछ भी अनुमान करना उलझन को और भी बढ़ाने जैसे प्रतीत होता है कि कैसे ये छत्ते बनाए जाते हैं, कैसे बहुत सी मक्खियां एक साथ और एक ही समय में एक पूर्ण योजना से इस प्रकार कार्य करती हैं।

एक मक्खी एक कोठरी में थोड़ी देर कार्य करके दूसरी में चली जाती है और फिर उसके स्थान पर दूसरी आ जाती है और इस प्रकार बीसियों मक्खियां एक ही छत्ते को पूरा करने में भाग लेती हैं, मानों सब एक ही प्रक्रिया-योजना की विभिन्न पहलू भर हों। इससे स्पष्ट हैं कि मधुमक्खियों की समष्टि में व्यष्टियां केवल एक खंड या अंग मात्र हैं। डारविन इसका कारण बताने का प्रयास करते हुए कहता है—"क्यों कि प्राकृतिक चुनाव (Natural selection) व्यष्टि के जीवन की परिस्थिति के अनुसार व्यष्टि के लाभ की दृष्टि से धीरे धीरे एकत्रित या घनीभूत होते हुए प्रभाव के द्वारा आकृति या प्रवृति के क्रमिक परिवर्तन में होता है, इसलिए स्वभावत:

ही यह पूछा जा सकता है कि कैसे एक दीर्घ कालिक और धीरे धीरे होता हुआ कोष-निर्माण की प्रवृत्ति का यह विकास सभी व्यष्टियों में वह कलात्मक पूर्णता प्राप्त कर सका जो हम अब इनमें पाते हैं, और कैसे यह इनके पूर्वजों में सभी व्यष्टियों के लिए इस प्रकार लाभ दायक रहा होगा ?" यहाँ डारविन प्राकृतिक चुनाव और आत्म सुरक्षा को इसका कारण बताता है, किन्तु पहला जहां केवल नकारात्मक पहलू है वहाँ दूसरी ऐसी कल्पना जिस के लिए कोई प्रमाण नहीं है। प्राकृतिक चुनाव हमें यह नहीं बताता कि सामाजिक प्रवृत्ति का विकास क्यों हुआ, इससे केवल यह ज्ञात होता है कि इस प्रवृत्ति से रहित व्यक्ति या जातियां विनष्ट हो सकती हैं ; और इसके लिए भी कोई प्रमाण नहीं है।

अस्तु, मधुमक्खियों के समान ही चींटियों की बस्ती भी बहुत अधिक सुनियोजित होती है। इस समष्टि में ऐसे विचित्र व्यवहार भी पाए जाते हैं जिन्हें बहुत से वैज्ञानिक बुद्धिमत्ता पूर्ण अथवा युक्त-युक्त व्यवहार समझते रहे, किन्तु ऐसी किसी संभावना की गुंजाइस वास्तव में नहीं है। चींटी-बस्ती में श्रम-विभाजन मधुमक्खियों से अधिक विविधता पूर्ण और बस्ती की सुचारुता के लिए अधिक लाभ-कर पाया जाता है। इनमें भोजन की खोज में प्रयाण करने वाले सैनिक दस्ते, बस्ती की रक्षा के लिए सैनिक दस्ते, बच्चों तथा रानियों के पालन के लिए नर्सें, सर्दार, कोषाध्यक्ष इत्यादि सभी पृथक् पृथक् होते हैं। सैनिक चींटियों का एक दस्ता सदैव द्वार पर सावधान रहता है कि कहीं शत्रु उन पर अचानक आक्रमण न कर दे। ये चींटियाँ अनेक बार लाखों की संख्या में भोजन की खोज में अपने सर्दारों की अध्यक्षता में बाहर निकलती हैं और उनके तैयार किए रास्ते पर चलती हैं। प्रायः कभी ऐसा नहीं देखा गया कि ये चीटियाँ अपने नेताओं की आज्ञा का भंग करें। एक बार निकारगा में मिस्टर बेल्ट ने एक बड़ा विचित्र दृष्य देखा। चींटियों की एक बहुत बड़ी सेना गाड़ी की लाइन पार कर रही थी। जब भी गाड़ी निकलती, हज़ारों चीटियां कुचली जातीं। थोड़ी देर बाद बैल्ट ने देखा कि उस स्थान पर एक भी चींटी न थी, यह सेना अब लाइन के नीचे से रास्ता बना कर निकल रही थी। बेल्ट ने इस रास्ते को बन्द करा दिया। इस पर चींटियों के सर्दारों ने खतरा अनुभव किया और एक दम ठहर जाने की आज्ञा सभी पंक्तियों में दे दी गई। चींटियां घंटों उसी अवस्था में खड़ी नवीन आज्ञा की तब तक प्रतीक्षा करती रहीं जब तक कि नया रास्ता तैयार नहीं हो गया और आगे बढ़ने की आज्ञा नहीं मिल गई। इसी प्रकार की सुचारुता इनकी बस्तियों की व्यवस्था में भी

पाई जाती है। जब कभी कोई खतरा उत्पन्न हो जाय तब प्रहरी–चींटी प्रत्येक अन्दर आने वाली चींटी की तलाशी ले कर उसे अन्दर जाने देती है, जिससे किसी शत्रु-बस्ती की चींटी अन्दर आकर अशान्ति उत्पन्न न कर दे। इसी प्रकार बच्चों के निवास, भोजन इत्यादि का प्रबन्ध भी बड़ा समझदारी पूर्ण इन बस्तियों में पाया जाता है। (Cheesman)

इस प्रकार के व्यवहार स्पष्टतः समझदारी पूर्ण या विचारणात्मक प्रतीत होते हैं, क्योंकि द्वार पर आने जाने वाले की जांच का अर्थ है कि शत्रु अपने कुछ सदस्यों को सिखा कर उस बस्ती में भेजते हैं और वे सदस्य बड़ी चतुराई से धोखा दे कर अन्दर घुसने का प्रयास करते हैं। किन्तु ये केवल कल्पनाएँ हैं और इसका कोई प्रमाण नहीं है कि ऐसा होता ही है। आज अधिकतर वैज्ञानिक चींटियों में किसी बुद्धिमत्ता या समझदारी की बात स्वीकार नहीं करते।

अस्तु, मधुमक्खियों में यह श्रम विभाजन इतना नहीं पाया जाता, इनमें केवल एक रानी होती है, शेष सभी मजदूर होती हैं और सभी सब कार्यों को करती हैं। मधु-संचय के लिए जाते हुए ये मक्खियाँ एक विशेष व्यवहार करती हैं। जब वे छत्ते में खाली बैठी हुई शहद इकट्ठा करने के लिये बाहर निकलने की प्रतीक्षा करती हैं तब एक मक्खी अपने नृत्य से उन्हें कार्य पर चलने के लिए संदेश देती है। तब वे सब एक निश्चित दिशा में निश्चित दूरी तक जाती हैं, जिसका संकेत नर्तकी अपने नृत्य द्वारा करती हैं, और उन फूलों की खोज करती हैं जिनकी सुगंध नर्तकी अपने साथ लाई होती है। वे शहद चूसती हैं और उन फूलों के स्थान का अध्ययन करके घर लौट आती हैं। (Tinbergen) चीज़मैन के अनुसार चींटियां अधिक समझदार होती हैं, जब कि मधु-मक्खियों की समझदारी प्रवृत्ति तक ही सीमित हैं। उसके अनुसार, चींटियों की कुछ जातियों का मेरूदण्ड काफी विकसित है जिससे उनमें वितर्क की संभावना की जा सकती है। वह इसका श्रेय बहुत कुछ दास प्रथा को भी देता है। कुछ चींटियों की जातियाँ तो ऐसी हैं जो स्वयं भी कार्य करती हैं और दास भी रखती हैं, किन्तु बहुत सी ऐसी जातियाँ भी हैं जो पूर्णतः अपने दासों पर ही आश्रित हैं, यहाँ तक कि ये अपना खाना तक स्वयं नहीं खा सकतीं। उनके दास उनके लिए न केवल भोजन-संग्रह करके ही लाते हैं, वे चबाते भी स्वयं ही हैं और उसे पचने योग्य बनाकर उन के मुँह में डाल देते हैं। (Darwin) चीज़मैन इन जातियों की चींटियों को सबसे अधिक वितर्क शक्ति से युक्त समझता है, क्योंकि, उसके अनुसार, "इन्हें कोई कार्य विशेष नहीं करना होता, सिवाय किसी अन्य को

दास बनाने के, इसलिए ये अधिक बौद्धिक विकास कर सकती हैं"। ऐसा प्रतीत होता है, चीजमैन ने अपनी कल्पना के बल पर ही यह सब कुछ कह डाला है, नहीं तो इसमें कोई भी संगति और युक्ति-युक्तता नहीं है। जैवी क्षेत्र (biological field) में जिस प्राणी को जितनी अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा उसमें, अपनी शारीरिक योग्यता के अनुसार, उतनी ही अधिक 'समझदारी' होगी। जहाँ तक चींटियों का सम्बन्ध है, इनमें शारीरिक योग्यता इतनी कम होती है कि किसी प्रकार की समझदारी की कल्पना व्यर्थ है। उदाहरणतः दासों पर जीवित रहने वाली ये चींटियाँ ही इतनी अधिक रिजिड होती हैं कि सामने भोजन पड़ा होने पर भी स्वयं खा नहीं सकतीं जब तक कि उनके दास चबाकर उनके मुंह में न डाल दें। यहाँ तक कि वे भूखी तक मर जाती हैं चाहे उनका भोजन उनके सामने ही क्यों न पड़ा हो। यह नहीं कि वे स्वयं खा नहीं सकतीं, प्रत्युत यह कि एक प्रवृत्ति से निर्धारित, वे नहीं खातीं। इसलिए स्वयं दास प्रथा ही उनमें समझदारी का खंडन करती है।

ये सामाजिक कृमि पूर्णतः अपने समाज के लिए ही होते हैं, उससे भिन्न इनके अस्तित्व की कल्पना व्यर्थ है। इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि इनकी यह प्रक्रिया शरीर रचना में निहित है, इसीसे इनमें समाज भी उतना ही आवश्यक है जितना भूख लगने पर भोजन। ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह प्रवृत्ति उनके स्नायुतंतुवाय में ही निहित हो, क्योंकि चींटी यदि किसी प्रकार पृथक् भी पाली जाए तो भी वह अपनी सन्तान के साथ अथवा अन्य चींटियों के साथ समाज बना लेगी और उसकी बस्ती का प्रबन्ध ठीक ही होगा। वास्तव में कृमियों की किसी भी प्रक्रिया में पूर्व कल्पना निहित नहीं होती बल्कि एक निश्चित आन्तरिक धकेल या बाह्य उकसाहट की बाध्यता से ये कृमि एक निर्धारित प्रक्रिया करते हैं। सामाजिकता या समष्टित्व को भी यहाँ इसी प्रकार अन्तःप्रेरणा से ही निर्धारित कहा जा सकता है, और कुछ नहीं।

इन सभी छत्तों और बस्तियों में एक छोटे से राज्य परिवार को छोड़ कर शेष सभी केवल मजदूर या दास होते हैं। ये मजदूर उसी जाति के अपने ही सदस्य होते हैं जिसके छत्ते में वे होते हैं, दासों के समान अन्य जाति के नहीं होते। ये मजदूर सब के सब, निरपवाद रूप से बांझ मादाएं होती हैं जिन्हें केवल छत्ते या बस्ती के लाभ के लिए ही बांझ बनाया गया होता है। यदि इन्हें बड़ी आयु में भी राज्य परिवार का भोजन दिया जाय तो भी ये गर्भधारण कर सकती हैं। इस प्रकार ये केवल भोजन की भिन्नता से ही

राज्य परिवार से भिन्न की जाती हैं। किन्तु कुछ चींटियाँ, जैसे ड्राइवर और एनोंम्ना दो भिन्न प्रकार की चींटियों को उत्पन्न करती हैं जो कि सामाजिक आवश्यक्ताओं को और भी कुशलता से पूरा कर सकती हैं। इनमें एक सन्तान दूसरी से चार से पाँच गुणा तक आकार में बड़ी होती है। यद्यपि इस जेनेटिक योग्यता का कारण सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति नहीं है, किन्तु यह योग्यता उन्हें अधिक कुशलता पूर्ण समाज निर्माण में समर्थ अवश्य करती है।

ये सब समाज व्यवस्थाएं बहुत विचित्र हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे इनमें कुछ या सभी केवल शिशु-पालन के लिए ही हों। जैसे मधुमक्खियों की सभी जातियाँ मैथुन ऋतु के पश्चात् या तो नरों को मार ही डालती हैं या उन्हें छत्ते से बाहर धकेल देती हैं। सम्भवत: इसका 'उद्देश्य' भोजन की खपत को कम करना है क्योंकि नर कोई भी कार्य छत्ते के लिए या भोजन संग्रह के लिए नहीं करते, वे केवल खाली बैठे खाते हैं। इसी प्रकार मधुमक्खियों की कुछ जातियां अंडों से बच्चे निकल आने पर, उनके लिए आवश्यक भोजन इत्यादि जुटा कर छत्ते से निकल जाती हैं और आत्म हत्या कर लेती हैं—प्राय: अनशन करके।

जैसा कि हम पीछे भी कह आए हैं, इन बस्तियों का जीवन पूर्णत: मज़दूरों के श्रम पर अश्रित है। रानी मक्खी केवल सन्तानोत्पत्ति ही करती है, उसका बस्ती की व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप या भाग नहीं होता। कुछ जातियों में तो रानी कोठरी में कैद तक होती है, वह उसमें से निकल ही नहीं सकती। किन्तु बंबल जाति इसकी अपवाद है। यद्यपि इस जाति में भी एक छत्ते में एक ही रानी होती है किन्तु उनसे भिन्न यह रानी छत्ते के प्रबन्ध का नियंत्रण स्वयं करती है।

कृमियों में दास वृत्ति संभवत: जन्म जात नहीं है, ये दास प्राय: पकड़े जाते हैं और इस वृत्ति के लिए बाध्य किये जाते हैं, बाद में ये स्वयं ही इसे स्वीकार कर लेते हैं। एक बार डारविन ने एफ० गुइनी चींटी और एफ० फुस्का दास ज्ञाति को कृमियों को लड़ते देखा। एफ० सेंगुइनी ने बड़ी निर्दयता से अपने इन छोटे छोटे शत्रुओं को मार भगाया और उसके बच्चों को दास बनाने के लिए पकड़ने का प्रयास किया, किन्तु वे इसमें सफल नहीं हो सकीं। इसी प्रकार एक बार और डारविन को एक शिला के पीछे, एफ० फ्लावा और एफ० सेंगुइनी को एक दूसरे के समीप बस्तियों में देखने का अवसर मिला। एफ० सेंगुइनी चींटी फ्लावा को बहुत कम ही दास बनाती देखी गई है। डारविन ने इन दोनों बस्तियों को छेड़ा और उन्हें लड़ा

दिया ! युद्ध में उसने देखा कि चींटियों ने एक दम एफ० फुस्का के बच्चों को एफ० फ्लावा में पहचान लिया और चुन लिया, क्योंकि ये अपेक्षाकृत अच्छे दास होते हैं। इसके पश्चात् वे ऐफ० फ्लावा का मुकाबिला किए बिना ही मैदान छोड़ कर भाग गईं। इससे स्पष्ट है कि अनेक जातियों को अपने दास प्राप्त करने के लिए उस जाति से युद्ध भी करना पड़ता है और उनके बच्चे प्राप्त करने पड़ते हैं, जिससे वे उन्हें हानि न पहुँचा सकें। दास-प्रथा चींटियों में ही पाई जाती है। इनके ये दास इनकी बस्तियों में बचपन से ही रहकर इनके पूर्ण आज्ञा-पालक बन जाते हैं। अब न तो ये उत्पात ही करते हैं और न विश्वास-घात ही। कुछ जातियों में तो दास ही बस्तियों के सर्वेसर्वा होते हैं, क्यों कि इन जातियों की सभी चींटियां सुस्त और परोपजीवी होती हैं।

जैसा कि हम अभी पीछे कह आए हैं, राज्य परिवार के और मज़दूर वर्ग के सदस्यों में अन्तर केवल भोजन का अन्तर है, जिससे उनकी शरीर-रचना में भी अन्तर आ जाता है। यद्यपि सभी प्रकार के भोजन मज़दूर ही जुटाते हैं किन्तु राज्य परिवार को दिए जाने वाले भोजन का उपयोग वे स्वयं नहीं करते, वे श्रम की महत्ता (Dignity of labour) को अच्छी प्रकार से समझते हैं। अनेक बार राज्य परिवार में किसी मज़दूर सदस्य को ग्रहण करने की आवश्यक्ता होती है। तब उसे राज्य परिवार को दिया जाने वाला भोजन ही दिया जाता है और वह शीघ्र ही उस भोजन से राज्य परिवार में रहने योग्य हो जाती है। अब वह सन्तानोत्पत्ति भी कर सकती है और निष्क्रिय तथा आलस्य पूर्ण जीवन भी बिता सकती है। मधुमक्खियों के छत्ते में भी यह प्रथा पाई जाती है। इनमें यद्यपि राज्य परिवार के अंडों में और मज़दूर वर्ग के अंडों में (दोनों प्रकार के अंडे एक ही रानी मक्खी एक ही साथ देती है) कोई आकार गत अन्तर नहीं होता, जैसा कि अन्य अनेक कृमियों में होता है, किन्तु राजकीय अंडों के लिए कमरे यहां भी दूसरों से बड़े होते हैं। भोजन भी मजदूर बच्चों को राजकीय बच्चों से निम्न कोटि का मिलता है, जिससे वे मज़दूर बनें, जिससे न तो उन्हें राज्य परिवार की सी सुविधाओं और आराम-चैन की इच्छा हो और न मैथुन व्यापार की वासना। भोजन का अन्तर मिटा कर वर्ग भेद भी समाप्त किया जा सकता है, किन्तु यह केवल बचपन की अवस्था में ही संभव है, बाद में नहीं। किन्तु सफेद चींटियों में यह परिवर्तन किसी भी अवस्था में किया जा सकता है। यह आश्चर्य की बात है कि यह सब तब होता है जब कि राज्य परिवार को मज़दूरों के श्रम पर ही आश्रित रहना होता है। नियम का यह कड़ा पालन और राज्य-परिवार के प्रति यह सम्मान की भावना वास्तव में

प्रवृत्ति मात्र है, किसी प्रकार की भावना या विचारणा नहीं, संभवतः इसी से यह 'पूर्णता' इनमें भी पाई जा सकती है।

कैटर-पिल्लर की कुछ उपजातियों में परिवार प्रथा तो विद्यमान है किन्तु समाज व्यवस्था नहीं है। कैटर-पिल्लर परिवार के सभी सदस्य अपने परिवार के निवास के लिए मिल कर छत्ते का निर्माण करते हैं। इंगलैंड के ऐगार कैटर-पिल्लर तो काफी बड़े-बड़े घर बनाते हैं। इसी प्रकार एक मनोरंजक कृमि एम्बिया भी है। इन कृमियों की बस्ती एक दूसरे के साथ सटा कर बने हुए प्रायः पंक्तिबद्ध कमरों के रूप में बनी होती है। पत्तों पर पलने वाले कृमियों (जैसे एफिड्ज:—जिनकी उपजातियों में से कुछ एक को चींटियां शहद गाय के रूप में पालती हैं) में भी समाज व्यवस्था कैटर पिल्लरों से कुछ अधिक विकसित होती हैं, क्योंकि इनमें भी एक रानी होती है जिसके शासन में ये सब अनुशासित रहते हैं।

एक छत्ते या बस्ती के कृमि प्रायः एक ही मादा की सन्तान होते हैं, क्योंकि उपजाऊ मादा सन्तान केवल उन अंडों में से ही उत्पन्न होती है जो अंडे रानी अपने जीवन में अन्तिम बार देती है। उसके पश्चात् बस्ती उजड़ जाती है और नवीन बस्ती का निर्माण होता है। जिन बस्तियों में अनेक मादा मक्खियाँ भी उत्पन्न होती हैं वहाँ भी वे गर्भवती होनें पर अपनी अलग बस्ती बसा लेती हैं। रानी को यद्यपि एक बार बच्चें उत्पन्न कर पूर्ण विश्राम का अवसर मिल जाता है किन्तु इससे पूर्व उसे भी आवश्यक कार्य करना पड़ता है।

कृमियों के अतिरिक्त पक्षियों में भी कुछ समाज व्यवस्था पाई जाती है, यद्यपि इनका यह समाज उतना विकसित और व्यक्ति पर उतना हावी नहीं होता। कुछ चिड़ियों की उपजातियों में समाज व्यवस्था अन्य जाति के पक्षियों से अधिक विकसित हैं। कौओं और कबूतरों में भी समाज व्यवस्था कुछ सीमा तक पाई जा सकती है, कौओं में अपेक्षा कृत अधिक व्यवस्था है। संभवतः इस का कुछ कारण यह है कि इससे इन्हें कुछ सुरक्षा मिलती है। कौओं में एक दूसरे की सहायता की प्रवृत्ति तो सभी जानते हैं। चिड़ियों में तो यह और भी अधिक लाभदायक है। किन्तु इन पक्षी-समाजों या समष्टियों में वैसी कोई व्यवस्था नहीं है जैसी कृमियों की समष्टियों में पाई जाती है। सामान्यतः निर्बल पक्षियों की जातियों में समाज-व्यवस्था अधिक है और इसका सीधा कारण हम दे सकते हैं—शत्रु से रक्षा। इसका दूसरा कारण, और शायद पर्याप्त बड़ा कारण, भोजन की खोज भी

है। संभवत:, उन्हें स्वभाव से भी अकेला रहना उतना पसंद नहीं। इसका कारण बच्चों से प्यार भी हो सकता है। किन्तु सबसे प्रमुख और 'मौलिक' कारण भोजन की खोज और सुरक्षा की भावना है। शत्रु से बचने के मामले में सहयोग के काफी उदाहरण पाये जा सकते हैं। पक्षियों की अनेक सामाजिक जातियों में शत्रु को देखने पर खतरे के संकेत के लिए अनेक प्रकार की ध्वनियाँ मिलती हैं। यद्यपि इस प्रकार ध्वनि करना समाज के लाभ में है किन्तु स्पष्टत: इसमें व्यक्ति को हानि पहुँच सकती है। इसके अतिरिक्त भय होने पर भी आवाज करना वैसे ही खतरनाक है। किन्तु झुंड में होने पर यह सावधानी-सूचक ध्वनि व्यक्ति के लिए उतनी खतरनाक नहीं, क्योंकि तब वह झुंड में सभी की सहायता से ही बच सकता है। टिटमोस की जाति में बाज को देखने पर इसी प्रकार झुन्ड के सभी व्यक्ति खतरे की आवाज करते हैं और साथ ही साथ बचाव का प्रयास भी करते हैं। यदि यह झुन्ड कहीं बैठा हुआ हो तो खतरे की आवाज पर सब चुप होकर और ठिठक कर पास के आश्रयों में छिप जाते हैं। यूरोपियन स्टार्लिंग जब झुन्ड रूप में सामान्य अवस्था में उड़ रहे होते हैं तो उनकी पंक्तियाँ बिखरी हुई सी होती हैं और वे एक दूसरे से कुछ दूरी पर उड़ रहे होते हैं, किन्तु ज्यों ही वे बाज को देख लेते हैं, प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से प्राय: सट जाता है और अब ये आश्चर्य जनक रूप से व्यवस्थित होकर बड़ी तीव्र गति से गोलाकार रूप में चक्कर काटने लगते हैं। टिन्बर्जन के अनुसार, बाज के शिकार करने के ढंग को देखते हुए स्टार्लिंग की यह प्रति-क्रिया और उपाय एक दम उपयुक्त प्रतीत होता है। उसके अनुसार, बाज उड़ते हुए पक्षी पर आक्रमण करते हुए प्राय: १५० मील प्रति घन्टा की तीव्र गति से सर्राता हुआ झपटता है। उसकी यह तीव्र गति स्टार्लिंगों के लिए इस प्रकार लाभदायक हो जाती है कि वे झुन्ड रूप में तीव्र गति से गोलाकार चक्कर काटते हुए उसके लिए टकरा जाने का खतरा उतपन्न कर देते हैं। इतनी तीव्र गति से अपने शिकार पर कूद कर वह तभी टकराने से बच सकता है यदि वह पहले अपने सशक्त पंजे उसके मारता है तो। किन्तु बड़ी तीव्र गति से चक्कर काटने से एकाकार हुआ यह झुन्ड उसके लिये यह असंभव कर देता है। इससे यह बाज इन पर इस प्रकार आक्रमण नहीं करता, तब वह केवल अव्यवस्थित से आक्रमण करता है और प्रयास करता है कि कोई व्यक्ति इस झुन्ड में से टूट आए। यदि उनमें कोई निर्बल या बच्चा होता है और वह टूट जाता है तब तो बाज उसे पकड़ने में समर्थ होजाता है किन्तु यदि वह इसमें सफल नहीं होता तो उसका प्रयास विफल जाता है। टिन्बर्जन के अनुसार और भी अनेक

पक्षियों की जातियों ने बाज से बचने के लिए इसी उपाय को अपनाया है।

किन्तु बहुत सी जातियां में मिलकर शत्रु पर आक्रमण करने की भी प्रवृत्ति है। यह आक्रमण प्राय: इस प्रकार किया जाता है :— कोई एक व्यक्ति खतरे की सूचना एक विशेष प्रकार की ध्वनि करके देता है, इस पर सभी व्यक्ति उसके साथ सट जाते हैं और एकत्रित हो कर शत्रु पर आक्रमण करते हैं। झुण्ड का इसके अतिरिक्त यह लाभ भी है कि शत्रु को देखने और उसको सूचना देने के लिए अधिक आँखें हो जाती हैं, क्यों कि शत्रु प्राय: बहुत ही सावधानी से छिप कर आकस्मि आक्रमण करने का प्रयास करता है। कुछ पक्षी, जैसे कौए, काली चींड़ियाँ इत्यदि अपने शत्रु को प्राय: ही तंग करके भगा देते हैं–विशेषत: बिल्ली इत्यादि को, किन्तु कुछ पक्षी केवल चिल्ला कर ही रह जाते हैं।

पक्षियों में इस प्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य प्रक्रियाओं और पहलुओं में भी सामाजिकता के कुछ चिह्न पाए जाते हैं, एक जाति के सभी व्यक्ति प्रवास के समय इकट्ठ हो जाते हैं। कुछ पक्षियों में नर, और ऐसों की संख्या काफी अधिक है, एक ऋतु में एक ही या निश्चित दो-तीन मादाओं से ही संबंध बनाता है और उसके साथ घोंसला बनाने तथा शिशु पालन का कार्य करता है। कुछ जातियां में तो यह प्रवृत्ति और भी विकसित मिलती है, उदाहरणत: कौओं की एक विशेष जाति जेकड़ॉ में व्यक्ति गत प्यार और विद्वेष की भावना पर आधारित सामाजिक संबंध भी पाए जाते हैं। इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपनी बस्ती के अधिक शक्तिशाली और अत्याचारी साथी से बचता है, और उनसे संपर्क बढ़ाने का प्रयास करता है जिनके साथ विश्रब्ध भाव से रहा जा सकता है। सशक्त व्यक्ति का सभी आदर करते हैं और उससे घबराते हैं। मादा व्यक्ति यहां भी शासित हैं जैसे मनुष्यों में। यदि कोई निम्नश्रेणी की मादा उच्चश्रेणी के नर के साथ संबंध स्थापित करने में सफल हो जाती है तो बस्ती के सभी पक्षी उसका भी आदर करने लगते हैं। इस जाति में प्राय: प्रत्येक व्यक्ति-नर एक ही मादा से आजीवन संबंध रखता है, किन्तु उसके मर जाने पर अथवा किसी अन्य कारणों से औरों को भी स्वीकार कर सकता है। (Larenz)

इस सामाजिकता की प्रवृत्ति को हम एक टिपिकल प्रवृत्ति कह सकते हैं, विशेषत: कृमियों में, क्यों कि उनमें यह प्रवृत्ति और इसके साथ जुड़ी हुई अन्य प्रवृत्तियाँ परिणाम में सामान्यत: चाहे कितनी लाभ दायक हों, पूर्णत: रिजिड हैं, वे स्वत: चालित (Automobile) मशीन के समान अन्तर या बाह्य उकसाहट से प्रेरणा पाकर तदीय प्रक्रिया को क्रियान्वित

कर देते हैं। उदाहरणतः, चींटियां अपने नेताओं से बनाए गए गंध-पथ पर अंधा धुंध चली जाती हैं, किन्तु यदि उसमें थोड़ा सा भी विक्षेप डाल दिया जाए अर्थात् यदि उस रास्ते के छोटे से भाग को पोंछ कर छोड़ी गई गंध को साफ कर दिया जाए, तो वे एक दम झमेले में पड़ जाएँगी और अपने रास्ते से या तो भटक जाएंगी अथवा आकस्मिक रूप से उसे प्राप्त कर सकेंगी। इसी प्रकार दास वृत्ति के लिए भी कहा जा सकता है। जो चींटियां पूर्णतः या जिस भी अंश तक दासों पर निर्भर करती हैं वे उसी सीमा तक उनके अभाव में पीड़ित भी होंगी, किन्तु उनकी यह निश्क्रियता और दासों के विशेष स्पर्श की उकसाहट के साथ उनकी प्रक्रियात्मक योजना इतनी रिजिडिटी से जुड़ी हुई हैं कि वे भोजन सामने पड़ा होने पर भी नहीं खा साकतीं, अथवा उस भोजन का अर्थ उनके लिए भोजन नहीं रहता। उनके लिए भोजन एक प्रक्रियात्मक व्यापार है, इसके अतिरिक्त उनके लिए कोई वस्तु भोजन (भोजन का स्वतंत्र विचार नहीं। जहाँ तक जेकडा का संबंध है, हमें ऐसा प्रतीत होता है कि लारेंज़ का यह वर्णन कुछ अधिक रंगीन है, उसमें अपनी कल्पना का समावेश काफी प्रतीत होता है, अन्यथा एक पलीत्व एक सीधा सा प्रवृत्यात्मक व्यापार है।

इस यांत्रिक प्रक्रिया (प्रवृत्ति) के और भी कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं और प्रवृत्ति को ठीक तरह से समझने के लिए यह आवश्यक भी है कि हम अधिक से अधिक उदाहरणों को देखें।

आँटलायन इस यंत्रीकरण और रिजिडिटी तथा परिवृत्ति के साथ संबंध का एक बहुत उपयुक्य उदाहरण प्रस्तुत करता हैं। यह कृमि प्रायः सूखी रेता और सूखी मिट्टी में ही रहना पसंद करता है। यह अपने भोजन के लिए चीटियों तथा अन्य इसी प्रकार के छोटे कृमियों को एक विशेष ढ़ंग से पकड़ता है। इन कृमियों को पकड़ने के लिए यह एक विशेष प्रकार का गोलाकार सुराख सा ज़मीन में बनाता है, जो ऊपर से कुछ चौड़ा और नीचे की ओर क्रमशः छोटा होता जाता है। पहले वह किसी सूखी मिट्टी की जमीन पर एक तरफ गोल रेखा बनाता है और तब सिर से तीव्र गति से मिट्टी बाहर की ओर फेंकते हुए पीठ की ओर से भीतर पैठता रहता है। इस क्रिया व्यापार के समय यदि किसी ऐसे रोड़े इत्यादि को वह बाधा रूप में पाए जो इसके शरीर से बड़ा हो और जिसे यह सामान्य क्रिया से न हटा सकता हो, तो यह एक ओर से इसके नीचे जा कर इसे धकेल धकेल कर बाहर फेंक देता है। यह कर लेने पर यह पुनः अपने कार्य पर लौट आता है। यदि कोई छोटा रोड़ा या अन्य कोई वस्तु बीच

में आ जाती है तो वह अपनी हँसिये के समान डाढ़ों पर तौल कर पूरे ज़ोर से बाहर फेंक देता है। जब यह गोलाकार बिल आधा बन जाता है तब यह बीच से कुछ चपटे आकार का होता है किन्तु बाद में यह कृमि इसे नीचे से सूक्ष्म और ऊपर से बड़े, ज्यामिति के त्रिशंकु के समान बना लेता है और उसमें अपना शरीर मिट्टी में छिपाए केवल मुँह बाहर निकाले अपने शिकार की प्रतीक्षा में बैठा रहता है। यदि इस गोलाकार में कोई •रोड़ा या कुछ मिट्टी पड़ जाए तो वह वहीं से बैठा ही उसे बाहर निकाल फेंकता है। किन्तु यदि यह मिट्टी किसी भोज्य कृमि के साथ लुढ़ककर आई हो तो यह तुरन्त उसे हटा कर बड़ी चतुराई से उसे अपने क्रूर जबड़ों में ले लेता है।

आँटलायन सदैव अपना घोंसला या शिकार-मंच रेतीली अथवा सूखी मिट्टी वाले तथा वर्षा से सुरक्षित स्थान पर बनाता है, यद्यपि उस स्थान पर धूप का होना आवश्यक है। इससे यह प्रायः किसी वृक्ष की बड़ी मोटी शाखा के नीचे होता है। ऐसा स्थान रेतीली ढलानों में, नदी के रेतीले किनारों पर या जंगलों के किनारों पर अधिक सुविधा से प्राप्त हो जाता है, ऐसे स्थानों पर चींटियां और दूसरे कृमि भी काफी मात्रा में उपलब्ध हो सकते हैं।

यह छोटा सा कृमि अपने जीवन-व्यापार के ठीक संचालन के लिए कैसे ठीक स्थानों को खोज लेता है, यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है यद्यपि बहुत सीधा भी। प्रथम तो वह उत्पन्न ही ऐसे स्थानों पर होता है, क्यों कि उसकी माता के लिए भी ऐसे ही स्थान सुविधा जनक होते हैं, किन्तु यदि वे कहीं अनुपयुक्त स्थान पर भी उत्पन्न हो जाएं तो भी वे थोड़ा बहुत भटकने के बाद अपनी जाति के लिए सुविधा जनक स्थान को खोज लेते हैं। यह कार्य यद्यपि प्रथम दृष्टि में आश्चर्य जनक प्रतीत होता है, किन्तु यह समझ लेने पर कि इन प्राणियों का जीवन निरन्तर अपनी परिवृत्ति की भौतिक-रासायनिक परिस्थितियों के साथ ऐसे ही बँधा हुआ है जैसे उनके अन्तः-शरीर की भौतिक रासायनिक परिस्थितियों का आपस में सीधा संबंध है तब यह कोई आश्चर्य की बात नहीं रहती। वे एक निश्चित कार्य-कारण संबंध में बँधे कार्य करते हैं, मनष्य के समान वे अपनी 'स्वतंत्र मानसिक सत्ता' में नहीं रह सकते। इसीसे आँटलायन को जब तक अपनी शारीरिक मांग के अनुसार परिवृत्ति प्राप्त नहीं हो जाती तब तक वह असुविधा और अकुलाहट का अनुभव करता हुआ निरन्तर उपयुक्त को खोजने के लिए दौड़ता है। इस खोज के लिए उसे किसी भी प्रकार की पैतृक–स्मृति बाध्य नहीं

करती प्रत्युत् असुविधानुभूति की अकुलाहट की यांत्रिक प्रेरणा ही बाध्य करती है। यह एक ऐसी ही अचेतन क्रिया है जैसे मनुष्य सरदी में पास पड़े हुए किसी भी ओढ़न को बिना उसका विचार किये ही ऊपर ओढ़ लेता है अथवा नींद में पड़ा हुआ मनुष्य गर्मी लगने पर स्वयं अनजाने ही कपड़ा उतार देता है। इसी प्रकार आँटलॉयन सामान्यतः अपना उपयुक्त स्थान खोज लेता है। प्राकृतिक परिवृत्तियों में वह सामान्यतः २५° से ३०° सेन्टीग्रेड तापमान में सबसे अधिक क्रिया शील और सुविधा में होते हैं। यदि नवीत्पन्न बच्चे अपने आप को प्रच्छाय, पंकिल या पथरीले स्थानों में पाते हैं, तब वे सूर्य की किरणों का स्पर्श पाते ही उपयुक्त स्थान की खोज में प्रकाश किरणों की ओर दौड़ पड़ते हैं। जब वह एक उपयुक्त सूखी, गर्म रेतीली जमीन प्राप्त करता है तभी यह शिशु आँट-लायन अपना शिकार स्थान खोदने लगता है। यदि यहाँ काफी शिकार प्राप्त हो जाय तो वह वहीं रहना प्रारंभ कर देता है, किन्तु यदि शिकार पर्याप्त न हो तो वह उस स्थान को छोड़ कर दूसरे की खोज करता है। इस प्रकार उसे किसी प्रकार की स्मृति या 'अतिरिक्त-प्रवृत्ति' निर्धारित नहीं करती प्रत्युत् उसकी शारीरिक आवश्यक्ताएँ ही उसे नियोजित करती हैं। संभव है किसी प्रकार की स्मृति भी उसे प्राप्त हो, जो कि उसके प्रवृत्यात्मक व्यवहार में देखी जा सकती है—जैसे, वह एक विशेष प्रकार का ही शिकार-गृह या मंच बनाता है जो कि संभवतः इस प्रकार उसकी शरीर रचना में निहित न हो, किन्तु इन प्राणियों में आश्चर्यजनक रूप से एक व्यवहार के लिए जो रिजिडिटी पाई जाती है उससे ऐसा प्रतीत होता है, यह भी किसी न किसी रूप में शरीर-रचना में ही निहित प्रवृत्ति होगी जो कि विशेष बाह्य और आन्तरिक परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर क्रियान्वित हो जाती है।

इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण दिये जा सकते हैं। यहाँ हम फेबर द्वारा प्रदर्शित कैटरपिल्लरों के एक समूह का उदाहरण देंगे जो कि भोजन की खोज में जा रहे थे। ये कैटरपिल्लर चीड़ के वृक्षों पर एक बड़ी बस्ती के रूप में रहते हैं और भोजन के लिये छोटी छोटी यात्राएं करते हैं। इन यात्राओं में ये बिल्कुल एक दूसरे के पीछे, एक सिलकन सूत्र की रेखा पर, जो कि उनका लीडर बनाता है, चलते हैं। एक बार फेबर इस बस्ती के भोजन-यात्रा पर निकलने पर उसे एक बड़े पत्थर के चारों ओर इस प्रकार घुमाने में सफल हो गया कि एक पूरा और अटूट चक्कर बन गया। अब यह झुंड उसी चक्कर में चलने लगा और पूरे एक सप्ताह तक इसी चक्कर में चलता रहा। एक भी कैटरपिल्लर इस चक्कर को तोड़ कर भोजन और विश्राम खोजने के लिए बाहर निकलने में समर्थ नहीं हो सका। अन्त में

आठवें दिन अचानक ही कुछ व्यक्ति उस चक्कर से निकल पड़े और वह सूत्र टूट गया, जिससे वे उस मुसीबत से छूट सके। (रसल द्वारा विहेवियर ऑफ एनिमल्ज से उद्धृत)

एक भारतीय चींटी बार्बारुस अपने घोंसले से आठ इंच पर मिट्टी का ढेर लगाती है। इस पर वह प्राय: बीजों के छिल्लक भी फेंकती है। एक बार हिंग स्टोन ने इस जाति का घोंसला एक दीवार में देखा। उसने सोचा कि चींटियाँ घोंसले के मुंह से ही छिल्लक इत्यादि नीचे गिरा देंगी, किन्तु उसने देखा कि यह उसका गलत अनुमान था। चींटियाँ इन छिलकों को आठ इंच नीचे तक लातीं और वहाँ से उन्हें छोड़ देतीं, उसी प्रकार सावधानी से मानो ढेर पर रख रही हों। यह व्यापार महीनों तक इसी प्रकार चलता रहा। वे अपनी सामान्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं सीख सकीं।

इसी प्रकार प्रवृत्ति की रिजिडिटी प्राणियों के किसी विशेष वस्तु के प्रति विशेष-व्यवहार अथवा प्राणी के बाह्य विषय के साथ प्रक्रियात्मक सम्बन्ध में भी पाई जा सकती है—कोई जाति-विशेष किसी विषय विशेष से अथवा किसी रूप विशेष से एक विशेष प्रकार का ही सम्बन्ध क्यों रखती है, उसका उसके लिए वही विशेष अर्थ क्यों है, अन्य क्यों नहीं? इसके मुख्यत: दो कारण हो सकते हैं—प्रथम तो यह कि वह किसी विशेष वस्तु से किसी विशेष मानसिक स्थिति में ही संम्पर्क में आयी हो और वह वस्तु उसी रूप में उसके लिए अर्थ रखती हो, और दूसरा यह कि प्राणी अपनी अन्तरनुभूति से ही उसका विशेष अर्थ समझता हो! पहले का उदाहरण बिल्ली के लिए चूहे का अर्थ भोजन होना हो सकता है और दूसरे का उदाहरण नर थ्रीस्पाइंड स्टिक्कल बैक का केवल लाल पेट वाले स्टिक्कल बैक पर आक्रमण करना हो सकता है। यदि चूहे को बिल्ली के सम्पर्क में पहली ही बार ऐसे लाया जाय कि बिल्ली उससे डर जाए तो बिल्ली के लिए चूहे का अर्थ भोजन न हो कर भयद वस्तु होगा, किन्तु कठिनाई यह है कि चूहा बिल्ली को देख कर भागता है, इसलिए वह उससे, सम्भव है, सदैव डरती न रहे, किन्तु यदि प्रारम्भ से चूहे को उसके लिए स्नेह की वस्तु बना दिया जाए तो उसके लिए सभी चूहों का अर्थ स्नेह की वस्तु हो सकता है। थ्रीस्पाइंड स्टिक्कल बैक मैं मथुन ऋतु में नर पर आक्रमण करता है। इसी प्रकार इंगलिश रोबिन भी नर रोबिन के लाल पंख देखकर उस पर आक्रमण कर देता है। किन्तु सम्भवत: उसका अर्थ उसके लिए भी उसी प्रकार निश्चित नहीं हुआ जैसे बिल्ली के लिए चूहे का होता है। इसमें सम्भवत: उसके अपने पेट का लाल होना भी उसे अपने प्रति-द्वन्दी का यह विशेष अर्थ समझने में कारण

होता है। किन्तु उसके लिए कोई प्रयोग-सम्मत प्रमाण नहीं दिया जा सकता है, यह केवल सम्भावना भर है। किन्तु पहले के लिए यदि कहीं प्रमाण नहीं भी है तो इसे पूर्णत: तर्क संम्मत संभावना तो कहा जा सकता ही है।

प्राय: सभी प्रवृत्तियाँ किसी न किसी प्रकार से इन दोनों के अन्तर्गत आ सकती हैं। किन्तु कुछ प्रवृत्तियां ऐसी भी होती हैं जो उतनी स्पष्ट रूप से प्रक्रियात्मक अथवा इस प्रकार किसी विशेष से संबद्ध नहीं होतीं, जैसे हमने पीछे कैटर पिल्लरों का एक लाइन में चलने का उदाहरण दिया था। इसी प्रकार आँट लाँयन का अपने शिकार-मंच को खोजना भी इसका उदाहरण कहा जा सकता है। आँट लायन के लिए यहाँ इस प्रकार से नहीं कहा जा सकता कि रेत का उसके लिए अर्थ है शिकार-मंच बनाना, क्योंकि एक बार शिकार मंच बन जाने पर वह वैसी अन्य स्थिति मिलने पर भी उसे नहीं बनाएगा। इस प्रकार कुछ व्यवहारों को केवल अन्त: प्रेरणा का परिणाम भी कहा जा सकता है। इस प्रकार की प्रक्रियाओं के कारणों को हम प्रथम निबंध में पर्याप्त विस्तार से देख ही आए हैं, इससे हम यहाँ दूसरी प्रकार की प्रवृत्तियों के उदाहरण ही अधिक देंगे।

अस्तु, हैरिङ्गल के नवोत्पन्न शिशु माता-पिता की चोंच पर अपनी चोंच लगा कर उनसे भोजन माँगते हैं। माता-पिता अपने गले की थैलियों में सँजोंया हुआ भोजन नीचे उगल देते हैं और फिर थोड़ा-थोड़ा भाग उठा कर उनके मुँह में डालते हैं। थोड़ी भूल्तियों के पश्चात् शिशु भोजन ग्रहण कर लेता है और इसे निगल लेता है। हैरिन्गल की चोंच कुछ पीली होती है और निचली चोंच के अग्र भाग में एक लाल बिन्दु सा होता है। अब बच्चे के सम्मुख ठीक उसी रंग की चोंच वाली एक लकड़ी की विकृत सी आकृति रखी गई। शिशु में बड़ी उत्सुकता से उससे भोजन ग्रहण करने की प्रक्रिया देखी गई, किन्तु जब उसके सम्मुख बिलकुल ठीक आकृति की एक ऐसी लकड़ी की मूर्ति प्रस्तुत की गई जिसकी निचली चोंच पर लाल बिन्दु नहीं था तो वह एक दम उलझन में पड़ गया। आगे फिर इसी बिन्दु को लेकर और भी प्रयोग किये गए। बच्चा इन लकड़ी की आकृतियों में किसी भी रंग के बिन्दु वाली आकृति के प्रति अधिक परिचय-भावना प्रकट करता था। इन सभी आकृतियों की चोंच का वही रंग रखा गया था जो गल (Gull) की चोंच का होता है, इससे स्पष्ट है कि बच्चे का प्रक्रियात्मक व्यवहार सबसे अधिक चोंच के बिन्दु पर केन्द्रित है।

प्रायः ही प्राणियों में देखा गया है कि उनका प्रक्रियात्मक संबंध बाह्य विषय के किसी एक पहलू के साथ ही रहता है जब कि शेष उससे उपेक्षित

रहता है, किन्तु इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि प्राणी विशेष के लिए एक वस्तु का केवल एक इंद्रिय विषय के रूप में महत्व है और दूसरी का दूसरे इन्द्रिय-विषय के रूप में। इससे भी अधिक, एक ही वस्तु या विषय के विभिन्न पहलुओं के विभिन्न इन्द्रियों के साथ संबन्ध हैं और एक पहलू एक इंद्रिय का विषय हो कर दूसरे के लिए विषय नहीं रहता। इसे हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मनुष्य या विकसित प्राणियों के समान उनकी विभिन्न इन्द्रियों के विषय मस्तिष्क केन्द्र में सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। यदि मनुष्य एक व्यक्ति की केवल आवाज ही सुनता है, वह दुबारा भी उसकी आवाज़ से ही उसे पहचान सकेगा किन्तु यदि किसी की वह आवाज़ उसकी आकृति के देखने के साथ सुनता है तो कभी भी उसकी आवाज़ श्रोता में उस व्यक्ति की दृष्टिगत स्मृति को भी उत्पन्न कर देगी। किन्तु बहुत से प्राणियों में यह शक्ति नहीं है। ब्रयूकनर के अनुसार घरेलू मुर्गी अपने बच्चों की भय-पूर्ण पुकार सुनकर तुरन्त उसकी रक्षा के लिए दौड़ेगी, किन्तु यदि उसके बच्चे उसके सामने ही चुपचाप तड़प रहे हों तो उसमें कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं होगी। उसने एक बच्चे को एक बार उठाकर किसी अदृश्य स्थान पर रख दिया, मुर्गी उसकी पुकार सुनते ही उसकी रक्षा के लिए व्याकुल हो उठी, जब कि एक शीशे के बर्तन में उसके सामने तड़पता बच्चा उसका बिल्कुल भी ध्यान आकर्षित नहीं कर सका। इसी प्रकार, चींटी अपने बच्चों को केवल सूंघकर पहचान सकती है, देखकर नहीं। चींटी के लिए कहा जा सकता है कि उसके लिए संपूर्ण संसार ही केवल घ्राणेंद्रिय का विषय है। इसी प्रकार अन्य बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं—लेसियों केम्या जाति की कुछ तितलियों में मादा केवल तभी नर के लिये मैथुन-विषय हो सकती है जब उसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध उत्पन्न हो, ग्रेलिंग जाति की तितलियों में नर केवल अपना सुगंधित अंग खोल कर ही मादा के लिए मैथुन-विषय हो सकता है अन्यथा नहीं। स्टिक्कलवैक में नर मादा के लिए लाल पेट और एक विशेष प्रकार के नृत्य के साथ ही मैथुन विषय हो सकता है अन्यथा नहीं। इसी प्रकार इपिफिग्गर जाति की टिड्डियों में केवल गाता हुआ नर ही मैथुन विषय हो सकता है। यदि एक नर उसके बिल्कुल समीप भी हो और मैथुन के लिए प्रस्तुत हो, तो भी वह दस गज की दूरी पर गाते हुए नर की ओर भागेगी, अपने समीप वाले नर की परवाह नहीं करेगी। (Tinbergen)

इस प्रकार की प्रक्रियाएं संभवतः इसलिए ऐसी हैं कि ये प्राणी दो भिन्न इंद्रियों की स्मृति का स-संबंध स्थापित नहीं कर पाते,

प्रतीत होता है कि इनके लिए विशिष्ट इन्द्रिय-विषय विशिष्ट प्रक्रिया के साथ इस प्रकार बंधा होता है कि उसके प्रस्तुत होते ही उस प्रक्रिया के लिए जितनी वासना और शक्ति उसके पास होती है वह क्रियान्वित हो जाती है। इस प्रकार इन प्रवृत्यात्मक प्राणियों के लिए संपूर्ण विश्व विभिन्न प्रक्रियाओं का समूह मात्र है जो प्रक्रियाएं एक दूसरे से स्वतंत्र अस्तित्त्व रखतीं हैं। मादा ग्रेलिंग के लिए दो स्थितियों में एक ही नर दो भिन्न विषयों के रूप में है, उसके लिए वह एक ही विषय नहीं जिसके विभिन्न पहलू हों सकते हैं। इसे और भी स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि जैसे मनुष्य के लिए एक देवदत्त विभिन्न रूपों में भी वही देवदत्त है वैसा प्रवृत्यात्मक प्राणियों में नहीं है। हम कह सकते हैं कि देवदत्त खाता है, देवदत्त सोता है, देवदत्त पढ़ता है इत्यादि, ऐसा इन प्राणियों के लिए नहीं है।

उदाहरणत: कृष्ण-शिर गल को लें। इसके लिए अपना ही अंडा विभिन्न स्थितिओं में विभिन्न प्रक्रियाओं का विषय है, अथवा वह उसके लिए भिन्न भिन्न विषयों के समान है। यदि पक्षी अंडा सेने वाला (Broody) है और अंडा घोंसले में पड़ा हैं तो उसके लिए यह सेने का विषय होगा। यदि घोंसले में कोई ऐसी वस्तु भी रख दी जाय जो गोल हो और लगभग उसी आकार और वनावट की हो, फिर चाहे उससे काफी भिन्न भी प्रतीत होती हो, पक्षी उस पर उसी प्रकार बैठेगा जैसे अपने अंडे पर बैठता है। यदि उसके घोंसले में लौटने पर उसके अंडे में छेद हुआ हैं तो उसके लिए वह कुछ पीने की वस्तु हो जाता है, चाहे बच्चा काफी बन चुका हो। इसी प्रकार किसी दूसरे पक्षी के घोंसले में पड़ा अंडा भी उसके लिए कुछ पेय पदार्थ ही होता है फिर चाहे वह उसका अपना ही अंडा क्यों न हो। यदि उसका अंडा उसके घोंसले के बिल्कुल समीप पड़ा हो तो उसके लिए वह कुछ घोंसले में लौटाने की वस्तु होता है—प्रत्येक गल के लिए अंडे का लौटाने की वस्तु होना उसके घोंसले से एक से डेढ़ फुट तक के अंतर पर पड़े होने पर ही हो सकता है, उससे बाहर वह केवल उपेक्षा का विषय ही हो सकता है—पक्षी के लिए उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार एक और भी उदाहरण इस 'प्रक्रियात्मक सम्बन्ध परिवर्तन' का दिया जा सकता है। ब्रोक (Brock) ने पागारूस पक्षी के सागर्शिया पारासिटिका (Sagartia parasitica) के साथ प्रक्रियात्मक सम्बन्ध का अध्ययन करके बड़ा मनोरंजक चित्रण प्रस्तुत किया हैं। उसके अनुसार सामान्य अवस्था में पागारुस पक्षी गास्ट्रोपोड को अपने गृह के रूप में वर्तता है और इस पर सागर्शिया के पौधे लगाता है। यदि ये पौ इस पर

से हटा दिये जाँयं और पागारुस भूखा न हो तो वह पुनः उन्हें उस पर चिपका देगा किन्तु भूख लगने पर वे उसके भोज्य द्रव्य होंगे। यदि पागारुस को घर बनाने के लिए गास्ट्रोपोड न मिले तो वह सार्गशिया को दबा कर घर के समान वर्तता है। इस प्रकार सार्गशिया उसके लिए उसकी विभिन्न आवश्यकताओं के समय विभिन्न प्रक्रियात्यक सम्बन्ध रखता है।

यह उदाहरण पिछले उदाहरणों से विपरीत है, क्योंकि वहाँ एक ही विषय विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न विषयों के रूप में प्रतीत होता है और इसमें एक ही विषय एक ही स्थिति में भिन्न भिन्न वासनाओं में भिन्न भिन्न विषयों का पर्याय होता है। वास्तव में प्रक्रियात्मक सम्बन्ध को निर्धारण करने में दोनों ही पहलू महत्व पूर्ण हैं।

यह प्रायः निश्चित ही है, जैसा कि हम दूसरे निबंध में भी विस्तार से देख आए हैं, कि कोई भी प्रक्रिया या प्रवृत्ति चाहे किसी समय प्राणी के लिए उपयोगी होने से ही उसके द्वारा अपनाई गई हो किन्तु बाद में वह केवल एक याँत्रिक व्यापार मात्र रह जाती है। ये 'उपयोगी' प्रवृत्तियाँ तब भी चलती रहती हैं जबकि उस जाति की परिवृत्ति विल्कुल परिवर्तित हो चुकी हो और उस परिवृत्ति में यह उपयोगी प्रवृत्ति हानिकारक हो। उदाहरणतः कठफोड़ा अपने भोज्य बीज वृक्षों की फटनों में संग्रह करता है और अभाव के दिनों में उनका उपयोग करता है। टेलीफोन की तारों के लिये खंभे लगने पर उस ने उन बीजों को उन खंभों की दरारों में भी रखना प्रारम्भ कर दिया। जिस ऋतु में (सितंबर-अक्तूबर में) यह बीजों का संग्रह करता है उन दिनों इनकी दरारें खूब खुली होतीं हैं किन्तु ये वर्षा होने पर बहुत तंग हो जाती हैं, जिससे यह पक्षी इन बीजों का अभाव के दिनों (सर्दी) में उपयोग नहीं कर पाता, क्योंकि तब बीज सड़ जाते हैं। इस तरह वे प्रति वर्ष करते हैं और प्रति वर्ष हानि उठाते हैं। इसी प्रकार कुछ कठफोड़े एक टूटे फूटे सूने घर में रहते थे। वे अपने भोज्य बीज एकत्रित कर उस घर की दरारों में रख देते थे, किन्तु दरारें गहरी होने से वे बीज भीतर चले जाते और उनकी पहुँच के बाहर हो जाते। इस पर भी यह पक्षी प्रति वर्ष उसी प्रकार हानि सहता रहा, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया।

इसी प्रकार राईडफ्लोवर अपने अंडे सागर या नदी के किनारे की पथरीले कंकड़ों की जमीन में देता है जहाँ पर कि ये देखे न जा सकें। किन्तु जब यह पक्षी अपने अंडे घास में भी देता है तो भी यह अपने घोंसले को पत्थरों से ढँक देता है। इस प्रकार वह तब भी अपनी उस प्रवृत्ति को नहीं छोड़ता जबकि उसका कोई भी उपयोग नहीं होता। (Ritter)

इसी प्रकार एक मछली केवल उन्हीं प्राणियों को खाती है जो कि उसकी नीचे की ओर तैर रहे हों। यह प्रायः रात को शिकार करती है। यह अपने गले के नीचे लटकते तंतुओं से अपने शिकार के होने का अनुमान करती है और शिकार के होने पर वह उस पर आक्रमण करती है, किन्तु यदि शिकार उसके ऊपर हो तो उसको देखने पर भी वह शिकार नहीं करती। यदि इसका शिकार उसे ऊपर से छू भी जाए तो भी वह उसे नहीं पकड़ती। इतना ही नहीं, अनेक बार तो यह अपने शिकार के ऊपर होने पर उससे बुरी तरह से डरती भी है जब कि उसके नीचे आते ही उस पर आक्रमण करती है। इसी प्रकार कुछ मछलियां शिकार के नीचे होने पर उनको नहीं देखतीं जब कि ऊपर आते ही उन्हें पकड़ने को दौड़ती हैं।

प्रवृत्ति के लिए सामान्य लोगों से लेकर बड़े बड़े दार्शनिक और वैज्ञानिक तक अनेक बार यह सोचने की भूल करते हैं कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो अतिप्राकृतिक रूप से समझदारी पूर्ण और अपनी सफलता में अथवा लक्ष्य बेध में अचूक है। यह एक बड़ी भूल है जो कि ऊपर दिये उदाहरणों से देखा जा सकती है। यह ठीक है कि प्रवृत्ति प्रायः एक विशेष ढङ्ग से एक विशेष परिवृत्ति में बहुत अधिक 'अचूक' होती है किन्तु थोड़े से भी परिवर्तन से यह एक नितान्त मूढ़ता पूर्ण व्यापार हो जाती है, और प्राणी तब भी मशीन के समान उसी प्रकार व्यवहार करता रहता है। पक्षियों के नवजात शिशु अपनी माता को झट प्रवृत्ति से ही पहचान लेते हैं किन्तु वे उतनी ही अधिक भूलें भी करते हैं, उदाहरणतः कोई उनकी माता के समान आवाज़ करके उन्हें अपने पीछे लगा सकता है, यहाँ तक कि काफी बड़े बच्चें भी, जो उड़ तक सकते हैं, उनकी माता के समान आवाज करने पर भागे आते हैं और बोलने वाले के ऊपर आकर बैठ जाते हैं। छोटे बच्चों को तो केवल उंगली दिखा कर अथवा किसी वस्तु से छूकर बहकाया जा सकता है, वे तुरन्त चिल्लाने लगते हैं और भोजन के लिए मुंह खोल देते हैं। बर्गसां ने प्रवृत्ति की अचूकता और अति प्राकृतिक समझदारी पर इतना बल दिया है कि आश्चर्य होने लगता है कि इतना बड़ा दार्शनिक भी इतनी भावुकता से क्यों बातें कर रहा है। किन्तु वास्तव में उसका वाइटलिज़्म का समर्थन उसकी इस बड़ी कमी का उत्तरदायीं है। वह 'क्रीयेटिव इवोल्यूशन' में फेबर को उद्धृत करते हुए एम्मोफीलिया की अपने बच्चों के लिए ताजा भोजन जुटाने के लिए कैटरपिल्लर के एक विशेष ढंग से डंक मारने की प्रवृत्ति की अचूकता का बड़े उत्साह से वर्णन करता है। किन्तु ड्रेवर के अनुसार—

"डा० और श्रीमती पैकहैम ने दिखाया है कि ऐम्मोफीलिया का कैटरपिल्लर के डंक मारना एक दम अचूक नहीं है, जैसा कि फेवर कहता है। प्रथम तो उसकी डंक मारने की संख्या सदैव एक सी नहीं होती, इसके अतिरिक्त कभी कभी कैटरपिल्लर पूरी तरह से आहत नहीं होता और कभी कभी यह पूरी तरह से मर जाता है। इस प्रकार कभी कभी कैटरपिल्लर के न आहत होने से भी ऐम्मोफोलिया के बच्चों को उसके हिलने डुलने से कोई हानि नहीं पहुँचती और न उसके मर जाने पर उसके मांस के सूख जाने से ही कोई हानि पहुँचती है।" इसी प्रकार हम एक और उदाहरण ड्रेवर से उद्धृत करेंगे, वह कहता है–

"लोमेचूसा मक्खी का बच्चा चींटियों के बच्चों को खाता है, जिसके कि घोंसले में वह पलता है। फिर भी चींटियां लोमेचूसा के बच्चों को उतनी ही सावधानी से पालती हैं जितनी सावधानी से अपने बच्चों को। इतना ही नहीं, बड़ी जल्दी वे जान लेती हैं कि महमान बच्चों को उसी प्रकार पालना और खिलाना बच्चों के लिए घातक होगा जैसे अपने बच्चों को, इस प्रकार वे उन्हें पालने और खिलाने के ढंग भी शीघ्र ही खोज निकालती हैं।" 'एनेलेसिस ऑफ माईंड' से उद्धृत)

इन दोनों उद्धरणों से स्पष्ट है कि कैसे प्रवृत्तियाँ न केवल अचूक ही नहीं होतीं प्रत्युत् किसी जैवी उद्देश्य से भी प्रायः रहित होती हैं, ऐसी प्रवृत्तियाँ प्राय: प्रक्रियात्मक सम्बंध से ही विकसित होती हैं, ऐसा हमारा विचार है। इन मूर्खता-पूर्ण और चूकने वाली प्रवृत्तियों के हम थोड़े से और उदाहरण देकर इस प्रकरण से आगे बढ़ेंगे।

प्रेंगमैंटिस अपना घोंसला बनाने में बड़ी चतुराई का परिचय देती है, क्योंकि यह वहाँ घोंसला बनाती है जहाँ पहचाना न जा सके। किन्तु यदि मैथुन ऋतु में गर्भाधान नहीं किया गया तो भी यह अपना घोंसला बनाती हैं और कभी कभी तो दो से तीन तक घोंसले बना डालती हैं, जिनमें वह खाली अंडे देती हैं, जिनसे बच्चे उत्पन्न नहीं होते। इतना ही नहीं, कुत्ते जैसे समझदार प्राणी भी प्रक्रियात्मक संबंध से या अन्तर्वासना से प्रेरित होकर भूलें करते हैं। उदाहरणत: एक बार एक कुत्ती के गर्भ-भ्रम (Pseudo Pregnency) हो गया और छाती में दूध उतर आया। वह अब बच्चों के लिए इधर-उधर रोती फिरती रही। वह इतनी व्याकुल थी कि जहाँ कहीं उसे कोई बोरी का टुकड़ा या ऐसी वस्तु भी दिखाई पड़ती वह उसे बच्चा समझ कर उसकी ओर दौड़ती। अन्त में वह कोठे के ऊपर पहुँची और भूसे के कोठे में उसने बच्चों के लिए गुफा सी बनाई। तब उसे चूहे के कुछ बच्चे दिये गए और उसने बड़ी ही उत्सुकता से उनका स्वागत किया और उन्हें

अपनी छाती के समीप ला कर दूध पिलाने का प्रयास किया। वह उन्हें बहुत देर तक चाटती रही। तब उसे वहाँ से हटाने का प्रयास किया गया, किन्तु वह स्वीकार न करना चाहती थी। जब उसे किसी प्रकार हटने के लिए राजी किया गया, उसने उनको भूसे से बड़ी सावधानी और प्यार से ढँक दिया। इस प्रकार यह सुविधा से कहा जा सकता है कि कृमि, पक्षी तथा मछलियाँ इत्यादि बड़ी रिजिडिटी से अपनी प्रक्रियात्मक योजना को मशीन के समान क्रियान्वित करते हैं; स्तनपायी यद्यपि उनकी अपेक्षा कम रिजिड होते हैं, किन्तु वे भी अपनी अन्तर्वासनाओं को व्यय करने के लिए यंत्रवत् ठीक या गलत क्रियाएं करते हैं।

जो प्राणी अपेक्षाकृत अधिक विकसित हैं जैसे बन्दर, शिम्पांजी इत्यादि, यहां तक कि कुत्ता, हाथी और गाय इत्यादि भी, उनमें प्रवृत्ति अधिकतर अन्तःशारीरिक वासाओं की धकेल और आत्मव्ययी प्रक्रियाओं के रूप में ही अधिक पाई जाती है, किन्तु वे अपने प्रक्रियात्मक व्यापारों में उतने रिजिड नहीं हैं। बन्दर और शिम्पांजी तो अपेक्षा कृत बहुत ही कम रिजिड होते हैं। इनमें काफी से अधिक समझदारी और अतएव नवीन परिस्थितियों को नवीन ढंग से स्वीकार करने की शक्ति रहती है। किन्तु जो शारीरिक वासनाएं है, उनसे ये भी उतने ही बाध्य हैं जितने अन्य प्राणी, किन्तु यहाँ भी इनमें यह भिन्नता है कि ये आत्मव्ययी प्रक्रिया में काफी स्वतंत्र हो सकते हैं। उदाहरणतः शिम्पांजी जहाँ कुत्ते इत्यादि के समान मादा की पीठ पर चढ़ कर और पिछली टांगें जमीन पर टिका कर भी मैथुन की व्ययशील प्रक्रिया करता है वहाँ कभी-कभी पिछली टांगों पर कुछ झुक कर खड़े होकर मादा को अपनी बाहों में कस कर भी मैथुन करता है। मादा भी पहले व्यापार में जहाँ अपनी पिछली टांगों को कुछ खोल कर अपना भग उद्घाटित करती है वहाँ दूसरे में अपनी बाहें नर के गले में डालकर पिछली टांगों से उसके नितंबों के समीप आलिंगन करती हैं। इसी प्रकार, बन्दरों को यदि मादा मैथुन व्यापार के लिए न मिले तो वे किसी नर से ही मैथुन कर लेते हैं। इसी प्रकार खाने के लिए भी : बन्दर को ऐसी वस्तु खिलाई जा सकती है जिसे वह प्रकृति में नहीं खाता।

मनुष्य में प्रवृत्ति और शिक्षा बहुत अधिक घपला सा बन गई हैं, किन्तु वह भी अन्ततः अपने मानसिक निर्माण में बहुत कुछ उसी प्रकार प्रवृत्तियों का दास है जैसे कोई भी अन्य प्राणी। उसमें न केवल अपनी वासनाओं की दासता ही है प्रत्युत् वह बहुत दूर तक प्रक्रियात्मक संबन्ध में भी प्रवृत्यात्मक हो जाता है। उदाहरणतः प्रेम को लें—एक व्यक्ति अपनी प्रेमिका को बहुत

प्यार करता है, वह उसे सबसे अधिक सुन्दर लगती है, उसको देखते ही अथवा उसका विचार आते ही उसकी वासनाएं जग जाती हैं इत्यादि, यह क्यों ? क्यों उसे दूसरी कोई लड़की, उसकी प्रेयसी से अधिक सुन्दर होने पर भी, यह आकर्षण नहीं दे पाती ? यह केवल संयोग पर निर्भर है । इस संयोग का कारण यह होता है कि उस व्यक्ति का उस विषय (प्रेयसी) के साथ एक प्रक्रियात्मक संबन्ध स्थापित हो गया रहता है । इसका मुख्य कारण यह भी होता है कि वह अपने किसी मधुर क्षण (Life of the moment) में उसको इस प्रकार देख सका होता है और उसमें अपनी तृप्ति की ऐसी आशा से आप्लावित हो चुका होता है कि वह क्षण उसके हृदय में स्थायी हो जाता है, लाभग उसी प्रकार जैसे बिल्ली के हृदय में चूहे का भय। इस प्रकार उसके लिए वह लड़की परी हो जाती है। उनमें और किसी प्रकार का आध्यात्मिक संबन्ध नहीं होता । यदि ऐसा ही अवसर उसे किसी भी अन्य लड़की के साथ मिलता तो वही उसके लिए प्रेयसी हो जाती । इस प्रकार अनन्त काव्यों की स्रोतस्विनी प्रेयसी केवल मनुष्य की प्रक्रियात्मक प्रवृत्ति की परिणाम है । इसी प्रकार मनुष्य के किसी भी अकारण प्यार, अकारण द्वेष इत्यादि की अन्य क्रियाओं में भी देखा जा सकता है । "वह व्यक्ति यद्यपि बहुत अच्छा है पर पता नहीं क्यों उसे देखते ही मेरा खून खौल उठता है" इत्यादि बातें हम प्रायः ही सुनते हैं और ये उसी प्रकार प्रक्रियात्मक संबंध की सूचक हैं।

किन्तु मनुष्य इसमें अपेक्षा कृत काफी कम रिजिड है और अपने अधिकांश व्यापारों में तो काफी समझदार भी । जहाँ तक वासनात्मक धकेल (Appetitive push) का सम्बन्ध है, मनुष्य में वह उसके प्रक्रियात्मक संबन्ध तथा सामाजिक परिवृत्ति से बहुत अधिक प्रभावित होती है । कुछ दूर तक सामाजिक परिवृत्ति भी मनुष्य में प्रक्रियात्मक रिजिडिटी के रूप में ही होती है, जैसे सदाचारी (इसका अर्थ प्रत्येक का अपना होता हैं) रहने का विचार उसमें उसकी मानसिक योजना (Mental desposition) के रूप में निहित हो जाता है और दुराचार करते हुए उसको कुछ भद्दा और विचित्र लगता है। इस प्रकार यदि कहा जाय कि उसकी वासना उसकी विचित्र प्रक्रियात्मक-योजना से बहुत अधिक प्रभावित होती है, तो अधिक उचित होगा ।

संभवतः फ्रायड के स्वप्न विज्ञान के आधार में मनुष्य की इसी शारीरिक वासना और उसके मन की प्रक्रियात्मक योजना का घपला ही है । कम से कम जागृत अवस्था में तो यह घपला काफी अधिक प्रभावशाली होता है।

सोते समय प्रक्रियात्मक योजना वासना पर संभवतः कुछ इस प्रकार प्रभाव डालती है कि जब किन्हीं भौतिक रासायनिक कारणों से प्रसुप्तावस्था में कोई वासना जन्म लेती है (मान लो वह भोजन की वासना है) तब व्यक्ति की वह वासना एक विशिष्ट प्रकार के स्वप्न को जन्म देगी, जैसे वह व्यक्ति अपनी विशेष वासना के समान एक विशेष भोजन को अपनी प्रक्रियात्मक योजना के अनुसार जुटाएगा और उसे अपनी विशेष प्रक्रियात्मक योजना के अनुसार खायेगा। जैसे, एक ऐसा व्यक्ति, जिसने कभी छुरी-कांटा नहीं देखा, स्वप्न में कभी छुरी-काँटे से नहीं खाएगा।

मेरे विचार में स्वप्न का कारण किसी न किसी प्रकार की शारीरिक उकसाहट ही होती है। मान लीजिए किसी व्यक्ति को किसी ऐसी परी का स्वप्न आता है जो प्रतिक्षण दैत्य और परी बारी-बारी बनती है, इसका भी कारण किसी प्रकार की अन्तः शारीरिक उकसाहट या अव्यवस्था को ही कहा जा सकेगा। हम प्रायः ही ऐसे रोगियों को देखते हैं जो अपने चारों ओर भूत-प्रेत देखते हैं और डरते हैं। इसका कारण प्रायः यह होता है कि अग्र-मस्तिष्क निर्बल पड़ जाता है और पृष्ठ मस्तिष्क की तथा स्नायुतंतुवाय की क्रियाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता। किन्तु क्यों किसी व्यक्ति को भूत और किसी को शेर दिखाई पड़ते हैं, सभी को एक जैसी आकृतियां दिखाई नहीं पड़तीं? इसका कारण विशिष्ट स-सम्बन्धों उकसाए जाना है, जो कि शरीर वैज्ञानिक तथ्य है। यह तो प्रायः सभी ने अनुभव किया होगा कि यदि सोते समय दिल पर या छाती पर हाथ आ जाय तो अनिवार्य रूप से डरावने स्वप्न आते हैं। इसी प्रकार यदि किसी कारण से मस्तिष्क निर्बल पड़ जाय तो भी विचित्र विचित्र स्वप्त आते हैं और व्यक्ति प्रायः बड़-बड़ाने लगता है और कभी-कभी स्वप्न में चलने भी लगता है।

इससे भी आगे बढ़ कर यदि यह कहा जाय कि व्यक्ति एकांत में बैठे क्यों एक विशेष स्मृति की आवृत्ति कर रहा है दूसरी की क्यों नहीं, अथवा क्यों वह अचानक किसी गीत की पंक्ति गुन गुनाने लगा है दूसरे की क्यों नहीं? फ्रायड ने इस प्रश्न को भी उठाया है, किन्तु वह मन को एक रहस्यमय गुहा मानता था। उसके कारण उसके विश्लेषण से हम सहमत नहीं हैं। उसने यद्यपि इस प्रश्न का वहाँ कोई उत्तर नहीं दिया किन्तु हम उसके उत्तर का अनुमान कर ही सकते हैं। हमारे विचार में, इस प्रकार किसी विशेष अभावानुभूति का होना, किसी विशेष स्मृति का होना, अथवा किसी विशेष गीत को गुनगुनाना किसी प्रकार की केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय में उत्पन्न उकसाहट के ही कारण कहा जा सकता

है। इन्हें क्रॉटज़िग (Kratizig) के शब्दों में वेक्यूमएक्टिविटीज़ भी कहा ज सकता है। लॉरेंज के अनुसार केन्द्रीय स्नायुतंतुवाय स्वयं भी अनेक ऐसे आवेगों को जन्म देता है जो प्राणी को किसी व्यापार में प्रवृत्त करते हैं। संभवतः मस्तिष्क तंतुओं और मस्तिष्क के रासायनिक स्थलों में भी उकसाहट विशेष व्यापारों को जन्म देती है।

इस प्रकार मनुष्य भी बहुत दूर तक प्रवृत्ति (वासना और प्रक्रियात्मक योजना) तथा स-संबंधों से ही परिचालित होता है। परिवृत्ति से उसका संबंध यद्यपि बिलकुल प्रवृत्यात्मक ही नहीं हैं, जैसा कि हम पिछले निबंध में देख आए हैं, किन्तु फिर भी वह कुछ प्रवृत्तिमय भी है।

पिछले अध्याय में हम प्रवृत्ति और विचारण में कुछ अन्तर कर आए हैं, किन्तु यह विचारणा कभी भी मनुष्य में पूर्ण नहीं हो सकती—कारण स्पष्ट है:—क्योंकि वह अपने शरीर से पूर्ण स्वतन्त्र नहीं हो सकता।

REFERENCES

1. *Bergson. H.* .. Creative Evolution, (New York)
2. *Cheesman* .. Chapters from Every day doings of Insects. (London)
3. *Darwin* .. Migration of Birds (London)
4. *Darwin* .. Origin of Species (London)
5. *Freud* .. Introductry lectures on Psychoanalyses (London)
6. *Hebb. D. O.* .. Integration of Behavior (New York)
7. *Russell. B.* .. The Analyses of mind (London)
8. *Russell E. S* .. Behavior of Animals (London)
9. *Tinbergen* .. The Study of Instinct (London)

६—शरीर और मन

शरीर और मन के प्रश्न को लेकर हमने पिछले निवंधों में मन के शरीर से स्वतन्त्र अस्तित्व न होने के पक्ष में विभिन्न शरीर-वैज्ञानिक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। उन से यह प्रमाणित हो सकता है कि शरीर "मानसिक" घटनाओं का कारण है यद्यपि यह प्रमाणित नहीं होता कि मन मानसिक घटनाओं का कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त कल्पना, स्मृति और विश्वास इत्यादि, विशुद्ध रूप से मानसिक कहे जाने वाले व्यापारों के स्वरूप पर भी हमने इन निबन्धों में विचार नहीं किया, जो कि मन के स्वरूपज्ञान के लिए आवश्यक है। यहाँ हम इन पहलुओं पर संक्षेप में विचार करेंगे।

मन की भौतिकता या अतिभौतिकता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की निर्णयात्मक बात कहे बिना हम शरीर और मानसिक-प्रक्रियाओं या घटनाओं की पृथक्-पृथक् श्रेणियाँ बना सकते हैं। जब कि कल्पना, स्मृति और वितर्कना को मानसिक घटनाएँ कहा जा सकता है, आवेगों और स्नायविक-व्यापारों (रीफ्लेक्स एक्शंस) को हम भौतिक-शारीरिक घटनाएँ कह सकते हैं। आग का भौतिक स्पर्श और शरीर में जलन की प्रतिक्रिया स्वरूप सम्बन्धित अंग और फिर सम्पूर्ण शरीर का अव्यवस्थित स्फुरण एकदम शारीरिक घटनाएँ हैं जब कि इस घटना की कल्पना मानसिक घटना है। कल्पना में हम आग देख सकते हैं; उसका स्पर्श कर सकते हैं और यदि यह कल्पना पर्याप्त बलवती है, जैसे स्वप्न में, तो जलन की पीड़ा का अनुभव भी कर सकते हैं, किन्तु इस से शरीर जलेगा नहीं, इस स्वप्न के भंग होने पर किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होगी। इस प्रकार कल्पना निश्चित रूप से अग्नि-स्पर्श की भौतिक घटना से बहुत भिन्न है। यदि हम भौतिक पदार्थों के अस्तित्व को अपने से स्वतन्त्र मान लें, तो हम इन दो घटनाओं में कारण-सम्बन्धों की भिन्नता के आधार पर पार्थक्य कर सकते हैं। किन्तु यदि हम वेदान्तियों या कार्टे-सियनों के समान अपने से पृथक् किसी भी भौतिक अस्तित्व को अस्वीकृत कर दें तो हमारे लिए कल्पना और भौतिक घटना अथवा 'यथार्थ घटना' में अन्तर करना संभवतः असंभव हो जाएगा। इसी से ह्यूम कल्पना और

वास्तविक घटना में केवल तनाव का अन्तर ही मानता है। क्योंकि वह कारण-सम्बन्धों को केवल नियमित अनुक्रम-मात्र स्वीकार करता है। इससे अग्नि-स्पर्श की अनुभूति और कल्पना में कोई कारणता-जन्य अन्तर नहीं रह जाता, क्योंकि अग्नि-स्पर्श केवल नियमित-पूर्वगामी घटना-मात्र है जिस पर पश्चगामी घटना का होना दैशिक या कालिक-क्रम से निर्भर नहीं है किन्तु कारणता की यह कल्पना हमारे विचार में कुछ संगत नहीं है, जैसा कि हम अन्तिम निबन्ध में देखेंगे और इसी से कल्पना और 'वास्तविक घटना' में भी ह्यूम का स्वीकृत अन्तर मान्य नहीं है। 'तनाव का अन्तर' स्वयं स्पष्ट परिभाषा नहीं है, क्योंकि कोई सीमा-रेखा निश्चित नहीं की जा सकती जिससे इधर की ओर तक तनाव होने पर एक घटना को कल्पना कहा जाए और उसको लाँघने पर वह वास्तविक घटना बन जाए। फिर स्वप्न या सन्निपात में कल्पनाएँ उतनी ही या उससे भी अधिक बलवती होती हैं जितने सामान्य आवेग या स्नायविक क्रियाएँ। इसलिए कल्पना को तनाव की कमी के आधार पर अग्नि-स्पर्श की वास्तविक घटना से पृथक् नहीं किया जा सकता। इन दोनों की कारण-शृंखलाओं के प्रारम्भ के आधार पर ही इनमें अन्तर किया जा सकता है और उसी आधार पर उन्हें 'भौतिक और मानसिक' कहा जा सकता है। इसी प्रकार स्मृति के लिये भी। स्मृति, जिस रूप में वह सामान्यतः समझी जाती है, किसी अतीत वास्तविक घटना की मानसिक पुनरावृत्ति है। स्मृति की घटना और भौतिक घटना को हम कुछ इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—जब कि भौतिक घटना की कारण-शृंखला के छोर उस से एकदम पूर्व की घटना—शरीर और अग्नि का स्पर्श—में निहित हैं; स्मृति की कारण-शृंखला का एक स्वतन्त्र छोर किसी दैशिक-कालिक रूप से विच्छिन्न पूर्व की घटना में विद्यमान होता है। शीशे का टूटना या आग के स्पर्श से जलन की पीड़ा और शीशा टूटने या जलनानुभूति की स्मृति इनके उदाहरण हो सकते हैं। इसी प्रकार कुछ विशुद्ध शारीरिक घटनाएँ भी हो सकती हैं। सभी प्रकार की स्नायविक क्रियाएँ शारीरिक व्यापार हैं। छींकना, पलक-झपकना इनके उदाहरण हो सकते हैं। किन्तु बहुत-सी शारीरिक घटनाएँ मानसिक घटनाओं से अनुगमित होती हैं। जैसे, सेंसेशंज़ और आवेग। वास्तव में सेंसेशंज़ और मानसिकता इतनी समवेत रहती हैं कि उन्हें पृथक् करना कठिन कार्य है। तो भी इन्हें कुछ इस प्रकार समझा जा सकता है—आग का स्पर्श और उसकी पीड़ा से हाथ का हटना दो घटनाएँ हैं, इनमें हाथ के हटने से पूर्व की घटना प्रायः सेंसेशन है, हाथ का हटना स्नायविक व्यापार और उसके पश्चात् मानसिकता बीच में आ जाती है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की दृष्टि सेंसेशन है किन्तु उसका

जाति और व्यक्ति-प्रत्ययों का ज्ञान मानसिक घटना है। इसी प्रकार इच्छा और ज्ञान या अनुभूति भी मन के प्रत्यय हैं।

मानसिक और शरीरिक घटनाओं को इस प्रकार स्वीकार कर के हम देखते हैं कि मन और शरीर एक दूसरे से अत्यन्त समीपता से सम्बद्ध हैं और एक दूसरे को अनिवार्य रूप से प्रभावित करते हैं, जब तक कि प्राणी जीवित है। संकल्पात्मक और विकल्पात्मक कार्य ऐसे हैं जिनमें मन शरीर को प्रभावित करता है जबकि आग के स्पर्श से पीड़ा की अनुभूति में शरीर मन को प्रभावित करता है। इस शरीर-मन संम्बन्ध को लेकर कितनी ही विचार-प्रणालियाँ हैं। कुछ विद्वान् शरीर और मन में क्रिया-प्रतिक्रिया के सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं, कुछ केवल मन के शरीर पर प्रभाव को स्वीकार करते हैं, कुछ दोनों में समानान्तर-सम्बन्ध (Parallalism) को मानते हैं और कुछ मन के अस्तित्व में ही संदेहशील हैं। यहाँ हम इस विवाद में तीन प्रकार से उलझ सकते हैं। (१) मन और शरीर के द्वैत को मान कर इनके सम्बन्ध का निश्चय करें (२) इनमें किसी एक के अस्तित्व का निषेध करने के लिए इनके पारस्परिक सम्बन्ध की असंभवता प्रदर्शित करें (३) अथवा इनके सम्बन्ध का विचार न कर इनमें किसी एक का निषेध या दोनों की मान्यता स्वीकार करें। किन्तु जैसा कि हमारे पिछले निबन्धों से स्पष्ट है, हम मन के अतिभौतिक अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते और उसके वैज्ञानिक कारण हमने पीछे दिये हैं। यहाँ हम इसके दार्शनिक कारण देंगे।

कल्पना मन की अतिभौतिकता का सब से बड़ा प्रमाण कही जाती है, क्यों कि इसकी कारणता भौतिक कारणता से भिन्न मानी जाती है। उदाहरणार्थ, हम एक मेज़ देखते हैं। यहाँ मेरे मेज़ के अस्तित्व-ज्ञान की कारण-शृंखला मेरे से पृथक् और स्वतन्त्र अस्तित्व मेज़[१] से प्रारंभ होकर मेरे मस्तिष्क में कुछ घटनाओं के रूप में, और यदि मन स्वतन्त्र अस्तित्व है तो, मन में मानसिक घटनाओं के रूप में भी, पर्यवसित होती है। मेरे इस ज्ञान में यह विश्वास विद्यमान है कि जिस मेज़ को मैं आंखों से देख रहा हूँ उसे स्पर्श से भी अनुभव कर सकता हूँ और खटखटाने पर उसकी आवाज़ भी

---

१ मेज़ का अस्तित्व विवादास्पद हो सकता है, यहाँ ज्ञान-मीमांसा (Epistemology) सम्बन्धी कितने ही प्रश्न उठाए जा सकते हैं; इस सम्बन्ध में हम अगले निबन्ध में विस्तारपूर्वक विचार करेंगे।

सुन सकता हूँ और यदि इस पर मैं आरी चलाऊँ तो यह कट जाएगा, आग में डालने पर इस से लपटें उठेंगी और यह राख हो जाएगा और इसका एक भाग काट कर यदि किसी के सिर में मारा जाए तो वह एक विशेष प्रकार से व्यवहार करेगा इत्यादि। मेंज़ अपने आप में कुछ भी हो और उसके ज्ञान की मेरी प्रकृति कैसी भी हो, हम यहाँ यह मानने के लिए सहमत होते हैं कि हमारे मेज के ज्ञान की कारण-शृंखला उस दैशिक विन्दु से प्रारम्भ होती है, जहाँ मेज़ है। इसके विपरीत हमारी कल्पना की मेज़ के हमारे ज्ञान की कारण-शृंखला बाह्य मेज़ से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। बर्ट्रंड रसल कहते हैं—"चेतना और विचारों का कार्य यह है कि ये हमें देश या काल में सुदूर के विषयों से सम्पर्क स्थापित करने में समर्थ करते हैं" यही बात कल्पना के लिए भी कही जा सकती है।

अब हमारे पास कल्पना की अतिभौतिकता के दो प्रमाण हैं—प्रथम तो अतिभौतिक कारणता के प्रारंभिक छोर के रूप में और दूसरा अतिभौतिक कारणता के अन्तिम छोर के रूप में—अर्थात् कल्पना की उत्पत्ति में एक स्वतन्त्र कारण के रूप में, एक अतीत घटना बिना किसी दैशिक और कालिक संबंध के वर्तमान घटना-स्मृति को उत्पन्न करती है और दूसरे यह स्मृति वर्तमान स्मृति-चित्रों के ज्ञान में पर्यवसित न होकर दैशिक और कालिक रूप से सुदूर विषयों के ज्ञान में पर्यवसित होती है। किन्तु स्मृति-कारणता और स्मृति-ज्ञान की व्याख्या कारण-सिद्धान्त की सामान्य भौतिक प्रणाली से भी की जा सकती है। उदाहरणतः सूई की चुभन सेंसेशन है जिसकी कारण-शृंखला का प्रारंभ उस दैशिक विन्दु से होता है जहाँ सूई की नोक है। किन्तु उसी प्रकार की चुभन अनेक बार हमारे शरीर में सुई बिना भी होती है, और यदि सुई बहुत धीरे से छुई जाय तो बहुत संभव है हम इन दो चुभनों में अन्तर ही न कर पाएँ। इसी प्रकार नाक के भीतर कुछ स्पर्श करने से छींक आती है और किसी आन्तरिक कारण से भी छींकें आ सकतीं हैं और यदि किसी सोए हुए व्यक्ति के नाक में धीरे से स्पर्श किया जाये तो वह इन दो कारणों में अन्तर नहीं कर सकेगा। अब यहाँ स्पष्ट है कि चुभन और छींक रूप घटनाओं की कारण-शृंखला का प्रारम्भ कहीं से भी हो सकता है और इन दोनों ही अवस्थाओं में हम इन्हें सेंसेशन या स्नायविक व्यापार कहेंगे। इसलिए केवल दैशिक स्तर पर कारणता की भिन्नता कल्पना सेंसेशन में अन्तर नहीं कर सकती। इस प्रकार मेरी मेज़ की कल्पना और मेज़ की पर्सेप्शन में उस अवस्था में कोई अन्तर नहीं हो सकता यदि अन्तर केवल कारण-शृंखला के प्रारंभ की दैशिक स्थिति को लेकर ही है—यदि इस दैशिक स्थिति के अन्तर का केवल इतना

अभिप्राय है कि कल्पना-मेज़ की कारण-शृंखला का मूल उसी प्रकार शरीर के किसी भाग में है जैसे सूई की बिना चुभन की पीड़ा की कारण-शृंखला का हमारे शरीर के भीतर ही है।

किन्तु कल्पना की मानसिक कारण-शृंखला से अभिप्राय ऐसे दैशिक और कालिक अन्तर से नहीं है, यद्यपि हमारे विचार में अन्तर केवल यही है। कल्पना या स्मृति की विशेषता दैशिक और कालिक स्तर पर सुदूर के विषयों से कारण-सम्बन्ध में है, और वास्तव में यह विशेषता विचारों की न हो कर कल्पना और स्मृति की है।

अब हमें देखना यह है कि क्या दैशिक और कालिक-रूप से विच्छिन्न घटनाओं में कारण-सम्बन्ध संभव है ? यहाँ हम इस प्रश्न को केवल प्राकरणिक रूप से ही देखेंगे। इस सम्बन्ध में विशेष विचार हम इस पुस्तक के अन्तिम निबन्ध में करेंगे। इसे देखने के लिए हम अपने एक मित्र का स्मृति-चित्र लेंगे। अब यह ठीक है कि मेरे मित्र का स्मृति-चित्र उसके दैशिक और कालिक स्तर पर मुझसे दूर होने पर भी मुझे उसका ज्ञान करवाता है। किन्तु, हमारे विचार में, यह घटना मित्र के मेरे पर्सेप्शन से आधारभूत रूप से भिन्न नहीं है, अथवा यह कि इस स्मृति-चित्र की कारण-शृंखला का आरंभ किसी सुदूर पूर्व की घटना से नहीं होता, जैसा कि रसल कहते हैं। रसल की स्मृति की व्याख्या को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—"वर्तमान उकसाहट अ एक पूर्व घटना घ की सहायता से वर्तमान स्मृति-चित्र स को जन्म देती है और यह स्मृति स घ का ज्ञान न हो कर केवल घ के साथ समता रखती है और उसमें एक प्रकार की परिचितता की अनुभूति होती है।" स्मृति की इस व्याख्या में स के कारण रूप में ध और अ दो स्वतन्त्र कारणों को रखा गया है जबकि ध का अस्तित्व वर्तमान में नहीं है। हमारे विचार में कारणता का यह रूप भौतिक विश्व में कहीं देखने में नहीं आता, जैसा कि हम अन्तिम निबन्ध में देखेंगे। किसी भी घटना ध का कारण केवल – १ + घ ही हो सकता है और कोई भी कारण – २ + घ, – १ + ध, के माध्यम से ही ध का कारण हो सकता है। अथवा – २ + ध केवल एक अनुक्रम में शृंखला है जो – १ + घ से एकदम पूर्व या उसका कारण है और इसी प्रकार – १ + ध ध का कारण है। यद्यपि – १ + ध के अस्तित्व के लिए – २ + घ अनिवार्य है और इस प्रकार ध के अस्तित्व के लिए भी अनिवार्य है, किन्तु – १ + ध अकेली ही घ के अस्तित्व के लिए काफी है, यदि हम इसे – १ + ध के बिना भी प्राप्त कर सकें। इस प्रकार, यदि स्मृति को भी हम एक भौतिक घटना स्वीकार करें तो

उसका कारण अ और एक अतीत घटना ध न होकर अ और मस्तिष्क की एक परिवर्तित स्थिति म होगी। यह परिवर्तित स्थिति उस पूर्व घटना ध की मुद्रा (Trace) है जो घटना के घटित होने के समय मस्तिष्क में मुद्रित हो गई थी। स्मृति-कारणता की ये दो कल्पनाएँ क्रमशः निम्न प्रकार से चित्रित की जा सकती हैं।
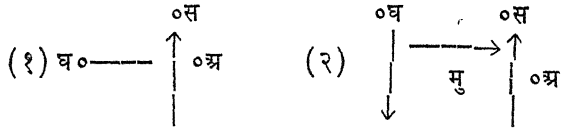
यहाँ प्रथम ग्राफ में अतीत घटना ध रहस्यमय रूप से वर्तमान उकसाहट अ के साथ स्मृति को उत्पन्न करती है, जो वर्तमान घटना है। ध और अ के बीच कोई दैशिक और कालिक सम्बन्ध नहीं है सिवाय नियमित अनुक्रम संबंध के, जिसे कि रसल कारणता कहते हैं। इसके विपरीत दूसरे चित्र में ध म को जन्म देता है अथवा अतीत घटना मस्तिष्क में मुद्रण का कारण बनती है जो कि मस्तिष्क की एक परिवर्तित स्थिति-मात्र है और इस प्रकार वर्तमान उकसाहट वर्तमान मुद्रण के साथ स्मृति का कारण बनती है। यहाँ म और अ स की सद्यः पूर्ण की कारण घटनाएँ हैं।

यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि मुद्रा की हमारी कल्पना के क्या आधार हैं? जहाँ तक हमारा वर्तमान ज्ञान हमें बताता है, अभी तक मस्तिष्क में ऐसी किन्हीं मुद्राओं का अस्तित्व हमें पता नहीं है। इसलिए मुद्रा की कल्पना की वकालत को न्याय्य कैसे कहा जा सकता है?—विशेषतः उस अवस्था में जबकि स्मृति-चित्रों के सम्बन्ध में हमारी सहज अनुभूति हमें यह विश्वास प्रदान करती है कि हमारी स्मृति का कारण स्मृति घटना है और स्मृति में हमारा ज्ञान उस घटना का ही है। इस प्रकार सहज अनुभूति हमें रसल से भी अधिक 'स्मृति की मानसिकता' की ओर ले जाती है। इसके अनुसार ध न केवल अ के साथ स्मृति का कारण ही बनता है। प्रत्युत् यह भी कि ध अ मिलकर ध के ही स्मृति-ज्ञान को जन्म देते हैं, इस कल्पना को हम निम्न प्रकार से चित्रित कर सकते हैं—
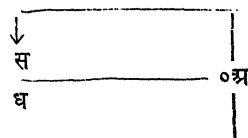
यह कल्पना हमारी भाषा में भी मूलित है। जैसाकि—"मुझे खूब याद है, जब

हम वहाँ मिले थे" से स्पष्ट है। किन्तु इन कल्पनाओं को स्वीकार करने का अर्थ है एक सर्वथा भिन्न प्रकार के कारण-सम्बन्धों की कल्पना करना जिनकी सम्भावना का कोई आधार नहीं है। भौतिक विश्व में हम केवल दो ही प्रकार से कारण-सम्बन्धों को जानते हैं (१) या तो किसी घटना के सम्पूर्ण स्वतंत्र कारणों को घटना से सद्यः पूर्व की घटनाओं में केन्द्रित होना चाहिए, (२) अथवा यदि कोई कारण सद्यः पूर्व के क्षण में केन्द्रित नहीं हो सकता तो उसे कार्य-घटना के घटित होने तक शृंखला में सहानुगमित होना चाहिए।

जहाँ तक मुद्रा-सिद्धान्त का सम्बन्ध है, उसकी पुष्टि में कुछ तर्क दिये जा सकते हैं। हम जानते हैं कि मस्तिष्क में से यदि विशेष प्रदेशों को घायल कर दिया जाए तो हमारी विशेष स्मृति-शक्ति जाती रहती है और यदि उन्हें ठीक कर दिया जाए तो स्मृति पुनः लौट आती है। इसलिए उन प्रदेशों को स्मृतियों के स्थान या आधार कह सकते हैं और सम्भावना कर सकते हैं कि उनमें अत्यन्त सूक्ष्म स्मृति-मुद्राएँ होंगी जो घटनाओं के घटित होने के पश्चात् उन प्रदेशों में उसी प्रकार चिह्नित हो जाती होंगी जैसे ग्रामोफोन-रेकार्ड में ध्वनियाँ मुद्रित हो जाती हैं। यह आवश्यक नहीं कि मुद्रण किसी ज्ञात ढंग से होता हो, संभव है इस मुद्रण का कुछ अज्ञात ढंग हो। यदि हम यह स्वीकार कर लें तो, स्मृति-चित्रों की उत्पत्ति के लिए अतीत घटना का घटित होना आवश्यक नहीं है, यदि उसके बिना भी हमारे मस्तिष्क में वैसी मुद्राएँ मुद्रित की जा सकें तो भी हम उचित उकसाहट के होने पर स्मृतिचित्रों को उसी परिचित के साथ देखेंगे और उसी प्रकार हमें उनके पहले घटित हुए होने में विश्वास होगा। मुद्रा-सिद्धान्त के पक्ष में स्वप्नों को भी उदाहृत किया जा सकता है। अब मान लीजिए कि मैंने सांड़ के सींग और शेर के दाँतों वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में न कभी सोचा है और न कभी सुना है, किन्तु इन तीनों प्राणियों को देखा है। अब रात को सोते हुए अचानक मेरा हाथ हृदय पर टिक जाता है जिससे रक्त की स्वच्छन्द गति में बाधा पड़ती है और परिणामतः मुझे भयानक स्वप्न आता है। यह निश्चित है कि इस प्रकार छाती पर हाथ आ जाने पर अवश्य ही भयानक स्वप्न आएगा। अब संभव है, इस स्वप्न में मैं एक ऐसा प्राणी देखूँ जो साँड़ के सीगों और शेर के दाँतों वाला मनुष्य हो। सामान्य भौतिक नियमों के अनुसार इसकी व्याख्या यह दी जा सकती है कि रक्त के दबाव ने मस्तिष्क के उन प्रदेशों को सक्रिय कर दिया जो भय-आवेग के आधार हैं और निद्रा के कारण हमारे मस्तिष्क के वे प्रदेश निष्क्रिय रहें जो आवेगों का नियंत्रण करते हैं, इससे मस्तिष्क में आकृतियों के अधार-प्रदेश अनियंत्रित रूप से सक्रिय हो उठे और परिणामतः

उक्त प्रकार की आकृति हमें स्वप्न में दिखाई दी। स्वप्न में एसोसियेशन भी बड़े सजीव रूप में क्रियाशील होती है। जागृति में भी हम में किसी मनुष्य को भयानक रूप में मुँह खोल कर काटते देख कर शेर की कल्पना घटित हो सकती है और भिड़ते देखकर साँड़ की, वही कल्पना, निद्रा में अधिक सशक्तता के साथ घटित हो सकती है। वैसे मनस्कारणता (Mnemic-causation) के पक्षपाती इस प्रकार के स्वप्नों की व्याख्या-निम्न प्रकार से कर सकते हैं—
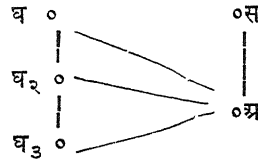
इस ग्राफ में १, २, ३ घटनाएँ साँड़, मनुष्य और शरीर के दर्शन की घटनाएँ हैं जो उकसाहट अ के साथ स्मृति स का कारण बनती है। प्रथम दृष्टि में यह सम्भावना उतनी ही उचित प्रतीत होती है जितनी प्रथम संभावना, किन्तु वास्तव में यह संगत नहीं है। इसका कारण यह है कि ये तीन घटनाएँ अतीत में अपने आप में स्वतन्त्र घटनाएँ थीं। मनस्कारणता के अनुसार इन की स्थिति केवल कालिक ही हो सकती है और इसीलिए इसे एक ही क्षण में अविभाज्य रूप से समाहित होना चाहिए। अथवा बर्गसां के शब्दों में—"It is embraced in an intuition of mind," or "The whole of it is grasped instantaneously." और इस प्रकार ऊपर इनका पुनरुद्भव ऐसा नहीं होना चाहिए कि इनके कुछ अंश विशेष एक में समाविष्ट कर लिए जाएँ और विशेष अंश छोड़ दिये जाएँ। अब मान लीजिए, मैंने एक साँड़ को किसी मनुष्य पर आक्रमण करते देखा है और भय का अनुभव किया है। यहाँ दो घटनाएँ मुझ में घटित हुई हैं और एक की स्मृति दूसरे के बिना संभव है। किन्तु यदि यह घटना मनस्कारणता सम्बन्धी है तो इसका दैनिक अस्तित्व घटना की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जाता है और यह एक अविभाज्य, पूर्ण तथा एक साथ ही पूर्ण प्रस्तुत (Instantaneous) होती है, इसलिए इन घटनाओं को एक साथ अ से इस प्रकार सम्बद्ध नहीं होंना चाहिए कि ये अपनी कुछ ऐसोसिएशंज को छोड़ दें और घटना के कुछ अंगों को छोड़ दें और एक दूसरी में इस प्रकार मिल जाएँ जो कि उनकी मानसिक विशेषता के प्रतिकूल हो। हमारे विचार में ऐसी कोई घटना अथवा मानसिक विशेषता नहीं होती। बर्गसां एक कविता कण्ठ करने के उदाहरण से स्मृति के शारीरिक और मानसिक रूपों में भेद समझाते

हुए कहते हैं कि "कविता के शारीरिक स्मरण में हम कविता की जितनी बार आवृत्ति करते हैं उसमें हम क्रमशः प्रथम से अन्तिम शब्द तक उसी प्रकार पहुँचते हैं जैसे हम उसे कण्ठ करते हैं। प्रत्येक आवृत्ति में एक नवीनता होती हैं क्योंकि हमारा अभ्यास अधिक होता जाता है। किन्तु इसकी सबसे बड़ी विशेषता इसमें है कि इस में घटना का क्रम और काल की अवधि वही रहती है। इसके विपरीत प्रत्येक आवृत्ति की पृथक् स्मृति शारीरिक स्मृति नहीं है। इनका चित्र स्मृति में एकदम चिह्नित हो जाता है। क्योंकि अपनी परिभाषा के अनुसार ही प्रत्येक पृथक् पाठ प्रत्येक पृथक् स्मृति-चित्र चिह्नित करता है। यह मेरे जीवन में एक घटना के समान है, इसकी विशेषता इसमें है कि यह कालिक सापेक्षता (Date) के साथ रहती है, अतएव पुनः घटित नहीं हो सकती।" यहाँ रसल और बर्गसां में एक बात में मतैक्य और दूसरी में मत-भिन्नता है। मतैक्य कालिक सापेक्षता की स्वीकृति में है अथवा कालिक सापेक्षता को मानसिक स्मृति की एक अनिवार्य विशेषता मानने में है, जब कि मतभेद इस बात में है कि बर्गसाँ उस घटना को शरीर के स्थान पर मन में मुद्रित मानते हैं और इस प्रकार शरीर और मन में क्रिया-प्रतिक्रिया (Interaction) के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं जब कि रसल अतीत घटना को अतीत में ही रखकर उसको कुछ अव्याख्येय सा रूप दे देते हैं। किन्तु दोनों ही के अनुसार घटना को 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' (इंस्टेंटेनियस) होना चाहिए जो कि उसे आदत और शारीरिकता से स्वतन्त्रता देने के लिए आवश्यक है।

किन्तु हमारे विचार में स्मृति के इन दो रूपों में भेद मौलिक नहीं है। मान लीजिए, राम का स्मरण मुझ में घटित होता है। रसल इसे इस अवस्था में सच्ची स्मृति मानने को प्रस्तुत नहीं हैं यदि यह स्मृति कालिक-सापेक्षता युक्त नहीं है, अर्थात् यह राम के किसी पहलू विशेष को उसके घटित होने के काल विशेष के साथ यदि मुझमें घटित नहीं करती। किन्तु इस स्मृति में 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' होने की विशेषता है। इसमें किसी निश्चित क्रम और निश्चित कालावधि (ड्यूरेशन) की आवश्यकता भी नहीं है—दूसरे शब्दों में यह आदत-स्मृति नहीं है और किसी भी अवस्था में इसे कविता-पाठ की उस मानसिक स्मृति से पृथक् नहीं किया जा सकता जो प्रथम-द्वितीय-तृतीय के सापेक्ष कालिक-सम्बन्ध की स्मृति से स्वतन्त्र पाठ की सामान्य स्मृति है। वास्तव में कविता कंठ करने और कविता-पाठ की किसी एक घटना की स्मृति में इतना ही अन्तर है कि एक हमारे स्नायु-यन्त्र के निम्न या स्थूल स्तरों से संबन्ध रखती है और दूसरी उन्नत या सूक्ष्म स्तरों से। इनमें एक

अन्तर और भी है जो अन्तर सामान्यतः दृष्टि-विषयों और श्रोत्र-विषयों में होता है। एक में विषय को हम एक साथ देख सकते हैं और दूसरे में क्रमशः, और जैसा कि हम अभी देखेंगे, इनकी स्मृति भी इसी प्रकार होती है। कविता कंठ करने और कविता-पाठ की किसी घटना विशेष की 'एक साथ पूर्ण प्रस्तुत' स्मृति में भी यह अन्तर है कि जहाँ एक को हम क्रमशः ग्रहण करते हैं दूसरे को एक साथ ही समवेत रूप में, ग्रहण कर लेते हैं।

इस विवेचन में इतना आगे बढ़ कर हम एक बार फिर पीछे की ओर लौटते हैं,—यदि मस्तिष्क के प्रदेश विशेष स्मृति-विशेषों के आधान होते हैं और इन प्रदेश-विशेषों की अनुपस्थिति स्मृति विशेषों की अनुपस्थिति का कारण बनती है तो उन प्रदेशों के पुनः ठीक हो जाने पर भी वे स्मृतियाँ नहीं लौटनी चाहिएँ जो पहले इन प्रदेशों में मुद्रित थीं। मान लीजिए, मैंने एक पुस्तक पढ़ी है और उसकी स्मृति मुझमें इस रूप में विद्यमान है कि मैं उसका शब्दों में विवरण दे सकता हूँ, पुस्तक को देखकर पहचान सकता हूँ इत्यादि। अब मस्तिष्क के किसी भी प्रदेश के अपसारण के पश्चात् मैं पुस्तक को नहीं पहचान सकता और पृष्ठ भाग के अपसारण के पश्चात् पाठ का शाब्दिक विवरण नहीं दे सकता; अब इन प्रदेशों के ठीक होने पर मुझ में केवल उस पुस्तक को पुनः पढ़कर उसी प्रकार उसकी स्मृति प्राप्त करने की शक्ति तो लौटनी चाहिए किन्तु पूर्व घटना की स्मृति क्योंकर लौटनी चाहिए? इस प्रकार हमारे प्रथम तर्क को हमारे ही विरुद्ध प्रयुक्त किया जा सकता है। स्वप्नों से भी निश्चित रूप से यह प्रमाणित नहीं होता कि स्मृति का आधार मस्तिष्क ही है। क्योंकि यदि स्वप्नों का कारण शारीरिक भी हो तो भी उनकी उत्पत्ति मानसिक हो सकती है और इस कारण-शृंखला में शरीर केवल एक कीर मात्र हो सकता है। इस प्रकार, इन प्रमाणों से हम किसी परिणाम पर नहीं पहुँच सकते।

किन्तु स्मृति की शारीरिकता अथवा उसकी कारणता की भौतिकता के पक्ष में कुछ और तर्क दिए जा सकते हैं: हम यह तो जानते ही हैं कि मस्तिष्क के प्रदेश-विशेषों के अपसारण से स्मृति-विशेष की शक्ति जाती रहती है, जैसा कि हमने प्रथम भाग के प्रथम निबन्ध के अन्तिम पृष्ठों में देखा था। हम यह भी जानते हैं कि एफेसिया और एग्नेसिया (Aphasias and Agnesias) के कितने ही विभिन्न भेद हैं जिनमें स्मृति विभिन्न प्रकार से स्खलित होती है। हम यह भी जानते हैं कि स्मृति के बहुत से प्रकार केवल मनुष्य में ही पाए जाते हैं। एम्नेसिक-एफेसिया के एक प्रकार में मनुष्य जाति-प्रत्ययों का ज्ञान खो बैठता है, जब कि वह, यदि उसे बता दिया जाए'

तो किसी विशेष विषय की जाति-संज्ञा याद रख सकता है । उदाहरणतः, ऐसा रोगी पुस्तक पढ़ सकता है किन्तु उसका अन्य पुस्तकों से सम्बन्ध नहीं जान सकता और यदि उसे बता दिया जाए कि 'यह पुस्तक है' तो वह उस विशेष पुस्तक के लिए यह नाम याद रख सकता है, यदि उसे कुछ और पुस्तकें देकर बता दिया जाए कि 'वे पुस्तकें हैं, तो वह उनके लिए याद रख सकता है कि 'वे सब मिला कर पुस्तकें हैं' इत्यादि । जाति-प्रत्ययों का ज्ञान सम्भवतः अत्यन्त निम्नस्तरीय चेतना के प्राणियों में भी पाया जाता है, किन्तु जैसा कि उनके व्यवहार से स्पष्ट है, उनका यह ज्ञान चेतन प्रकृति कोग्नीटिव-नेचर का न होकर प्रवृत्यात्मक प्रकृति का होता है । यदि हम यह मान लें, जैसा कि मानना उचित ही है, तो इन निम्न-स्तरीय चेतना के प्राणियों में हम स्मृति के उस रूप को स्वीकार नहीं कर सकते जिसे रसल मानसिक स्मृति (नेमिक) कहते हैं; दूसरे शब्दों में, जीवन के इतिहास के अधिकांश युगों में स्मृति नाम के गुण का कोई अस्तित्व नहीं है । किन्तु जाति-प्रत्ययों का 'ज्ञान' है और मनुष्य में भी यह 'ज्ञान' विशेष-समृद्ध आदत या अभ्यास से अधिक कुछ नहीं है, जैसा कि रसल मानते हैं । इस प्रकार हमारा जाति-प्रत्ययों का ज्ञान, जिसमें स्मृति आधार-भूत तत्त्व है एक शारीरिक घटना है ।

इसी प्रकार, मान लीजिए मैं किसी से मिलने जा रहा हूँ । जाने से पूर्व मुझे कहा जाता है कि मैं आते हुए कुछ सामान खरीदता लाऊँ, और ठीक जाने के समय मझे वह वस्तु न लाने को कह दिया जाता है । अब अनेक बार ऐसा होता है कि जहाँ से मुझे वह सामान खरीदना था उस स्थान से आगे निकल आने पर हाथ कुछ 'अभाव अनुभव' करता है, जैसे पहले इसमें कुछ उठाया हुआ था, जो अब नहीं है । कुछ सोचने पर ज्ञात होता है कि मैं वह सामान खरीद कर नहीं लाया जो लाना था, और तब क्रमशः ध्यान आता है कि वह मुझे न लाने को कह दिया गया था । किन्तु थोड़ा आगे चलने पर फिर उसी प्रकार अनुभव होता है और तब फिर उसी प्रकार क्रमशः उसका समाधान करना पड़ता है । यदि रास्ता कुछ लम्बा है और ध्यान किसी अन्य चिन्तन में मग्न है तो इसकी आवृत्ति अनेक बार हो सकती है । यहाँ यह स्पष्ट है कि मैंने वह सामान इस प्रकरण में पहले नहीं उठाया था, यह भी स्पष्ट है कि मैं उसे कहीं खो भी नहीं आया था । अतः हाथ के मस्सल्ज़ के अभ्यस्त होने का प्रश्न यहाँ नहीं उठता । यहाँ केवल मैंने कुछ सामान लाने के लिए आदेश प्राप्त किया था और चेतन रूप से यह विचार भी नहीं किया कि मैं वह

सामान किस प्रकार थैले में उठा कर लाऊँगा, यद्यपि यह ठीक है कि पहले जब भी कभी वह सामान मैं लाया हूँ, उसी प्रकार थैले में लाया हूँ जैसे उस दिन मेरा हाथ उसका अभाव अनुभव करता है। अब इसकी व्याख्या मनस्कारणता से इस प्रकार की जा सकती है कि अतीत घटना-आदेश किसी वर्तमान उकसाहट के साथ कारणरूप में संयुक्त होकर मेरे हाथ में स्फुरण को उत्पन्न करता है। किन्तु यह व्याख्या एकदम जबरदस्ती है। इस विवरण में दो बातें स्पष्ट हैं—(१) आदेश कुछ एसोसियेशंज के साथ वस्तु जतलाने की पूर्व क्रिया के साथ मस्तिष्क में संयुक्त हो गया और (२) हाथ के मस्सल्ज़ के अभ्यस्त न होने पर भी मस्तिष्क के किसी भाग में यह एसोसियेटिड घटना इस प्रकार मूलित हो गई कि इसे हम 'मस्तिष्क के प्रदेश-विशेष का अभ्यस्त होना' कह सकते हैं। अब हम अभ्यास के कुछ निम्न स्तरों की संक्षिप्त समीक्षा के पश्चात् स्मृति के उस पहलू को देखेंगे जिसे रसल और बर्गसां विशुद्ध स्मृति कहते हैं।

मान लीजिए, मैं एक कमरे में कुछेक बार जाता हूँ और इस प्रकार उस कमरे से, उसकी समस्तता के साथ, मेरा परिचय हो जाता है। मेरे उसकी व्यवस्था से अभ्यस्त होने पर उस व्यवस्था में कुछ सामान्य-सा परिवर्तन कर दिया जाता है। अब जब मैं उस कमरे में आता हूँ तो अनुभव करता हूँ जैसे कमरे में कुछ परिवर्तन हुआ है—कमरा 'वही नहीं है।' संभव है, मैं जोर देकर परिवर्तन की प्रकृति को जान सकूँ और संभव है, न भी जान सकूँ। पीछे प्रकृति और विचारणा के अध्ययन में हमने बन्दर के सम्बन्ध में दिखाया था कि उसके खाने के कमरे में नीले के स्थान पर लाल कपड़ा बदल देने पर वह उस कमरे को पहचान नहीं सका था। इसके विपरीत, एक कबूतर पर मैंने प्रयोग कर देखा था कि उसकी स्मृति में केवल दिशा की सापेक्षता का ही महत्त्व है। मैंने एक कबूतर का घोंसला उसके पूर्व स्थान से लगभग २० इंच की दूरी पर रख दिया और उसके स्थान पर एक बिल्कुल भद्दा-सा घोंसला बनाकर उसमें मुर्गे के दो अंडे रख दिये। इसके बावजूद दम्पति पूर्वस्थानीय घोंसले पर ही बैठे और मुर्गे के बड़े-बड़े अंडे सेते रहे। मैंने आस-पास रंग बदल कर भी बहुत देखे, किन्तु उन्होंने किसी और चीज की परवाह नहीं की। अन्त में मैंने उनके आने-जाने के रास्ते को उलट कर देखना चाहा, किन्तु वे आते उसी रास्ते से थे जो रास्ता उनका निश्चित था, मैंने उसे बन्द रखना प्रारम्भ किया किन्तु वे दूसरे रास्ते से, जिससे मैं उन्हें बाहर जाने को बाध्य करता था, नहीं अन्दर आते थे। हमारे विचार में इन तीनों स्मृतियों में

मौलिक अन्तर नहीं है, हम इस स्मृति-ज्ञान को मसलज्ञान (नॉलिज ऑफ मसल्ज़) भी कह सकते हैं।

इसी प्रकार हमारे जाति-प्रत्ययों के ज्ञान की व्याख्या भी की जा सकती है। मान लीजिए, मैं एक कुत्ते को देखता हूँ और जानता हूँ कि—यह कुत्ता है। अब मेरे इस कुत्ते के ज्ञान की क्या प्रकृति है ? हम प्रायः कुत्ते को चार प्रकार से जानते हैं—'कुत्ता' शब्द से, कुत्ते की आवाज से, दृष्टि से, और एक सीमा तक, उसके स्पर्श से भी। इनमें पिछले तीन प्रकार से ज्ञान स्पष्ट रूप से एसोसियेशन या आदत के कारण है। अब प्रथम प्रकार का ज्ञान अधिक स्पष्ट रूप से, कहा जा सकता है, विशुद्ध स्मृति से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि कुत्ता शब्द कहने से हमारे मस्तिष्क में कुत्ते का चाक्षुष, या स्पर्श सम्बन्धी अथवा उसकी ध्वनि का चित्र जागृत होगा। यहाँ हम 'कुत्ता' शब्द को उकसाहट कह सकते हैं, चित्र-विशेष की स्मृति की घटना और कुत्ते के हमारे किसी पूर्व दर्शन को, जिस कुत्ते के जिस भी रूप का चित्र हमारे सम्मुख आता है, स्मृति-कारणता (Mnemic causation)। किन्तु रसल यहाँ भी स्मृति-कारणता को स्वीकार नहीं करते, वे कहते हैं—"अगली स्टेज यह ज्ञान (Recognition) है। इसे दो अर्थों में लिया जा सकता है, प्रथम—जबकि एक वस्तु न केवल परिचित ही मालूम पड़ती है प्रत्युत् हम जानते भी है, हम बिल्लियों और कुत्तों को जानते हैं, जब हम उन्हें देखते हैं। यहाँ हम पर पिछले अनुभव का निश्चित प्रभाव रहता है किन्तु आवश्यक रूप से अतीत का वास्तविक ज्ञान नहीं होता। जब हम बिल्ली को देखते हैं, हम जानते हैं—यह बिल्ली है, क्योंकि हमने पहले बिल्लियाँ देखी होती हैं, किन्तु हम उस विशेष समय को याद नहीं करते जब कि हमने किसी बिल्ली विशेष के पहलू विशेष को देखा हो। इसलिए बिल्ली' शब्द से हमारी बिल्ली की स्मृति एसोसियेशन की आदत से अधिक नहीं होती। वह विषय-विशेष, जिसे हम देख रहे हैं, बिल्ली शब्द के साथ एसोसियेटिड होता है अथवा बिल्ली की आवाज के श्रोत्रिय-चित्र से सम्बद्ध होता है।" इससे स्पष्ट है कि रसल केवल अतीत घटना के चित्र को ही स्मृति नहीं समझते और इस प्रकार यह चित्र अपने आप में स्मृति-कारणता से कोई सम्बन्ध नहीं रखता और यह भी कि स्मृति-चित्र का कारण शरीर में ही निहित है। हमारे इस परिणाम का कारण स्पष्ट है:—रसल बिल्ली शब्द से बिल्ली के चाक्षुष चित्र की उत्पत्ति को स्मृति-कारणता के रूप में स्वीकार नहीं करते, जिसका अर्थ है कि बिल्ली का चाक्षुष चित्र, जिसमें किसी अतीतता की अनुभूति या ज्ञान सन्निविष्ट नहीं रहता—की उत्पत्ति हमारे मुद्रण-सिद्धान्त के अनुसार होती है, दूसरे शब्दों में, इस कारणता की प्रकृति

एकदम भौतिक है। अब रसल स्मृति-कारणता की पुष्टि में केवल एक विशिष्टता सुरक्षित रखते हैं, वह है अतीत घटना की स्मृति के साथ-साथ उसकी अतीतता का ज्ञान भी रहना। बर्गसां भी स्मृति की मानसिकता के पक्ष में इस विशेषता को विशेष प्रमुखता देते हैं। रसल कहते हैं—"मान लीजिए, आप मुझे पूछते हैं कि मैंने प्रातराश में क्या खाया था। मानलें कि इस बीच मैंने अपने प्रातराश के सम्बन्ध में कुछ नहीं सोचा, और जब कि मैं प्रातराश कर रहा था, मैंने उस सम्पूर्ण घटना को शब्दों में भी नहीं सोचा। इस केस में मेरी पूर्व घटना की स्मृति सच्ची स्मृति होगी, अभ्यास-स्मृति नहीं। यहाँ याद करने की प्रक्रिया मेरे प्रातराश के स्मृति-चित्रों से युक्त होगी और इन चित्रों के साथ मुझमें एक विश्वास-भावना होगी जो कि स्मृति-चित्रों को कल्पित चित्रों से पृथक् करेगी।" यहाँ रसल, वाट्सन इत्यादि बिहेव्यरिस्टों के विचारों और स्मृतियों इत्यादि को भाषा की आदत (Language Habit) कथन करने से प्रातराश की घटना को उन सब निषेधों से विशिष्ट कर देते हैं जिन से उसकी मानसिकता की रक्षा हो सकती है। किन्तु जैसा कि मैंने पीछे सामान लाने के आदेश और निषेध का उदाहरण दे कर दिखाया था, केवल सामान लाने का आदेश, जिसके घटित होने पर मैंने कोई बात नहीं सोची, उस सम्पूर्ण योजना से सम्बद्ध हो गया जो कि सामान लाने का आदेश पालन करने की अवस्था में क्रियान्वित होती। यही बात प्रातराश के लिए भी सत्य है। प्रातराश की क्रिया के घटित होने पर वे सम्पूर्ण एसोसियेटिड क्रियायें भी स्वतः ही उसी प्रकार घटित हो जाती हैं, जैसे घड़ी में चाबी देने पर उसके सब पुर्जे सक्रिय हो उठते हैं। अब मान लीजिए, मैं प्रातराश करते समय उस सम्पूर्ण घटना को शब्दों में भी सोचता जाता हूँ और बाद में पूछने पर मैं उसका विवरण दे देता हूँ। क्या प्रातराश की घटना को उस या किसी और अन्तर में शब्दों में सोच लेने पर वह भाषा की आदत हो जाएगी और न सोचने पर वह मानसिक स्मृति होगी? मान लीजिए, प्रातराश की घटना को शब्दों में सोचने के पश्चात् मुझ में भाषा-स्मृति जाती रहती है, तब मुझे प्रातराश की घटना को याद नहीं कर सकना चाहिए? जबकि यह बात नहीं होती। मान लीजिए, हमारे ये सब तर्क गलत हैं, उस अवस्था में भी रसल की कल्पना अन्तर्विरोध-पूर्ण है। रसल ने जब प्रातराश करते समय या उसके बाद उस घटना को शब्दों में नहीं सोचा, अब जब मैं उनसे प्रातराश के सम्बन्ध में शब्दों में पूछता हूँ तो उन्हें उस घटना का स्मरण नहीं होना चाहिए। क्योंकि प्रातराश शब्द केवल उन्हीं एसोसियेशंज़ को जागृत कर सकता है जो इस शब्द से सम्बद्ध हों। मेरे प्रातराश शब्द कहने पर उन्हें केवल

तभी प्रातः के प्रातराश का स्मरण होना चाहिए यदि प्रातराश के समय इस शब्द का प्रयोग हुआ हो तो। यदि इस शब्द के प्रयोग के बिना भी प्रातः की प्रातराश की घटना का स्मरण होता है तो वह इसीलिए कि (१) प्रातराश की घटना घटित होने के साथ ही अपनी उन सब एसोसियेशंज से मस्तिष्क में में संयुक्त हो गई थी जो प्रतिदिन की प्रातराश की घटनाओं के कारण मस्तिष्क में विद्यमान हैं और (२) प्रत्येक प्रातराश की नवीन घटना उसी प्रकार, एक जातीय-घटना है जिस प्रकार कोई भी नवीन पुस्तक जाति-वस्तु है। इसलिए-रसल की मानसिक स्मृति की यह व्याख्या भ्रान्त है। रसल आगे स्मृति चित्र को संकेत कहते हैं और हमारी चेतना का विषय स्मृतिचित्र को न मान कर उस अतीत विषय को मानते हैं, स्मृतिचित्र जिसका संकेत है। वे कहते हैं "स्मृति-चित्र उसी प्रकार अतीत विषय का संकेत है जिस प्रकार सेंसेशन उकसाहट विषय का और हमारी चेतना-स्मृति में उसी प्रकार अतीत विषय की चेतना होती है जैसे सेंसेशन में उकसाहट विषय की।" यह प्रश्न ज्ञान-मीमांसा से सम्बन्ध रखता है और हमारे वर्तमान प्रसंग में यह विवाद अनावश्यक होगा, और सब से बड़ी बात यह है कि हमें भय है कि हम इस वाक्य को ठीक तरह से नहीं समझ रहे हैं, क्योंकि रसल, जैसा कि हमने पीछे देखा था, केवल कारण को ही मानसिक (Mnemic) मानते हैं परिणाम (स्मृति-ज्ञान) को नहीं। और यह संभव प्रतीत नहीं होता कि रसल जैसा महान् दार्शनिक इतनी छोटी भूल करेगा। इसलिए उचित होगा कि हम रसल की आलोचना के प्रसंग में केवल स्मृति-कारणता तक ही सीमित रहें और स्मृति-ज्ञान के सम्बन्ध में प्रथम वाक्य को ही उनका अभिप्रेत समझें।

जैसा कि हम देख रहे थे, केवल अतीतानुभूति के आधार पर स्मृति को मानसिक और शारीरिक कहना अनुचित है; क्योंकि इस अनुभूति से स्थिति में कोई आधारभूत अन्तर नहीं पड़ता। मान लीजिए, मेरे सामने कोई कुत्ता नहीं है और अचानक बैठे-बैठे मेरे मस्तिष्क में कुत्ते का चित्र जागृत होता है जो कि किसी विशेष का न होकर साधारण का है, तो भी वह एक चित्र है जो कि किसी उकसाहट के कारण मस्तिष्क में जाग्रत हुआ है, उसमें कोई शाब्दिक या चाक्षुष एसोसियेशन भी नहीं है किन्तु साथ ही साथ अतीतता की अनुभूति भी नहीं है। अब रसल के अनुसार यह स्मृति चित्र नहीं होगा। साधारण अर्थ में भी यह स्मृतिचित्र नहीं होगा। मान लीजिये, इस चित्र की हम शारीरिक कारणता के अनुसार व्याख्या करते हैं, क्योंकि इस में अतीतानुभूति नहीं है जो कि तभी हो सकती थी यदि यह चित्र अपने साथ किन्हीं अन्य अतीत घटनाओं की एसोसिएशन लिए होता, अर्थात् यदि वह किसी विशेष कुत्ते के विशेष काल

का चित्र विशेष होता। किन्तु तब केवल अतीतानुभूति के कारण स्मृति-विशेष की भौतिक-कारणता के सिद्धान्तानुसार व्याख्या क्यों नहीं की जा सकती ? अब जोंज़ को लें। मान लीजिए, मैं जोंज़ को याद कर रहा हूँ। अब उसकी स्मृति उसकी किसी मुद्रा-विशेष की भी हो सकती है और मुद्रा-सामान्य की भी हो सकती है और दोनों ही स्मृतियों में अतीतानुभूति नहीं भी हो सकती। जोंज़ से सामान्य प्रतिनिधि चित्र को यदि स्मृति-कारणता के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता क्योंकि यह चित्र जोंज़ विशेष का चित्र नहीं हैं प्रत्युत इस घटना-समूह का सामान्य प्रभाव मात्र जिसे मैं जोंज़ कहता हूँ, तो जोंज विशेष का चित्र भी स्मृति-कारणता के अन्तर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि इस सामान्य और विशेष की स्मृति में केवल दो प्रकार से ही अन्तर हो सकता है और इन दोनों अन्तरों से जोंज़ विशेष की स्मृति स्मृति-कारणता के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं करती, यह अंतर इस आधार पर होगा कि (१) जोंज़ सामान्य की स्मृति में एसोसियेटिड घटनाएँ उसी शृंखला में से होंगी जिसे मैं जोंज़ कहता हूँ और ये किसी अतीत विशेष से सम्बन्ध न रखकर अतीत सामान्य से सम्बद्ध होंगी, इसके विपरीत जोंज विशेष की स्मृति में एसोसियेटिड घटना के रूप में जोंज़ के उस पहलू-विशेष का अतीत काल-विशेष में मुझपर प्रभाव तथा वह दैशिक परिस्थिति होगी जिसमें वह पहलू-विशेष घटित हुआ था। दूसरे (२) वह पहलू विशेष वही या वैसा ही होगा जिस प्रकार उस समय मैंने उसे देखा था, जबकि जोंज़ सामान्य पर यह बात लागू नहीं होती। हमारे विचार में रसल का ज़ोंज सामान्य के स्मृति-चित्र को भौतिक कारणता के अन्तर्गत रखने का यही अभिप्राय हो सकता है। जैसा कि वे कहते हैं—"जब हम एक बिल्ली देखते हैं, हम जानते हैं कि यह एक बिल्ली है क्योंकि हमने पहले भी बिल्लियाँ देखी हैं, किन्तु उस समय हम किसी विशेष अवसर का स्मरण नहीं करते जब कि हमने कोई बिल्ली देखी होती है। पहचान, इस अर्थ में एसोसियेशन की आदत से अधिक कुछ नहीं है।" यहाँ एसोसियेशन से अभिप्राय है किसी समान वस्तु को देखकर वैसी ही समान वस्तु का स्मरण होना जो कि अतीत घटना होने पर भी अतीतता का विश्वास लिए हुये नहीं है। इसी से रसल मानसिक स्मृति के उदाहरणरूप में प्रातः प्रातराश की घटना को प्रस्तुत करते हैं। उस प्रकरण में वे आगे कहते हैं कि "इस स्मृति में अतीतता का विश्वास किसी एसोसियेशन की आदत के कारण नहीं हो सकता।" किन्तु अनेक बार ऐसी एसोसियेशन किसी अतीत घटना-विशेष की स्मृति की कारण भी हो सकती है जिसमें अतीततानुभूति भी हो और जिसमें स्मृति के सभी लक्षण जिन्हें रसल स्मृति-कारणता के लिए

आवश्यक मानते हैं। रसल स्वयं एक अन्य निबंध में पीटस्मोक की गन्ध से किसी अतीत नगर यात्रा की स्मृति का उदाहरण देते हैं। इससे भी अधिक सूक्ष्म उदाहरण हो सकता है—बादलों की धूप इत्यादि के कारण किसी अतीत की स्मृति हो आना। स्मृति-कारणता के अनुसार अतीत नगर यात्रा की घटना पीटस्मोक की गन्ध के साथ अतीत घटना की स्मृति का कारण होगी और इसी प्रकार इसके उदाहरण में भी। इस के पक्ष में दो तर्क दिये जाएँगे (१) पीटस्मोक की गन्ध के एसोसियेटिव घटना होने पर भी नगर यात्रा की सम्पूर्ण घटना और पीटस्मोक में कोई समता नहीं है जैसे, बिल्ली वर्तमान और बिल्ली अतीत में है। (२) इस स्मृति के साथ विशेष नगर-यात्रा, जो कि अद्वितीय घटना है, की स्मृति ही होती है और उसमें अतीतता की अनुभूति विद्यमान रहती है। इसे हम एक और उदाहरण से स्पष्ट करेंगे—'दूध का जला छाछ फूँक फूँक कर पीता है, दूध से जले व्यक्ति के छाछ फूँक-फूँक कर पीने में दोनों प्रकार की 'स्मृति' हो सकती है—(१) छाछ देखकर दूध से जलने की घटना की स्मृति के बिना ही छाछ से भय आना और (२) छाछ को देखकर दूध से जलने की घटना-विशेष की स्मृति होना। सामान्यतः प्रथम प्रकार की घटना बच्चों और मनुष्येतर प्राणियों में होती है और दूसरी प्रकार की मनुष्य में। इन में प्रथम को शारीरिक और द्वितीय को मानसिक कहा जा सकता है। यही बात पीटस्मोक से नगर-यात्रा की स्मृति के सम्बन्ध में कही जा सकती है। किन्तु बादलों की धूप से किसी अतीत की स्मृति हो आना स्वतंत्र व्याख्या की अपेक्षा रखता है। मान लीजिए, संध्या समय कुछ हल्के बादलों के कारण धूप का एक विशेष सुहावना रंग देख कर मुझे एक मधुर अभावानुभूति होती है और किसी स्मृति-चित्र का ज्ञान नहीं होता। इस स्थिति को निम्न प्रकार से चित्रित किया जा सकता है—
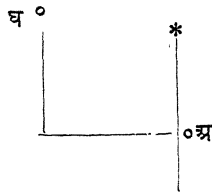
इस ग्राफ में हम घ और अ के अन्तर के सम्बन्ध में कोई धारणा नहीं बनाते। अब ऐसी स्थिति अनेक बार होती है, जैसा कि 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में अभिशप्त दुष्यन्त वीणा पर अपनी पत्नी को गाते सुन कर कहते हैं—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः......इत्यादि।

अब यह अभावानुभूति निश्चित रूप से किसी पूर्व घटना और वर्तमान उकसाहट का परिणाम है किन्तु इसमें कोई निश्चित अतीतानुभूति नहीं है और न किसी घटना-विशेष की स्मृति ही है। मान लीजिए, कुछ ज़ोर देने पर अथवा मस्तिष्क को ढीले छोड़ने पर मुझे किसी अतीत घटना-विशेष की नहीं, प्रत्युत अतीत समय-सामान्य की स्मृति हो आती है जबकि मैं, कहें, "किसी विद्यालय के होस्टल में रहता था। उन दिनों भी कभी-कभी संध्या के समय इसी प्रकार की धूप होती थी, शायद मैं कुछ अच्छा भी अनुभव करता था किन्तु कोई अभावानुभूति तब इस प्रकार उद्बुद्ध नहीं हुई थी।" अब इस स्मृति में अतीतानुभूति तो होगी किन्तु स्मृति घटना-विशेष की न होकर घटना-सामान्य की होगी। यह उकसाहट एक सहयोगी कारण के रूप में किसी अतीत घटना नहीं घटनाओं को साथ लिए होगी। इसमें एक और तत्व का अभाव भी होगा जोकि मानसिक कारणता के लिए आवश्यक हैं, वह है यह विश्वास कि—"ऐसा पहले हुआ था।" इस विश्वास को रसल सबसे अधिक ठोस प्रमाण मानते हैं मनस्कारणता के होने का। इस स्मृति में यह विश्वास न होने का कारण यह है कि जबकि मुझमें अभावानुभूति उत्पन्न हुई, मुझमें कोई स्मृति-चित्र स्वतः उत्पन्न नहीं हुआ और जब हुआ तो वह इस प्रकार, मानों कल साथ ही विविध चित्र घूम गए हों और इस चित्र-विशेष के उपस्थित होने पर प्रतीत हुआ हो कि "यह अच्छा है, सुहावना है" और इस प्रकार अभाव की कुछ पूर्ति हुई हो। इस अवस्था में ऐसा प्रतीत नहीं होता जैसे कि इस धूप-दर्शन का उस अतीत घटना-सामान्य से कोई सम्बन्ध है और वह घटना सामान्य विद्यालय के होस्टल की सांझ—की स्मृति ऐसी स्पष्ट भी नहीं होती कि उसके लिए कहा जा सके, "हाँ, वह ऐसा ही था" सिवाय उसके उन पहलुओं के जिनका उस अभावानुभूति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसे हम और स्पष्ट करेंगे—'मान लीजिए मैं संध्या के समय नियमानुसार भ्रमण को जाता था।' यह घटना सामान्य घटना है और इसकी जब कभी सामान्यतः स्मृति आती हैं तो मुझे कुछ भी विशेष आकर्षक इसमें दिखाई नहीं पड़ता, किन्तु जब कभी बादलों के धूप-दर्शन के साथ इस सैर की स्मृति होती है तो मुझे इस स्मृति में विशेष सुख मिलता है, किन्तु यह सुख इस भ्रमण के चित्रों के ज्ञान के साथ नहीं प्रत्युत उस अस्पष्ट मनःस्थिति के साथ होता है जिसकी कोई स्पष्ट अनुभूति या ज्ञान मुझे अब नहीं होता। इस उदाहरण की व्याख्या की सार्थकता को हम एक और उदाहरण से स्पष्ट करेंगे और इस प्रकरण को आगे बढ़ाएंगे। हमने बिल्ली के वर्तमान दर्शन या 'बिल्ली' शब्द के श्रवण से बिल्ली के सामान्य चित्र की उत्पत्ति का उदाहरण

पीछे दिया था और देखा था कि किस प्रकार रसल इसे मनस्कारणता के अन्तर्गत स्मृति नहीं मानते। अब हम इस उदाहरण को थोड़े से परिवर्तन के साथ रखेंगे और पिछले उदाहरण के साथ मिलायेंगे। मान लीजिए, मैं उत्तरी-ध्रुवप्रदेश में चला जाता हूँ जहाँ मैं कभी बिल्ली नहीं देख पाता। किसी दिन अचानक मैं कोई ऐसा शब्द सुनता हूँ अथवा ऐसा दृश्य—कहीं बर्फ में देखता हूँ जो 'बिल्ली' शब्द से अथवा बिल्ली की आकृति से किसी न किसी प्रकार मुझे मिलता प्रतीत होता है, अथवा और भी ठीक शब्दों में, वह शब्द या चित्र मुझमें बिल्ली की स्मृति उत्पन्न करता है। यह स्मृति ठीक उसी प्रकार क्रमशः उत्पन्न हो सकती है जैसा बादलों के धूप-दर्शन से विश्वविद्यालय-होस्टल के सांध्य भ्रमण की स्मृति और इसमें वैसी ही अतीततानुभूति भी अनिवार्य रूप से होगी जैसी पिछले उदाहरण में, क्योंकि बिल्ली अब मेरे लिये एक ऐसा प्राणी होगा जिसे मैं वर्तमान में नहीं देखता, इसमें स्मृति घटना-विशेष की न हो कर घटना-सामान्य की होगी, चाहे वह घटना सामान्य ऐसी हो कि मुझे इससे अपने घर की बिल्ली की ही स्मृति आए, और इसके साथ एक मधुर अभावानुभूति भी होगी।

अब इस अन्तिम उदाहरण से स्पष्ट है कि केवल बिल्ली को बहुत दिनों से न देख सकने के कारण 'बिल्ली शब्द का सम्पूर्ण प्रकरण ही बदल गया और इस प्रकार 'बिल्ली' शब्द एसोसियेशन की आदत का कारण न होकर रसल की मनस्कारणता का कारण हो गया। किन्तु वास्तविकता यह है कि केवल कुछ और एसोसियेशंज़ के बदल जाने के कारण हमारी आदत का सम्पूर्ण प्रकरण भी बदल जाता है और कोई अन्तर नहीं पड़ता। जहाँ बिल्ली सामान्यतः मैं देखता हूँ वहाँ उसे चाहे मैं वर्ष भर न भी देखूं तो भी 'बिल्ली' शब्द मुझमें उन अनुगामी घटनाओं से एसोसियेटिड नहीं होगा जिनसे ध्रुव प्रदेश में पहुँचने पर केवल दस-दिन का बिल्ली का पार्थक्य एसोसिएटेड होगा। यह ऐसा ही है जैसे दिल्ली से मेरठ जाने पर मुझे दिल्ली से एक वर्ष का पार्थक्य भी इतना सुदीर्घ प्रतीत नहीं होगा जितना दिल्ली से साइबेरिया जाने पर दस दिनों का पार्थक्य भी सुदीर्घ प्रतीत होगा। इसलिए बिल्ली शब्द से बिल्ली का किन्हीं भी एसोसियेशंज़ के साथ स्मृति-चित्र केवल एसोसियेशन की आदत है और इसी प्रकार धूप-दर्शन और पीटस्मोक के उदाहरणों के लिए भी।

मनस्कारणता की असंभवता एक दूसरी युक्ति से भी दर्शायी जा सकती है—यह है स्मृति-ज्ञान की व्याख्या के द्वारा। अब तक हमने केवल स्मृति के

कारणों की अमनस्कता को स्वतन्त्र रूप से देखा है, अब हम स्मृति-चित्रों के ज्ञान की अमनस्कता दर्शाकर उसके द्वारा स्मृति कारणों की अमनस्कता दर्शायेंगे।

स्मृति-ज्ञान की तीन संभव प्रकृतियाँ हो सकती हैं। इन तीनों को निम्न प्रकार से चित्रित किया जा सकता है—
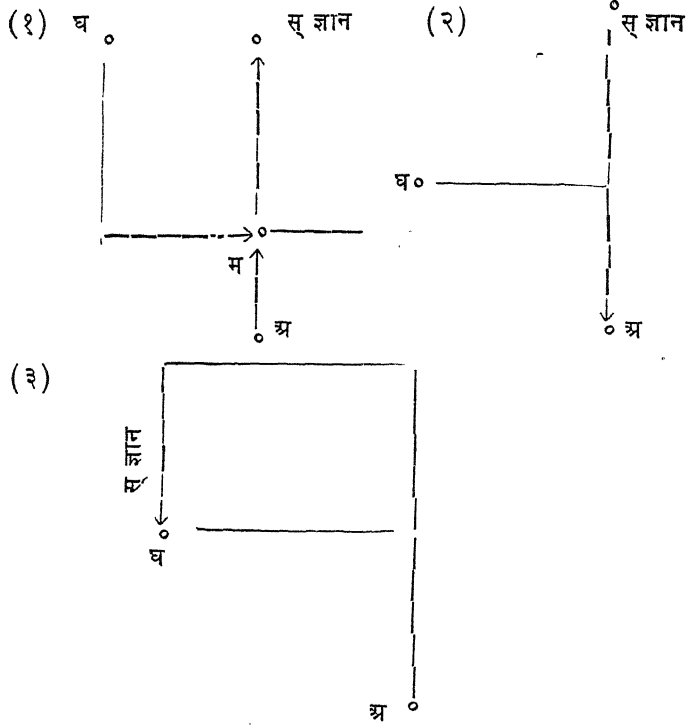
इनमें प्रथम चित्र के अनुसार अतीत घटना मस्तिष्क में मुद्रा अंकित करेगी जो कि मस्तिष्क में विद्यमान रहेगा और उकसाहट के साथ हमारे मस्तिष्क में ऐसी घटनाओं को जन्म देगा जो उसी प्रकार से मस्तिष्क में चित्र उत्पन्न करेगी, जिस प्रकार बाह्य वस्तुओं से हमारा चाक्षुष सम्पर्क मस्तिष्क में चित्रों को उत्पन्न करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार, जहाँ तक हमारा विचार है, कल्पना-चित्रों की उत्पत्ति के लिए मस्तिष्क के उन प्रदेशों का क्रिया में आना आवश्यक है जो तत्संबंधी इन्द्रियों के सम्पर्क-जन्य चित्रों की उत्पत्ति के कारण होते हैं। इस प्रकार प्रथम चित्र की कारण-शृंखला में सद्यःपूर्व की घटना ही उत्तर की कारण होती है जोकि भौतिक कारणता के अनुकूल है। इसमें हमारा ज्ञान उसी प्रकार नव्यों-

त्क्रान्त (इमर्जेंट) होता है जिस प्रकार रंग या ताप, और यह ज्ञान उन घटनाओं से सम्बद्ध होता है जो कारण-शृंखला में उसके सद्यः पूर्व की और सहानुयायिनी भी होती हैं। दूसरे चित्र के अनुसार स्मृति-ज्ञान वे घटनाएँ जो अपने साथ ये विश्वास लिए होती हैं कि ज्ञात विषय उस घटना के ही समान हैं जिन के ये संकेत अथवा चित्र हैं, किन्तु ये संकेत अथवा चित्र स्वयं क्या हैं ? यदि ये मस्तिष्क में घटित होती हुई कुछ भौतिक घटनाएँ हैं, तो इनकी उत्पत्ति कैसे हुई ? रसल इसका उत्तर देते हैं––क्योंकि अतीत घटना भी उन कारण-शृंखलाओं में से एक है जो मस्तिष्क की स्मृति-कालीन घटनाओं को जन्म देती है। किन्तु रसल यह स्वीकार करते हैं कि अतीतघटना का अस्तित्व वर्तमान में नहीं हैं। इस प्रकार स्मृति का का कारण जहाँ मानसिक है, स्मृतिज्ञान स्वयं एक भौतिक घटना है। अब, यहाँ एक और उलझन उत्पन्न हो जाती है––स्मृतिज्ञान के दो स्वतंत्र कारणों में एक उकसाहट है और दूसरा पूर्व घटना जिसका परिणाम हमारी स्मृति-ज्ञान की घटना होती है। अब ज्ञान एक वर्तमान घटना है, यह रसल मानते हैं और यह भी मानते हैं कि यह ज्ञान पूर्व घटना का नहीं होता प्रत्युत उसमें सहकारी कार्य के रूप में यह विश्वास रहता है कि वर्तमान स्मृति-चित्र पूर्व घटित घटना जैसा ही है अथवा उसी का चित्र है। तो हमारा यह ज्ञान किस वस्तु का ज्ञान है ? स्वभावतः स्मृतिचित्र का। अब प्रश्न यह है कि ये स्मृतिचित्र क्या हैं ? ये पूर्व घटना नहीं है, यह निस्संदेह है, तो यदि ये पूर्व घटना की प्रतिलिपि ही हैं, तो हम इनकी पूर्व घटना से समता के बारे में निश्चित कैसे हो सकते हैं ? हमारा यह ज्ञान सर्वथा एक नवीन घटना हैं। इस समाधान के लिए पूर्व घटना को भी उतना ही हमारे 'वर्तमान' ज्ञान का विषय होना चाहिए जितना और जिस प्रकार 'पूर्व घटना के वर्तमान संकेत हैं' अन्यथा समता के सम्बन्ध में कुछ नहीं जान सकते। इसके उत्तर में रसल दुहरे स्मृतिचित्रों की कल्पना करते हैं, एक वे जिन्हें हम जानते हैं और दूसरे वे जिन से हम ज्ञात-चित्रों का मिलान करते हैं (१) किन्तु इससे समस्या सुलझती नहीं प्रत्युत् बुरी तरह से उलझ जाती है और उपहासास्पद भी हो जाती है क्योंकि तब उन चित्रों का मिलान करने के लिए भी और दूसरे चित्र चाहिएँ ? इस समस्या को हम कुछ और स्पष्टता से समझने का प्रयास करेंगे। मान लीजिए, मुझमें लय का स्मरण होना है।* सम्भवतः इस स्मरण के सूक्ष्मतम (अथवा अस्पष्ट से अस्पष्टतम) रूप में घटित होने पर भी

* क्रिया का इस प्रकार प्रयोग कर्ता से सम्बद्ध हमारी धारणाओं से बचने

हमारे मस्तिष्क और कंठ के सम्बन्धित प्रदेश हल्के से व्यापारित होते हैं। मेरे विचार में, इसके बिना मुझमें यह स्मरण घटित नहीं हो सकता। अब मान लीजिए मैं वह लय गुनगुनाता हूँ किन्तु अभ्यास न होने से उसकी स्वर-साधना ठीक नहीं होती। चाहे मैं काफी बार प्रयास भी कर लूँ कि मेरी यह स्वर-साधना शायद ठीक न हो। किन्तु इसके साथ-साथ मुझ में ठीक लय का ज्ञान भी होगा, मैं गलत लय गुनगुनाने पर भी इस ज्ञान से युक्त होऊँगा कि लय की साधना ठीक नही है और यदि कोई उस समय ठीक गुनगुनाता है तो मैं झट पहचान लूँगा कि यह ठीक है। अब रसल कहेंगे कि मुझ में लय की स्मृति एक कल्पना-चित्र है जिसे मैं जानता हूँ और इसके अतिरिक्त एक और चित्र भी है जिससे मैं ज्ञात चित्र की सम्भवता असम्भवता का ज्ञान प्राप्त करता हूँ। किन्तु हमारे विचार में यह अवसम्भावित है। यह कहा जा सकता है कि लय की स्मृति मस्तिष्क और कण्ठ के सम्बद्ध प्रदेशों के व्यापार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और इसमें कंठ उतना ही आवश्यक है जितना मस्तिष्क और यह उस गुनगुनाहट से जरा भिन्न नहीं है जिसे मैं स्वयं या समीपवर्ती सुन सकता हूँ। और ठीक गा सकना अभ्यास पर निर्भर है और इसी प्रकार गुनगुनाहट से पूर्व की लय की स्मृति की सम्भवता भी अभ्यास पर निर्भर करती है। किन्तु गुनगुनाहट से पूर्व की लय-स्मृति को सम्यक् प्रकार से दुहरा सकना उतना अभ्यास-साध्य नहीं है जितना गुनगुनाहट को ठीक तरह से दुहरा सकना। अब यह संभव है कि मस्तिष्कप्रदेश के एक भाग में, जहाँ परमाणु अधिक स्वतंत्र और सक्रिय हों, लय की मौलिक घटना अधिक ठीक प्रकार से चित्रित हुई हो, अथवा वे उस लय को चित्रित करने में उससे कहीं कम अभ्यास की अपेक्षा रखते हों जितने कि हमारे कंठ इत्यादि रखते हैं। हम लय का तब तक स्मरणजन्य ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते जब तक कंठ भी व्यापारित न हो, क्योंकि लय का हमारा ज्ञान ध्वनियों का ज्ञान है इसी से ठीक न गुनगुना सकने पर हम ठीक को केवल इसी रूप में जानते हैं कि हम गलत को पहचान सकते हैं। एक सीमा तक यह भी अभ्यास पर निर्भर है—एक व्यक्ति, जिसका संगीत का ज्ञान बहुत अल्प हो अथवा उसने संगीत का काफी श्रवण नहीं किया हो, वह लय की सूक्ष्म गलतियों को नहीं पकड़ सकता जबकि 'अभ्यस्त कान' झट पहचान लेते हैं। यही बात चाक्षुष चित्रों के लिए भी है। इन चित्रों को भी

के लिए किया गया है। हमारी कारणवाद की व्याख्या के अनुसार कर्ता और क्रिया का यह सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

तभी हम कल्पित कर सकते हैं जब हमारा इसका कुछ अभ्यास हो और चाक्षुष-चित्रों के ज्ञान के लिए भी मस्तिष्क के और रेटिना के विभिन्न प्रदेशों को व्यापारित होना पड़ता है, ऐसा मेरा विचार है। लय के उदाहरण में यह बात एकदम स्पष्ट है क्योंकि वह अधिक स्थूल ज्ञानेन्द्रिय है। स्पर्श के विषय में यह स्थूल कथन और भी स्पष्ट सत्य है। क्योंकि स्पर्श की स्मृति तबतक हो ही नहीं सकती जबतक वही स्पर्श पुनः न हो। स्पर्श की उष्णता-शीतलता इत्यादि स्मृति के विषय एक तो भाषा की आदत (लेंग्वेजहेबिट) के रूप में बनते हैं और दूसरे प्रभाव-स्मृति के रूप में इनका स्वयं स्पर्श से कोई सम्बन्ध नहीं है। चाक्षुष-स्मृति के प्रदेश मनुष्य में बहुत अधिक विकसित हैं और दूसरे चाक्षुष-स्मृति में स्पष्ट चित्र आता है। श्रोत्रिय-स्मृति में भी कंठ का अत्यन्त हल्का व्यापार पर्याप्त रहता है जब कि स्पर्श-स्मृति में यह सुविधा नहीं है। किन्तु अभ्यास की आवश्यकता सब कहीं है। यदि एक जन्मांध व्यक्ति की आँखें बीस वर्ष की आयु में ठीक कर दी जाती हैं तो उसके लिए चाक्षुष-स्मृतियाँ तो दूर, चाक्षुष-विषयों को प्रत्यक्ष पहचानना तक असम्भव होगा और इसके विपरीत, कुशल-चित्रकार में अतीत चाक्षुष-घटनाओं का स्मृतिचित्र दूसरों के बजाय अधिक ठीक घटित होगा। किन्तु सब में ज्ञान-विषय स्मृति-चित्र समधिक धुँधला होता है और संभवतः चित्रकार भी चित्रित करने पर चित्र की सम्यक्ता-असम्यक्ता का ज्ञान किसी और चित्र के साथ मिलान करने पर ही जानता है। किन्तु इस व्याख्या में एक असंगति है—जब हम जानते केवल धुँधले चित्र को ही हैं तब ठीक-गलत का अनुमान अज्ञात चित्र के आधार पर कैसे कर सकते हैं? हमारे विचार में, इसका समाधान केवल स्मृति को भौतिक कारणता के अनुसार मान कर ही हो सकता है। यदि हम कहें कि स्मृति के विभिन्न शारीरिक स्तर होते हैं, तो अनुचित न होगा, और ये स्तर हमारे शरीर के विभिन्न प्रदेशों के विभिन्न-मात्रा में मुद्रण की स्पष्टता या सम्यक्ता के आधार पर होंगे। इसके अनुसार कल्पना-चित्र की द्वैतता का आधार यह है कि चित्र मस्तिष्क के किसी भीतरी और अधिक सूक्ष्म प्रदेश में अंकित होता है जो अधिक सुविधा से बाह्य प्रभाव के अनुसार परिवर्तित हो जाता है। यह प्रदेश उकसाहट पाकर उस चित्र या चिन्ह को किसी प्रकार हमारे मस्तिष्क के उन तन्तुओं को प्रसारित करता है जो प्रस्तुत चित्र की सम्बद्ध ज्ञानेन्द्रिय के भीतरी भाग हैं और इस प्रकार हम स्मृतिचित्रों को जानते हैं। चाक्षुष-स्मृतिचित्रों को हम जब अस्पष्ट रूप से जानते हुए यह भी जानते हैं कि हमारे मित्र की आँखें ठीक ऐसी ही नहीं हैं तब इसका कारण यह हो सकता है कि मूल-चित्र इस असम्यकता का ज्ञान देता हो, किन्तु चित्र को दृष्टि-

तंतुओं तक प्रसारित करन में अनभ्यास इत्यादि के कारण चूक आ जाती है। इसी प्रकार ध्वनि-चित्रों के लिए भी है। इसको दो प्रकार से प्रभावित किया जा सकता है (१) जैसा कि हमने कहा था, हम अनभ्यास के कारण लय ठीक जब नहीं गुनगुना पाते तब भी उसकी असम्यक्ता को जानते होते हैं और यह भी कि लय की स्मृति-चित्र के रूप में केवल कंठ को व्यापारित करने पर ही हो सकती। यदि लय की स्मृति और चाक्षुष-घटना की स्मृति में कोई मौलिक अन्तर नहीं है तो चाक्षुष-चित्र को भी ज्ञानगत होना चाहिए जब दृष्टि के भीतरी केन्द्र व्यापारित हों। किन्तु लय की स्मृति कंठ में नहीं है, यह कंठ को प्रसारित की जाती है, यह इससे स्पष्ट है कि केवल कंठ को उकसाकर यह स्मृति उत्पन्न नहीं की जा सकती। (२) इसका और भी स्पष्ट प्रमाण है किसी ध्वनि का स्मरण न कर सकना। एक मनुष्य एक स्त्री की आवाज याद नहीं कर सकता यदि मनुष्य की आवाज एकदम भारी है तो, क्योंकि वह उस प्रकार बोल नहीं सकता। लय की स्मृति नहीं है, प्रत्युत् ध्वनि के क्रमिक आरोह-अवरोह की स्मृति है। इसलिए किसी भी लय की स्मृति हो सकती है यदि स्मरण करने वाले का कंठ कुछ भी अभ्यस्त है किन्तु ध्वनि की स्मृति नहीं। किन्तु ध्वनि की स्मृति ह, यह स्पष्ट है, स्मृति केवल ज्ञान में तभी आती है जब कि वह व्यक्ति पुनः बोलता है और हम जानते हैं, यह उसी की आवाज है। इस प्रकार स्मृति-चित्र जिन्हें रसल कहते हैं कि शारीरिक प्रतीत नहीं होते, पूर्वतः शारीरिक कारणता के अनुसार व्याख्येय हैं।

किन्तु कल्पना-चित्र एक दूसरी प्रकार के भी होते हैं जिनमें उस व्यक्ति का कर्तृत्व पाया जाता है जिसके मस्तिष्क में ये चित्र घटित होते हैं। काव्य में अलंकारों का आधार भी यही कल्पनाएँ हैं। कहा जाता है कि ये हमारे मस्तिष्क में मुद्रित नहीं होते--शेखचिल्ली के पोते-पोतियाँ कभी नहीं हुई थीं और न उसका कोई भवन ही था। मेरी प्रेयसी कभी क्वीन एलिजाबेथ के सहासन पर भी नहीं बैठी। कहा जा सकता है कि यह प्रक्रिया यांत्रिक नहीं और इसमें मन का कर्तृत्व पाया जाता है। इसी प्रकार हम में अनेक ार विचार घटित होते हैं और बहुत बार हम स्वयं विचार करते हैं। कहा जा सकता है प्रथम प्रकार की घटनाओं में कारण-शृंखला का आदि का छोर मन के साथ सम्बद्ध होता है और कहा जाता है कि इन घटनाओं की व्याख्या मन का अस्तित्व अस्वीकार कर नहीं की जा सकती।

जहाँ तक मन के अस्तित्व का प्रश्न है, उसको इस प्रकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु इन घटनाओं में ऐसा कुछ नहीं है जिसकी

व्याख्या शारीरिक स्तर पर न की जा सके। दूसरी और महत्त्वपूर्ण बात कारण-संबन्धों की व्याख्या है जो मन के अस्तित्व की पुष्टि नहीं करती।

मानसिकता के समर्थक तर्क करते हैं कि हम प्रायः दो विरोधी स्थितियाँ देखते हैं जिनमें मन शरीर पर व्यापारित होता है और शरीर मन पर व्यापारित होता है अथवा नहीं होता। 'एक व्यक्ति विचार करता है कि उसका अमुक कार्य करना अधिक लाभप्रद होगा और वह उसके अनुसार कार्य करता है।' इसमें मन शरीर को व्यापारित करता है। दूसरी स्थिति वह है जब कि उसे भूख लगती है और वह खाना खाना चाहता है। अथवा, उसे छींक आती है और वह छींक देता है। इनमें प्रथम और द्वितीय स्थिति में विद्यमान अन्तर दो भिन्न स्थितियों अथवा कारणसम्बन्धों की सूचना देता है। किन्तु जैसा कि ब्रॉड कहते हैं—"हम उन स्थितियों में अकर्तृत्व (पेसिवपार्सक्सीलेंस) का अनुभव करते हैं जब कि एक शारीरिक व्यापार, जोकि चेतना से युक्त नहीं होता, ऐसे शारीरिक व्यापार में परिणत हो जाता है जो एक विशेष प्रकार की चेतना से युक्त होता है और उस अवस्था में कर्तृत्व (एक्टिव पार्एक्सीलेंस) का अनुभव करते हैं जब कि एक शारीरिक व्यापार, जोकि चेतना-युक्त होता है, उन शारीरिकों को प्रेरित करता है जो चेतना-युक्त नहीं होते।"

मन के चेतन-अचेतन प्रत्ययों के लिए भी ऐसी व्याख्या दी जा सकती है—हम अनेक वार किन्हीं अचेतन इच्छाओं और अचेतन-विचारों से प्रेरित कार्य करते हैं, इस अचेतन प्रक्रिया को मन का ठीक प्रमाण माना जाता है, फ्रायड का अचेतन मन भी एक ऐसा चैम्बर हाउस है जिसमें दमित वासनाएँ विद्यमान रहती हैं। साइकोएनेलेसिस में प्रयोग करने वाले जिस प्रकार से बात करते हैं उनसे भी कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है, जैसे कि मन शरीर से कोई पृथक तत्व हो, किन्तु साइकोएनेलेसिस के प्रयोगों की व्याख्या यदि कुछ इस प्रकार दी जाए कि—शारीरिक घटनाएँ जो कि सामान्यतः चेतना से युक्त होती हैं, जब चेतना से युक्त नहीं होतीं तब हम उन्हें अचेतन मानसिक घटनाएं कह सकते हैं। इसलिए अचेतन मानसिक घटनाओं का अंतस्संघर्ष विभिन्न शारीरिक व्यापारों का ऐसा अन्तस्संघर्ष है जोकि चेतन मानसिक व्यापारों को प्रभावित करता है। अब रोगी इस प्रकार प्रभावित कुछ मानसिक घटनाओं की श्रृंखला को देखता है और वह दूसरी किसी भी ऐसी चेतन मानसिक घटनाओं को नहीं जान पाता जोकि परिवर्तित घटनाओं का कारण हो सकती हों। मान लीजिए, उस रोगी का डाक्टर मन के अभौतिक अस्तित्व में विश्वास नहीं करता, उस अवस्था में वह केवल ऐसे शारीरिक व्यापार की कल्पना करेगा (१) जोकि ऐसी किसी भी मानसिक घटना से सहानुगमित नहीं है

जिसे कि रोगी जानता हो (२) किन्तु जो उसी सामान्य प्रकृति की है जिस प्रकृति की वे शारीरिक घटनाएँ हैं जोकि चेतन मानसिक व्यापार से अनुगमित हैं।

इस प्रकार उन घटनाओं की, जिनके लिए समझा जाता है कि वे मनके शरीर के सम्पर्क में आने पर उत्पन्न होती हैं, व्याख्या भी विशुद्ध रूप से मन के अभौतिक अस्तित्व को अस्वीकार करके की जा सकती है। किन्तु शरीर और मन अथवा शरीर (भूततत्व) इतना भौतिक नहीं है जितना सामान्यतः उसे समझा जाता है। इस प्रकरण को हम अगले निबंध में उठाएँगे और देखेंगे कि किस प्रकार शरीर (पदार्थ) और मन का एक में समावेश किया जा सकता है।

७—कारणवाद और स्वतन्त्रेच्छा का प्रश्न

मनुष्य की इच्छाएं, कार्य और विचार किन्हीं वाह्य या आन्तरिक नियमों से शासित होते हैं अथवा वह इनसे एक दम स्वतन्त्र हैं, यह प्रश्न बहुत प्राचीन है और इस संबंध में बहुत अधिक कहा सुना जा चुका है। तो भी यह प्रश्न अब भी उतना ही उत्तर सापेक्ष बना है जितना पहले कभी भी था। इस प्रश्न के इतना विवादास्पद होने का मुख्य कारण इसका हमारी धारणाओं और विश्वासों का विषय होना है। सामान्यतः साधारण मनुष्य स्वतन्त्रेच्छा के पक्ष में ही रहे हैं, यद्यपि धार्मिक विश्वास ईश्वर को, सब कुछ के साथ, हमारी इच्छाओं का भी नियन्ता मानता रहा है। दर्शन के क्षेत्र म यांत्रिकतावादी (Mechanists), स-सम्बन्धवादी (Associatonists) और सोद्देश्यतावादी (Teleologists) अपने-अपने ढंग से घटनाओं के निर्धारित होने में—सृष्टि के प्रथम क्षण में अन्तिम क्षण के लिखे होने में, विश्वास करते रहे हैं। किन्तु जितनी सरलता से इस प्रश्न को सुलझाया जाता रहा है, प्रश्न उससे कहीं कठिन है। सामान्यतः यह प्रश्न कारण-कार्य संबन्ध की प्रकृति से संबद्ध है और इस प्रश्न पर आधुनिक भूत विज्ञान और गणित ने सर्वथा नवीन ढंग से प्रकाश डाला है—पदार्थ और शक्ति (Force) सम्बन्धी सिद्धान्तों के समान ही इस सिद्धान्त की व्याख्या में भी आज आधार भूत अन्तर है।

इस का अर्थ यह नहीं कि पदार्थ, शक्ति और कारणता जैसी समस्याओं के सम्बन्ध में सब वैज्ञानिक और दार्शनिक एकमत हैं, इन में कभी कभी काफी मतभेद है, किन्तु फिर भी इन विभिन्न मतों को सामान्यतः दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। इनमें एक वे हैं जो प्राचीन दृष्टि कोण की सरल व्याख्याओं को मान कर चलते हैं; और दूसरे वे हैं जो नवीन व्याख्याओं को ठीक मानते है। उदाहरणतः डिनेमिक्स में करण-कार्य की प्रकृति को ले कर विद्वानों में गंभीर मत भेद हैं। बहुत से विद्वान डिनेमिक्स को वरणात्मक (Descriptive) मानते हैं, जब कि प्राचीन प्रणाली के अनुगामी यह स्वीकार करते हैं कि डिनेमिक्स में केवल अनुक्रम (Sequence) ही निर्देशित नहीं होते प्रत्युत् कारण-कार्य सम्बन्ध भी निर्धारित होते हैं। इस विवाद के आधार में सामान्यतः शक्ति सम्बन्धी विवाद है, जिसके सम्बन्ध में हम आगे देखेंगे, यहाँ

हम केवल इतना ही कह कर आगे बढ़ते हैं कि शक्ति का सम्बन्ध गति और पेशियों इत्यादि के तनाव से हैं और गति तथा पेशियों के तनाव की व्याख्या प्राचीन प्रणाली से नहीं की जा सकती। गति (Acceleration) केवल एक गाणितिक अनुक्रम-संस्थापन है और पेशीय-तनाव एक ऐसी अवस्था है, जिसे अविछिन्न परिवर्तन अथवा प्रक्रिया कहा जा सकता है। जैसा कि हम आगे देखेंगे, इनकी व्याख्या कारण-कार्य की प्राचीन परिभाषा के अनुसार नहीं की जा सकती।

इसी प्रकार कारण-कार्य की प्राचीन परिभाषा को क्वांटम सिद्धान्त ने एक दूसरी दिशा से चोट पहुँचाई है। क्वांमसिद्धान्त से पूर्व भूतविज्ञान में निर्धारिततावाद Determinism का बोल बाला था, जिसका कारण परमाणु के विषय में भ्रान्त धारणा का होना था। इस सम्बन्ध में हम पिछले निबन्ध में विस्तार पूर्वक देख आए हैं। यह मान लिया गया था कि विश्व एक सार्वभौमिक नियम में श्रृंखलित और निर्धारित है—काय कारण में पहले से ही निहित रहता है और प्रत्येक क्षण वही होता है जो उसे होना होता है। इसलिए भूत और भविष्यत् केवल हमारे ज्ञान की सीमाएं हैं, अन्यथा भविष्य उतना ही प्रत्यक्ष और निश्चित है जितना भूत। आज भी बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो इस दृष्टि कोण को एक मात्र वैज्ञानिक दृष्टि कोण मानते हैं। जेम्ज-ज़ींज भी, जो बीसवीं शताब्दी के महान् भूत वैज्ञानिकों में से एक था, निर्धारिततावाद Determinism के इस सिद्धान्त का बड़ा समर्थक था। उस का विचार था कि ईश्वरीय प्रतिभा किसी भी भावी क्षण पर होने वाली घटना का पूर्व कथन कर सकती है, यदि उसे 'वर्तमान' की संपूर्ण स्थिति का ज्ञान हो, इस प्रकार उसके लिए अखण्ड काल हस्तामलकवत् होगा।

किन्तु ऐसा मान लेने में कुछ आधार भूत कठिनाइयाँ हैं—ज्योतिषी हमें गिन कर बता सकते हैं कि आज से कितने वर्ष-मास-दिन और क्षण पहले सूर्य ग्रहण लगा था और भविष्य में कब लगेगा। वह प्रत्येक क्षण की सूर्य-चन्द्र इत्यादि की सापेक्ष स्थिति को बता सकता हैं, किन्तु क्या यह कारण-कार्य सम्बन्ध ज्ञान है? क्या कोई भी क्षण अ किसी भी दूसरे क्षण ब के होने को निश्चित् करता है? क्या यह केवल उसी अर्थ में परिसंख्या (Number) नहीं है जिस अर्थ में कोई भी गति एक परिसंख्या मात्र है—भौतिक यथार्थ नहीं? दूसरी कठिनाई ज्ञान-मीमांसा से सम्बन्ध रखती हैं—चन्द्र ग्रहण को हम केवल अपनो दृष्टि गत संवेदों Visual-

Stimulations के रूप में ही जानते हैं, और पृथ्वी इत्यादि की, वर्तमान ग्रहण में, सापेक्ष स्थिति का हमारा ज्ञान उतना ही आनुमानिक होता है जितना सुदूर अतीत या सुदूर भविष्य की किसी भी घटना का हमारा ज्ञान होता है। इसी प्रकार डिनेमिक्स में, ज्ञान की परिभाषा के अनुसार, कोई भी घटना दूसरी घटना के होने में उस से अधिक उत्तरदायी नहीं हो सकती जितनी दर्पण में एक छाया दूसरी छाया को धकेलने अथवा ठहरान इत्यादि में उत्तरदायी हो सकती है।

कारण-कार्य संबंधी इन आधार भूत प्रश्नों पर पुनः लौटने से पूर्व हम कुछ अन्य पहलुओं पर विचार करेंगे। जैसा कि हमने पीछे देखा था, जेम्ज़-जींज़ भूत विज्ञान में निर्धारकतावाद का पक्षपाती है, और ज्योतिष में वास्तव में किसी भी भावी क्षण को निर्धारित किया जा सकता है, जैसा कि हमने चन्द्र ग्रहण के सम्बन्ध में कहा है। किन्तु यह निर्धारितता जितनी पूर्ण ज्योतिष और बड़े पिंडों के व्यवहार में है उतनी छोटे पिंडों या परमाणुओं के व्यवहार में नहीं। परमाणु का व्यवहार और तत्सम्बन्धी ज्ञान अत्यधिक रहस्यमय है, और ऐसा वह रहेगा, किन्तु यह समझना हमारी एक दम भूल है कि हम इससे अधिक किसी अन्य पिंड के सम्बन्ध में जानते हैं। परमाणु को हम उसके रेडियेशन के द्वारा जानते हैं और इसी प्रकार तारों को भी हम उनकी किरणों के द्वारा ही जानते हैं। किन्तु परमाणु के घटक (Composit) एलेक्ट्रन की गति के निर्धारण में हम उस पूर्णता तक नहीं पहुँच सकते जिस पूर्णता तक तारों की गति के निर्धारण में पहुँच सकते हैं। जैसा कि इडिंगटन कहता है—"लेपलेस की आदर्श ईश्वरीय प्रतिभा बड़े से बड़े ज्योति- पिंड़ों से लेकर छोटे से छोटे परमाणुओं की भावी स्थिति (Position) का निर्धारण कर सकती है। तो इसके लिए हमें छोटे से छोटे कण एलेक्ट्रन को परीक्षण के लिए लेना चाहिए। मान लीजिए कि एलेक्ट्रन को एक दम साफ रास्ता दिया जाता है (जिससे वह किसी अज्ञात टकराव से बच रहे) और हम उसकी वर्तमान स्थिति के सम्बन्ध में वह सब जानते हैं जो जानना आवश्यक है। हम एक क्षण के पश्चात उसकी स्थिति को कितनी निश्चितता से बता सकते हैं ? उत्तर है कि पूर्ण निश्चित और आदर्श स्थिति में हम उसकी स्थिति को डेढ इंच के अन्दर-अन्दर बता सकते हैं, इससे कम नहीं। यह समीप से समीपतर है जो हम लेपलेस की आदर्श प्रतिमा से संभावना कर सकते हैं। यह गलती बहुत बड़ी गलती नहीं है जब कि हम जानते हैं कि

एक क्षण में इलेक्ट्रन ने १००० मील या इससे भी अधिक तय कर लिया हो सकता है।

"किन्तु यह अनिश्चितता और भी अधिक गंभीर होगी यदि हमें यह जानना हो कि एक इलेक्ट्रन एक ऐसे छोटे पिंड, जैसे परमाणु गर्भ, से टकराएगा या नहीं।"

इडिंगटन आधुनिक भूत विज्ञान में चांस और अनिर्धारिततावाद के सबसे बड़े समर्थकों में से एक हैं और वास्तव में 'संभाव्यता का सिद्धान्त' (Law of Probability) उनके लिए एक बहुत बड़ा चेलेंज है जो कारण-वाद को पुरानी निर्धारिततावादी प्रणाली पर प्रतिष्ठिति करते हैं। आज परमाणु विज्ञान (Micro Physics) अनिर्धारिततावाद अथवा संभाव्यता के सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित है न कि निर्धारिततावाद के सिद्धान्त पर। यद्यपि महान वैज्ञानिक आईंस्टीन बलपूर्वक इस सिद्धान्त का विरोध करता है और मानता है कि कोई भी विज्ञान ऐसे अस्थिर आधार पर स्थापित नहीं होना चाहिए, और वह बहुत देर से सापेक्षता सिद्धान्त (Relativity Theory) को परमाणु विज्ञान पर भी लागू करने का प्रयास कर रहा है किन्तु, अभी तक उसे इसमें सफलता नहीं मिली। उसके विचार में अनिर्धारिततावाद अतर्क सम्मत है: "विज्ञान में हम केवल इस विचार के साथ ही आगे बढ़ सकते हैं कि कोई आधार-भूत सिद्धान्त और एक निश्चित कारण-कार्य सम्बन्ध विश्व की घटनाओं में विद्यमान है।"

जहाँ तक इडिंगटन का सम्बन्ध है, वह जीज़ और लेपलेस से अधिक दृढ़ आधार पर प्रतीत होता है, क्योंकि यदि विश्व की घटनाओं में कारण-कार्य सम्बन्ध विद्यमान है तो भी वह उस प्रकार का नहीं है जैसी कल्पना वे करते हैं।

इसका अर्थ यह नहीं कि भविष्य ज्ञान असंभव है, किन्तु अभी तक ऐसा कहने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि भविष्य निर्धारित अथवा पूर्व-ज्ञेय हो सकता है। किन्तु उतना ही यह कहना भी कठिन है कि भविष्य निर्धारित नहीं है और उसका पूर्व कथन नहीं किया जा सकता। हमारे विचार में, कारण-कार्य सम्बन्ध का होना घटनाओं के निधारित होने को अवश्यम्भावी नहीं बना देता। आज हम कोष विभाजन (Cell devision) के कुछ निश्चित समय के पश्चात विकसित होने वाले प्राणी के लिंग के सम्बन्ध में बता सकते हैं, यह बहुत संभव है कि किसी समय हम यह कोष-विभाजन के एक दम

पश्चात् अथवा वपन (fertilization) के ही पश्चात् यह बता सकेंगे, किन्तु यह एक दम असंभव प्रतीत होता है कि हम किसी भी समय यह भी बता सकेंगे कि उत्पन्न होने वाला प्राणी जीवन में कितने कदम चलेगा अथवा उसकी मृत्यु कब और किन कारणों से होगी।

किन्तु हम उस प्राणी के लिंग के सम्बन्ध में किस प्रकार जानेंगे ? यह प्रश्न कारणवाद को समझने में विशेष महत्व पूर्ण है। यदि हम किसी बिन्दु अ१ पर काल क१ में किसी घटना घ१ को जानते हैं तो कारण-सम्बन्ध में संबद्ध किसी भावी घटना घ२ को जानने की संभावना का क्या आधार हो सकता है ? रसल के अनुसार कारणता वह सिद्धान्त है जिसके द्वारा हम पर्याप्त काल बिन्दुओं अथवा क्षणों पर पर्याप्त घटनाओं के ज्ञान द्वारा नवीन एक या अनेक काल बिन्दुओं पर एक या अनेक घटनाओं को अनुमित कर सकते हैं। मान लीजिए कि इस सिद्धान्त के द्वारा यदि हम घ१ के संपर्क में काल क१ पर आते हैं, घ२ के काल क२ पर घ३ के क३ पर तो हम घ१—१ को क१—१ पर अनुमित कर सकते हैं। "यह कारण वाद की गाणितिक व्याख्या है, भौतिक विश्व में इस व्याख्या का क्या आधार है ? मान लीजिए हमारा प्राणी का लिंग ज्ञान घ१ है जिसे हम क१ पर जानते हैं और प्राणी की लिंगोत्पत्ति $\text{घ}_{\text{न}}$ जो कि $\text{क}_{\text{न}}$ पर घटित होती है। अब इस घन का अनुमान हमें किसी भी काल बिन्दु क२ क३ क४····–१कन पर हो सकता था। इस प्रकार यदि $\text{घ}_{२} + १ \geq \text{घ}_{२}$ और यदि काल क२ सुविधापेक्ष (Arbitrary) है, सिवाय इसके कि क२ + १ क२ के पश्चात् ही आता है, तो हम मूल घटना से किसी भी काल बिन्दु पर कुछ घटनाओं को अनुमित (Infer) कर सकते हैं।" किन्तु प्राणी का लिंगानुमान घ१ क१ पर तभी हो सकता है यदि पहले से ही हमने घ१ और घ२ में सम्बन्ध की चरितार्थता को देखा हो। एक बार इस सम्बन्ध को देख कर हम आगे उनकी पुनरावृत्तियों को जान लेते हैं। इस प्रकार का कारण वाद विशेष का साधारणीकरण है जो अत्यन्त स्थूल आधारों पर होता है। साधारणीकरण की स्थूलता से अभिप्राय केवल यही है कि जब कि हम साधारणीकरण में समान कारण—समान कार्य की कल्पना को मान कर चलते हैं, कभी भी वही कारण दोबारा अस्तित्व में नहीं आता और इसी लिए कभी भी वही कार्य पुनः घटित नहीं होता। इसलिए भौतिक विश्व में कारण से कार्य का अनुमान एकदम श्रद्धा पर निर्भर होता है और कार्य का उसी प्रकार घटित होना, जैसा वह अनुमित होता है कम या अधिक संभावित ही होता है निश्चित नहीं। चाहे व्यवहारिक रूप से, अनुमित

कार्य की उत्पत्ति निश्चित ही होती है—उदाहरणतः प्रत्येक चेतन मनुष्य को सूई चुभोने पर पीड़ा का अनुभव निश्चित रूप से होगा—किन्तु सिद्धान्ततः इसे प्रायः निश्चित अथवा बहुत अधिक संभाव्य ही कहा जा सकेगा। (इडिंगटन)

कारणवाद को इस रूप में प्रस्तुत करना कि 'कार्य अपने कारण का अनिवार्य परिणाम है' भ्रांति जनक प्रतीत होता है। यह भ्रांति 'वही कारण वही कार्य' की उक्ति से प्रेरित प्रतीत होती है। किन्तु कोई भी कारण कभी भी 'उसी प्रकार' घटित नहीं होता, किसी भी घटना की कभी ठीक पुनरावृत्ति नहीं होती, क्योंकि प्रत्येक घटना उस आयोजन का अविभाज्य अंग बन जाती है जो कि नवीन घटना के घटित होने का आधार प्रस्तुत् करता है। इसके अतिरिक्त, यह कल्पना अत्यन्त अव्याप्ति दोष पूर्ण भी है, इसका क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, क्योंकि यह अनुमितियों (Inferences) के विस्तृत क्षेत्र को आवृत नहीं करती, जब कि कारण सिद्धान्त एकदम अनुमान पर आधृत है।

जैसा कि हमने पीछे कहा था, डिनेमिक्स मुख्यतः विवरणात्मक है, इसका अभिप्राय यह है कि इसमें शक्ति की कल्पना के लिए अब कोई स्थान नहीं है। गति भौतिक वास्तविकता न होकर मात्र एक संख्या है। इसी प्रकार हमने आगे 'पदार्थ और मन' निबन्ध में देखा है कि ऐटम (परमाणु) भी एक वस्तु न होकर मात्र एक प्रक्रिया (Process) है। किन्तु अनुमान का आधार यह विश्वास है कि वर्तमान भूत से और भविष्यत् वर्तमान से निर्धारित होता है। हमारे विचार से यह विवरण-सिद्धान्त के विपरीत भी नहीं है यदि इसकी व्याख्या कुछ उसी प्रकार की जाए तो। जैसा कि हमने अगले निबंध में देखा है, दो समयों पर 'चाँद' को वही मानने का आधार कारणता सिद्धान्त ही हो सकता है, अन्यथा चाँद कभी भी वही नहीं होता, इसी प्रकार क१ पर भावी घटना घ२ को अनुमित करना कारणता सिद्धान्त के अनुसार ही संभव है। किन्तु कारण-कार्य सम्बन्ध का पूर्ण विश्लेषण प्रायः असंभव है। कारणता की प्रक्रिया विभिन्न घटनाओं से प्रेरित होकर देश और काल में कार्यों (Effecte) के सरल योग के साथ व्यापारित होती है। इसी प्रकार वर्तमान का भी भूत की अधिक सरल घटनाओं में विश्लेषण किया जा सकता है। और इस प्रकार यदि हम वर्तमान से भविष्यत् को अनुमित कर सकते हैं और वर्तमान भूत की अधिक सरल घटनाओं में विश्लेषित किया जा सकता

हैं तो यह समझना काफी सरल हो जाता है कि कैसे कारण और कार्य का सम्बन्ध देश और काल में दो घटनाओं की सहानुयायिता (Successive correlation) का सम्बन्ध है। प्रकृति में प्रत्येक वस्तु निरन्तर परिवर्तन की 'अवस्था' मात्र है, इसलिए जिसे हम घटना कहते हैं वह भी मात्र एक धारा या प्रक्रिया मात्र रह जाती है। थीयरी ऑफ क्वांटा (स्तोक-सिद्धान्त) यद्यपि हमें बताती है कि नैरन्तर्यता केवल प्रतीति है, यथार्थ नहीं, यदि ऐसा है तो हम सिद्धान्ततः ऐसी घटनाओं को प्राप्त कर सकेंगे जो धारा (Process) नहीं हैं, किन्तु उस अवस्था में भी कोई घटना पूर्वानुगामी अथवा पश्चानुगामी घटना का 'कारण' नहीं हो सकती। किन्तु हमारे वर्तमान उद्देश्य के लिए विच्छिन्नता उपयोगी नहीं है और न वह अभी तक पूर्णतः प्रमाणित ही है। किन्तु किसी भी अवस्था में कारण-कार्य सम्बन्ध के रूप में हम केवल मात्र एक दिशा की ओर निरन्तर परिवर्तन की प्रक्रिया को जानते हैं। मान लीजिए मैं एक तारे को देखता हूँ, सामान्यतः कहा जाएगा कि तारे को मेरे देखने के कार्य का कारण तारा है, किन्तु मेरे देखने और तारे-एक भौतिक विषय-के बीच में कारणों की असीम शृंखला है जिसमें मेरी पुतली (रेटीना) इत्यादि में होता हुआ स्फुरण भी एक भाग है। इस सारी प्रक्रिया अथवा धारा में हम किस बिन्दु को कार्य और किसे कारण कह सकते हैं ? हम यहाँ मान लेते हैं कि तारा वह बिन्दु है जहाँ से कारण शृंखला व्यापारित होती है (जैसा कि हमने अगले निबन्ध में मान लिया है), किन्तु शृंखला में कार्य-कारण के विभाजन का, जिसमें कारण-कार्य के अस्तित्व को बाध्य करता है, कोई अर्थ नहीं रह जाता। इस प्रकार "भूत वैज्ञानिक सिद्धान्त यह नहीं कहेगा कि अ ब से अनुधावित होता है, प्रत्युत् यह कि एक कण (Particle) प्रस्तुत परिस्थितियों में कैसी गति प्राप्त करेगा, अर्थात् यह हमें बताता है कि कैसे प्रस्तुत कण की गति प्रत्येक क्षण में बदल रही है"—दूसरे शब्दों में, प्रत्येक नवीन घटना अपनी पूर्वानुगामी घटना को समावृत करती चलती है अथवा प्रत्येक पूर्वानुगामी घटना पश्चानुगामी घटना में समाहित होती चलती है। बर्ट्रेंड रसल इस तथ्य को बड़ी सुन्दर उपमा देकर प्रस्तुत करते हैं, वे कहते हैं—"यह कहना कि परमाणु की अवस्थिति है (It persists) उतना ही सार्थक है जितना यह कहना कि ट्यून की अवस्थिति है। यदि ट्यून पाँच मिनट समय लेती है, हम यह नहीं मानते कि यह कोई एक वस्तु है जो इस सम्पूर्ण समय में अवस्थित रहती है, प्रत्युत यह कि यह स्वरों का एक अनुक्रम है जो इस प्रकार संबद्ध ह कि इसमें एक प्रकार की एकता है। "अब हम एक स्थूल

उदाहरण समस्या को चित्रित करने के लिए देंगे––यदि हम दूध में थोड़ा दही डालते हैं और इसे उपयुक्त परिवृत्ति प्रदान करते हैं, यह घोल कुछ समय के पश्चात् दही बन जाएगा। अब हम बाद की घटना––दही से पहली घटना––दूध में दही मिलाना-अनुमित (Infer) कर सकते हैं जो कि कारणों की एक शृंखला (Train) से पश्चानुगमित हुई होगी, और यह उतना ही स्वाभाविक है जितना दूध में कुछ दही डालकर हम दही जमने की घटना, जो कि एक कारण शृंखला से पूर्वानुगमित हुई होगी, की आशा करते हैं। परन्तु कोई भी इस विचार को पसंद नहीं करेगा कि दूसरी घटना (दही जमना) ने पहली घटना और कारणों की शृंखला को घटित होने के लिए बाध्य कर दिया था, इसी प्रकार पहली घटना ने भी अनुगामी कारण शृंखला और दही जमने की घटना को बाध्य नहीं किया, यह केवल आरोह या अवरोह (Ascending or Descending) दिशा का संख्यानुक्रम है। जहाँ तक अनुमान का प्रश्न है, वह एक सीमा तक सदैव पूर्वानुगामी अथवा ब से अ की ओर उन्मुख होता है, क्योंकि जब तक एक बार दूध में दही पड़ने की आकस्मिक घटना को फलित होते हुए देख नहीं लिया जाता, हम इन दो घटनाओं के सम्बन्ध को नहीं जान सकते, अर्थात हम सदैव कारण-कार्य सम्बन्ध को दही से दूध अथवा दही घोलने की प्रथम घटना को अनुमित करने के में जानते हैं, और कारण कार्य सम्बन्ध की प्रकृति की यह विशेषता है कि हम यह नहीं कह सकते कि पहली घटना में आगे की कोई भी घटना पूर्व निश्चित (Prefigured) होती है। इस प्रकार यह न केवल पूर्वोन्मुख ही है प्रत्युत इसमें एक प्रकार की विषयीता (Subjectiveness) भी आ जाती है, क्योंकि हम उस अवस्था में भी कार्य में कारण अथवा ब में अ को समाहित नहीं देख सकते और न ब से अ तक की शृंखला के सम्पूर्ण बिन्दुओं को कभी गिन ही सकते हैं। रसल कहते हैं—

"कारण सिद्धान्त से मेरा अभिप्राय किसी भी ऐसी सामान्य प्रतिज्ञा से है जिसके द्वारा एक घटना का होना दूसरी घटना या घटनाओं से अनुमित किया जा सकता है।" उदाहरण के रूप में बिजली की चमक और कड़क में अथवा आग और धूएं में संबंध को प्रस्तुत किया जा सकता है।

इस स्थापना के पश्चात् अब हमें एक बार फिर अपने 'दूध से दही' को उदाहरण पर लौटना चाहिए। इस प्रकरण में संख्या और

रेखा की प्रकृति (Property) को समझना विशेष रूप से उपयोगी रहेगा। अब हम यह अच्छी प्रकार से जानते हैं कि दो घटनाओं, अथवा दो संख्याओं अथवा दो विन्दुओं में असंख्य अथवा असीम घटनाओं, संख्याओं अथवा विन्दुओं का अनुक्रम विद्यमान है, और हम कभी भी प्रथम से द्वितीय तक 'प्रत्येक' बिन्दुको गिनते हुये नहीं पहुँच सकते; घटनाओं अथवा विन्दुओं की व्याख्या कुछ दूसरे ढंग से भी की जा सकती है जहाँ घटनाएं अथवा क्षण कुछ कालिक परिमाण रखते हैं, और रसल ने यह (our knowledge of the External world) में लिखा भी है, परन्तु हमारे प्रस्तुत उद्देश्य के लिए उसकी आवश्यकता नहीं है। इसलिए कोई भी गणितज्ञ दो घटनाओं के बीच के अन्तर को नहीं माप सकता और इस प्रकार एक दम बाद (Immediate Next) की घटना का नहीं प्राप्त कर सकता। वह किन्हीं दो बिन्दुओं को चुन लेता है जो उसे सुविधा जनक प्रतीत हों। किन्तु ठीक यह है कि हम ब को तब तक नहीं जान सकते जब तक कि वह वास्तव विषय (Actual Data) नहीं हो लेता। पुराने दार्शनिक, जो 'वही कारण वही कार्य' की बात कहते रहे हैं, यद्यपि उसमें साधारणीकरण ही है, किन्तु साधारणीकरण में जो आधार भूत विशेषता है, उस पर ही इसमें सबसे गंभीर आघात होता है, क्योंकि 'वही' शब्द विशेष के लिए है। ईश्वरीय प्रतिभा वाला गणितज्ञ भविष्य निर्धारण में समर्थ समझा जाता है—कि वह प्रत्येक परमाणु की गति और दिशा (Velocity) तथा स्थिति (Position) का पूर्व निर्धारण कर सकता है, जैसे ज्योतिषी तारों का करते हैं, किन्तु यदि यह संभव भी हो, तो भी यह गणित वस्तुओं की अंतर्निहित प्रकृति के बारे में कुछ नहीं बताता। इलेक्ट्रन एक क्षण के पश्चात् किस बिन्दु पर होगा बताना इससे एक दम भिन्न है कि उसका कब बिस्फोट होगा। यदि हम यह मानलें कि परमाणु का आज दस बजे विस्फोट उसमें कल या करोड़ वर्ष पूर्व विद्यमान था, जिसे मानने के लिए हमारे पास कोई कारण नहीं है, तो यह एक दम उसकी गति और स्थिति के ज्ञान से भिन्न है।

"परमाणु का विस्फोट हमें कारण-कार्य सम्बन्ध के एक अन्य पहलू से परिचित कराता है, 'इस विस्फोट को हम वि$_\infty$ प्रतीक देते हैं जो कि परमाणु विशेष का अन्तर्निहित गुण है। अब यहाँ कठिनाई यह है कि हम इस वि$_\alpha$ का ज्ञान कब प्राप्त करते हैं? उस समय जब कि वि$_\alpha$ का कोई अस्तित्व नहीं होता ?" यदि हम विस्फोट से वि$_\alpha$ का परमामाणु विशेष में होना स्वीकार करते हैं तो यह अतीतोन्मुख विश्लेषण के रूप में ठीक है, किन्तु तब

हम यह भी अनुमित कर सकते हैं कि आज दस बजे वि० होने की विशेषता इस परमाणु विशेष में सैदव रही होगी, और अनुमान को केवल अतीतोन्मुख होने से ही संशयास्पद और हास्यास्पद नहीं कहा जा सकता। आज दस बजे विस्फोट का परमाणु विशेष में पहल से ही विद्यमान होना अथवा उसकी अवश्यंभाविता का यह अभिप्राय नहीं है कि यह वि० कोई ऐसी घटना थी जिसने आगे की धटनाओं को घटित होने के लिए बाध्य कर दिया प्रत्युत् यह कि यह परिवर्तन की ऐसी दिशा थी जो क्रमिक गत्यात्मकता में विकसित हो रही थी। यह है जिसे हम किसी वस्तु की अन्तर्निहित विशेषता अथवा गुण कहते हैं। ब्रिजमैन (Bridgeman) कहता है कि "हम एक सरल घटना अ को सरल घटना ब से कारण-कार्य रूप में संबद्ध नहीं प्राप्त करते, परन्तु उस आयोजना की संपूर्ण पृष्ठ भूमि उस में समाविष्ट होती है जिसमें कि घटनाएं घटित होती हैं। इस लिए कारणता एक सापेक्ष कल्पना है क्योंकि यह उस संपूर्ण आयोजना को ही आविष्ट करती है जिसमें कि घटना अस्तित्व में आती है।" किन्तु इस आयोजना में वह कारण-कार्य सम्बन्ध को जिस प्रकार प्रस्तुत करता है वह उचित प्रतीत नहीं होता, वह कहता है—"अ और ब के बीच का सम्बन्ध एक असम (Asymitricle) सम्बन्ध है जो कि इस की परिभाषा में ही निहित है। जहाँ कारण एक सुविधापेक्षी और बदलने वाला (Variable) तत्व है, कार्य वह है जो उस के अनुगत होता है। इस के अतिरिक्त अ एक से अधिक घटनाओं का कारण हो सकता है और घटनाओं की एक पूर्ण शृंखला को जन्म दे सकता ह।" यहाँ कार्य को एक निश्चित और अन्तिम मान लिया गया है, जो कि भ्रन्ति पूर्ण है, क्योंकि कार्य भी उतना ही सुविधापेक्षी और बदलने वाला (Variable) तत्व है जितना कारण। मान लीजिए कोई घटन घ^{१} घ^{२} की कारण है और घ^{१} आरबिट्रेरी है, अब घ^{२} को हम कैसे जानेगें और किस घ^{२} को कार्य कहेंगे? घटना घ^{२} को घटित होने में कुछ न कुछ समय लगेगा ही, चाहे वह कितना ही थोड़ा क्यों न हो और उस अवस्था में धटना की कुछ प्रथमावस्था और अन्तिमावस्था भी होगी, और इसी प्रकार घ^{२} की भी। तो यहाँ हम किसे कारण कहें और किसे कार्य? यहाँ हमें कारण और कार्य का सुविधापेक्षी चुनाव नहीं करना होगा? इसी प्रकार कार्य के 'एक' और 'निश्चित' होने के लिए भी। मान लीजिए हम एक पत्थर शीशे पर मारते हैं और वह टूट जाता है। यहाँ वह पत्थर की चोट शीशे के टूटने, आवाज होने, शीशे के नीचे गिरने और टूटने

और आवाज करने तथा विशेष केसों में, शीशे के स्वामी के क्रुद्ध होने इन सब की कारण हो सकती है। वास्तव में यहाँ भी एक कार्यों की शृंखला है और हम सुविधापेक्षी कार्य का चुनाव करते हैं।

यहाँ एक और समस्या उठ खड़ी होती है, हम घ१ और घ२ के बीच कैसे विभाजन कर सकते हैं? क्या इन के बीच कोई कालिक अन्तर होता है? रसल कहते हैं—होता है। उन के अनुसार "क्योंकि कोई भी दो घटनाएँ एक दम एक दूसरे के पश्चात् नहीं हो सकतीं, इसलिए कछ सीमित काल क दो कारण-कार्य घटनाओं के बीच अवश्य होना चाहिए। यद्यपि यह कुछ अलंध्य कठिनाइयां उत्पन्न करता है।" वे इस की पुष्टि करते हुए कहते हैं—"यह स्पष्ट है कि प्रथम घटना के घटित होने का कोई समय होगा। इसलिए कारणता को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया जाना चाहिए : यदि घटना घ१ काल क१ पर घटित होती है तो यह घ२ से अनुगमित होगी।" कारणता एक सार्वभौमिक नियम के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत की जाएगी "यदि कोई घटना घ१ विद्यमान है तो घ२ भी उपस्थित होगी और इस अनुक्रम सम्बन्ध का यह नियम होगा कि जब भी घ१ अस्तित्व में आती है घ२ उस के पश्चात् अस्तित्व में आती है। किन्तु इससे पहले कि हम इसे कुछ निश्चितता देते हैं, हमें यह अवश्य निश्चित रूप से कहना चाहिए कि कितने काल बाद घ२ घटित होगी। इस लिए निम्न सिद्धान्त उद्भूत होता है।

"किसी भी घटना घ१ के उपस्थित होने पर घ२ का अविर्भाव होता है और यह इस प्रकार कि जब भी घ१ घटित होती है घ२ काल क के पश्चात् उसका अनुगमन करती है।"

किन्तु हमारे विचार में घ१ और घ२ को किसी क से विभाजित करना अतर्क सम्मत है; इसका अर्थ यह भी है कि घटनाएँ स्वतंत्र इकाइयाँ हैं, जो कि न केवल इसलिए गलत मालूम पड़ता है क्योंकि ऐसी घटनाएँ कार्य-घटनाओं का कारण नहीं हो सकेंगीं प्रत्युत इसलिए भी कि इस प्रकार हम प्रत्येक वस्तु अथवा शृंखला को इस काल क पर अनस्तित्व मानेंगे। जहाँ तक दूसरी आपत्ति का प्रश्न है, हम यहाँ इस पर विचार नहीं करेंगे, यहाँ हम केवल पहली आपत्ति पर ही अपना ध्यान केंद्रित करेंगे। अब मान लीजिए, प्रत्येक घटना स्वतंत्र इकाई है और दो घटनाएँ क से पृथक्कृत हैं—तो क्या प्रथम घटना प्रारम्भ से अन्त तक एक समान रहती है? यदि उसमें कुछ अन्तर आता है तो वह अपने रूप में एक प्रवाह है इकाई नहीं, अथवा उसमें

पुनः क से विभाजित छोटी घटनाएँ हैं। किन्तु जैसा कि ह्वाइट हेड ने प्रमाणित किया है, और जिसे रसल स्वयं प्रशंसित करते हैं, घटनाएँ इन्फेनेटेसिमल (असीमल्प) नहीं होतीं, उनकी कुछ कालिक सीमा होती है। दूसरे, यदि वह इकाई (Entity) भी है तो वह किस प्रकार दूसरी घटना की कारण हो सकती है ? उसका प्रथम भाग कारण होगा या अन्तिम या संपूर्ण ? यदि संपूर्ण-जैसा कि इकाई के लिए होना आवश्यक है, तो वह दूसरी घटना की कार्य किस प्रकार होगी ? क्या दूसरी घटना वहाँ पहले से ही विद्यमान होगी और पहली घटना केवल उसको व्यापारित कर देगी ? यदि वह पहले से ही नहीं होगी तो एक इकाई दूसरी का कारण कैसे बनेगी ? और उसके पहले से वहाँ होने का अर्थ है, किसी भी नवीन घटना का न होना। इसके अतिरिक्त घ^1 जिसकी सीमा क से पहले ही समाप्त हो जाती है उस घ^2 का कारण कैसे हो सकती है जो क के पश्चात् प्रारम्भ होती है ? और फिर प्रारम्भ और अन्त का प्रश्न भी निरर्थक है क्योंकि घटनाओं का कारण-कार्य होना वैसा ही है जैसे पंक्ति में कुछ गोलियाँ पिरो कर किसी बच्चे को कहना कि वह गिने। यहाँ प्रत्येक बाद वाली गोली की क्रम-संख्या अपने से पहले वाली की क्रम संख्या पर निर्भर करेगी और इसी अर्थ में एक घटना दूसरी की कारण होगी। इस प्रकार काल क को घ^1 और घ^2 के बीच रखना तर्क संगत प्रतीत नहीं होता। हमारे विचार में कारण-कार्य संबंध निर्दिष्ट-निरन्तर-अनुक्रम-परिवर्तन (Continuous Successive change towards Certain direction) मात्र है और हम इस अनुक्रम में किन्हीं भी दो घटनाओं को सुविधापेक्षया (Arbitrarily) चुन कर कारण-कार्य कह सकते हैं। कारण से कार्य का ज्ञान पूर्णतः अनुमान पर आधारित है, जो कि दूसरे शब्दों में साधारणी-करण है, किन्तु इसीलिए हम कभी भी निश्चित रूप से भविष्य को निश्चित नहीं कर सकते। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्धारिततावाद एक तरह से अस्वीकार्य है, यद्यपि अतर्क सम्मत नहीं है।

किन्तु निर्धारिततावाद को हम एक दूसरे रूप में स्वीकार कर सकते हैं, जो कि हमारी कारण सिद्धान्त की विश्लेषणात्मक व्याख्या के विपरीत नहीं है। हमने अगले निबंध में देखा है कि एक वस्तु अथवा पदार्थ की एकता आधार भूत कारणता (Intrinsic causality) पर आश्रित है, और हमने इस निबंध में कारण-सिद्धान्त को निर्दिष्ट-निरन्तर-अनुक्रम—परिवर्तन कहा है, जिसका अर्थ है कि कारण कार्य में एक निश्चित सम्बन्ध है और परिवर्तन निर्धारित रूप में होता है, जिसे हमने वि$_4$ के रूप में पीछे देखा

था। हम जानते हैं कि दो युग्मज (Twins) एक दूसरे के समान या बहुत अधिक समान होते हैं, और हम यह भी विश्वास करते हैं कि यदि एक कप दूध दो भागों में बाँट दिया जाए और उसे पूर्णतः समान परिवृत्ति में रख दिया जाए तो वह सदैव समान रहेगा। किन्तु एक कप के दूध के सम्बन्ध में अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है। यद्यपि हम एक बार एक विशेष दूध के विकास को, अथवा परिवर्तन क्रम को देख कर दूसरे लगभग वैसे ही दूध के सम्बन्ध में भविष्य वाणी कर सकते हैं; किन्तु परमाणु जगत में यह कठिनाई अलंघ्य है। इसी प्रकार अतीतोन्मुख (Retrospetive) सभी प्रकार के अनुमानों में कठिनाई है। "मानलीजिए हम किसी रासायनिक नमक की रासायनिक प्रकृति को जानना चाहते हैं और इसे टेस्ट ट्यूब में डालकर इस पर विभिन्न प्रयोग करते हैं और परिणाम पर पहुँचते हैं कि यह सिलवर नाइट्रट (Silver nitrate) था। किन्तु हमारे इस प्रयोग के पश्चात यह सिलवर नाइट्रेट नहीं रहा। इस प्रकार जिस गुण (Property) को हम अनुमित करते हैं वह य होने का गुण नहीं प्रत्युत य 'रहे होने' का गुण है। इस कठिनाई को हम नाईट्रेट का कुछ अंश अपने हाथ में बचा कर रख कर दूर कर सकते हैं, किन्तु परमाणु जगत में यह नहीं कर सकते। पोटाशियम में दो प्रकार के परमाणु होते हैं, यह हम जानते हैं, जिनमें एक रेडियो सक्रिय और दूसरा निष्क्रिय होता है। इनमें एक को हम प$^{\text{अ}}$ और दूसरे को प$^{\text{न}}$ कहते हैं। हम यह भी जानते हैं कि प$^{\text{अ}}$ का विस्फोट होना है और हम उसको पहले से ही बता सकते हैं। किन्तु हम विस्फोट के काल के संबंध में कुछ नहीं जानते, सिवाय इसके कि यह लगभग एक अरब वर्ष तक किसी भी समय होगा। अब यदि हम देखते हैं कि यह काल क पर फटता है तो हम परमाणु को अतीतोन्मुखी विशेषण प$^{\text{क}}$ दे सकते हैं—यह मानते हुए कि इसमें काल क पर फटने की विशेषता सदैव विद्यमान थी।" (इडिंगटन)

यहाँ कठिनाई वास्तविक है, और जैसा कि इडिंगटन बताता है भूत विज्ञान या गणित के अनुसार यह विशेषता परमाणु में पूर्व प्रत्यक्ष नहीं होती, इस लिए निर्धारिततावाद के लिए कोई स्थान नहीं है, किन्तु यदि हम कारण-सिद्धान्त और निर्धारिततावाद को घपला नहीं देते, तो हमारे लिए इसमें कोई चिन्ता की बात नहीं है। मैं फूल सूंघता हूँ, एक निश्चित आशा के साथ कि परिणाम घ्राणेन्द्रिय की केन्द्रानुगामिनी और केन्द्रापसारिणी धमनियों में अनुगत होगा, संभव है कि फूल सूँघने की वाह्य क्रिया

और सुगन्धि के अनुभव के बीच कोई अन्य घटना घटित हो कर उसको रोक दे, किन्तु इस व्याघात मे पूर्व एक शृंखला प्रारंभ हो चुकी होगी और हमारा अभिप्राय उस शृंखला से ही है, उस की अनुभूति या ज्ञान में परिणति से नहीं । अनेक बार यह छोटी सी बात समझने में भूल कर दी जाती है । रसल कहते हैं कि 'यदि कारण कुछ हैं ही तो उन्हें उनके कार्यों (Effects) से सीमित काल व्यवधान के द्वारा पृथक् किया जाना चाहिए ही । इस प्रकार कारण-कार्यों को उत्पन्न करता है जब कि वह स्वयं समाप्त हो चुका होता है।' वह एक उदाहरण भी अपने इस कथन को स्पष्ट करने के लिए देते हैं--'मान लो, हम एक आना भार बताने वाली मशीन में डालते हैं और हमारे भार का एक टिकट ऊपर आ जाता है, किन्तु यहाँ घ^1 और घ^2 में एक निश्चित व्यवधान है, और संभव है कि उसी समय कोई बंम्ब विस्फोट इस व्यवधान में गिर कर घ^2 के कार्य को चरितार्थ होने से रोक दे ।' किन्तु यहाँ स्पष्ट है कि कारण और कार्य का चुनाव सुविधापेक्षी (Arbitrary) है क्यों कि कारण शृंखला आना फेंकने से कहीं पहले मशीन को देखने और इच्छा करने से प्रारम्भ हो चुकी होती है और इस की समाप्ति कहां होती ह, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि टिकट निकल आने के पश्चात् टिकट मिलने वाले की विचार धारा की एक शृंखला प्रारम्भ हो सकती है । सच तो यह है कि कार्य शृंखला का प्रारम्भ भी इसी प्रकार और भी अधिक विस्तृत हो सकता है, सम्भव है वह व्यक्ति दुर्भाग्य शाली हो और कुछ दिनों से मशीन में आना फेंक कर अपने भाग्य की परीक्षा के लिए लालायित हो, किन्तु उसके पास इसके लिए एक आना न हो । इस प्रकार हमें कोई कारण दिखाई नहीं देता कि हम कारण और कार्य के बीच किसी व्यवधान की कल्पना करें जब कि कारण-कार्य इस प्रकार एक दम ऐच्छिक या सुविधापेक्षी है ।

जैसा कि हम ने पीछे भी देखा था, हम कारण और कार्य को ऐच्छिक रूप ही चुन सकते है, क्योंकि हम संपूर्ण कारण-शृंखला को नहीं देख सकते, इस लिए कारण से कार्य का ज्ञान सैदव पहले देखे हुए, समान सम्बन्धों के ज्ञान पर निर्भर करता है, हम इस ज्ञान को अन्वय के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त Laws of psycological Association का ही एक रूप कहें तो भी उपयुक्त ही है । हम बिंजली (तड़ित) की चमक देख कर गर्जन की प्रतीक्षा करते हैं । यद्यपि यह एक भौतिक व्यापार है, और संभव है हम गर्जन को कभी नहीं सुन सकें, क्योंकि संभव है इस बीच में ही

शेर की गर्जन अथवा और कोई व्याघात इसको रोक दे, किन्तु हम पीछे तड़ित और गर्जन को अनुक्रम में देखते रहे हैं, इस लिए हम अनजाने ही उसकी प्रतीक्षा करते हैं, यद्यपि इस विश्वास के साथ कि यह एक निश्चित भौतिक नियम है। कोई संदेहवादी यदि तड़ित की चमक देख कर गर्जन के अस्तित्त्व में तब तक संदेह करता है जब तक वह भी हमारे शरीर में एक कारण-श्रृंखला को जन्म नहीं दे देती तो वह उपहासास्पद नहीं है, क्योंकि संभव है विशेष चमक गर्जन से अनुगत ही न हुई हो, क्योंकि यह उस किसी भी तड़ित-चमक के समान नहीं थी जिसे हम पहले देखते आए होते हैं, किन्तु जितने ही अधिक ऐसे सम्बन्ध हम देखते हैं उतनी ही अधिक मनोवैज्ञानिक अनुमान की भौतिक न्याय्यता दृढ़ होती जाती है। हमारे चार्वाक दार्शनिक न्याय के अनुमान प्रमाण को गलत बताते हुए यही तर्क देते थे कि किसी ने सारे धूम्र और अग्नियों को नहीं देखा और इसीलिए किसी के पास धूम्र को देख कर अग्नि के सद्भाव के अनुमान की कोई न्याय्यता नहीं है, किन्तु इस तर्क के ठीक होते हुए भी इस सम्बन्ध को स्वीकार किया जाना चाहिए, क्योंकि यद्यपि यह चाहे सब कालों में अवश्यम्भावी नहीं हो, यह बहुत अधिक संभाव्य अवश्य होगा।

किन्तु धूम्र-अग्नि सम्बन्ध या तड़ित-गर्जन-सम्बन्ध कारण सिद्धान्त के बहुत उपयोगी उदाहरण नहीं हो सकते, क्योंकि ये कभी भी हमारी इन्द्रियों की दिग्भ्रान्ति के कारण हो सकते हैं, हम ओस को धूम्र समझ सकते हैं और बिना किसी तड़ित-चमक के आकाश में चमक देख सकते हैं, फिर भी सामान्य अवस्थाओं में इस प्रकार के अनुमान न केवल उपयोगी और स्वाभाविक ही हैं प्रत्युत न्याय्य भी हैं क्योंकि इस प्रकार से अनुमानों के आधार में साधारणी-करण की प्रक्रिया क्रियाशील होती है और कारण-कार्य सम्बन्ध का आधार साधारणी करण ही है, अन्यथा विशेष घटनाओं में अथवा विशेषों (Perticulars) में इस सिद्धान्त को लागू करने का कोई अर्थ नहीं है। यहाँ इडिंगटन प्रश्न कर सकते हैं कि साधारणी-करण में आप की क्या न्याय्यता है जब कि आप वही कारण वही कार्य (Same cause same effect) के विचार का विरोध करते हैं?' मैं अपने अत्यधिक आदरणीय दार्शनिक से निवेदन करना चाहूँगा कि साधारणीकरण किसी भी तरह से विशेषों में पूर्ण समता का समानार्थक नहीं है और न कभी विशेषों में पूर्ण समता होती ही है। यहाँ फिर साधारणी करण ही है किन्तु विशेषों के सम्पूर्ण युगलों में समता के अर्थ में नहीं प्रत्युत विशेषों की सम्पूर्ण श्रेणी के सम्बन्धों में समता के अर्थ में। यह है

जो कारण सम्बन्ध में समता से अभिप्रेत होना चाहिए। मान लीजिए मैं एक फर्लाङ्ग से एक वाली बाल मैच देख रहा हूँ। पंद्रह मिनट समय में मैं प्रत्येक हिट को ध्वनि से अनिवार्य रूप से अनुगमित देखता हूँ। अब मान लीजिए कि मैं इसके पश्चात एक हिट के बाद ध्ननि नहीं सुनता। इस विक्षेप के अनेक कारण हो सकते हैं—संभव है हिट इतनी धीमी हो कि ध्वनि हमारे श्रवण के सम्पर्क में न आई हो, सम्भव है ध्वनि-लहरों को वायु के किसी तीव्र झोंके ने हम तक न पहुँचने दिया हो, सम्भव है कोई अन्य ध्वनि हिट की ध्वनि से अधिक तीव्र हो और सम्भव है कि हमारी श्रोत्रेन्द्रिय के सम्पर्क में ध्वनि-लहरों के आने पर भी मस्तिष्क केन्द्र का विशेष भाग किसी और क्रिया में संलग्न हो और आल्फेक्टरी (Olfactory) धमनी में व्यापारित कारण-शृंखला उस केन्द्र को क्रिया शील न कर सकी हो। इसी प्रकार सम्भव है कि विषय और ज्ञान तंतुओं के मध्य-स्थित अन्तराल में किसी घटना के कारण हम हिट को देख न सकें किन्तु उसकी ध्वनि सुन लें, बाह्य अन्तराल या व्यवधान के निर्बाध होने पर हमारी मानसिक अनुपस्थिति इसका कारण हो सकती है, ऐसी अवस्था में हम यदि हिट से ध्वनि अथवा ध्वनि से हिट को अनुमित करते हैं तो यह न्याय्य है और कारणवाद के सिद्धान्त के अनुकूल है, (१) क्योंकि ऐसी अवस्था में हम अनुमान करते हैं कि यह किसी मध्यस्थ व्यवधान के कारण था (२) क्योंकि साधारणी करण का आधार घटना विशेष न होकर सम्बन्ध-विशेष की प्रकृति है। इनमें प्रथम उत्तर ज्ञान मीमांसा से सम्बन्घ रखता है, जिसकी कुछ चर्चा हमने अगले निबन्ध में की है। क्या इस अनुमान का अर्थ किसी भी प्रकार से निर्धारिततावाद या 'वही कारण-वही कार्य' हो सकता है? नहीं, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि मैं हिट-ध्वनि सम्बन्ध का साधारणी करण कर रहा हूँ, जिसका विशेष हिट और ध्वनि से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार कारणता अपनी पूर्ण न्याय्यता रखती है, चाहे रसायण शास्त्री भविष्य वक्ता न भी हो सके।

जहाँ तक नेपलेस की ईश्वरीय प्रतिभा का प्रश्न है, जो विश्व की एक क्षण पर सम्पूर्ण स्थिति या अवस्था को जान लेने पर भविष्य के किसी भी क्षण पर विश्व की अवस्था को जान सकती है, हमें इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित या अन्तिम बात कहने की आवश्यकता नहीं है, हमारे लिए जिस बात का महत्व है वह यह है कि क्या भूत या भविष्यत हमारे लिए उसी प्रकार ज्ञेय हो सकते हैं जिस प्रकार वर्तमान? जहाँ तक कारणवाद का

सम्बन्ध है, उसके लिए भूत और भविष्यत में कोई अन्तर नहीं है । हम यह निश्चय के साथ कह सकते हैं कि "दो समान वस्तुएं समान परिस्थितियों में रखने पर भूत और भविष्त में सदैव समान रहेंगी, जब भी हम उनका परीक्षण करें।" यहाँ हम जींज और लेपलेस से उसी आदर का दावा कर सकते हैं जो वे अपने ईश्वर के लिए रखते हैं, किन्तु यहाँ हम गाणितिक नियमों से पूर्व निर्धारित ब का पूर्व कथन नहीं करते हैं, प्रत्युत दो समानान्तरों के बीच एक सम्बन्ध की प्रकृति बता रहे हैं।

कारण से कार्य और कार्य से कारण को अनुमित करने की प्रवृत्ति विज्ञान और अनुभव दोनों में बद्ध मूल है । भूत वैज्ञानिक तारों की किरणों के रंगों से उनकी बनावट को अनुमित करते हैं, जेनेटिस्ट जेन (Gen) को उसकी अभिव्यक्ति से अनुमित करते हैं, और यदि एक कदम और आगे बढ़ा जाए तो, हम अस्तित्व मात्र को विभिन्न शारीरिक कारण श्रृखलाओं से अनुमित करते हैं। उस व्यक्ति से, जो विशेष केसों में प्रमाण की मांग कर रहा हो, हम उसके जन्म का प्रमाण-पत्र मांग सकते हैं, उसकी पैतृकता को ही चेलेंज किया जा सकता है। इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि एक मनुष्य का पिता मनुष्य ही हो सकता है, इसलिए यद्यपि पूर्ण साधारणीकरण चाहे कुछ केसों में संभव न हो, और हमारे यंत्र परमाणु के व्यवहार में काफी अनिश्चितता दर्शाते हैं, तो भी (संभाव्यवाद के समर्थकों से शब्द उधार लेते हुए) यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि उपर्युक्त प्रकार का निर्धारितता वाद बहुत अधिक सम्भाव्य है तो यह अनुचित नहीं होगा । इस प्रकार हम एक ओर इडिंगटन की आपत्तियों को रास्ता देते हैं और दूसरी ओर कारण सिद्धान्त का समर्थन कर सकते हैं, क्योंकि कारण-कार्य संबंधों को स्वीकार करके हम आवश्यक रूप से भविष्य वक्ता होने का दावा नहीं करते, किन्तु दूसरी ओर यदि एक बार किन्हीं विशेष रासायनिक क्रियाओं के कारण दूध फट जाता है, हम बड़ी सुविधा से यह अनुमान कर सकते हैं कि वैसी ही अवस्थाओं में यह पुनः फटेगा । यह 'वही कारण-वही कार्य' को स्वीकार करना नहीं है, यह "समानान्तर परिवर्तन" के नियम को स्वीकार करना है । भूगर्भ वैज्ञानिक जब शिलाओं का काल निश्चय करते हैं और भूत वैज्ञानिक जब थर्मोडिनेमिक्स के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं तो वे इसी नियम के अनुसार कार्य करते हैं।

× × ×

हमारे विचार में, अब हम कारण संबंधों के बारे में कुछ समझ रहे हैं

और इसके प्रकाश में स्वतंत्रेच्छा की समस्या का अध्ययन हम कुछ अधिक वैज्ञानिक दृष्टि कोण से कर सकते हैं। हम यह मानने में सहमत हैं कि विश्व की घटनाओं में कुछ नियमित कारण-संबंध हैं। इसलिए हम सुविधा पूर्वक इस परिणाम पर पहुँच सकते हैं कि वैज्ञानिक-भौतिक-विश्व में स्वतंत्रेच्छा जैसी कोई चीज नहीं है। कोई भी परमाणु अपना रास्ता, अपनी इच्छानुसार चुनने में स्वतंत्र नहीं है, क्योंकि यहाँ कोई विकल्प संभव प्रतीत नहीं होता, इसका व्यवहार कुछ निश्चित नियमों के अनुसार शासित होता है।

किन्तु इस सिद्धान्त को लागू करने में तब कुछ कठिनाई प्रतीत होती है जब हम पदार्थ की एक दूसरी श्रेणी के संपर्क में आते हैं, जिसे हम जीवित पदार्थ कहते हैं। यह कठिनाई तब और भी बढ़ जाती है जब यह परीक्षण मनुष्य पर किया जाए। यह बड़ी सुविधा से प्रमाणित किया जा सकता है कि मनुष्य किन्हीं बाहरी शक्तियों अथवा नियमों के आधीन अपनी इच्छाओं के शासित होने को स्वीकर नहीं कर सकता, वह अपनी स्वतंत्रेच्छा से कार्य करना पसंद करेगा। इसलिए स्वतंत्रेच्छा को प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। यदि यह सत्य है तो पदार्थ और मन अथवा निर्जीव पदार्थ और जीवित पदार्थ में अन्तर के क्या आधार हो सकते हैं? क्या इनमें कुछ आधार भूत अन्तर है अथवा यह केवल जीवित पदार्थ के घटक तत्वों के मिलन की विशेषता मात्र है? यदि हम दूसरे अभ्युपगम को स्वीकार करते हैं तो इस का अभिप्राय है कि जीवित पदार्थ के परमाणु भी उसी प्रकार कारण-सिद्धान्त के विषय हैं, क्योंकि वे जड़ पदार्थ के परमाणुओं से भिन्न नहीं हैं। इस प्रकार, मनुष्य या पशु किसी की भी स्वतंत्रेच्छा का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। किन्तु इडिंगटन सम्भाव्यता के सिद्धान्त (Law of Probability) के धुँधले प्रकाश में स्वतंत्रेच्छा की पुनः स्थापना के लिए टटोलते हैं। वे कहते हैं "यदि हम अपने शरीरों के क्रिया-व्यापार को ऐसे कुछ मस्तिष्क केन्द्र के परमाणुओं की खूँटी क्रिया से संबद्ध करते हैं जिन का व्यवहार पूर्ण निर्धारित नहीं है, तो समस्या सरल हो जाती है क्योंकि स्वतंत्र-परमाणु व्यवहार में बहुत अधिक अनिर्धारितता रखते हैं। मेरा अपना दृष्टि कोण है कि 'चेतना का केन्द्र निर्जीव सिस्टम से इस बात में भिन्न हैं कि यह अपने व्यवहार में अत्यधिक ।अनिर्धारितता या स्वतंत्रता रखता है—केवल अपनी उस प्रकृति के कारण, जो एक दम पदार्थ से भिन्न है, जिसे हम अहम् (Ego) कह सकते हैं।"[1]

---

[1] New Pathways in Science.

यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि इडिंगटन अपनी कल्पनाओं को उस से कहीं अधिक ढील दे रहे हैं जितनी वैज्ञानिकता की सीमा में उपयुक्त हो सकती है। अभी तक कोई भी ऐसे प्रायोगिक या तार्किक (Logical) आधार हमारे पास नहीं हैं जिन से यह प्रतीत होता हो कि सजीव पदार्थ अथवा 'चेतना-केन्द्र' के परमाणु इडिंगटन की इच्छानुसार कार्य करते हों, अर्थात् जो अपने व्यवहार में अधिक अनिर्धारितता प्रदर्शित करते हों। एक वैज्ञानिक के लिए यह बहुत अधिक है कि वह केवल कल्पित संभावनाओं के आधार पर आत्मा या चेतना की वकालत करे। यहाँ इडिंगटन यह प्रमाणित करते हैं कि कोई अपदार्थिक तत्व—चेतना अपनी स्वतंत्रेच्छा की चरितार्थता के लिए परमाणुओं की अनिर्धारित प्रकृति का लाभ उठाती है। किन्तु यह अन्तर्विरोध-पूर्ण है, जैसा कि इडिंगटन स्वयं अन्यत्र कहते हैं। और दूसरा दोष आधार भूत है जो कि ऐसे सब दर्शनों में मूलित है जो किसी भी प्रकार की द्वैतता का समर्थन करते हैं। वैसे इडिंगटन अपने आप को सम्भवतः द्वैतवादी नहीं मानते। द्वैतवादी दार्शनिक पदार्थ और चेतना के किसी मिलन-बिन्दु की कल्पना करते हैं। जिस पर कि हम (कोई तीसरा अस्तित्व ?) चेतना का अनुभव करते हैं। किन्तु यह एक दम अस्पष्ट, कल्पित और निरर्थक है, क्योंकि यदि चेतन कोई ऐसी वस्तु है जो पदार्थ से एक दम स्वतंत्र है, और जैसा कि इसे होना भी चाहिए, और इसी प्रकार पदार्थ भी, तब चेतना और पदार्थ का कोई सम्मिलन बिन्दु नहीं हो सकता, और यदि पदार्थ और चेतना एक दूसरे के लिए गम्य हैं तो वे तब क्या होंगे जब एक दूसरे से पृथक् होंगे ? और फिर वे क्या नियम हैं जिन के अनुसार वे मिलते हैं ? यदि चेतना पदार्थ के बिना भी चेतन हैं तो वह पदार्थ के सम्पर्क में क्यों आती है ? यदि वह पदार्थ के संपर्क के बिना चैतन्य को चरितार्थ नहीं कर सकती, तो वह चेतना कैसे कही जा सकती है ? यदि उसके संपर्क से निर्जीव पदार्थ सजीव होता है, तो क्या चेतना कोई ऐसी रासायनिक शक्ति रखती है जिस से निर्जीव पदार्थ में कुछ विशिष्ट रासायनिक क्रियाएँ घटित हो कर उसे सजीव बना देती हैं ? ये ऐसे प्रश्न हैं जो सदैव उत्तर-रहित रहे हैं। क्योंकि 'चेतना' कुछ ऐसा तत्व है जो पदार्थ नहीं है और पदार्थ में कुछ ऐसे गुण हैं जो चेतना में नहीं हैं इसलिए चेतना पदार्थ को अनुभव नहीं कर सकती और पदार्थ कभी चेतना के लिए अनुभूति नहीं रख सकता। जीवित पदार्थ के परमाणुओं में अधिक निर्धारितता की कल्पना भी अन्तर्विरोध पर्ण है, जिसे इडिंगटन ने स्वयं अन्यत्र स्वीकार किया है। वे कहते हैं—"अभ्युपगम अ का दोष इसमें था

कि यह अ-ससंबन्ध अथवा चांस के सिद्धान्त के साथ, जीवित पदार्थ के व्यवहार को भूत विज्ञान के सामान्य नियमों से निर्धारित स्वीकार करती थी और फिर आगे फिर नान् चांस फैक्टर—इच्छा से उसे निर्धारित अथवा शासित मानती थी, किन्तु हम व्यवहार को एक साथ ही चांस और नॉ-चांस अथवा ससम्बन्ध और अ-स-सम्बन्ध (Correlation and Non correlation) से निर्धारित नहीं मान सकते।' (फिलासफी ऑफ फिज़िकल साईंस)

यह उद्धरण बताता है कि कैसे वैज्ञानिक आज तर्क शास्त्री बन रहे हैं, और यह विज्ञान के लिए एक शुभ-चिह्न है, किन्तु यहाँ इडिंगटन बहुत आगे बढ़ गए प्रतीत होते हैं। यहाँ यह स्पष्ट है कि इडिंगटन ने दूसरे उद्धरण में आधार भूत असंगति को कुछ धुँधला कर दिया है, किन्तु वास्तव असंगति उसी प्रकार विद्यमान है। यह ठीक है कि अभ्युपगम अ अन्तर्विरोध पूर्ण है, किन्तु अभ्युपगम ब केवल भाषा के मार्जन से संगत नहीं हो जाती। यद्यपि उनके परिणाम तर्क संगत हैं किन्तु फिर भी वे ठीक नहीं भी हो सकते, क्योंकि वे ऐसे आधारों पर आधृत हैं जो अतर्क सम्मत और भ्रान्त हैं। इडिंगटन का दूसरा उद्धरण वास्तव में पहले से कहीं अधिक अभ्युपगमिक है। यह समझना कठिन है कि जीवित पदार्थ के परमाणुओं को इडिंगटन किन आधारों पर लॉ ऑफ नॉन् चांस से शासित मानते हैं, जब कि वे भूत विज्ञान में लॉ ऑफ प्रॉबेबिलिटी अथवा लॉ ऑफ चांस का घोर समर्थन करते हैं।

जहाँ तक भूत विज्ञान का सम्बन्ध है, आईंस्टीन तीव्रता से, विज्ञान में चांस फैक्टर का विरोध करते हैं। वे कहते हैं—"अनिर्धारितावाद पूर्णतः अतर्क सम्मत कल्पना है......यदि मैं कहूँ कि परमाणु का औसत जीवन मान इस अर्थ में अनिर्धारित है कि वह कारण-सम्बन्ध से स्वतंत्र है, तो मैं एक दम मूर्खता पूर्ण बात कर रहा हूँ।" और दूसरे क्वांटम्फिज़िक्स में संभाव्यता का सिद्धान्त (Law of Probability) भी परमाणुओं को मटर गश्ती के लिए बहुत विस्तृत क्षेत्र नहीं प्रदान करता, वह अनिश्चितता इतनी निश्चित और आनुपातिक है और उसको भी समाप्त करने की इतनी संभावनाएं हैं कि उससे किसी प्रकार की अटकल बाजी व्यर्थ है। यही कारण है कि इडिंगटन ने जीवित पदार्थ के परमाणुओं के लिए या तो पूर्ण स्वच्छन्दता की मांग की अथवा पूर्ण निश्चितता की, जिससे तथा कथित चेतना उनसे अपनी स्वतंत्रेच्छा के अनुसार काम ले सके।

जैसा कि हम पीछे कह आए हैं, हम कारण से कार्य या कार्य से कारण का निर्धारण नहीं कर सकते क्योंकि घ१ और घ२ केवल इस अर्थ में कारण-कार्य हैं कि ये हमारी सुविधा-सापेक्ष हैं, अन्यथा कोई कारण नहीं कि इनके बीच का कोई भी क्षण या बिन्दु (Point and instant) क्यों कारण-कार्य नहीं कहा जाए। और यदि हम यह मान लेते हैं तो यह स्पष्ट है कि हम घ१ और घ२ के बीच की बिन्दु-शृंखला को नहीं गिन सकते, क्योंकि यह असीम है। यह आवश्यक नहीं कि हम इन बिन्दुओं को बिन्दु या क्षण कहें (यदि बिन्दु या क्षण विवादास्पद शब्द हैं) हम इन्हें मात्र अवस्थाएं भी कह सकते हैं। इन अवस्थाओं की असीमता को भी चेलेंज किया जा सकता है, जैसा कि असीमल्प (Infinitesimal) को लेकर दार्शनिकों में विवाद है, किन्तु अवस्था को एक काल्पनिक अस्तित्त्व मानते हुए हम उसकी परिभाषा कुछ इस प्रकार कर सकते हैं—अ' अ'' अ''' ...... अ^न यदि एक घटना घ१ है तो अ' से अ^न तक यह विभिन्न अवस्थाओं में से हो कर गुजरी है और कोई भी दो अवस्थाएं अपने से छोटी अवस्थाओं का समूह हैं। इसलिए हम इन आनुक्रमिक (Successive) अवस्थाओं को न जान सकने के कारण अ' पर अ^न का और अ^न पर ब का निर्धारण नहीं कर सकते। इसलिए साधारणीकरण की व्यापकता को मानते हुए हम कारण-कार्य संबंध ज्ञान की प्रकृति को फिर दुहराएंगे :—दो सर्वथा समान क्रम समान परिस्थितियों में सर्वदा समान अवस्थाओं में से बीतेंगे, यदि कभी इनमें भिन्नता उत्पन्न हो जाती है तो इसका कारण उन अन्तर्निहित विशेषताओं को समझा जाएगा, जो इन स्पष्ट रूप से समान क्रमों में विद्यमान होने पर भी ज्ञात नहीं थी, और यह भूत विज्ञान के लिए उतना ही सत्य है जितना जेनेटिक्स [Genetics] के लिए। यहाँ हमें एक बात स्पष्ट करनी चाहिए: कि हमारा इस साधारणीकरण का अर्थ रसल के उस साधारणीकरण से सर्वथा भिन्न ह जिसे वह "अनुक्रम की नियमित आवृत्ति" Observed Uniformities of Sequence कहते हैं।

अब हमारे लिए मुख्य समस्या इन संबंधों को जीवित पदार्थ और मन

"Indeterminism is quite an illogical concept .... if I say that the average life span of such an atom indeterminaet in the sense of not being caused then I am talking non-sense.

पर लागू करना रह जाती है। हमने 'पदार्थ और मन' निबंध में जीवित और जड़ पदार्थ तथा मन में एकता का प्रतिपादन किया है, इसलिए यहाँ पुन: उस प्रश्न को उठाने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु कारण-कार्य संबंध को लेकर इस प्रश्न पर हमें पृथक् विचार करना होगा।

जैसा कि हमने देखा था, इडिंगटन जीवित पदार्थ के सम्बन्ध में सोचते हुए मस्तिष्क-केन्द्र में भिन्न प्रकार के परमाणुओं की और फिर अहम् या चेतन-तत्व की कल्पना पर पहुँच जाते हैं। इसका मुख्य कारण उनकी दृष्टि का बहुत अधिक विकसित जीव-मनुष्य पर केन्द्रित होना है। किन्तु यदि हम मन और जीवित पदार्थ की प्रकृति पर वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पहले छोटे प्राणियों और जेन अथवा कोष [Gene or cell] को लें तो भ्रान्ति की सम्भावनाएं बहुत कम रह जाएंगी। मनुष्य पर दृष्टि केन्द्रित करके मन के संबंध में बहुत सी ऐसी धारणाएं और दर्शन प्रणालियां विकसित हुई हैं, जो हमारे विचार में निराधार हैं। एक बार मेरे एक मित्र ने कहा कि "सम्भवत: केंचुए और मिट्टी में कोई आधार भूत अन्तर नहीं है, किन्तु मनुष्य और केंचुए में आधार भूत अन्तर प्रतीत होता है।" सम्भवत: उस समय वह सहज-भावना से उत्प्रेरित होने के कारण ही ऐसा कह रहा था, नहीं तो वह प्राय: ही कहा करता है कि मनुष्य और एक कोष वाले प्राणियों में कोई आधार भूत अन्तर न हो कर केवल 'समय' का अन्तर है। किन्तु बर्गसाँ यह मानते हुए भी कि मनुष्य और अमोयबा में केवल समय का अन्तर है, काल [Time] की परिभाषा को रहस्यमय बना देते हैं और द्वैतवाद की वकालत करते हैं। यह आश्चर्य की बात है कि जब कि वे विकास पर काल को लागू करते हैं तब अमोयबा और मनुष्य में मौलिक अन्तर नहीं करते, किन्तु जब आत्मतत्व की वकालत करने लगते हैं उस समय अपने विचार की पुष्टि के लिए जो तर्क देते हैं वे केवल मनुष्य के उलझन पूर्ण व्यवहार पर ही केन्द्रित रहते हैं। जड़ और जीवित पदार्थ में भेद बताते हुए वे कहते हैं—"किन्तु हमने जो तर्क प्रस्तुत किये हैं उनसे स्पष्ट है कि प्राणी, जिन्हें कि प्रकृति ने व्यष्टित्व प्रदान किया है (Closed off by nature) जड़ पदार्थ से, जिसे हमारा विज्ञान पृथक् [Isolate] कर लेता है, भिन्न है। ये तर्क कम विकसित प्राणियों को दृष्टि में रखते हुए कम ठोस प्रतीत होते हैं, हम यह स्वीकार करते हैं, किन्तु जब हम ऐसे प्राणियों पर जो कि शैशव से वार्धक्य तक एक निश्चित परिवर्तनक्रम (Transformation) में से हो कर बीतते हैं, दृष्टि पात करते हैं, हमारे तर्क अधिक ठोस प्रतीत होते हैं।" (Creative Evolution)

किन्तु जैसा कि हमने देखा है और आगे और भी निश्चित रूप से देखेंगे, ये तर्क ठोस आधार पर नहीं हैं। बर्गसां अपनी सुरक्षा का खूब प्रबन्ध करते हैं अवश्य, किन्तु यह किले वन्दी कार्डों के घर से अधिक सुरक्षित नहीं है। वे कहते हैं काल प्रवाह (Duration) जितना ही अधिक अपने चरण-चिह्नों से जीवित प्राणी को अंकित करता है उतना ही अधिक प्राणी मात्र-यंत्रिकता से, जिसे काल सक्षत नहीं करता, भिन्न होता है।" किन्तु काल क्या है और यह जड़ और 'कम जीवित' को अपने क्षतों से क्यों उपकृत नहीं करता? और दूसरे, मनुष्य किसी भी तरह से अमोयबा से अधिक व्यष्टित्व पूर्ण Closed off) नहीं है। यह ठीक है कि मनुष्य अमोयबा से 'अधिक सजीव' और कम यांत्रिक है किन्तु यह अन्तर केवल उलझन (Complexity) का है। विज्ञान मनुष्य के शरीर को अमोयबा से भिन्न करके नहीं देखता, उसे बर्गसां के समान काव्यात्मक रहस्यवाद में कोई दिलचस्पी नहीं है। कुछ कवि वैज्ञानिक पर दोषारोपण करेंगे कि वह फूल को उसकी 'पूर्णता' में नहीं देखता, जो कि रंगमय, सस्मित और मधुर है और उसे बुरा भला कहेंगे कि वह नीलम पर जड़ित मुक्ताओं जैसे तारकित नभ को एक ऐसा शून्य बताता है जिसमें करोड़ों-अरबों अग्नि-पिंड, जो कि पृथ्वी से करोड़ों गुणा बड़े हैं, घूम रहे हैं। किन्तु क्या यह उसका दोष है?

यह ठीक है कि जीवित और निर्जीव पदार्थ में अन्तर है जो कि जीवित पदार्थ और निर्जीव पदार्थ की अपनी श्रेणियों में पाए जाने वाले अन्तर से अधिक स्पष्ट और भिन्न है, किन्तु यह अन्तर आधार भूत और मौलिक प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जेनेटिस्ट और जीव वैज्ञानिक (Biologist) कुछ निश्चित नियमों को जो, कि अमोयबा से मनुष्य तक समान रूप से लागू होते हैं, प्राप्त करते हैं और ये नियम भूत विज्ञान और रसायण शास्त्र से मौलिक रूप से भिन्न नहीं हैं। जेनेटिक्स में एक्सकिरणों तथा दूसरी कास्मिक किरणों और रासायनिक द्रव्यों के प्रयोग ने और शरीर-विज्ञान में रासायनिक द्रव्यों के प्रयोग ने निश्चित और प्रत्याशित परिणामों द्वारा यह प्रमाणित कर दिया है कि जीवित पदार्थ और जड़ पदार्थ में कोई आधार भूत अन्तर नहीं है और जीवित पदार्थ के परमाणुओं के नियन्त्रण (Correlation) के लिए किसी आत्म-तत्व की आवश्यक्ता नहीं है।

यह ठीक है कि हम कोष (Cell) के घटन (Compositson) को अच्छी तरह से नहीं जानते : ज्ञात घटक-तत्वों को ज्ञात परिमाण में मिला कर हम जीव कोष नहीं प्राप्त कर सकते (यद्यपि कुछ दिन हुए, अमरीकन रिपोर्टर

में सूचना आई थी कि एक अमरीकन वैज्ञानिक ने प्रयोगशाला में 'पहला प्राणी' तैयार कर लिया है, किन्तु यह सूचना अभी पुष्ट नहीं है—यद्यपि इसमें कुछ भी आश्चर्य जनक वात नहीं है)। एक कोष के मुख्यतः तीन भाग होते हैं—मैम्ब्रेन (बाहरी बारीक पर्दा), साइटोप्लास्म (पर्दे के अन्दर का रासायनिक पानी) और न्यूक्लियस (पानी के बीच में सेल-केन्द्र)। इन भागों के आगे उप विभाग हैं। साइटोप्लास्म और न्यूक्लियस में हजारों कण होते हैं, न्यूक्लियस के कणों को जेन कहते हैं। ये जेन प्रोटीन-कण होते हैं जो कि तागे के समान वस्तु, जिन्हें क्रोमोसोम (Chromosom) कहते हैं, लिपटे रहते हैं। ये जेन ही सामान्यतः जीवन के ज्ञात आधार हैं। जेन अपनी वैयक्तिक और सापेक्ष (क्रोमोसोमों में अन्य जेनों की सापेक्ष स्थिति के अनुसार) विशेषताएँ रखते हैं। "अक्लेद्य आतम तत्व युक्त" प्राणी-मनुष्य के और दूसरे विकसित प्राणियों के भी, कोष श्रम-विभाजन (Divsion of labour) के अनुसार विभक्त हो गए हैं, जब कि अविकसित या बहुत कम विकसित प्राणियों के कोष परिवृत्ति के प्रति प्रतिक्रिया की, तथा अन्य प्रकार की सब विशेषताएँ अविकसित रूप में संजोए रखते हैं। विकसित प्राणियों में यह अविकसित कोष चार मुख्य भागों में विभक्त हो जाता है—जनन कोष, प्रतिक्रिया कोष (Receptor cell), पेशीय कोष (Muscel cell) तथा गेंग्लियन सेल (Ganglion cells)। ये कोष आगे अपने कार्य की प्रकृति के अनुसार विभिन्नता रखते हैं। यद्यपि हम कोष के घटन को आज अच्छी तरह से नहीं जानते, किन्तु जेनेटिस्टों और शल्य वैज्ञानिकों (Anotomists) ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इस सजीव इकाई का व्यवहार उतना ही नियमित और भौतिक हैं जितना किसी भी निर्जीव पदार्थ का।

जेनेटिक्स में रासायनिक द्रव्यों और कॉस्मिक किरणों के प्रयोग बर्गसानियन वाईटलिज्म के लिए कोई स्थान नहीं रहने देते। यहाँ इडिंगटन आपत्ति करेंगें कि 'यह मात्र सिलेक्टिव साब्जेक्टिविज्म[1] Selective Subiectivism का ही उदाहरण है, क्योंकि उक्त परिणाम हमारे Subjectively equipped यंत्रों पर अंकित प्रतिक्रियाएं मात्र हैं। इसलिए हमारे प्रयोग

---

[1] सिलेक्टिव साब्जेक्टिविज्म को समझाने के लिए हम इडिंगटन की ही एक उपमा यहाँ उद्धृत किये देते हैं—हम सागर में एक जाल फैलाते हैं और उसमें कुछ मछलियाँ अटक जाती हैं, हम उन को मछलियाँ कह देगें, किन्तु हमारे जाल के सुराखों से जो छोटी हैं, वें कभी हमारी पकड़ में

विषयों की तद्गत प्रकृति Objective Nature का उद्घाटन नहीं करते। इन प्रयोगों से हम केवल ज्ञानेन्द्रियों पर अंकित भाषा को स्मृति और विश्वास इत्यादि से और भी विषयीगत Subjective बना कर पढ़ते ह। इसलिए विषयगत पदार्थ ObjectiveReality वह नहीं है जो हमें परोक्ष या अपरोक्ष सम्पर्कसे प्रतीत होता है।' हम इडिगटन के साथ पूर्णतः सहमत हैं, जब वे यह कहते हैं, किन्तु तब इडिगटन ही विषयों के तद्गत यथार्थ को जानने का दावा कैसे कर सकते हैं? विषयों का ज्ञान सदैव अपूर्ण और विषयीगत प्रकृति का ही हो सकता है, हमारे ज्ञान की यह आधार भूत प्रकृति है, किन्तु प्रायोगिक ज्ञान में यह सुविधा है कि वह सब के लिए सामान्य होता है। और दूसरे, यदि हमारे यंत्र दो विषयों की उपस्थिति में समान रूप से प्रतिक्रिया करते हैं हम सुविधा से यह परिणाम निकाल सकते हैं कि ये विषय उस पहलू में समान हैं जिस पहलू को हमारा यत्र अंकित करता है, यद्यपि हम उस पहलू की स्वलक्षण प्रकृति को जान नहीं सकते। यदि दो गाड़ियां समानान्तर पर चल रही हों, तो हम उन की स्पीड को न जानते हुए भी कह सकते हैं कि 'इन दोनों की स्पीड एक ही है।' यही थर्मामीटर और माइक्रोस्कोप से प्राप्त ज्ञान के लिए भी सत्य है। हम गर्मी और सर्दी इत्यादि को उन के स्वलक्षण रूप में नहीं जान सकते और थर्मामीटर पर अंकित डिग्री हमारी गर्मी की अनुभूति के समान भी नहीं है, और ये दोनों ही विश्व में घटित होने वाले उस विशेष व्यापार के समान नहीं हैं जिसे हम गर्मी कहते हैं—हम केवल कारण शृंखला के एक छोर को एक विशेष प्रकार से जानते हैं, जो छोर शृंखला की कुछ पीछे की कड़ियों से, जिन्हें हम विषय गत कारण शृंखला की कड़ियाँ कह सकते हैं, भिन्न प्रकृति का है। इसी प्रकार हमारे ज्ञान और इस छोर की प्रकृति में भी कोई समता नहीं है, किन्तु यदि थर्मामीटर किन्हीं दो क्षणों पर एक ही डिग्री को अंकित करता है तो हम कह सकते हैं कि इन दो क्षणों पर विश्व एक विशेष पहलू में समान अवस्थाओं में था। इसका अर्थ यह नहीं कि हम केवल प्रायोगिक ज्ञान को ही विश्वसनीय ज्ञान समझते हैं अथवा इस ज्ञान को उत्तम प्रकृति का ज्ञान समझते हैं, किन्तु जहाँ तक संभव है, इसे हमारे अप्रायोगिक ज्ञान का आधार होना चाहिए।

नहीं आएंगीं और हम उनका समावेश अपने ज्ञान में नहीं कर सकेंगे, इस प्रकार हमारा सागर के प्राणियों का ज्ञान सान्जे-क्टिव सिलेक्टिविज्म कहा जाएगा।

बर्गसां विज्ञान और गणित को (वास्तव में सभी प्रकार की विश्लेषणात्मक प्रणाली को) ज्ञान के साधन के रूप में अनुपयुक्त समझता है, और प्रातिभ ज्ञान (Inituition) का समर्थन करता है जो कि प्रकृत्या ही संश्लेषणात्मक है। उसके विचार में कालिक विकास संश्लिष्ट, निरवच्छिन्न और अतएव प्रतिपल नवीन (Noval) है, और इसकी इस नवीनता के सौंदर्य का उपभोग प्रातिभ से ही हो सकता है। वह काल की इस निरवच्छिन्नता को ही स्वतंत्रता का आधार बताते हैं। यहाँ इतना कहना ही पर्याप्त होना चाहिए कि स्वतंत्रेच्छा का काल की नूतनता और निरवच्छिन्नता (Real duration) से कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसा कि हम आगे देखेंगे।

मनुष्य को छोड़ते हुए, विकासवाद के जीव वैज्ञानिक सिद्धान्त में कोई भी ऐसी चीज नहीं है, जो स्वतंत्रेच्छा के बर्गसॉनियन विचार के समीप बैठ सके। अमीयबा और बन्दर के व्यवहार में एक मात्र भिन्नता उनकी परिवृत्ति का उपभोग (Manipulate) करने की सामर्थ्य में है। पक्षी घोंसल बनाते हैं, यह परिवृत्ति का मैनीपुलेशन (Manipulation) है। कभी-कभी ये अपने व्यवहार में बड़े चतुर और बुद्धिमान प्रतीत होते हैं, किन्तु वे कितने अधिक यांत्रिक होते हैं, यह बड़ी सुविधा से देखा जा सकता है, यहाँ तक कि बन्दर भी बहुत अधिक यांत्रिक होता है। यह ठीक है कि हम यह निश्चित नहीं बता सकते कि अमुक बन्दर प्रहार करने पर प्रति प्रहार करेगा या भाग जाएगा, किन्तु यह चुनाव उसके भी अहम् की स्वतंत्रेच्छा पर अवलंबित नहीं है, यह उसकी शारीरिक अवस्था और प्रकृति पर निर्भर करता है, जो प्राकृतिक नियमों के अनुसार शासित होते हैं। पॉवलॉव का निर्धारित प्रतिक्रिया (Conditioned Reflex) का सिद्धान्त और प्रतिलिपि (Trace) का सिद्धान्त भी प्राणी व्यवहार में इसी प्रकार की निर्धारितता की पुष्टि करता है। आज हम मस्तिष्क में स्मृति-चिन्हों (Traces) और प्राणी व्यवहार के शारीरिक आधारों के संबन्ध में बहुत कम जानते हैं, इसलिए जेनेटिस्ट और जीव वैज्ञानिक आज सब कुछ विस्तृत रूप में नहीं बता सकते, किन्तु विशुद्ध तर्क और प्रयोग; दोनों दृष्टियों से, हमारे विचार में, मानसिक प्रक्रिया का आधार शरीर को मानना सुविधा जनक हैं।

मनुष्य अपनी इच्छाओं में स्वतंत्र है, इसे प्राय: सब स्वीकार करेंगे, किन्तु वास्तव में यह भी सदैव यान्त्रिक रूप से ही कार्य करने में प्रवृत्त होता है और जब कभी उसे भिन्न प्रकार से कार्य करना पड़ता

है, वह एक तनाव और भार का अनुभव करता है। जैसा कि हमने पिछले नबंधों 'फिनो जेनेटिक्स और व्यक्तित्व' तथा 'प्रवृत्ति की प्रकृति'—में देखा है, मनुष्य की अनुभूतियां, विचार और व्यवहार आनुवंशिकता (Heredity) और परिवृत्ति के सामान्य क्षेत्र (Common field) हैं और वह उससे कहीं अधिक यांत्रिक और प्रवृत्यात्मक (Instinctive) है जितना हम समझते हैं।

जैवी विकास के कारण और विकसित समाज का सदस्य होने के कारण मनुष्य कुछ ऐसी विशेषताएँ रखता है जिनसे कुछ दार्शनिक उसे ईश्वर से प्रेषित समझने लगे और बर्गसां जैसे द्वैतवादी हो गए। बर्गसां ने अपनी 'पदार्थ और स्मृति' (Matter and Memory) पुस्तक में अभ्यास और स्मृति में बड़ी योग्यता से अन्तर बताया है, और इस भेद के आधार पर वे द्वैतवाद के सिद्धान्त की वकालत करते हैं। वे भूमिका में लिखते हैं—"यह पुस्तक पदार्थ और आत्म तत्त्व की यथार्थता को मान कर चलती है और एक निश्चित उदाहरण—स्मृति के आधार पर इनके पारस्परिक संबंध को निश्चित करने का प्रयास करती है।"

विशुद्ध स्मृति, रसल जिसे नॉलेज मेमोरी (Knowledge Memory) कहते हैं, की मानसिकता के सम्बन्ध में हम पीछे विस्तार से देख आए हैं, यहाँ हमें उस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना है कि यह स्मृति बन्दरों में बहुत कम स्पष्ट होती है, और कुत्ते की श्रेणी के जीवों में यह प्रायः बिल्कुल ही नहीं पाई जाती, वे केवल अभ्यास-स्मृति (Habit Memory) ही रखते हैं। बर्गसां का विशुद्ध स्मृति का विचारशील (Intellectual) प्राणी-मनुष्य में होने का सुझाव और इसकी अन्य प्राणियों में अनुपस्थिति (यद्यपि वे इसका अभाव अन्य प्राणियों में नहीं बताते, किन्तु एक तो उन्होंने जो उदाहरण दिए हैं वे मनुष्य के ही हैं और दूसरे, उन्होंने क्रियेटिव एवोल्यूशन में प्रकृति की व्याख्या करते हुए उसमें स्मृति के अस्तित्व को नहीं माना) और काल की सृजनशीलता (Creativeness) की प्रवृत्यात्मक प्राणियों में स्वीकृति और विचारणा के साथ उसके विपरीत-भाव की वकालत असम्भव परिणामों पर हमें पहुँचाती है—कि मनुष्य चेतन तत्त्व युक्त होने पर भी (विशुद्ध स्मृति के कारण) स्वतंत्रेच्छा से रहित है और अन्य प्राणी स्वतंत्रेच्छा रखने पर भी आत्म तत्त्व से रहित हैं। इसका अर्थ हुआ कि चेतन तत्व और स्वतंत्रेच्छा एक साथ नहीं रह सकते।

किन्तु यह एक अत्यंत उलझनपूर्ण प्रश्न है जो विस्तृत विवेचन की अपेक्षा

करता है। यहाँ हम इस सम्बन्ध में केवल संक्षिप्त रूप से अपने विचार स्पष्ट करेंगे। हम एक अभ्युपगम (Hypothesis) प्रस्तुत करेंगे, हम कहेंगे कि प्रत्येक मानसिक व्यापार मस्तिष्क- कोषों के यंत्र में विद्युत्-लहरों और शक्ति विस्फोट के रूप में उत्पन्न होता है, इसलिए मानसिकता शारीरिक यंत्र के काय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, जिसका अर्थ हुआ कि हमारी इच्छाएं हमारी भौतिक परिस्थितियों से स्वतंत्र नहीं हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि दो भिन्न व्यक्ति कभी समान इच्छाएँ नहीं रख सकते और एक व्यक्ति कभी दो एक जैसी इच्छाएँ नहीं रख सकता। और यह बर्गसाँ की यथार्थ कालिकता (Real Duration) से भी भिन्न नहीं है। इससे हम सुविधा से परिणाम निकाल सकते हैं कि मनुष्य इडिंगटन के सुझाव अ अथवा ब + अहम् की स्वतंत्रता के अर्थ में स्वतंत्र नहीं है और न बर्गसां की रीयल ड्यूरेशन के अर्थ में ही स्वतंत्र है। मान लें कि हम एक दम समान प्राणियों को प्राप्त करते हैं, और मान लें कि यदि हम उनमें से किसी एक पर प्रहार करते हैं और वह प्रति प्रहार करता है, तो हम यह परिणाम निकालने में पूर्णतः न्याय्य हैं कि दूसरे ने भी ठीक उसी प्रकार प्रति प्रहार किया होता यदि हम तब उस पर आक्रमण करते, किन्तु यदि दो बिल्कुल एक ही जैसे रास्ते किसी एक ही स्थान को ले जाते हैं, तो दोनों ओर बराबर चांस है कि वे किसी भी एक या दूसरे रास्ते को चुन लें। यद्यपि ऐसे प्रयोग किए नहीं गए हैं किन्तु प्रायः सभी युग्मज (Twins) अपने व्यवहार में बहुत कुछ समता प्रदर्शित करते हैं। जैसा कि रसल कहते हैं—हम संभावना करते हैं, यद्यपि यह सन्देह जनक है, कि मानसिकता और भौतिकता के निश्चित नियम हैं, जिनके अनुसार, यदि सम्पूर्ण पदार्थ की प्रकृति ज्ञात हो (जिसमें कि सम्पूर्ण शरीर और मस्तिष्क भी सम्मिलित हैं) तो संसार के सम्पूर्ण हृदयों की किसी भी क्षण पर स्थिति अनुमति की जा सकती है।"

और यह अंकों की असीम श्रृंखला (इन्फिनिट सीरीज आफ नंबर्ज़) के अनुसार होना चाहिए, जैसा कि हमने पीछे देखा था। कारण-कार्य सम्बन्धों की स्वीकृति स्वयं ही यह प्रमाणित नहीं कर देती कि कारण-कार्य के होने को बाध्य कर देता है और न ही कारण-सम्बन्धों का अर्थ वही कारण वही कार्य ही है, यह केवल दो समीपतम घटनाओं में कालिक और दैशिक सम्बन्ध का प्रतिपादन करता है। कारण सिद्धान्त की इस व्याख्या से इस सम्बन्ध में यह भ्रान्ति दूर हो जानी चाहिए कि कारण कार्य को निर्धारित करता है। कारण शब्द केवल पहली घटना से सम्बन्ध रखता है, जिसके आधार पर पीछे की घटना या घटनाओं का साधारणीकृत अस्तित्व जाना जाता है।

कारणता की यह व्याख्या हमें चुनाव की स्वतन्त्रता से वंचित नहीं करती, किन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं है कि हमारे चुनाव और हमारी अन्तर्निहित (Initial) प्रकृति या अवस्थाओं में कोई संबंध नहीं हैं। यदि मैं पूर्व की बजाए पश्चिम में जाने का निर्णय करता हूँ, यह मेरी स्वतंत्रेच्छा पर अवलंबित है, किन्तु इसका कभी यह अर्थ नहीं होना चाहिए कि इस घटना की कोई पूर्वगामी घटना (कारण) नहीं थी। केवल इसी अर्थ में इच्छा की स्वतंत्रता का कारणता के साथ समन्वय किया जा सकता है।

× × ×

कारण संबंध की दृष्टि से प्राणी-व्यवहार या मानसिक घटनाओं के बारे में हमने एक साधारण नियम प्रस्तुत किया है, जिसके अनुसार (१) मन शारीरिक यंत्र में घटित होता है, (२) विशेष शारीरिक घटनाओं, जिन्हें हम मन कहते हैं, के अनुक्रम संबंध की प्रकृति भौतिक घटनाओं में कारण-कार्य संबन्ध की प्रकृति के समान ही है। यहाँ हम इस संबन्ध में संक्षेप में विशेष रूप से विचार करेंगे।

मन की भौतिकता, अथवा मन की शरीराश्रितता के पक्ष में हमने अपने विचार पीछे प्रस्तुत किए थे, अतः यहाँ हम पुनः उस समस्या को नहीं उठाएंगे, यहाँ हम केवल यह देखेंगे कि कैसे इतिहास या अतीत-मानसिक घटनाएं वर्तमान मानसिक घटनाओं पर प्रभाव डालती हैं, और इस प्रकार इस प्रदेश में कारण-कार्य संबंध की क्या प्रकृति है। हमने पीछे कहा था—"कारण श्रृंखला घटनाओं का वह अनुक्रम है जिसमें उत्तरगामी अवस्थाओं की दिशा संपूर्ण पूर्वगामी अवस्थाओं (Positions) के 'परिवर्तन की दिशा' के अनुसार होती है, और यह कि कारण और कार्य में दैशिक और कालिक संबंध अनिवार्य हैं। अब इसे हम मानसिक घटनाओं पर कैसे लागू कर सकते हैं? इसके उत्तर में हमने पीछे कहा कि—"दो समान प्राणी समान परिस्थितियों में सदैव समान रहेंगे"—अर्थात् उनकी मानसिक प्रवृत्ति (Mental Desposition) एक सी होगी। अब मान लीजिए एक मनुष्य को एक विशेष सुगंध को सूंघने पर किसी पुरानी घटना की याद हो आती है, यहाँ हम कहेंगे कि वर्तमान उकसाहट (Stimuli) उ, के कारण काल क पर एक अतीत घटना अ का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु उ और अ के संबंध की क्या प्रकृति है? बर्ट्रेंड रसल कहते हैं—"अ, आ, ई...... अतीत घटना वर्तमान उकसाहट के साथ वर्तमान स्मृति स को उत्पन्न करती है। क्योंकि यह सफलतापूर्वक प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि हमारा किसी शब्द विशेष का ज्ञान उस समय भी

हमारे मन में अपना अस्तित्व (Actual existence) रखता है जब कि हम उस शब्द के संबंध में नहीं सोच रहे होते। यह केवल एक गुण विशेष है जिसे हम मन का स्वभाव (Desposition) कह सकते हैं; अर्थात् शब्द का ज्ञान पुनः उत्पन्न किया जा सकता है, जब भी हम इसके संबंध में सोचना चाहें। किन्तु मन का स्वभाव (Desposition) कोई वास्तविक अस्तित्व (Actual existence) नहीं है, यह केवल स्मृति सम्बन्धी कारण-सम्बन्ध का स्मृति सम्बन्धी पहलू है।☆ इसका अभिप्राय यह हुआ कि वर्तमान घटना, उकसाहट किसी अतीत घटना के साथ एक अन्य वर्तमान घटना, जिसे हम स्मृति कहते हैं, उत्पन्न करती है और यह वर्तमान घटना स्मृति अतीत घटना ही न होकर केवल उस जैसी होती है। किन्तु ऐसा मान लेने में कुछ कठिनाइयाँ हैं। यदि अतीत घटना उस समय अविद्यमान रहती है जब कि वह हमारे चेतन व्यापार का विषय नहीं होती और डिस्पोज़ीशन वास्तविक (Actual) नहीं हैं, तो वर्तमान उकसाहट, जो कि दैशिक और कालिक रूप से उससे सम्बधित नहीं है, के साथ वह स्मृति का कारण कैसे हो सकती है? दूसरे, यदि अतीत घटना का अस्तित्व नहीं है और वह अनुक्रम सम्बन्ध के अनुसार‡ वर्तमान घटना का कारण है तो भी वर्तमान घटना के अतीत घटना के 'समान' होने का बोध हमें कैसे हो सकता है? तीसरे, यदि अनुक्रम सम्बन्ध में कोई कालिक और दैशिक संपर्क नहीं है तो वर्तमान उकसाहट का स्मृति को उत्पन्न करने के लिए एक या दूसरी घटना के साथ सम्बन्ध होना सांयोगिक होना चाहिए नियमित नहीं। तीसरे प्वाइंट प्रतिपादन को हम रसल के ही एक 'कारण-कार्य' के उदाहरण की व्याख्या कर स्पष्ट करेंगे। वे कहते हैं कि किन्हीं भी दो या अधिक मिलों के हूटर यदि नियमित रूप से एक ही समय पर बजते हैं तो वे समान रूप से एक या दूसरी मिल के मज़दूरों के कार्य छोड़ने के कारण कहे जा सकते हैं, जैसे कलकत्ता की किसी मिल का हूटर बम्बई की किसी मिल के मज़दूरों की छुट्टी का उतना ही कारण कहा जा सकता है जितना बम्बई की मिल का,

---

☆"A Desposiion is not Something actual but mentle mnemic portion of a mnemic Causal law"

‡ बर्ट्रेंड रसल की अनुक्रम सम्बन्ध की व्याख्या हमारी अनुक्रम सम्बन्ध की व्याख्या से इस अर्थ में भिन्न है कि रसल इस सम्बन्ध में किसी दैशिक और कालिक संपर्क की अनिवार्यता स्वीकार नहीं करते, वे केवल अनिवार्य अनुक्रम की आवृत्तियों को ही काफी समझते हैं। हमारे विचार में यह वास्तविकता से सम्बन्ध नहीं रखती।

यदि दोनों एक ही समय बजें तो। किन्तु हमारे तीसरे प्वाइंट के अनुसार, स्पष्ट रूप से कलकत्ता के हूटर बम्बई के मिल मजदूरों के अवकाश के साथ केवल सांयोगिक रूप से सम्बद्ध हैं। यह भूल तब और भी स्पष्ट हो जाएगी यदि हम उस हूटर के बजने के समय लंदन में भोजन करने वाले किसी व्यक्ति के उस कार्य का कारण हूटर को इसलिए बताएं क्योंकि उनमें अनुक्रम सम्बन्ध है। किन्तु हम देखते हैं कि स्मृति के साथ उकसाहट और पूर्व घटना का सम्बन्ध सांयोगिक (Accidental) नहीं है। इस प्रकार रसल की स्मृति-कारणता (Mnemic causation) की कल्पना, हमारे विचार में, वास्तविकता से सम्बन्ध नहीं रखती।

तो स्मृति की समस्या की विवेचना हम किस प्रकार करेंगे? हमने पीछे कहा था कि 'प्रत्येक मानसिक घटना हमारे मस्तिष्क तन्तुओं अथवा शरीर के अन्य किसी भाग में घटित होती है।' यदि हम यह स्वीकार कर लें तो हम वर्तमान स्मृति को भी मस्तिष्क तन्तुओं में घटित मान सकते हैं, और इस प्रकार स्मृति किसी पूर्व घटना की वर्तमान उकसाहट के साथ आनुक्रमिक पश्चानुगामी घटना न होकर उकसाहट और मस्तिष्क तन्तुओं का कार्य कही जाएगी। स्मृति कारणता के इस लक्षण को हम अब बड़ी सुविधा से कारण संबंध की अपनी व्याख्या पर घटित कर सकते हैं। इसके अनुसार अतीत घटना वर्तमान घटना के समान ही हमारे मस्तिष्क में घटित होती है और अपना एक चिन्ह उस पर छोड़ जाती है। इस प्रकार घटना का अस्तित्व उस चिन्ह के रूप में हमारे मस्तिष्क में रहता है—इस प्रकार की भविष्य में कोई भी घटना, जो शरीर वैज्ञानिक अर्थ में अतीत घटना के किसी एक पहलू से कुछ मिलती है अतीत घटना की स्मृति को कुछ जागृत कर देती है, और अतीत का यह जागरण हमारे मस्तिष्क तन्तुओं में उस चिन्ह को व्यापारित कर देता है। एक तरह से यह पाँवलॉव के कंडीशंडरीफ्लेक्स (Conditioned Reflex) से भी मिलता जुलता है। अतीत घटना का यह चिह्न और उकसाहट स्मृति के आनु-क्रमिक कारण कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनका स्मृति ज्ञान के साथ आनुक्रमिक दैशिक-कालिक संबंध रहता है। यहाँ आपत्ति की जा सकती है कि मस्तिष्क में इस प्रकार के चिन्हों का अस्तित्व मात्र एक कल्पना है, क्योंकि ऐसे चिन्ह किसी ने नहीं देखे और शरीर को भौतिक मानते हुए उसमें ऐसे चिन्हों को स्वीकार करने में कोई संगति नहीं है, क्योंकि भौतिक विश्व में स्मृति जैसी कोई विशेषता हम नहीं देखते।' किन्तु इसकी पुष्टि में कुछ तर्क दिए जा सकते हैं यद्यपि वे अन्तिम (Conclusive) नहीं कहे जा सकते। (१) कंडीशंडरीफ्लेक्स में हम अतीत घटना के किसी एक पहलू के घटित होने पर प्राणी को इस प्रकार

व्यवहार करते हुए देखते हैं जैसे शेष संपूर्ण घटना भी घटित हुई हो, यदि कंडीशंडरीफ्लेक्स को शरीर वैज्ञानिक घटना स्वीकार किया जाता है। स्मृति को उकसाने वाले कारण को हम उसी प्रकार अतीत घटना का एक पहलू कह सकते हैं जैसे कंडीशंडरीफ्लेक्स में उकसाहक घटना को। कंडीशंडरीफ्लेक्स और स्मृति में अन्तर केवल इतना ही है कि पश्चानुगामी घटना का कार्य प्रथम में बाह्य या द्रष्टव्य है और द्वितीय में आन्तरिक या अद्रष्टव्य। (२) अतीत घटना और वर्तमान उकसाहट के बीच के अन्तर को भरने के लिए और इन दोनों घटनाओं को आनुक्रमिक कहने के लिए किसी ऐसे तत्व की आवश्यकता है जो पूर्ण घटना की चैतन्य अनुपस्थिति के बावजूद इन दोनों (पूर्व घटना और वर्तमान उकसाहट) में एकता स्थापित कर सकें, जिसके आधार पर हम कह सकें कि ये 'एक ही मन की कारण श्रृंखला की दो कड़ियाँ हैं, जैसे भौतिक पदार्थ की एकता के लिए। (३) यदि मानसिक घटनाएं शरीर से स्वतंत्र हैं तो मस्तिष्क में घाव होने पर भी विशेष उकसाहट को स्मृति उत्पन्न करने में समर्थ होना चाहिए, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। (४) यदि मानसिक घटनाएं स्वतंत्र हैं तो सन्निपात इत्यादि में उन्हें किसी ज्ञात उकसाहट के बिना उत्पन्न नहीं होना चाहिए और उनमें ऐसी अवस्था नहीं होनी चाहिएं कि वे अव्यवस्थित यंत्र के कार्य जैसी प्रतीत हों। (५) यदि मानसिक घटनाएं शरीर से स्वतंत्र हैं तो उन्हें शरीर के निष्क्रिय हो जाने पर भी सक्रिय रहना चाहिए अथवा मृत्यु के पश्चात् भी मन को जीवित रहना चाहिए, जो कि नहीं होता अथवा कम से कम जिसके होने का कोई तर्क सम्मत प्रमाण नहीं हो सकता।

किन्तु मन की शरीराश्रितता के विरुद्ध भी कुछ तर्क दिए जा सकते हैं और इसी प्रकार मन की स्वतंत्रता का पक्ष भी पुष्ट किया जा सकता है, यद्यपि हमारे विचार में ये तर्क विशेष औचित्य नहीं रखते। उदाहरणतः बर्गसां मानसिक स्मृति अथवा यथार्थ स्मृति (Real Memory) के पक्ष में तर्क देते हुए कहते हैं—"पाठ की स्मृति, इस अर्थ में कि हम उसे याद अथवा कंठकिया हुआ कह सकें, सब प्रकार से 'अभ्यास' (Habit) के चिन्ह रखती है। आदत के समान, यह भी उसी प्रयास की आवृत्ति से सीखी जाती है, आदत के समान ही यह भी संपूर्ण क्रिया के पहले विश्लेषण (Decomposition) और फिर संश्लेषण (Recomposition) की अपेक्षा करती है। और अन्त में, किसी भी प्रकार की आदत संबंधी क्रिया के समान ही, यह भी एक यंत्र में संग्रहीत की जाती है जो कि उपयुक्त उकसाहट से संपूर्ण क्रमशः व्यापारित हो हो जाता है।

"इस के विपरीत, प्रत्येक पाठ-क्रिया की पृथक्-पृथक् स्मृति (जैसे, प्रथम-

बार इस प्रकार पढ़ा गया और द्वितीय बार इस प्रकार) अभ्यास का कोई भी चिह्न नहीं रखती। इसकी छाया कृत (Image) एक दम मेरी स्मृति पर अंकित हो गई थी। यह मेरे जीवन में एक घटना है, इसका स्वभाव है कि यह एक निश्चित् तिथि रखती है और परिणामतः यह पुनः घटित नहीं हो सकती। किसी विशेष पठन की स्मृति एक प्रतिनिधित्व है और केवल प्रतिनिधित्व (Representation) है, यह मन की इंच्यूइशन (Intuition) में आलिंगित रहती है जिसे कि मैं अपनी इच्छानुसार छोटा-बड़ा कर सकता हूँ। बर्गसां इस स्मृति को 'मानसिक' कहते हैं और इसे कारण संबंध से स्वतंत्र मानते हैं, क्योंकि उनके अनुसार "यह 'छायाकृति' यद्यपि अपने रूप में वही है किन्तु जितनी ही बार हम इसका स्मरण करते हैं उतनी बार उसकी मूल प्रकृति में अन्तर आता है।" वास्तव में बर्गसां के कारण संबंध के निषेध का आधार उनका इस संबंध को 'वही कारण-वही कार्य' के रूप में समझना है। जहाँ तक उनके आदत और विशुद्ध स्मृति में अन्तर करने का प्रश्न है, उस पर हमें कोई आपत्ति नहीं है किन्तु हमारा 'चिह्न का सिद्धान्त' (Trase Theory) इसे संगति देने में उतना ही उपयुक्त है। किन्तु इस पर कुछ और अधिक ठोस आपत्तियाँ भी हो सकती हैं, जिन्हें ब्रॉड ने बड़ी योग्यता से प्रस्तुत कर उनका उत्तर दिया है। यहाँ हम उनके विचारों को संक्षेप में प्रस्तुत करेंगे।

मन के शरीराश्रित होने के विरुद्ध कहा जा सकता है कि (१) हम कुछ ऐसे अनुभव करते हैं जब कि हमें प्रतीत होता है कि हमारा मन हमारे शरीर को व्यापारित कर रहा है, और इसी प्रकार हम कुछ दूसरे अनुभव करते हैं जिनमें शरीर मन को व्यापारित करता है। इच्छा पूर्वक अपने शरीर को क्रिया में लगाना प्रथम प्रकार के अनुभव का उदाहरण है और किसी नवीन संवेद का घटित होना दूसरे प्रकार के अनुभव का। अब कहा जा जा सकता है कि यह दो प्रकार के 'सक्रिय' (Active) और 'निष्क्रिय' (Passive) अनुभव तब तक नहीं हो सकते जब तक कि मन का पृथक अस्तित्व न हो। दूसरे प्रकार के अनुभव वास्तव में शारीरिक प्रकृति के हैं, क्योंकि यदि मन शरीराश्रित है तो उसे शारीरिक क्रियाओं में घटित होना चाहिए न कि शरीर को मन के अनुसार घटित होना चाहिए। यह ठीक है कि इन दो अनुभवों में अन्तर है, किन्तु यह ऐसी समस्या नहीं जिसका उत्तर मन की शरीरश्रितता के अनुसार न दिया जा सके। हम इन दोनों अनुभवों में प्रतीयमान अन्तर की प्रकृति को देखेंगे। इनमें प्रथम एक चेतन व्यापार के साथ प्रारम्भ होकर अन्य मानसिक क्रियाओं से अनुगमित होता है, किन्तु ये क्रियाएँ इच्छा की निरंतरता का अंग

नहीं होतीं। अनुगमित क्रियाएँ, जो इच्छा के साथ संबद्ध होती हैं। केवल शारीरिक व्यापार जनित संवेद (Sensations) होती हैं, अब इसका नवीन संवेदों से मुकाबिला किया जाए, ये पहले से जारी मानसिक व्यापार की निरंतरता से सम्बन्धित नहीं हैं, यद्यपि ये नवीन मानसिक क्रियाओं को जन्म देती हैं। पहली घटनाएँ, जिनसे यह नवीन संवेद समीपता से संबद्ध है, हमारे शरीर में होने वाली घटनाएँ हैं जो कि अचेतन मानसिक घटनाओं से सहानुगमित नहीं होतीं। हम उन स्थितियों में निष्क्रियता अनुभव करते हैं जिनमें शारीरिक व्यापार, जो कि चैतन्य से युक्त नहीं हैं चेतनायुक्त शारीरिक व्यापार में परिवर्तित हो जाता है और हम उस समय सक्रिय (Active par excellence) अनुभव करते हैं जब कि शारीरिक व्यापार, जो कि चैतन्य युक्त है, चैतन्य रहित शारीरिक व्यापार में परिणत हो जाता है, जो उसकी निरन्तरता (Continuation) में नहीं हैं। संक्षेप में इसका अभिप्राय यह हैं कि चेतन और अचेतन व्यापार दो भिन्न प्रकार के शारीरिक व्यापार ही है और कभी भी एक दूसरे में परिणत हो सकता है। इस प्रकार, जिसे हम संवेद कहते हैं, वह थोड़ी देर के अचेतन शारीरिक व्यापार के पश्चात् चेतन शारीरिक व्यापार—संवेद के ज्ञान (Cognition of Sensation) में परिवर्तित हो जाता है और इच्छा का ज्ञान अचेतन शारीरिक व्यापार में परिर्वातित हो जाता है।

कभी-कभी मन के अस्तित्व को अन्तर्ज्ञान (Introspection) से भी प्रमाणित किया जाता है, जिसके अनुसार इस अन्तर्ज्ञान के कारण भौतिक नहीं हैं। इसका उत्तर भी उसी प्रकार दिया जा सकता है, जैसे ऊपर की आपत्तियों का दिया गया है। छायाकृतियां (Images) उदाहरणतः अन्तर्ज्ञान की प्रमाण हो सकती हैं। मान लीजिए मैं कल्पना में अपने एक मित्र को देखता हूँ। किन्तु वास्तव में छायाकृतियां अन्तर्ज्ञान की उपयुक्त उदाहरण नहीं हैं क्योंकि (१) हम जानते हैं कि हम बाहर किसी वस्तु को आखों से देखे बिना ही केवल विशेष प्रकार से रेटिना को उकसा कर वस्तु विशेष को देख सकते हैं। इसलिए यह बहुत अधिक संभव है, जैसा कि शरीर वैज्ञानिक हमें बताते हैं, कि छायाकृतियां हमारी ज्ञानेन्द्रियों के उन छोरों की उकसाहट के रूप में घटित होती हैं जो मस्तिष्क में अपना प्रतिनिधित्व रखते हैं। इनकी दूसरी विशेषता इनके संवेदों की प्रतिलिपि होने में है, इसी से छायाकृतियों या कल्पनाकृतियों को कारण रूप से (Causally) संवेदों से भिन्न बताते हैं। रसल और हमारी इस कारणता की व्याख्या में वही अन्तर है जो

स्मृति की व्याख्याओं में है। इस सम्बन्ध में हम पिछले निबन्ध में अत्यन्त विस्तार से देख आए हैं।

इस भौतिक और मानसिक की (कारणता के प्रकरण में) व्याख्या के पश्चात् हम कुछ परिणामों पर पहुँचते हैं:—(१) भौतिक घटनाएँ किन्हीं संबंधों में घटित होती हैं। (२) ये संबंध इस प्रकार के नहीं हैं कि उनके अनुसार किसी एक घटना में सम्पूर्ण विश्व को समाहित किया जा सके। (३) कारण-संबंध घटनाओं की वे शृंखलाएँ हैं जिनके अनुसार कोई भी घटना अपनी पूर्वगामी और पश्चगामी घटनाओं की दिशा का संकेत करती है। इन संबंधों का आधार देश-काल और इन संबंधों की विशेष प्रकृति है। (४) मानसिक घटनाएँ भी उसी प्रकार कारण संबंधों का विषय हैं जैसे भौतिक घटनाएँ (५) इसलिए स्वतंत्रेच्छा का प्रश्न इस अर्थ में निरर्थक है कि किसी इच्छा विचार कल्पना अथवा भावना की कोई पूर्वगामी घटना नहीं है जो कि अपनी पश्चगामी घटना—इच्छा की दिशा का संकेत करती है। (६) यदि कारण संबंधों को मानसिक क्रियाओं पर भी भौतिक घटनाओं के समान लागू होना है तो स्मृति की इस रूप में कोई सार्थकता नहीं है कि वह किसी अतीत घटना की स्वतंत्र प्रतिलिपि है और अतीत घटना किसी रहस्यमय ढंग से अनस्तित्व से उकसाहट के साथ मिलकर स्मृति (वर्तमान घटना और पूर्व घटना की प्रतिलिपि) को व्यापरित करती है। प्रत्युत् यह कि अतीत घटना हमारे मस्तिष्क में चिह्न के रूप में मस्तिष्क की कारण शृंखला का एक भाग बन जाती है और एक अन्य कारण के सहयोग से एक नवीन कारण शृंखला 'स्मृति-ज्ञान' को व्यापारित करती है। इस प्रकार हमारी मानसिक प्रकृति भी कारण शृंखला से स्वतंत्र नहीं है और परिणामतः स्वतंत्रेच्छा नहीं हो सकती। (७) किन्तु कारण शृंखला की हमारी व्याख्या के अनुसार मनुष्य की चुनाव शक्ति अक्षुण्ण रहती है।

सहायक पुस्तकें

1. Bergson H. — Creative Evolution, English Ed. 1910 (New York).
2. — Matter and Memory, English Ed. 1910 (London).
3. Bridgeman. — Logic of Modern Physics 1927 (New York).
4. Broad C. D. — The Mind and Its place in Nature 1925 (London).
5. Eddington, S.A. — New Pathways in Science 1920 (Cambridge).
6. — The Philosophy of Physical Science 1949 (Cambridge).
7. Russll, B. — The Analysis of Maid 1921 (London).
8. — Mysticism and Logic 1925 (London).
9. — An out Line of Philosophy 1929 (London).
10. — Our Knowledge of the External World 1020 (London).
11. Bergson, H. — Time and Free will 1920 (London).
12. Bose, D. M. — Living and Non Living (Presedential Address to the 40th Indian Science Congress).
13. Cuhen. — Studies in Philosophy and Science (New York).

८—पदार्थ और मन

एक समन्वित वैज्ञानिक अद्वैतवादी दर्शन

पिछले दो निबन्धों में हमने मन के सम्बन्ध में सामान्य रूप से मानसिक और भौतिक कारणता के सम्बन्ध में विशेष रूप से विचार किया है और वहां हमने लगभग पदार्थवादियों के समान ही मन को भौतिक-द्रव्य का गुण माना है, जबकि लगभग 'मानसिकता वादियों' के समान कारणता की व्याख्या की है । किन्तु 'भौतिक द्रव्य क्या है ?' इस सम्बन्ध में हमने इन निबन्धों में कोई विचार नहीं किया । किन्तु इस सम्बन्ध में निर्णय किये बिना हमारा कार्य अधूरा है । वास्तव में, वह दार्शनिक दृष्टि से निराधार है, क्योंकि यदि बर्कले के समान यह प्रमाणित किया जा सके कि पदार्थ केवल मानसिक प्रत्यय हैं, तो हमारा सम्पूर्ण दुर्ग कार्डों के घर के समान गिर जाएगा । अतः यहाँ हमें पहले पदार्थ के स्वरूप पर विचार करना है और देखना है कि किस प्रकार हमारे पिछले निबन्धों के निष्कर्षों का इससे व्याघात नहीं होता ।

जैसा कि हमने पिछले निबन्धों में स्वीकार किया है, विश्व में कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जिन्हें हम निस्सन्देह मानसिक कह सकते हैं । मानसिक इस अर्थ में कि वे सर्व-सामान्य नहीं हैं, अर्थात् उनसे प्रेरित होनेवाली कारण-शृंखला केवल एक ही देश में घटित होती है—जिसे हम एक मस्तिष्क कह सकते हैं । 'शरीर और मन' निबन्ध में हम इस निर्णय पर पहुँचे थे कि कल्पना, स्मृति तथा इच्छा इत्यादि का अन्तर्भाव संवेद (Perception) और अन्वय (Association) में किया जा सकता है । किन्तु संभव है भौतिक पदार्थ तथा मन अथवा भौतिक घटना तथा मानसिक घटनाओं के गुण में अन्तर हो । जहाँ तक कारणता का सम्बन्ध है, हमने पिछले निबन्ध में कारण-शृंखला की व्याख्या निगमन के आधार पर की है, जिसका अभिप्राय है कि कारणता का अन्तिम आधार प्रत्यय ही है । इस प्रकार, यह व्याख्या व्याघातपूर्ण हो सकती है—यदि मानसिक घटनाओं का विश्लेषण हम भौतिक घटनाओं में करते हैं तो हमें कारण-सम्बन्धों की व्याख्या अगमन की रीति से मन से स्वतन्त्र करनी होगी, और यदि हम कारण-सम्बन्धों की व्याख्या निगमन के आधार पर करते हैं तो हमें मन का स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं स्वीकार करना होगा, प्रत्युत् स्वयं भौतिक घटनाएँ मानसिकता से स्वतन्त्र नहीं हो सकेंगी । इसलिये हमें यहाँ मन का प्रश्न भी पुनः उठाना होगा ।

कल्पना और स्मृति के सम्बन्ध में विचार करते हुए हमने 'मन और शरीर' निबन्ध में देखा था कि जहाँ तक कारण-सम्बन्धों का प्रश्न है, इनमें तथा संवेद में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु एक अन्तर स्पष्ट है; जिसे हम अन्वयात्मक (Associative) अन्तर कह चुके हैं। अन्वय मनोविज्ञान में कारण-श्रृंखला के उस भाग को कहते हैं जो कथित घटना (संवेद) के घटित होने पर सहानुगमित होती हैं। ये सहानुगामी श्रृंखलाएँ अतीत संवेदों और सहानुगमित घटनाओं से निर्मित होती हैं। अब यहाँ 'अतीत घटनाओं' का अर्थ स्पष्ट नहीं है। 'मन और शरीर' निबन्ध में हमने यह माना था कि अतीत घटनाएँ हमारे मस्तिष्क में चिह्नित हो जाती हैं और उचित उकसाहट मिलने पर ये चिह्न क्रियान्वित हो उठते हैं। इस पर दो आपत्तियाँ हो सकती हैं—इसके लिए हमारे पास क्या प्रायोगिक आधार हैं ? और दूसरे, जब कि पदार्थ के सम्बन्ध में हम किसी निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं तब हम शरीर में 'चिह्नित होने' को कैसे सार्थकता दे सकते हैं ? जहाँ तक पहले प्रश्न का सम्बन्ध है, उसका उत्तर हमारे विचार में, सहज है:—हम प्रत्यक्ष प्रमाणों के आधार पर अनुमान करते हैं—ग्रामोफोन रिकार्ड प्रत्यक्षतः ध्वनि अथवा हमारे उच्चारित शब्दों को न रखने पर भी सूई लगने पर उन्हें प्रदर्शित करते हैं, अतः यह अनुमान किया जा सकता है कि हमारा मस्तिष्क भी इसी प्रकार अथवा किसी अन्य प्रकार से घटनाओं का संचय रखता है। इस सम्बन्ध में हमने पिछले दोनों निबन्धों में सविस्तर विचार किया है। जहाँ तक दूसरी आपत्ति का प्रश्न है, उसका उत्तर हम आगे देंगे, किन्तु यहाँ एक तात्कालिक उत्तर दिया जा सकता है—कारण-श्रृंखला का अभिप्राय है 'नियमित-निरन्तर-अनुक्रम-परिवर्तन', जैसा कि पिछले निबन्ध में हम बता आए हैं। यह अनुक्रम घटनाओं में होता है। प्रत्येक वर्तमान घटना अतीत होती है, अर्थात् वह भविष्य और वर्तमान नहीं रहती, किन्तु यह अस्तित्वहीन हो जाती है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह एक विशेष अर्थ में 'विद्यमान' रहती है। इसमें तथा वर्तमान और भविष्य की घटनाओं में अन्तर केवल इनकी सापेक्षताओं में अथवा सम्बन्धों में अन्तर होता है। इसी प्रकार, अनुक्रम का यह अभिप्राय नहीं कि प्रत्येक पीछे आने वाली घटना पहली घटना से सम्पूर्णतः भिन्न हो, संभव है पीछे आने वाली घटनाएँ पहली घटनाओं के बिल्कुल ही समान हों—सिवाय सापेक्षताओं की भिन्नता के। इसी प्रकार, कारण श्रृंखलाएँ एक-साथ ही अनेक भी चलती रह सकती हैं, जैसे हमारे बोलने से ग्रामोफोन रिकार्ड में एक घटनानुक्रम प्रसारित होता है और दूसरी ओर वायु में ध्वनि लहरें भी प्रसारित होती हैं, और यदि कोई सुनने वाला व्यक्ति भी वहाँ कहीं उपस्थित हो तो बहुत से दूसरे

घटनानुक्रम भी व्यापारित होते हैं। अतः अतीत मानसिक घटना भी अन्य वर्तमान भौतिक घटनाओं के समान सम्बन्ध परिवर्तन के साथ विद्यमान रहती है। अतः चिह्न का अभिप्राय है--घटनानुक्रम, जोकि एक विशेष घटना से व्यापारित होता है और परिवर्तित सम्बन्धों के साथ अथवा एक बढ़ते हुए घटनानुक्रम के साथ विद्यामान रहता है।

इस प्रकार संवेद (Sense Perception), कल्पना तथा स्मृति में अन्तर केवल सम्बन्ध जनित है, न कि मौलिक, मौलिकता से हमारा अभिप्राय गुणों से है--निरपेक्ष और स्वतः प्रमाण। एक विशेष गुण वह है जो वह अन्य किसी भी सन्दर्भ से निरपेक्ष हो कर है; अर्थात् गुण का विश्लेषण नहीं किया जा सकता, केवल इसके उदाहरण दिये जा सकते हैं। इस प्रकार गुण की अवधारणा श्रेणी की अवधारणा है। किन्तु भूत विज्ञान गुणों को स्वीकार नहीं करता, वह केवल गाणितिक मात्राओं को स्वीकार करता है। किन्तु यदि हम गुणों को भौतिक विश्व में स्वीकार नहीं करेंगे तो मनोविज्ञान और भूत विज्ञान का भी समन्वय नहीं किया जा सकेगा, क्योंकि हमारे संवेद गुणात्मक हैं।

संवेंद का सम्भवतः सर्वाधिक निर्विवादास्पद लक्षण हो सकता है--विशुद्ध वर्तमान चाक्षुष अथवा श्रौत अथवा कोई भी ऐंद्रिय घटना। इस घटना में कोई ऐसा गुण नहीं है जिसके कारण इसे मानसिक कहा जा सके और भौतिक नहीं कहा जा सके। यह केवल इस घटना के संबंध हैं जो इसे विलक्षणता देते हैं। किन्तु इस कारण-शृंखला में अथवा सम्बन्धों में भी स्वतः ऐसी कोई विशेषता नहीं है जिसके कारण इन्हें संवेद से भिन्न गुणों की कहा जा सके, यह केवल सन्दर्भ की भिन्नता ही है जो इन्हें संवेदों से पृथक करती है। असंवेदित घटना (जिसे हम भौतिक कहते हैं और जिसके अस्तित्त्व को स्वीकार करने के कारण हम आगे देंगे) संवेदित घटना से इस अर्थ में भिन्न है कि संवेदित घटना हमारे मस्तिष्क में घटित होती है, और उस से प्रेरित होने वाली कारण-शृंखला एक दम 'व्यक्तिगत' है, जबकि बाह्य घटना से प्रेरित कारण-शृंखला के सम्बन्ध सर्व-सामान्य है। जहाँ तक मानसिक कारणता अथवा स्मृति-कारणता (Mnemic Causation) का संबंध है, उसे हम स्वीकार नहीं करते, जैसा कि हमने 'शरीर और मन' निबन्ध में स्पष्ट किया है। घूमते ग्रामोफोन रिकार्ड पर सूई लगने की घटना वर्तमान घटना है और उससे उकसाई हुई ध्वनि का सम्बन्ध अतीत से है, किन्तु वास्तव में यह सब वर्तमान घटना है।

किन्तु मन का गुण चैतन्य समझा जाता है। इस प्रकार मानसिक घटनाओं को भौतिक घटनाओं से इस गुण के अधार पर पृथक किया जाता है।

जो शरीर परिवृत्ति पदार्थों के प्रति प्रतिक्रिया करता है, अथवा आन्तरिक या बाह्य घटनाओं के होने की स्मृति रखता है तो हम उसे मानसिक गुण-युक्त कहते हैं। इसप्रकार, जो घटना 'सम्बन्धित अतीत कारण-शृंखला' को नहीं प्रमाणित कर सकती वह घटना मानसिक नहीं कही जा सकती। किन्तु चेतना को सम्बन्धित कारण शृंखला कहने का अभिप्राय है कि यह मनका मौलिक गुण नहीं है क्योंकि, जैसाकि हमने 'शरीर और मन' निबन्ध में देखा है, स्मृति और संवेद में अन्तर केवल सापेक्ष सम्बन्ध जनित है। स्वतः संवेद की कल्पना भी गाणितिक सीमा की कल्पना के समान है जिससे हम अनुगामी कारण-शृंखला को सर्वथा पृथक नहीं कर सकते, और दूसरी ओर अनुगामी कारण-शृंखला चेतना को मात्रात्मक (Matter of Degree) बना देती है, क्योंकि एक घटना जितनी ही अधिक सम्बन्धित कारण-शृंखला से अनुधावित होगी उतनी ही अधिक वह चैतन्य से ज्योतित कही जाएगी।

इसके अतिरिक्त, चैतन्य को 'किसी विषय के प्रति चेतन होने की क्रिया' समझा जाता है। किन्तु, जैसा कि जेम्ज़ ने कहा है, यह दर्शन के इतिहास में एक बहुत पुरानी सुपर्स्टिशन है। यह समझना अत्यन्त कठिन है, कैसे पदार्थ और चेतन होने की क्रिया सम्पर्क में आते हैं। मान लीजिए मैं एक मेज़ देखता हूँ। यह एक चाक्षुष घटना है जो मेरे मस्तिष्क में घटित होती है। अब यदि इस घटना को चैतन्य का गुण कहा जाए तो यह अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। चाक्षुष घटना को क्रिया और विषय में विश्लेषित करने का अभिप्राय है चेतना को विषय से पृथक मानना। किन्तु यह स्वीकार करना अन्तर्विरोध पूर्ण होगा, क्योंकि यदि क्रिया विषय के बिना संभव ही नहीं है तो चैतन्य क्रिया न होकर अधिक से अधिक एक गुण हो सकता है, और क्योंकि यह गुण विषय के साथ ही उत्पन्न होता है अतः उसे विषय का गुण ही कहा जा सकता है। अतः चाक्षुष या अन्य ऐंद्रिय घटनाओं को विषय और क्रिया अथवा विषय और विषयी में विभाजित करना निरर्थक है।

ऐंद्रिय घटनाओं को मस्तिष्क में घटित होने वाली घटनाएं कहने का अभिप्राय यह है कि जब मैं मेज़ देखता हूँ, उस समय मेज़, जो कि मुझे अपने से कुछ दूरी पर दिखाई देता है, वास्तव में एक घटना समवाय है जो मेरे मस्तिष्क में घटित होता है, और इसी प्रकार का घटना समवाय यदि वहाँ भी हो, जहाँ मैं मेज़ को देखता हूँ, तो भी यह स्थान मेरे मस्तिष्क से बहुत दूर है और मेज़ के मेरे चाक्षुष प्रत्यक्ष का अनिवार्य और सद्यः कारण नहीं है। स्वप्न में दिखाई देने वाला मेज़ स्पष्टतः मेरे मस्तिष्क से बाहर नहीं

होता यद्यपि मुझे वह बाहर दिखाई देता है। स्वप्न म एक अन्धा भी मेज़ देख सकता है। इसी प्रकार जागृति में भी। विक्षत अंग वाला व्यक्ति असावधानी में उस स्थान पर, जहाँ पर उसका अंग कटा हुआ होता है पीड़ा अनुभव कर सकता है। अब यह ऐंद्रिय घटना क्या है? मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बाह्य विषय के प्रति हमारे मस्तिष्क की यह प्रतिक्रिया है। हमारे पिछले निबन्ध की व्याख्या के अनुसार, एक कारण शृंखला, जो वहाँ से प्रसारित होती है जहाँ हमारा अभ्युपगमित मेज़ है, हमारी आँखों और फिर रेटिना से होती हुई मस्तिष्क में एक रंगीन संस्थान के रूप में परिणत होती है, इसी को हम मेज़ का चाक्षुष प्रत्यक्ष कहते हैं। किन्तु मेज़ के चाक्षुष प्रत्यक्ष के लिए कारण शृंखला की सम्पूर्ण लड़ी आवश्यक नहीं है, आवश्यक केवल अन्तिम कड़ी है। मस्तिष्क यहाँ केवल विशिष्ट स्थान का वाचक है, क्योंकि स्नायुओं का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है। यहाँ हम कारण शृंखला की कल्पना को भी छोड़ सकते हैं और कह सकते हैं कि चाक्षुष घटना एक घटना है जो रंगीन संस्थान के रूप में घटित होती है। यह घटना विशुद्ध संवेदं (Sensation) है और इसे क्रिया और विषय में विभक्त नहीं किया जा सकता। अब इससे प्रेरित कारण शृंखला को हम इसमें आने देते हैं, यह शृंखला कल्पना और स्मृति से निर्मित है। यह स्मृति इतनी सहज होती है कि इसे रिफलेक्स के अन्तर्गत लिया जा सकता है, अतः यहाँ भी क्रिया की कोई आवश्यकता नहीं है। वास्तव में विषय और क्रिया का भेद हमारी भाषा में ही निहित है, जैसे 'राम मेज़ देखता है', यहाँ मेज़ को एक स्वतंत्र और काल में निरपेक्ष भौतिक वस्तु (Entity) कल्पित किया गया है, किन्तु, यदि मेज़ चाक्षुष प्रत्यक्ष से स्वतंत्र है भी तो भी वह केवल दैशिक और कालिक घटनाओं की शृंखला है, वस्तु नहीं।

जहाँ तक चैतन्य के मन का गुण होने का प्रश्न है, यह एक ऐसा गुण है जो अकेले ही पर्याप्त है। उस अवस्था में हमारे शरीर और इस भौतिक विश्व के होने की कोई आवश्यकता नहीं है, ये केवल इस अस्तित्व के व्यापार भी हो सकते हैं। यह तर्क अकाट्य है, किन्तु इसे पचा सकना कठिन जान पड़ता है। चैतन्य के सापेक्ष गुण होने के विरोध में हम तर्क दे चुके हैं। चैतन्य को सापेक्ष कहने का एक और अर्थ भी हो सकता है—जिस प्रकार फोटो को डिवेलप करने के लिए कुछ रासायनिक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है और उनके प्रयोग से नेगेटिव में विद्यमान किन्तु अप्रत्यक्ष चित्र प्रत्यक्ष हो जाता है उसी प्रकार बाह्य विषयों के सम्पर्क से चैतन्य के गुण उद्भासित हो उठते हैं। किन्तु किस प्रकार एक भौतिक घटना मानसिक

घटना के सम्पर्क में आती है और अमानसिक से मानसिक हो जाती है? मानसिक घटना और अमानसिक घटना के निजी स्वरूपों में क्या अन्तर है? ये सब प्रश्न इस कल्पना को कठिन बना देते हैं। हमारी व्याख्या के अनुसार, मानसिक घटनाएँ वे घटनाएँ होंगी जो ऐंद्रिय संवेद के रूप में घटित होकर हमारे मस्तिष्क में एक कारण शृंखला को व्यापारित कर देती हैं, जब कि अमानसिक घटनाएँ वे घटनाएँ हैं जो इस कारण शृंखला से अनुधावित नहीं होतीं। पिछले दोनों निबन्धों में अचेतन घटनाओं के प्रकरण में हमने इस प्रकार की कुछ घटनाओं के उदाहरण दिये थे, किन्तु सभी अचेतन घटनाएँ भौतिक घटनाएँ नहीं होतीं, इसके लिए कुछ और विशेषताओं की भी आवश्यकता है, जिनके सम्बन्ध में हम आगे विचार करेंगे।

पदार्थ क्या है? इस प्रश्न पर शताब्दियों से विचार होता रहा है, किन्तु विचार अथवा अनुसन्धान की प्रविधि ही भ्रान्ति पूर्ण होने से उसका कोई निश्चय नहीं किया जा सका। पदार्थ को सत् या असत् कहने के आधार विशुद्ध रूप से दार्शनिकों की रुचियों पर निर्भर करते थे। किन्तु डेकार्ट तथा जेम्ज़ ने इस ओर एक नवीन तथा उपादेय प्रणाली का प्रवर्तन किया, जिसका अनुसरण आज तक हो रहा है। डेकार्ड ने देखा कि सम्पूर्ण संवेद्य विश्व उसके प्रत्यय पर निर्भर करता है, और असंवेद्य के अस्तित्व के सम्बन्ध में अपरोक्ष रूप से वह कुछ नहीं जान सकता। अतः वह केवल अपने प्रत्यय के सम्बन्ध में ही निश्चित हो सकता है, शेष सब भ्रान्त शिक्षा का परिणाम है। प्रत्यक्ष का अस्तित्व निश्चित है क्योंकि उसे प्रत्यक्षतः मैं देखता हूँ और वह मेरा अंग है, इसलिए मेरा अस्तित्व निस्संदेह है—'क्योंकि मैं सोचता हूँ, इसलिए मैं हूँ।' किन्तु वास्तव में इस वाक्य में भी वह प्रत्यक्ष और निश्चित की सीमा से वाहर जा रहा है। उपर्युक्त वाक्य में 'मैं और सोचना' शब्द सन्देहास्पद हैं, क्योंकि 'मैं' शब्द जिस मानसिक इकाई की ओर संकेत करता है वह एकदम काल्पनिक है, उसी प्रकार जिस प्रकार मेज़ काल्पनिक है, 'मैं' केवल अनुभवों और संवेदों की कारण शृंखला मात्र है और मन की एकता केवल अनुक्रम की एकता है। इसलिए, जैसा कि हमने पीछे देखा है, किसी कर्ता के होने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। इसी प्रकार सोचना शब्द भी अविश्लेष्य नहीं है। विचार अनेक मानसिक घटनाओं का समवाय है। जो बात एकदम निश्चित है वह यह है कि ऐंद्रिय घटनाएं घटित होती हैं और वे विशुद्ध रूप से वर्तमान में घटित होती हैं।

डेकार्ट मन और भौतिक पदार्थ को दो स्वतंत्र इकाइयां मानता है। गति तथा आकार को वह भौतिक पदार्थ के मौलिक गुण मानता है जबकि

रंग तथा शीतोष्णता और कठोरता-कोमलता इत्यादि गुणों को प्रतीयमान गुण। किन्तु आज भूत विज्ञान में गुणों का इस प्रकार मौलिक और प्रतीयमान (Primary and secondary) में भेद नहीं किया जाता, क्योंकि तथा-कथित मौलिक गुण उतने ही प्रतीयमान और देश-काल के अनुसार परिवर्तमान हैं जितने तथा-कथित प्रतीयमान गुण। यह बात चित्रकार और फोटोग्राफर बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। जहाँ तक गति का प्रश्न है, यदि पदार्थ घटनाओं की शृंखला मात्र है तो गति का केवल इतना ही अभिप्राय है कि घटनाओं के एक समवाय का अन्य घटनाओं के समवायों के साथ वही दैशिक सम्बन्ध नहीं रहता जो पहले था। मान लीजिए एक घटना समवाय घ^{न} का अन्य घटना समवायों घ$^{न'}$ के साथ काल क पर सम्बन्ध स है और पुनः काल क' पर स' तो हम कहेंगे कि अमुक पदार्थ गतिमान था। इस प्रकार गति केवल सापेक्षता है, मौलिक गुण नहीं।

आकार को भूतत्व का गुण इस आधार पर कहा जाता था कि जबकि रंग अथवा उष्णता इत्यादि व्यक्ति भेद के साथ भिन्न-भिन्न हैं और इसी प्रकार देश भेद के साथ परिवर्तमान हैं तो आकार में इस प्रकार कोई परिवर्तन नहीं देखा जाता। किन्तु यह एकदम भ्रान्ति है। आकार अथवा रूप में भी देश अथवा कोण भेद के साथ अन्तर पड़ता है। उदाहरणार्थ, पैसे के चाक्षुष प्रत्यक्ष को लें। उसके पृथ्वी पर पड़े होने पर वह केवल ठीक ऊपर से देखने पर ही गोल प्रतीत होगा, अन्यथा नहीं, और इसी प्रकार जितने ही कोणों और अन्तरों से उसे देखा जाएगा उसके उतने ही भिन्न आकार देखे जा सकेंगे। अब, कुछ लोग पैसे के गोल आकार को उसका वास्तविक आकार कहना चाहेंगे, किन्तु यह एक दम अतर्क सम्मत है, क्योंकि इस तर्क के अनुसार किसी विशेष कोण और बिन्दु से प्रतीत होने वाले विशेष रंग को भी उसका वास्तविक रंग कहा जा सकता है। इसी प्रकार गोल आकार भी विभिन्न कोणों से विभिन्न परिमाणों का प्रतीत होगा, इनमें किस परिमाण के गोल आकार को पैसे का वास्तविक आकार कहा जाएगा? अतः दोनों ही अवस्थाओं में निर्णय सुविधापेक्ष (Arbitrary) होगा क्योंकि किसी एक रूप को दूसरे से अधिक महत्व देने के पक्ष में कोई तर्क नहीं दिये जा सकते। इस प्रकार, रूप और आकार, दोनों हमारे ऐंद्रिय संवेद के विषय हैं और उतने ही मानसिक हैं जितनी कोई भी अन्य घटना हो सकती है।

हमारा तथाकथिक भौतिक पदार्थों का ज्ञान उनके इन गुणों का ही ज्ञान है। एक चाक्षुष घटना रंग तथा आकार का समवाय है, अथवा रंगीन

आकार है। इसी प्रकार स्पर्श सम्बन्धी घटना तापमान तथा आकार का समवाय है। जब एक चाक्षुष घटना घटित होती है उस समय हम एक रंगीन आकार बाहर देखते हैं, जहाँ कि कुछ कदम चलने के पश्चात् पहुँचा जा सकता है। मान लीजिए इस स्थान पर पहुँचने पर स्पर्श सम्बन्धी घटना भी घटित होती है, उस अवस्था में हम समझते हैं कि यह स्थान किसी भौतिक पदार्थ से अध्युषित है, जो हमारे संवेद का साक्ष नहीं है। किन्तु यदि स्पर्श सम्बन्धी घटना यहाँ घटित नहीं होती तो हम इसे अपना भ्रम समझते हैं। किन्तु यह स्थिति सरल (Primitive) न होकर सम्पृक्त (Complex) है, इसमें चाक्षुष तथा स्पर्श संबंधी अन्वय (Associations) संपृक्त हैं, अन्यथा चाक्षुष घटना अपनी यथार्थता के लिए स्पार्श घटनाओं पर निर्भर नहीं करती। अतः जब हम कहते हैं कि 'वह मेज़ है' उस समय हमारी मानसिक स्थिति सम्पृक्त होती है। स्पर्श सम्बन्धी घटनाओं को चाक्षुष घटनाओं से यथार्थ के अधिक निकट कहना केवल विश्वास जन्य और सुविधापेक्षी (Arbitrary) है, अन्यथा दोनों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं हो सकता। जो भी हो, दोनों ही अवस्थाओं में सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि ऐंद्रिय घटनाओं का स्रोत बाहर है और वह एक ऐसा केन्द्र है जिससे सब प्रकार की कारण श्रृंखलाएं प्रसारित होती हैं और हमारी इन्द्रियों के सम्पर्क में आकर किसी रहस्यमय ढंग से हमें प्रत्यक्ष होती हैं, अथवा स्वयं वह केन्द्र ही किसी रहस्यमय ढंग से समारे संवेद का विषय हो जाता है।

यदि पदार्थ इस प्रकार का कोई स्वलक्षण अस्तित्व है भी तो भी उसे एक अविभाज्य इकाई नहीं कहा जा सकता। वह इस प्रकार के अस्तित्वों की कारण श्रृंखला है। अतः जब किसी काल विशेष पर ऐंद्रिय घटना घटित होती है उस समय हम कह सकते हैं कि काल क^{१} में देश द^{१} पर एक चाक्षुष घटना घ^{१} घटित हुई जो भौतिक घटना घ$^{१'}$ से सम्बन्ध स से संयुक्त है। यह घटना घ$^{१'}$ अन्य अनेक घटनाओं प^{न} से, जिन्हें सम्मिलित रूप से हम पदार्थ कहते हैं, सम्बन्ध स' से संयुक्त है। प्रथम सम्बन्ध जहाँ संवेद्यता का है, दूसरा सम्बन्ध वर्ग-सदस्यता का। संवेद्य सम्बन्ध पुनः वर्ग-सम्बन्ध को जन्म देता है:— एक ही घटना चाक्षुष, श्रौत्र और स्पार्शन इत्यादि संवेदों का विषय हो सकती है। पुनः, प्रत्येक संवेद्य घटना विभिन्न कोणों से संवेद्य है और इस प्रकार उनके कितने ही सम्बन्ध हैं। मान लीजिए, घटना घ$^{१'}$ का चाक्षुष प्रत्यक्ष काल क पर जितने बिन्दुओं से घटित होता है उन सब का

कैमरों द्वारा संकलन किया जाता है, तब हम कहेंगे घ^{1}' जो प से संबंध स' द्वारा संयुक्त है और ध^{2} से सम्बन्ध स द्वारा, वह इन सम्बन्धों के साथ काल क^{1} में देश द^{1} पर घटित हो रहा है, जो कि मेरा मस्तिष्क है और यह देश द^{1} अन्य चाक्षुष देशों द^{न} से सम्बन्ध स' द्वारा संयुक्त है, जो कि वर्ग-सदस्यता का सम्बन्ध है। अतः पदार्थ काल क पर असंख्य घटनाओं और सम्बन्धों का समवाय है। हीसन्बर्ग-स्क्रॉडिंजर के क्वांटम सिद्धान्त में परमाणु इन सम्बन्धों और घटनाओं का ही समवाय है, किन्तु उस सिद्धान्त के अनुसार घटना समवाय प^{न} का अस्तित्व काल्पनिक है और मी से घ^{2} को प^{न} से संयुक्त करने वाला सम्बन्ध स' भी।

किन्तु यह आवश्यक नहीं कि पदार्थ को इस प्रकार प्रत्यक्ष घटनाओं का समवाय ही माना जाए, जो एक केन्द्र में सहावस्थित हैं। मान लीजिए, मैं एक व्यक्ति को घंटी बजाते देखता हूँ और शब्द सुनता हूँ, जिसे मैं घंटी का स्वर कहता हूँ। प्रयोग के लिए मैंने कुछ मूवी कैमरे रखे हैं जो चित्र भी लेते हैं और ध्वनि भी रिकार्ड करते हैं। उन सबको पीछे मैं देखता और सुनता हूँ और पाता हूँ कि इन यंत्रों ने भी मेरे ही समान चाक्षुष और श्रौत्र घटनाओं का 'संवेद' किया है। उस अवस्था में यह भी संभावना की जा सकती है कि जहां कोई व्यक्ति नहीं खड़ा था अथवा कैमरा नहीं रखा था वहाँ भी मेरी प्रत्यक्ष के 'समान' ही घटनाएँ घटित हो सकती थीं यदि वहाँ कोई कैमरा अथवा मस्तिष्क होता तो। अतः हम अनुमान करते हैं कि उस केन्द्र में, जहां सब चाक्षुष और श्रौत्र घटनाएं समन्वित की जा सकती हैं, कुछ घटनाएँ घटित हो रही हैं जहाँ से सब ओर को कारण श्रृंखलाएँ प्रसारित होती हैं और हमारी इन्द्रियों से सम्पर्क होने पर चाक्षुष और श्रौत्र रूपों में परिणत हो जाती हैं। ये घटनाएं इस पदार्थ के इतिहास में एक सर्वथा नवीन और विचित्र अध्याय का आरंभ करती हैं, किन्तु पदार्थ का अस्तित्व इन घटनाओं पर निर्भर नहीं है, वह इनसे स्वतंत्र है और उन श्रृंखलाओं का अजस्र स्रोत है जो इन्द्रियों से सम्पर्क होने पर पुनः लगभग उसी प्रकार की घटनाओं में घटित हो सकती हैं। यह संवेद की कारण-सम्बन्धों में व्याख्या है। किन्तु बर्कले इसका विरोध करते हुए कहता है कि कार्यों और कारणों का सामान्यतः एक ही गुण होना चाहिए। इस प्रकार, जो भी हमारे मानस-प्रत्यक्ष होता है उसे मूलतः हमारी मानसिक घटनाओं के समान ही होना चाहिए। अतः बर्कले ने तर्क किया कि क्योंकि संवेद्य घटनाएँ मानसिक हैं अतः बाहर घटित होने वाली कारण घटनाओं को भी मानसिक ही होना चाहिए।

किन्तु यह तर्क दुधारू है। यदि कारण और कार्य को समान गुण ही होना चाहिए तो मानसिक कही जाने वाली घटनाओं के लिए भी उतने ही निश्चय से कहा जा सकता है कि वे भौतिक हैं और उनका मानसिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। बर्गसां ने मैटर एंड मेमोरी (matter and Memory) में यही प्रतिपादित किया है। वे कहते हैं "मैं पदार्थ को रूपों (Images) का समवाय मानता हूँ और पदार्थ के प्रत्यक्ष अथवा संवद को इन्हीं रूपों में से एक विशेष रूप—शरीर के साथ सम्पर्क होना मानता हूँ।" और आगे "इधर रूपों का एक समवाय है जिसे मैं बाह्य विश्व का मन द्वारा प्रत्यक्ष कहता हूँ और जिसे कि एक विशेष रूप—मेरे शरीर में, थोड़ा-सा परिवर्तन करने पर बहुत अधिक परिवर्तित किया जा सकता है। यह रूप केन्द्राध्युषित होता है, इससे सम्पूर्ण अन्य रूप निर्धारित होते हैं, इसकी प्रत्येक क्रिया अथवा स्थान परिवर्तन से सम्पूर्ण क्रम ही परिवर्तित हो जाता है, बिल्कुल केलीडियोस्कोप के घुमाने से उत्पन्न परिवर्तन के समान और दूसरी ओर, वही रूप हैं जो कि अपने आप में स्वतंत्र रूप हैं यद्यपि यह एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु यह कार्य निरपवाद रूप से कारण के अनुपात में होता है। इसे ही मैं भौतिक विश्व कहता हूँ। प्रश्न है, ये दो प्रक्रियाएं (System) कैसे साथ-साथ रह सकती हैं, क्यों वही रूप भौतिक विश्व में अपेक्षाकृत अपरिवर्तमान हैं और संवेदों के सम्पर्क में असीम रूप से परिवर्तमान है?" इस प्रकार उन्होंने प्रत्यक्ष रूपों और भौतिक घटनाओं को समान ही माना है और प्रत्यक्ष या संवेद्य रूप भौतिक रूपों पर निर्भर हैं। वे आकस्मिक क्रिया (Eventual action) तथा रहस्यमय स्मृति को भी बीच में लाते हैं, किन्तु यहाँ उस सम्बन्ध में कुछ कहना प्रासंगिक नहीं होगा। जहाँ तक बर्गसां के पदार्थ सम्बन्धी विचारों का प्रश्न है, हम उनसे सहमत नहीं हैं और साथ ही यह कह देना भी आवश्यक है कि यह समझना सहज नहीं है कि वे क्या कहना चाहते हैं। वे कुछ अस्पष्ट शब्दों और परिभाषाओं का प्रयोग करते हैं, जिन्हें संभवत: उनके अतिरिक्त कोई भी स्पष्टत: नहीं समझता। जी० ई० मूर ने भी संवेद्य रूपों को भौतिक रूपों के समान ही माना है और उनका विश्लेषण अत्यन्त स्पष्ट और तर्क सम्मत है, यद्यपि हम उनसे सहमत नहीं हैं, क्योंकि उनका अभिमत स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं।

किन्तु जहाँ तक बर्कले का सम्बन्ध है, उनका विश्लेषण भी कम त्रुटिपूर्ण नहीं है। उनका उद्देश्य ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करना है। यदि ईश्वर और अहम् को उनके विश्लेषण से हटा दिया जाए तो वास्तव में वही पहला कदम है जहाँ से

पदार्थ का आधुनिक दर्शन आरंभ होता है। बर्कले पहला दार्शनिक था जिस ने विशुद्ध विश्लेषण प्रणाली पर ज्ञान मीमांसा के सहारे पदार्थ का संवेद से भिन्न स्वतंत्र अस्तित्व अस्वीकार किया था।

हमने पीछे देखा है कि हमारा पदार्थ का ज्ञान उन घटनाओं का ज्ञान है जो हमारे मस्तिष्क में घटित होती है। मेरा मेज़ का चाक्षुष प्रत्यक्ष एक विशेष देश और काल में घटित होने वाली घटना है और उसका गुण विशेष रंग, जिसकी कुछ दैशिक और कालिक स्थितियाँ हैं। यद्यपि इसे मैं अपने शरीर से कुछ दूरी पर देखता हूँ किन्तु यह केवल अतीत सम्बन्धों के कारण ही, अन्यथा जहाँ यह घटना घटित हो रही है, और जहाँ मैं इसे देखता हूँ वह देश में दो भिन्न स्थितियाँ हैं। मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली यह घटना निश्चय ही उस घटना से भिन्न है जिसे हम पदार्थ कहते हैं; क्योंकि यह घटना उस कारण शृंखला को प्रेरित करती है, जिसे हम कल्पना, स्मृति, आवेग इत्यादि कहते हैं, और यदि संवेद्य घटनाओं को भौतिक घटनाओं के समान भी कहा जाए तो भी संवेद्य घटना से प्रेरित कारण शृंखला भौतिक घटनाओं की कारण शृंखला के समान गुणवाली नहीं कही जा सकती। किन्तु वास्तव में कल्पना तथा संवेद में कोई मौलिक अन्तर नहीं है, जैसा कि हम ने पिछले निबन्ध में माना है। कल्पना तथा संवेद में अन्तर केवल अन्वय जनित है। कल्पना जब कि कोई दैशिक सम्बन्ध नहीं रखती, संवेद के दैशिक संबन्ध होते हैं—यह उस विशेष काल पर घटित होने वाले अन्य संवेदों से सम्बन्धित की जा सकती है। संवेद भौतिक घटनाओं के भी बिल्कुल समान नहीं हो सकते, क्योंकि भौतिक घटनाएँ, यदि वह हैं तो, संवेदों से इस बात में भिन्न हैं कि जब कि भौतिक घटनाएँ अनेक सम्बन्धित संवेद्य घटनाओं की केन्द्र हैं, संवेद्य घटना के ऐसे कोई सम्बन्ध नहीं हैं। इसी प्रकार भौतिक घटनाएँ जब कि उस वर्ग की सदस्य हैं जिसे हम मेज़ या कुर्सी या पुस्तक कहते हैं, संवेद्य घटनाएं उस वर्ग की सदस्य हैं जिसे हम मन कहते हैं।

जब मैं कहता हूँ—"मैं मेज़ देख रहा हूँ" उस समय वास्तव में एक चाक्षुष घटना घटित होती है जहां पर मेरा मस्तिष्क है, और सम्बन्धित कारण शृंखला घटित होती है। इसी प्रकार, मेरे पास विद्यमान अन्य व्यक्तियों में भी, जिनकी आँखें उस केन्द्र की ओर हैं, जहाँ मेरे संवेद का अभ्युपगमित मेज़ है, मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाली घटना के लगभग समान ही घटनाएं घटित होती हैं। यह मुझे उनके कथनों से ज्ञात होता है। अन्य मस्तिष्कों में घटित होने वाली घटनाएं मेरे संवेदों के बिल्कुल समान नहीं हो सकतीं, कम से कम आकारों में कुछ भिन्नता अनिवार्य है, किन्तु यदि

मैं उन स्थानों पर जाऊँ जहाँ पहले कोई अन्य मस्तिष्क था तो मैं भी लगभग उसी प्रकार का रंगीन संस्थान देख सकता हूं। (यहाँ लगभग शब्द का प्रयोग इसलिये किया गया है कि एक ही दैशिक बिन्दु पर ये दो घटनाएं एक ही कालिक बिन्दु पर भी नहीं हो सकतीं, कालिक बिन्दुओं में आनुक्रमिक सम्बन्ध होगा।) अब मेरे इस स्थान परिवर्तन के साथ मुझमें जो दो संवेद घटित होते हैं, उनका केन्द्र एक ही रहेगा। और यदि अन्य मस्तिष्क, जिसका स्थान मैंने अब लिया है, ठीक मेरे पीछे हटकर है तो उसकी आंखों की दिशा ठीक वही कोण बनाएगी जो मेरी आँखों की दिशा। इसी प्रकार, जब मैं स्थान परिवर्तन करूंगा तो इस के साथ मैं देखूंगा कि प्रथम बिन्दु से उस बिन्दु तक पहुँचने के अन्तर में, जहाँ पर पहले अन्य मस्तिष्क था, कुछ संवेद घटित होते हैं, जो प्रथम से द्वितीय बिन्दुके अंतर को एक क्रम से भरते हैं। यह श्रृंखला वृत्त और लंबाई में द्विविध है। यदि सभी द्रष्टा उ केन्द्र की ओर बढ़ें तो एक स्थान ऐसा आएगा जहाँ पहुँचकर स्पार्शन घटन घटित होंगी और चाक्षुष घटनाएँ समाप्त हो जाएंगी। उस स्थान को हम केन्द्र कहेंगे, और यही वह स्थान है जहाँ पर कि अभ्युपगमित (Hypothe tical) पदार्थ है। जहां तक हमरे ज्ञान का सम्बन्ध है, इस तथा कथित-पदार्थ के सम्बन्ध मे हम कुछ नहीं जानते, हम केवल उस घटना क्रम को जानते हैं जो हमारा संवेद है। अतः यह पदार्थ उन घटनाओं का नियमित क्रम मात्र है जिनमें से कुछ मेरे मस्तिष्क में घटित होती हैं। विभिन्न कालों और विभिन्न देशों में घटित होने वाली इन घटनाओं को कारणता तथा अन्वयों द्वारा संकलित किया जा सकता है, जो पुनः हमारे संवेदों के ही सम्बन्ध है। अतः वह केन्द्र जो इन सब घटनाओं को, जो इसके चारों ओर घटित होती हैं, अन्वयित करता है, पदार्थ है। ये घटनाएं जब कि वास्तविक हैं, क्योंकि संवेद्य हैं, स्वयं यह केन्द्र केवल अभ्युपगम है जो इन विभिन्न घटनाओंके सम्बन्ध की व्यख्या को सहज बनाता है। पदार्थ की यह व्याख्या बर्ट्रेंड रसल के अनुसार है। वे संवेद तथा पदार्थ के स्थानों का निर्णय इस प्रकार करते हैं—

१—वह स्थान जहाँ कि विभिन्न केन्द्रों के प्रत्यक्ष एक साथ संकलित होते हैं और एक संस्थान का निर्माण करते हैं, जैसे जब मैं काल क पर तारकित आकाश की ओर देखता हूँ।

२—सभी संवेद, जिनका केन्द्र एक ही है, जैसे, जब बहुत से व्यक्ति एक साथ 'एक' तारे को देखते हैं।

इनमें प्रथम स्थान वह है जहाँ पर मानसिक घटनाएं घटित होती हैं

और द्वितीय वह जहाँ पर अभ्युपगमित पादार्थिक घटनाएं घटित होती हैं। रसल पदार्थ को उन घटनाओं का अन्वय मात्र मानते हैं जो हमारे मस्तिष्क में घटित होती हैं। वे कहते हैं—"विभिन्न प्रत्यक्षों के समीकरण के लिए एक तटस्थ स्रोत की कल्पना करने के बजाय हम यह तटस्थता सम्पूर्ण वर्गों को समान प्रतिनिधित्व देकर भी प्राप्त कर सकते हैं। जिनके लिए यह कहा जाता है कि वे मेज देख रहे हैं, उनके सम्वेदों के मूल में किसी अज्ञात कारण की कल्पना करने के बजाय हम इन प्रत्यक्षों के सम्पूर्ण समवाय को ही, इनके पूरक कुछ अन्य सम्भावित संवेदों के साथ, मेज कह सकते हैं। अर्थात् मेज, जो कि विभिन्न दर्शकों (वास्तविक और संभाव्य) के बीच तटस्थ है, उन संवेदों का समवाय मात्र है जो स्वभावतः उस मेज़ के विभिन्न कोणों के संवेद हैं।"

किन्तु पदार्थ की इस कल्पना को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयां हैं—क्यों मेज एक विशेष काल और विशेष देश में ही सभी को एक साथ दिखाई देता है, क्यों उन सब के पीठ फेर लेने पर वह नहीं दिखाई देता? अथवा, क्यों सबके मस्तिष्क में एक विशेष देश और एक विशेष काल में ऐसी घटनाएं घटित होती हैं जिन्हें वे एक मेज के विभिन्न पहलू कहते हैं? इसका उत्तर रसल यह देते हैं कि हम संवेदों के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते और संवेदों के अनिवार्य और पर्याप्त कारण हमारे मस्तिष्क में ही विद्यमान हैं, अतः किन्हीं बाह्य घटनाओं की कल्पना केवल अभ्युपगम मात्र है। इन संवेदों को वे ठोस से ठोसतर ज्ञान (Hardest of hard data) कहते हैं। किन्तु इस ठोस ज्ञान तक सीमित रह कर भौतिक विश्व की कल्पना नहीं की जा सकती, क्योंकि उस अवस्था में तो भौतिक विश्व केवल तेजी से उड़ते हुए एक व्यक्ति के संवेदों तक ही सीमित रहेगा। अतः वे अपने ही समान अन्य मनों के अस्तित्व को भी स्वीकार करते हैं और अपने अतीत संवेदों का भी। अतीत संवेदों का अस्तित्व केवल हमारा विश्वास ही है, क्योंकि जो अब है ही नहीं उसके हुए होने का प्रमाण केवल हमारा विश्वास ही है। इसी प्रकार दूसरे व्यक्तियों के अस्तित्व के सम्बन्ध में भी। उनका शरीर उतना ही परोक्ष ज्ञान (Soft data) है जितना मेज, और जहाँ तक मन का प्रश्न है वह इससे भी अधिक परोक्ष और आनुमानिक है। इसी प्रकार, संवेद, चाहे वे स्वप्न के हों, ठोस से ठोस ज्ञान है।

रसल के उक्त विवेचन में स्पष्टतः सुविधापेक्षता (Arbitrarines) से काम लिया गया है, क्योंकि ज्ञान के ठोसपन के मात्रा-क्रम (Gradation) का आधार केवल जैवी विश्वास (Animal faith) ही है। किन्तु इस कल्पना के बिना रसल का पदार्थ वाष्पित हो जाता है, किन्तु हमें यह समझने

में अत्यन्त कठिनाई अनुभव होती है कि केवल ज्ञान के इस मात्राक्रम की कल्पना को पचाया जाए और क्यों कुछ ग्राह्य घटनाओं को स्वीकार किया जाए और अन्य में सन्देह किया जाए। इस प्रकार अन्य मनों पर सन्देह करके हम पदार्थ का लक्षण कुछ इस प्रकार कर सकते हैं—विशिष्ट संवेदों का अनुक्रम सम्बन्ध, जिनका एक ही केन्द्र है।

किन्तु इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयां हैं, जैसा कि स्पष्ट ही है, हम मेज को केवल वही नहीं मान सकते जो हमें वह एक विशेष काल में दिखाई देता है, हम उसकी दैशिक सम्पूर्णता भी बनाए रखना चाहते हैं। इसी प्रकार, जब हम मेज नहीं देख रहे होते उस समय उसका तिरोभाव स्वीकार नहीं करना चाहते। हम उस समय भी उसे विद्यमान मानना चाहते हैं, रसल भी यह मानते हैं, किन्तु जब मेज किसी का भी संवेद्य नहीं होता उस समय उसके अस्तित्व की स्वीकृति का क्या आधार है, यह समझना कठिन है। रसल इस अस्तित्व को कारणता के आधार पर स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं—"अब भूत विज्ञान ने संवेद्य विषयों (Sense data) को एक शृंखला में संकलित करने को अनुभव के स्तर पर (Empirically) संभव कर दिया है। प्रत्येक ऐसी शृंखला 'एक वस्तु' समझी जाएगी और इस शृंखला का व्यवहार ऐसा होगा जैसा अन्य वस्तु से संबन्धित शृंखला का नहीं होगा। कि अमुक संवेद अथवा प्रतीतियां एक ही वस्तु की प्रतीतियां हैं या नहीं, यदि इसे स्पष्ट रूप से समझने योग्य होना है तो संकलन का केवल एक ही ढंग होना चाहिए और वह यह कि वस्तुएं भूत विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल हों।" और ये सिद्धान्त कारणता के सिद्धान्त हैं। "यहां अभीष्ट है कारण सिद्धान्तों की अनुकूलता। यह कथन बहुत अस्पष्ट है, किन्तु हम इसे स्पष्टता तथा विनिश्चता देने का प्रयास करेंगे। जब मैं कारण सिद्धान्तों की बात करता हूँ, मेरा अभिप्राय उन सब सिद्धान्तों से होता है जो घटनाओं को विभिन्न कालों में सम्बन्धित करते हैं अथवा सम कालिक घटनाओं को भी, यदि इनमें सम्बन्ध तार्किक रूप से द्रष्टव्य नहीं है तो।" और आगे कहते हैं (किन्तु) "यह सिद्ध करना अत्यन्त कठिन (असंभव) होगा कि वास्तव में ऐसी बात है ही।" (Our Knowledge of the External world) किन्तु ये कारण सिद्धान्त अधिक से अधिक एक व्यक्ति के अपने सम्वेदों के सह-सम्बन्धों (Correlations) के सम्बन्धमें निश्चित रूप से बता सकते हैं और अतएव यह सह-सम्बन्ध केवल आनुक्रमिक ही हो सकते हैं सह-कालिक नहीं। किन्तु केवल एक व्यक्ति के तीव्र गति से उड़ते हुए संवेद 'मेज' का निर्माण करने के लिए काफी नहीं हैं। इस उलझन से बचने का

एक और उपाय है : संवेद, जैसा कि हमने पीछे देखा है, संवेदन की क्रिया और संवेद-विषय में विश्लेषित नहीं किये जा सकते, संवेद अपने आप में पूर्ण एक अस्तित्व है और इसका विषय वास्तव में इसका अपना आधार भूत गुण है। इसी प्रकार, संवेद मेरे या उसके संवेद नहीं हैं, यह केवल आकस्मिक संयोग है कि देश के उस विशिष्ट बिन्दु पर घटनाओं का वह समवाय है जिसे "मैं" कहा जाता है, अन्यथा कोई भी मस्तिष्क अथवा कैमरा इत्यादि वहाँ हो सकता था और प्रत्येक अवस्था में वह संवेद-विषय घटित हुआ होता। इन घटना समवायों के, जिन्हें हम मस्तिष्क अथवा आपरेटस कहते हैं, बिना भी ये संवेद घटित हो सकते अथवा थे नहीं यह विवादास्पद है, और इसे हम कुछ देर के लिए स्थगित कर सकते हैं। किन्तु यदि यह संवेद मस्तिष्क अथवा आपरेटस के साथ ही घटित होता है तो भी यह उस घटना समवाय का भाग नहीं है, हम इसके स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना कर सकते हैं। अब मान लीजिए इन संवेदों से अतिरिक्त अन्य कुछ भी अस्तित्व नहीं है, उस अवस्था में केवल इन संवेदों से ही सम्पूर्ण विश्व का 'निर्माण' किया जा सकता है। सह-सम्बन्धों के द्वारा इन संवेदों में सहकालिकता और आनु-क्रमिकता के सम्बन्ध स्थापित किये जा सकते हैं। रसल और बर्कले इसी सिद्धान्त को मान कर चलते हैं, किन्तु रसल और बर्कले दोनों सम्भवतः संवेदों को इस प्रकार आत्म-स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मानते, रसल इनके होने के लिए मस्तिष्क को आवश्यक मानते हैं और बर्कले मन को। सह-सम्बन्ध के लिए बर्कले एक सार्व भौम मन की कल्पना करते हैं जब कि रसल केवल 'अनुभव' को (Experience को) पर्याप्त मानते हैं। किन्तु यदि संवेदों के अतिरिक्त अन्य सब केवल अनुमान और कल्पना है तो अन्ततः मस्तिष्क और मन को भी (चाहे वह सार्वभौम मन ही क्यों न हो) संवेद ही होना चाहिए, और यदि वह संवेद नहीं हैं तो उनका अस्तित्व उतना ही काल्पनिक है जितना स्वयं 'मेज' का, एक स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में। किन्तु रसल मस्तिष्क को भी संवेद ही मानते हैं, यद्यपि एक भिन्न प्रकार का, अथवा कहें, भिन्न सह-सम्बन्धों वाला संवेद। किन्तु रसल का आशय एकदम स्पष्ट नहीं है (कम से कम हमारे लिए)। जब मेज को कोई नहीं देखता अर्थात् जब मेज किसी मस्तिष्क अथवा आँपरेटस का संवेद्य नहीं है उस समय भी उसका अस्तित्व रहता है या नहीं ? रसल मानते हैं कि वह रहता है, किन्तु किस रूप में ? यह स्पष्ट नहीं है। रसल संभाव्य संवेदों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं किन्तु इसके लिए कम से कम एक वास्तव संवेद का होना आवश्यक है जिसके सह-सम्बन्धों के आधार पर संभाव्य संवेद अनुमित किये जा सकें।

अतः जब मेज का कोई भी वास्तव संवेद[1] घटित नहीं होता उस समय सह-सम्बन्धों का प्रश्न भी उत्पन्न नहीं होता। उस अवस्था में रसल मेज का अस्तित्व किस रूप में स्वीकार करते हैं, यह हमें ज्ञात नहीं है।[2]

संवेदों को, जिन्हें हम संवेदित करते हैं, संवेद्य वस्तु—जैसे मेज़—से स्वतंत्र मानने के पक्ष में प्रमाण यह दिया जाता है कि स्वप्न में अथवा बीमारी में हम मेज़ के बिना भी मेज़ को देखते हैं। किन्तु संवेद्य रूप से भी स्वप्न और जागृति के संवेदों में सम्बन्धों की भिन्नता होती है, इस सम्बन्ध में हम पीछे देख ही आए हैं। इसके अतिरिक्त 'इस विशेष काल में, विशेष देश में एक विशेष केन्द्र के साथ ही इस संवेद के घटित होने' में कुछ विशेषता है जो स्वप्न-संवेदों में नहीं होती। यदि मैं उस केन्द्र से आँखें हटा लेता हूँ जो मेरे सम्वेदों का मनोवैज्ञानिक स्थान है तो मुझमें वे संवेद घटित नहीं होते। इसी प्रकार, यदि मैं ठीक वृत्त में उसके चारों ओर घूमता हूँ और उस केन्द्र के साथ मेरी आँखों की दिशा ठीक वही कोण बनाती है तो मैं मेज़ को निरन्तर परिवर्तमान आकारों के साथ देखता रहूँगा। अतः यह संभावन प्रबल होती है कि हमारे से बाहर उस केंद्र में कुछ घटनाएँ घटित हो रही हैं जहाँ मेरी दृष्टि का मेज़ है अथवा जिस केन्द्र के साथ विभिन्न सह-सम्बन्धित घटनाओं में सम्बन्ध स्थापन सहज हो जाता है। सन्तयाना मेज़ को अथवा उस केन्द्र को, जो हमारे मेज़ सम्बन्धी प्रत्यक्षों का आधार हैं, वास्तविक अस्तित्व मानते हैं, किन्तु स्वयं संवेदों को मेज़ अथवा उसका अंग नहीं मानते। उनके अनुसार, हमारा विषय का प्रत्यक्ष विषय से भिन्न अस्तित्व रखता है किन्तु फिर भी वह विषय के गुणों और सम्बन्धों का भावन करता है। अर्थात् यद्यपि पदार्थ और उसके संवेद अस्तित्व के स्तर पर एक दूसरे से स्वतंत्र हैं किन्तु सार (Essence) और गुणों में वे समान होते हैं। हम गुणों का अपरोक्ष प्रत्यक्ष करते हैं और इस प्रकार का प्रत्येक गुण निरपेक्ष है, वह अपने घटित होने के देश-काल और सम्बन्धों से स्वतंत्र और आत्मपूर्ण हैं। अतः इसकी आवृत्ति की जा सकती है और यह सार्वभौम तत्व है। सन्तयाना सार की परिभाषा देते हुए कहते हैं "विशुद्ध प्रत्यय अथवा

---

[1] वास्तव संवेद रसल मस्तिष्क में घटित होने वाले संवेद को कहते हैं।

[2] रसल ने संवेदों के प्रति यह दृष्टिकोण(The Analysis of mind) तक ही रखा है। पीछे (The Analysis of matter)के बाद उन्होंने संवदों के बजाय घटनाओं को वास्तविक अस्तित्व माना है और अपने से बाहर स्वतन्त्र घटनाओं का अस्तित्व स्वीकार किया है।

विशुद्ध ऐंद्रिय संवेद का वह विषय जिसके साथ अन्य कोई भी विश्वास और अन्वय (एसोसियेशन) संलग्न नहीं है......बाह्य सम्बन्धों तथा भौतिक गुणों से रहित।" वे आगे कहते हैं "जो विश्व हमारा संवेद्य है वह केवल इन निरपेक्ष और अमर सारों के असीम समवाय में से निर्वाचन मात्र है, जो सार स्वतः न तो मानसिक हैं और न अस्तित्ववान ही।" सन्तयाना इन संवेदित सारों में भावित गुणों के लिए कहता है "संभव है वे स्वयं पदार्थ के भी गुण हों।" उसके अनुसार "क्योंकि संवेदितसार और पदार्थ में निहित सार सार्वभौम हैं अतः संवेद अपरोक्ष रूप से पदार्थ का भावन कर सकता है।" सन्तयाना की सार की कल्पना एक सीमा तक रसल के विशिष्ट (Particular) जैसी है। रसल का विशिष्ट न तो मानसिक है न भौतिक, वह उभयविध है, और संवेदित विशिष्ट अनन्त संभाव्य विशिष्टों में से कुछेक का आकस्मिक (Accidental) चयन मात्र हैं। किन्तु विशिष्टों का यह असंवेदित अनन्त समवाय स्वयं अनस्तित्व है। किन्तु रसल सन्तयाना के समान इन्हें सार्वभौम नहीं मानते प्रत्युत इन्हें निश्चित दैशिक-कालिक सम्बन्धों से युक्त मानते हैं। सन्तयाना की सार की इस कल्पना को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयाँ हैं। सर्वप्रथम, यह समझना कठिन है कि इनका पदार्थ से क्या सम्बन्ध है और भूत विज्ञान से इनका समन्वय किस प्रकार किया जा सकता है। संवेदित सार मूलतः पदार्थ से भिन्न है और असंवेदित अनस्तित्व हैं, जबकि पदार्थ का अस्तित्व अक्षुण्ण रहता है। पुनः यह भी समझना संभव नहीं है कि सारों का प्रत्यय से क्या सम्बन्ध है अथवा वे संवेद्य कैसे होते हैं; क्योंकि जब मैं लाल फूल देखता हूँ उस समय मुझमें घटित होने वाला संवेदित सार उन असंख्य सारों में से एक है जो संवेदित नहीं हैं, ये असंवेदित सार अनस्तित्व हैं और सार मात्र का पदार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है, अतः यह समझ सकना कठिन है कि क्यों यह विशेष सार ही उस समय मुझमें घटित हुआ, अन्य क्यों नहीं घटित हुआ।

सार की सार्व भौमता भी असंदिग्ध नहीं: जब मैं लाल रंग का संवेदन करता हूँ उस समय इस गुण विशेष अथवा सारों की असंख्य परंपरा को एक ऐसी घटना घटित होती है जिसे सार का संवेदन कहते हैं और जो इन असंख्य अनस्तित्व सारों में से एक को अस्तित्व-गुण विशिष्ट कर देती है। सार के संवेदन में सन्देह नहीं किया जा सकता और यह भी निःसन्देह है कि प्रत्यक्षीकरण की यह घटना एक निश्चित देश और काल मे घटित हुई है और इसीलिए इसकी पुनरावृत्ति भी नहीं हो सकती। लाल होने का गुण एब्स्ट्रेक्ट में (In Abstraction) सार्व भौम कहा जा सकता है किन्तु

इस गुण की एक विशेष छाया के एक विशेष देश और काल में संवेदन की घटना के लिए यही बात नहीं कही जा सकती।

यद्यपि हमारे उपर्युक्त विश्लेषण से ही यह स्पष्ट है कि सन्तयाना के सिद्धान्तानुसार प्रत्यक्ष को किसी भी प्रकार से पदार्थ से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता किन्तु इस विश्लेषण को और भी आगे बढ़ाया जा सकता है। आँख को एक विशेष प्रकार से दबाने पर हम एक के बजाय दो चाँद देखते हैं और न दबाने पर एक। अब यदि संवेदित सार अनन्त सार-शृंखलाओं में से एक है और यह देश-काल निरवच्छिन्न सौर्वभौम है तो हमारे उपर्युक्त दो संवेदों में कोई सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जा सकता और यदि हम इनमें से एक को चाँद का अपरोक्ष भावन कहेंगे और दूसरे को नहीं तो इसे किसी तर्क के आधार पर नहीं प्रत्युत् केवल विश्वास के आधार पर ही। यह केवल सुविधापेक्षता ((Arbitrariness) होगी। इसी प्रकार मेज़ के सभी संवेदों को भी मेज़ का अप्रत्यक्ष भावन नहीं कहा जा सकता। मेज़ ठीक ऊपर से देखने पर जब कि एक विशेष आकार का दिखाई देता है, कुछ दूर पर ज़मीन पर खड़े हो कर सर्वथा भिन्न आकार का दिखाई देता है। ये दो भिन्न आकार एक साथ ही मेज़ के आकार नहीं हो सकते। इनमें से किसी एक को दूसरे के बजाय मेज़ का वास्तविक आकार कहना निराधार कल्पना होगी।

इसके विपरीत रसल के संवेदों के बारे में यही नहीं कहा जा सकता। उनकी व्याख्यानुसार प्रत्येक संवेद अन्य असंख्य संवेदों की दैशिक और कालिक सापेक्षता में अवस्थित है। जब हम एक के बजाय दो चाँद देखते हैं उस समय इस संवेद का अन्य सम्भाव्य और वास्तविक संवेदों के साथ समन्वय नहीं किया जा सकता, अत: इस संवेद को असाधारण कहा जाएगा।

ब्रॉड इस समस्या का कुछ भिन्न प्रकार से विश्लेषण करते हैं। उनके विचार में ऐंद्रिय संवेद की घटना का विश्लेषण—संवेदन क्रिया, संवेद तथा संवेद्य विषय में किया जाना चाहिए। वे कहते हैं, 'यह प्रमाणित करने के लिए अत्यन्त ठोस प्रमाण दिये जा सकते हैं कि संवेदित विषय अपने अस्तित्व के लिए मन पर निर्भर करते हैं, यद्यपि संवेद का विश्लेषण संवेदन क्रिया और संवेद्य विषय में किया जा सकता है। और इस प्रकार संवेद्य विषय को क्रिया तथा संवेद से भिन्न किया जा सकता है। किन्तु फिर भी ये दो फेक्टर एक दूसरे से स्वतंत्र नहीं रह सकते। संवेदन का कोई व्यापार संवेदित विषय के बिना संभव नहीं है जिस पर कि यह व्यापारित होता है, और इसी प्रकार

कोई संवेदित विषय संभव नहीं है जब तक कि संवेदन का व्यापार नहीं हो।" संवेद्य विषय को अपने अस्तित्व के लिए मन पर वे इस लिए आश्रित मानते हैं 'क्योंकि 'वह एक दम व्यक्तिगत है, उसमें तथा शारीरिक अनुभव में समता है तथा उन में और मानसिक कल्पनाओं में समता है।' किन्तु फिर भी इस विषय को वे मानसिक विषय अथवा मन की अवस्था नहीं मानते क्योंकि "यदि संवेद्य विषय मन की अवस्था हो तो ऐसी मानसिक अवस्थाएँ माननी होंगी जो शब्दशः लाल, गोल, गर्म और स्वरित हों। मुझे यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं दिखाई देती कि बहुत सी मानसिक घटनाएँ ऐसी (टर्म्ज़) से युक्त होती हैं जिन्हें हम विषय कहते हैं, किन्तु मुझे यह स्वीकार करना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है कि मानसिक अवस्थाएं स्वयं ऐसी टर्म्ज़ हैं।"

संवेदन की क्रिया के सम्बन्ध में हम पीछे देखेंगे, यहाँ ब्रॉड की अन्तिम पंक्तियाँ विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। 'जब कि संवेद्य विषय संवेद का अविभाज्य अंग है और संवेदन क्रिया का भी, और संवेदन क्रिया मानसिक अवस्था है तब संवेद्य-विषय मानसिक अवस्था नहीं है क्योंकि वह लाल, चौड़ा और गर्म है। दूसरे शब्दों में, यद्यपि ललाई, चौड़ाई और गर्माई मन से स्वतंत्र नहीं हो सकतीं किन्तु फिर भी वह मन में नहीं हो सकतीं; और इसी प्रकार, यद्यपि विशेष मानसिक अवस्थाएं ललाई, चौड़ाई और गर्माई के बिना नहीं हो सकतीं किन्तु ये गुण इन अवस्थाओं के नहीं हैं।' हमारे विचार में यह एक अत्यन्त दूराकृष्ट कल्पना है। कल्पना में भी हम ललाई, चौड़ाई और गर्माई का भावन करते हैं। यदि कल्पना भी सम्पूर्ण रूप से मानसिक अवस्था नहीं है तो हमें नहीं मालूम कि मानसिक अवस्था वे किसे कहते हैं। इस के अतिरिक्त, मान लीजिए मानसिक अवस्थाओं का लम्बे, चौड़े और गर्म होना असंभाव्य है, और यह भी कि विषय इन अवस्थाओं से युक्त होते हैं, अथवा ठीक शब्दों में, ये अवस्थाएं विषयों की मौलिक अवस्थाएं हैं, तो ये दो अस्तित्व, चौड़ाई-ललाई रहित मानसिक अवस्था और इन से युक्त वैषयिक अवस्था कैसे अधिकरण और अधिकृत (Container and Contained) का सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं? कैसे मानसिक अवस्था—संवेद की क्रिया, वैषयिक अवस्था से 'युक्त' हो जाती है? इन प्रश्नों का उत्तर हम ब्रॉड से नहीं पाते। उन्होंने विश्लेषण को बहुत दूर तक खैंचा है।

अब संवेद की क्रिया के सम्बन्ध में। हमने इस बारे में पहले भी विचार किया है, किन्तु यहाँ एक बार पुनः इस विषय पर इस प्रकरण में विचार

कर लेना उपयोगी होगा। ब्रॉड का क्रिया (एक्ट) को रखने का मुख्य कारण यह है कि वह संवेद में विषय को स्वतंत्र रखना चाहते हैं और इसके कारण हमने ऊपर उद्धृत किये हैं। क्रिया को वे संवेद का वह भाग कहते हैं जो विषय-रहित है। किन्तु यदि संवेद के लिए ये दानों भाग अनिवार्य हैं और यदि तथाकथित एक भाग दूसरे के बिना हो ही नहीं सकता तो किस आधार पर वे क्रिया का प्रतिपादन करते हैं, हम नहीं समझ सकते। इसी प्रकार, यदि संवेद्य विषय (Sensum) संवेद का एक भाग है तो किस प्रकार वह संवेद से पृथक् है ? संवेद को पूर्ण शुद्ध रूप में लेकर उसका विषय और व्यापार में विभाजन करना असंभव है। मेज का चाक्षुष संवेद (अथवा कोई भी ऐंद्रिय संवेद) एक घटना है जो देश और काल में एक विनिश्चित सापेक्ष बिन्दु पर घटित होती है, यह एक दम मौलिक और आधारभूत है। यह सन्तयाना के 'सार' और 'सार्वभौम' संवेद से इस अर्थ में समान है कि यह अविभाज्य है। ब्रॉड संवेद्य विषय की भी सन्तयाना से भिन्न व्याख्या करते हैं, वे कहते हैं "भौतिक विषय, जिसे कि मैं इस समय देख रहा हूँ, एक विशिष्ट गुण युक्त है', इस तर्क वाक्य का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है—एक विशेष विषय चाक्षुष घटना घ के विषय भाग का घटक है। यह यथार्थ में ही एक विशेष गुण क से संयुक्त है जिसे कि मैं निरीक्षणसे इसमें देख सकता हूँ, और इसका यह गुण द्विविध सम्बन्ध के रूप में विद्यमान है। और इसके अतिरिक्त भौतिक पदार्थ भ है जिससे कि विषय य सम्बन्ध स से सम्बन्धित है जो कि अद्वितीय है—अन्य किसी विषय के साथ जो नहीं हो सकता। यह सम्बन्ध स 'विषय की प्रतीति होने' का है। संवेद्य विषय की इस व्याख्या का लाभ यह है कि इस प्रकार एक विषय की विभिन्न प्रतीतियों में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। संवेद्य विषय को एक स्वतंत्र अस्तित्व भी रखा जा सकता है, जो स्वयं भौतिक पदार्थ का भाग नहीं है, और इसे संवेद से भी स्वतंत्र रखा जा सकता है। किन्तु यदि ध्यान से देखा जाए तो इस स्वतंत्रीकरण में अनेक कठिनाइयाँ हैं। जब कि संवेद्य विषय भौतिक पदार्थ का भाग नहीं है और न ही यह मानसिक अवस्था है तो इसे पदार्थ की प्रतीति कहने का क्या अभिप्राय है ? क्या प्रतीति होने पर यह मन की अवस्था नहीं होगा जिसमें कि यह प्रतीति है ? यदि इसे पदार्थ की अवस्था नहीं भी कहा जाए तो भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि प्रतीति की घटना, जो कि मन में होती है, वह पदार्थ के किसी भाग की भी होती है। तब चाहे यह घटना इस पदार्थ के इतिहास का भाग न भी हो सके, तो भी यह पदार्थ से इस प्रकार सम्बन्धित है जिस कारण हम इसे इस

विशेष पदार्थ की प्रतीति कहते हैं। संभवतः यह समझना सहज नहीं है कि ब्रॉड संवेद्य-विषय के सम्बन्ध में क्या कहना चाहते हैं। माईण्ड एंड इट्स प्लेस इननेचर में पृष्ट २१८-२२० पर उन्होंने संवेद्य विषय को केवल संवेद का विषय भाग कहा है जो शारीरिक स्तर पर कारित (Physiologically Caused) हैं, और वहाँ यह समझना कठिन है कि इसका भौतिक पदार्थ से, "जो कि स्वयं इनके समान ही हो सकता है," क्या सम्बन्ध है। दूसरी ओर उन्होंने 'साइंटिफिक थाट' के अन्तिम निबंध 'कंडीशंज़ एंड स्टेट्स ऑफ सेंसा' में निर्वाचन सिद्धान्त को सर्वाधिक तर्क सम्मत बताया है, क्योंकि "इससे संवेद्य विषय का प्रज्ञानात्मक (Epistimological) और सत्तात्मक (Exxistential) पद बढ़ जाता है।" इस सिद्धान्तानुसार संवेद्य विषय पदार्थ के वे भाग हैं जो कि हमारे संवेद के प्रज्ञानात्मक-प्रतीत्यात्मक प्रसंग में आते हैं।

सिश्लेषणात्मक वैज्ञानिकतावादी, जैसा कि इन्हें कहा जाता है, तथा रसल (एनेलेसिस ऑफ माइंड तक) संवेद्य विषयों को भौतिक संसार में एक निश्चित और ठोस स्थान दिलाना चाहते हैं। इसका प्रमुख कारण ये है कि ये प्रत्यक्ष विषय ही वास्तव में हमें ज्ञेय हैं और इन्हीं को सामान्य जन भौतिक पदार्थ अथवा उसके पहलू मानते हैं। विश्लेषणात्मक ैज्ञानिकतावादी अथवा वैज्ञानिक अद्वैतवादी (जैसे रसल) सामान्य जन से विपरीत संवेद्य विषयों के स्वतंत्र रूप से आवश्यक कारण बाहर भौतिक प्रदेश में न मानकर मस्तिष्क में ही मानते हैं जब कि इनके 'पराश्रित रूप से आवश्यक कारण' बाहर भौतिक प्रदेश में मानते हैं (किन्तु रसल नहीं)। किन्तु रसल बाह्य पदार्थों और कारणों इत्यादि के सम्बन्ध में सन्देह शील हैं, वे संवेदों को ही सब कुछ मानते हैं। इसके विपरीत विश्लेषणवादी इन्हें भौतिक विषयों के समधिक समान अथवा उन्हीं के भाग मानते हैं। इनसे असहमत होने के कारण हम पीछे दे चुके हैं।

जैसा कि हम पीछे कह चुके हैं, संवेद एक घटना है और यह हमारे मस्तिष्क में घटित होती है। यह घटना एक असीम कारण-शृंखला की कड़ी मात्र है। इसका पूर्ण पृथक्कृत प्रत्यय असम्भव है और यह प्रत्येक घटना के लिए कहा जा सकता है, किन्तु फिर भी इसकी कुछ कल्पना की जा सकती है। मानसिक प्रत्यक्ष (Perception-recognition) एक ओर काल में हमें अन्य घटनाओं—जैसे अन्वयों—से सम्बद्ध होता मिलेगा और दूसरी ओर देश में क्रमशः धुंधला होता हुआ। अतः दोनों तरह से इसकी कल्पना केवल प्रवर्द्धमान और प्रायिक (Progressive and Approxi-

mate) ही हो सकती है, निश्चित नहीं। अन्य तत्वों अथवा सम्मिश्रणों को संवेद से जितना ही हम अलग करते जाएंगे संवेद उतना ही अधिक धुंधला होता जाएगा। अतः संवेद का प्रत्यय केवल सीमा (Limit) है। जैसा कि सीमा कहने से स्पष्ट है, घटना असीमल्प (Infinitessimel) नहीं होती और इसी प्रकार यह सम्पृक्त भी नहीं होती। एक सम्पृक्त घटना पुनः घटनाओं का समवाय है।

हम कल्पना करते हैं कि हमारे मस्तिष्क के समान ही बाहर भी घटनाएं घटित होती हैं। भूत विज्ञान में ये घटनाएं केवल गाणतिक प्रकृति की हैं। किन्तु यह मानना सुविधा जनक है कि ये घटनाएं किसी गुण से युक्त हैं, यद्यपि यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता। जहाँ तक घटनाओं की गाणितिक प्रकृति का प्रश्न है, यह भी मानसिक प्रत्यय मात्र है, हम इसके तद्‌गत रूप को नहीं जान सकते। "सापेक्षता सिद्धान्त ने फोर्स, मोमेंटम, गुरुत्वाकर्षण, शक्ति इत्यादि सभी कल्पनाओं को मानसिक प्रत्यय सिद्ध कर दिया है। नवीन क्वांटम सिद्धान्त ने परमाणु को कण के बजाय लहर-चित्र के रूप में विश्लेषित कर दिया है जो कि लहरें भौतिक देश में न होकर हमारे प्रत्ययात्मक देश में घटित होती हैं।" (जेम्जजींज) इसी प्रकार कारणता के सम्बन्ध में हमने पिछले निबन्ध में देखा है कि वह केवल निगमनात्मक अनुमान है, अतः मानसिक है। किन्तु यह निगमनात्मक अनुमान हमें अपने से स्वतन्त्र घटनाओं के होने में भी विश्वास देता है। मान लीजिए मैं एक घटना ख का प्रत्यक्ष करता हूँ, तब मैं अनुमान करता हूँ कि इससे पूर्व एक घटना क घटित हो चुकी है जो कि यद्यपि मैंने नहीं देखी, किन्तु वह किसी और ने देखी होगी, और यदि नहीं देखी तो देखी जा सकती थी। इसी प्रकार, जब मैं एक विशेष आकृति का रंगीन संस्थान देखता हूँ जिसे कि मैं मेज का एक पहलू कहता हूँ, तो मैं अनुमान करता हूँ कि इसके इस काल बिन्दु क पर दूसरे भी पहलू हैं जो, यदि उन बिन्दुओं पर मेरे समान ही अन्य द्रष्टा भी हों तो, उनके मस्तिष्क में भी मेरे संवेद के समान ही घटित होते हैं। मैं यह भी कल्पना करता हूँ कि मेज मेरे प्रत्यक्षों से अधिक स्थायी है : यदि मैं इस कमरे से बाहर चला जाऊं तो भी यह अन्य वास्तव या संभाव्य द्रष्टाओं का चाक्षुष संवेद्य होगा। यदि मेरे साथ एक मूवी कैमरा भी सक्रिय है तो मैं अन्य किसी मस्तिष्क के अस्तित्व में विश्वास किये बिना भी अनुमान कर सकता हूँ कि मेज के अन्य पहलू भी थे। यह बात मेरे कमरे से बाहर चले जाने के बाद लिए गये चित्रों के लिए भी कही जा सकती है।

इस तर्क की कुछ सीमाएं हैं, प्रथमतः निगमनात्मक पद्धति हमें अनिवार्य

रूप से बाह्य घटनाओं में विश्वास नहीं देती। ख के घटित होने पर क के घटित हुए होने का अनुमान केवल सहज विश्वास (एनिमल फ़ेथ) है और यह तभी होता है यदि हमने पहले भी ख' को क' से सम्बन्द्ध देखा है तो। अतः ख के होने से क के हुए होने का अनुमान केवल संवेदों तक ही सीमित है, उससे बाहर जाने का कोई साधन नहीं। इसके अतिरिक्त, इससे मुझे स्मृति पर विश्वास करना होगा, जिसकी सत्यता स्वयं सिद्ध नहीं है। स्मृति वह घटना है जिसके सह-सम्बन्ध (Correlations) अन्य वर्तमान घटनाओं के साथ नहीं देखे जा सकते और जिसके साथ यह विश्वास संलग्न है कि 'ऐसा अतीत में हुआ था।' हमारे विचार में यह विश्वास मौलिक नहीं है, जैसा कि बर्ट्रंड रसल मानते प्रतीत होते हैं; यह केवल एसोसियेशंज़ और कोर्रिलेशंज़ का व्यापार है। यदि मौलिक भी हो तो ज्ञान मीमांसा की पदार्थ सम्बन्धी समीक्षा की दृष्टि से इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। जो यहाँ प्रासंगिक है वह यह है कि स्मृतिज्ञान की सत्यता का प्रश्न एक समस्या है। संवेद जब कि हमें केवल संवेदों का ही ज्ञान देते हैं, स्मृति 'स्मृति संबंधी घटना' का ही ज्ञान नहीं देती जो कि मुझमें अब घटित हो रही है, प्रत्युत अन्य घटनाओं-अतीत संवेदों-का ज्ञान भी देती है, जो मात्र छलना हो सकती है। अतः संवेद में भ्रम-ज्ञान का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता और स्मृति में होता है, जिसका उत्तर सहज नहीं है। स्मृति अनेक वार भ्रामक हो सकती है (केवल विश्वासों के स्तर पर ही रहते हुए यदि देखें, तो भी) और यह कब भ्रामक नहीं है, यह जानना असंभव है। उपर्युक्त विश्लेषण की दूसरी सीमा है—जबकि मैं स्वयं एक घटना समवाय हूँ तो जो मैं इस क्षण हूँ वह दूसरे क्षण नहीं रहूँगा, अतः कैमरे से जो मैं देखूँगा न तो वह वही होगा जो कैमरे का मौलिक संवेद था और न मैं वही हूँगा जिसने कि मेज़ का पहलू काल क पर देखा था। यदि सापेक्षता सिद्धान्त की दृष्टि से देखा जाए तो इन दोनों के काल का भी समन्वय नहीं हो सकता, मैं यह नहीं कह सकता कि मैंने मेज़ का पहलू प[१] काल क पर जो देखा था वह कैमरे के संवेद प[१] का समकालीन था। किन्तु काल सम्बन्धी ये कठिनाइयाँ अधिकांशतः यहाँ उत्पन्न नहीं होतीं, यदि कैमरा मेज़ से हज़ारों मील दूर नहीं है तो। अतः मेरे संवेद की घटना इतिहास में एक अद्वितीय घटना है और वह किसी अन्य घटना से उपमित नहीं की जा सकती।

इस सुलझाव के लिए हम अभी अतीत की सत्यता का स्वीकार स्थगित कर सकते हैं और अपने आपको वर्तमान तक सीमित कर सकते हैं। अब जब देश द[१] पर एक संवेद घटित होता है जिसका गुण म[१] है और केन्द्र

क है और यह देश द^{१} मेरा मस्तिष्क है उस समय मैं अनुमान करता हूँ कि द^{२}........द^{न} पर भी घटनाएँ घटित हो रही हैं जिनका गुण म^{२}......म^{न} है और केन्द्र क है। हम यहाँ इन घटनाओं से एक और गुण हटा लेते हैं—वह है वास्तविक होने का, क्योंकि जब अन्य देश-बिन्दुओं पर मेरे समान ही अन्य मस्तिष्क नहीं हैं तो वहाँ कम से कम वैसे संवेद अथवा घटनाएं नहीं हो सकतीं जैसी मेरे मस्तिष्क में होती हैं। अतः इन्हें हम सम्भाव्य संवेद कह सकते हैं। इन संभाव्य संवेदों को हम और भी क्षीण कर सकते हैं और कह सकते हैं कि ये संवेद केवल मस्तिष्क की ही सृष्टि हैं, देश द^{२}......द^{न} में केवल इतनी ही सम्भावना है कि जब भी इन बिन्दुओं पर मस्तिष्क होगा तो केन्द्र क के साथ सह-सम्बन्धित अन्य संवेद भी घटित होंगे जिनका गुण म^{२}........म^{न} होगा। इस प्रकार प्रत्येक घटना अपने समान अन्य दैशिक और कालिक घटनाओं से सह-सम्बन्धित है। यद्यपि अपनी इस सम्भावना को हम पूरी तरह से चरितार्थ नहीं कर सकते किन्तु फिर भी यह विनम्र सम्भावना हम कर सकते हैं। ये संवेद देश और काल में इस प्रकार घटित होते हैं कि इनका पृथक्-पृथक् संकलन भी किया जा सकता है : यदि एक संवेद इस प्रकार घटित होता है कि उसमें एक से अधिक केन्द्र हैं तो हम अनुमान कर सकते हैं कि देश द^{१} पर एक साथ ही एकाधिक घटनाएं घटित हो रहीं हैं। और इसी प्रकार दो केन्द्रों के गुणों में भी अन्तर हो सकता है। यह घटनाओं का पृथक् संकलन इस प्रकार किया जा सकता है कि यदि संवेद स^{१} काल क पर देश द^{१} में देखा जाता है और इसी प्रकार स^{न} काल क पर देश द^{न} में और यदि स^{१} और स^{न} में सम्बन्ध ब^{१} है तो हम कहेंगे कि स^{१} और स^{न} एक ही मेज़ के बारे में है। अन्य किसी घटना का सम्बन्ध ब^{१} इस वर्ग से नहीं हो सकता। यह सम्बन्ध ब^{१} अब दो प्रकार का हो सकता है। यदि स^{१}......स^{न} का समवाय यही मेज़ है तो ब^{१} का अभि-प्राय होगा वर्ग सदस्यता और यदि केन्द्र क एक वास्तविक घटना समवाय है और स^{१}......स^{न} इसकी अवस्थाएं तो ब^{१} का अभिप्राय होगा प्रतीति। जहां तक दूसरे प्रकार के सम्बन्ध का प्रश्न है, वह तर्क-सम्मत नहीं जान पड़ता, क्योंकि यदि मेज़ वास्तविक भी है तो भी स^{१}......स^{न} का सम्बन्ध सीधे मेज़ से नहीं है क्योंकि उस अवस्था में भी

मेज़ मेरे मस्तिष्क से अथवा $द^1 \ldots\ldots द^न$ से बहुत दूर है।

किन्तु मेज़ को केवल क्षणिक अस्तित्व नहीं कहा जा सकता। उसका कालिक प्रसार भी उतना ही आवश्यक है जितना दैशिक प्रसार। वैसे इन दोनों ही प्रसारों का आधार केवल सहज विश्वास है, किन्तु यह कम से कम है जो पदार्थत्व के लिए आवश्यक है, अन्यथा हम अपदार्थवादी कहे जाएंगे।

संवेदों का अथवा मेज़ का कालिक प्रसार वास्तव में उसके दैशिक प्रसार से अधिक विनिश्चित आधारों पर है। वर्तमान संवेद का अस्तित्व हमने असन्दिग्ध माना है, इसी प्रकार इसके एक दम साथ का अतीत संवेद यद्यपि उतना ही असंदिग्ध नहीं है, और स्मृति के सम्बन्ध में दिए गए हमारे तर्क उस पर भी लागू होते हैं, किन्तु फिर भी हम उसके अस्तित्व में विश्वास करते हैं और यह निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि 'ऐसा हुआ था।' मान लीजिए, मैं अभी खाना खाकर निवृत्त हुआ हूँ, उस अवस्था में मेरा यह विश्वास कि यह घटना घटी थी, एक दम संदेह से परे ही समझा जाना चाहिए। अब यदि अतीत की एक दम समीप की घटना सत्य सिद्ध है तो सिद्धान्ततः हम स्मृति की सारता में विश्वास कर सकते हैं। यह देखने पर, अब यह समझा जा सकता है कि यदि हम स्मृति की सत्यता को स्वीकार कर लें तो हम किस प्रकार मूवी कैमरे के साथ अपनी संवेदनाओं का समन्वय कर सकते हैं : जब केन्द्र क के प्रसंग से काल $क^1 \ldots\ldots क^न$ पर देश $द^1$ में संवेद $स^1 \ldots\ldots स^न$ घटित होते हैं, और यदि हम यह स्वीकार करते हैं कि संवेद $स^{1'} \ldots\ldots स^{न'}$ काल $क^1 \ldots\ldots क^न$ पर देश $द^2 \ldots\ldots द^न$ पर घटित होते हैं तो इन सब संवेदों में सह-सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। पीछे हमने वर्ग सदस्यता के सम्बन्ध को स्वीकार किया है और इसलिए $स^1 \ldots\ldots स^न$ का $स^{1'} \ldots\ldots स^{न'}$ से काल $क^1 \ldots\ldots\ldots क^न$ पर सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। यहाँ हम यहभी, बिना अन्य विवाद के, स्वीकार कर लेते हैं कि यह सम्बन्ध भिन्नेन्द्रिय संवेदों में भी परस्पर स्थापित किया जा सकता है। सामान्य जीवन में तो अभ्यासेन यह किया ही जाता है। उसी आधार पर उसी प्रणाली से यह सम्बन्ध स्थापन हम भी स्वीकार कर सकते हैं।

इस विश्लेषण से हम जिस परिणाम पर पहुँचते हैं वह यह है कि पदार्थ असंख्य वास्तव और संभव संवेदों का सह-सम्बन्धित समवाय है। संभव संवेदों

से अभिप्राय है देश-काल विशेष, जहाँ विद्यमान होने पर मस्तिष्क में वास्तव संवेद घटित होंगे। मस्तिष्क स्वयं क्या है ? पुनः उत्तर होगा, संवेद अथवा संवेदों का समवाय। किस प्रकार के संवेदों का, यह हम पीछे विचार कर आए हैं।

किन्तु सामान्यतः हम पदार्थ को इस से कुछ अधिक ठोस अस्तित्व समझते हैं। उपर्युक्त विश्लेषण लगभग बर्ट्रेंड रसल की मिस्टिसिज्म एंड लॉजिक, आवर-आइडिया ऑफ दि एक्सटर्नलवर्ल्ड तथा दि एनेलेसिस ऑफ-माइंड के अनुसार है। इसमें संभवतः संभाव्य संवेदों की व्याख्या हमने अपनी ओर से की है और हमारे विचार में, रसल की प्रणाली की सुठिता के लिए यही व्याख्या उपयुक्त है। स्वयं रसल इन संभाव्य संवेदों के सम्बन्ध में क्या समझते हैं, यह कम से कम हमारे पर प्रकाशित नहीं हुआ। इस प्रकार की व्याख्या का कारण असंदिग्ध से आगे न जाने की सावधानी है और यह सावधानी ही इस प्रणाली की वैज्ञानिकता है। अन्ततः पदार्थ की सामान्य जन की कल्पना का आधार संवेद ही है। किन्त पदार्थ को संवेद से स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करने का आधार यह भी है कि सामान्यजन उसे इन संवेदों का कारण समझते हैं। स्वप्न की संवेद्य घटनाओं और जागृति की ऐसी घटनाओं के सह सम्बन्धों में अन्तर को हमने देखा था। यह अन्तर बहुत गंभीर है और हमें जागृति के संवेदों के बाह्य कारण होने में विश्वास देता है। जब जागृति में मैं मेज़ का चाक्षुष प्रत्यक्ष करता हूँ तब यह घटना-क्रम तब तक जारी रहता है जब तक मेरी आँखें उसी केन्द्र पर रहती हैं। यह घटना-क्रम असंख्य घटनाओं का समवाय है। संवेद की एक घटना को हम संवेद्य वर्तमान अथवा प्रातीत्य वर्तमान (speciouspresent) कहते हैं।[१] इसी प्रकार, यदि मैं उसी केन्द्र पर दृष्टि कर एक वृत्त में चलूं तो भी संवेद की घटनाएँ 'घटित होंगी जिनमें एक अनुक्रम और प्रायिक समता का सम्बन्ध होगा। ऐसा स्वप्न में नहीं होता और जागृति के ये सह-

---

[१]वर्तमान शब्द से असीमल्प काल बिन्दु का बोध होता है क्योंकि अत्यन्तल्प काल बिन्दु का भी कुछ परिमाण होगा और उसे तब तक भूत और भविष्यत् में विभाजित किया जा सकेगा जब तक कि उसका परिमाण समाप्त नहीं हो जाता। किन्तु ऐसा वर्तमान केवल अभ्युपगमित है, संवेद्य नही हो सकता। संवेद्य होने के लिए काल का कुछ परिमाण होना चाहिए, कितना, यह ह्वाइटहेडने अत्यन्त मौलिकता से अपनी पुस्तकों 'दि कांसेप्ट ऑफ नेचर' तथा 'प्रिंसीपल्ज़ आफ नेचुरल नॉलेज' में अत्यन्त योग्यता से प्रतिपादित किया है।

सम्बन्ध ऐसे हैं जिनसे सहज में ही यह विश्वास होता है कि वह केन्द्र, जहाँ पहुँचने पर स्पर्श सम्बन्धी घटनाएं भी घटित होंगी, मेरे संवेदों से एक स्वतंत्र अस्तित्व है। यह विश्वास तब और भी दृढ़ हो जाता है जब मैं उस केन्द्र से धीरे-धीरे दृष्टि फेरता हूँ और मेरे मेज़ सम्बन्धी संवेद क्रमश: परिवर्तित होकर पुनः धुँधले होकर तिरोहित हो जाते हैं और पुनः उसी क्रम से लौटने पर उसी क्रम से संवेद भी लौटते हैं। इसी प्रकार, यदि मेरे और मेज़ के बीच कोई विषम सतह का शीशा है तो मेरे आँखें हिलाने पर मेज़ में दो प्रकार की गति दिखाई देगी जिनमें एक का सम्बन्ध मेरी आंखों की सापेक्ष स्थिति के परिवर्तन से है और दूसरी का सम्बन्ध उससे नहीं है। तब मैं शीशा बीच से हटा देता हूँ और उस अवस्था में एक ही प्रकार की गति होती है। उस अवस्था में दूसरी प्रकार के संवेदों में विचित्रता का कारण मैं शीशे को समझता हूँ और यह मानने में मेरा विश्वास दृढ़ होता है कि शीशा कुछ स्वतंत्र अस्तित्व है--मेरी आँखों का भ्रम नहीं। इसी प्रकार कुछ अन्य भी संवेद हैं जिन्हें मैं अन्य मनुष्यों के, अपने पैर-हाथ के संवेद कहता हूँ। इन संवेदों में हाथ-पैर सम्बन्धी मेरे चाक्षुष संवेदों के बाह्य केन्द्र (हाथ-पैर) मेरे एक अन्य प्रकार के संवेदनों के भी विषय हैं जिन्हें मैं अन्तः संवेदन (Somatic Senses) कहता हूं। ये संवेद एक दम विलक्षण हैं क्योंकि ये देश में अन्य बिन्दुओं से सह-सम्बन्धित नहीं किये जा सकते और न ये अन्य किसी संवेद के साथ जुड़े होते हैं। इसी प्रकार, इन चाक्षुष संवेदों को मैं अपनी 'इच्छानुसार' हिला डुला सकता हूँ और इस सब का मैं एक अन्तः संवेद प्राप्त कर सकता हूँ। इस प्रकार इन चाक्षुष संवेदों से मैं अन्य संवेदों के बजाय अधिक 'परिचित' हो सकता हूँ। किन्तु अन्तः संवेद उतने ही अधिक मेरे मस्तिष्क में घटित होते हैं जितने चाक्षुष संवेद। अब यद्यपि संवेद के होने के लिए शरीर का होना कोई अनिवार्यता नहीं है किन्तु फिर भी अपने शरीर के अस्तित्व में विश्वास मुझमें मौलिक है। जब मेरा हाथ हिलता है उस समय इसका चाक्षुष संवेद घटित होता है और साथ ही अन्तः संवेद के द्वारा भी मैं इस हिलने को जानता हूँ, हाथ कट जाने पर मुझे तीव्र पीड़ा होती है और साथ ही, हाथ का उपयोग में मैं जिन कार्यों में पहले कर सकता था उनमें अब नहीं कर सकता। जो भी हो, अपने शरीर के होने में मेरा विश्वास मौलिक है यद्यपि इसके सम्बन्ध मैं उतना ही सन्देह शील होने का कारण रखता हूँ जितना मेज़ के पृथक् अस्तित्व होने-के सम्बन्ध में। यह मेरा ज्ञान निश्चात्मकताकी द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत हो सकता है। रसल या अन्य अधिकांश दार्शनिक शरीर के अस्तित्व को बिना किसी तर्क के ही स्वीकार कर लेते हैं

किन्तु वास्तविकता यह है कि शरीर का अस्तित्व एक दम असंदिग्ध नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार स्पर्श सम्बन्धी घटनाएं केवल मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाले संवेद हैं उतनी ही अधिक हाथ कटने से उत्पन्न पीड़ा मेरे मस्तिष्क में घटित होने वाले संवेद हैं। स्पर्श संवेद तथाकथित अन्तर्वाहिनी और बहिर्वाहिनी धमनियों में तथाकथत विद्युल्लहर के रूप में व्यापारित होते हैं, किन्तु वे संवेद नहीं हैं, उनका अस्तित्व मात्र अभ्युपगमित है। इसी से हमने शरीर के ज्ञान को द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत रखा है। किन्तु प्रश्न किया जा सकता हैं कि यदि संवेद....क का संवेद है और क अनिवार्य रूप से कोई संवेद से स्वतंत्र तत्व न हो कर केवल संवेद का निजीगुण मात्र है, उस अवस्था में विश्वास का आधार क्या है? अथवा क्या शरीर सम्बन्धी संवेद क संवेद नहीं हैं? हमारे विचार में यह तर्क केवल तर्क नहीं प्रत्युत् अत्यन्त संगत तर्क हैं और एक दम उचित है। किन्तु फिर भी रसल-ब्राँड इत्यादि ने इसे प्रथम श्रेणी के विश्वास के अन्तर्गत रखा है। हमारे इसे द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत रखने का कारण यह है कि हम वाह्य घटनाओं का अस्तित्व स्वीकार करते हैं। किस प्रकार, यह हम आगे देखेंगे। इसे अन्य संवेदों से प्राथमिकता देने का कारण स्पष्ट है—अन्त: संवेद (Somatic Senses) केवल शरीर कही जाने वाली घटनाओं के साथ ही सम्बद्ध हैं। प्रश्न किया जा सकता ह कि जब कि संवेदों का अस्तित्व अपने से बाहर किसी अस्तित्व पर अनिवार्य रूप से निर्भर नहीं है तो क्यों अन्य घटनाओं के अस्तित्व में विश्वास किया जाए? इस का उत्तर यह है कि हमारे विश्लेषण को निषेधात्मक न हो कर विनिश्चयात्मक होना चाहिए। विश्लेषण की प्रणाली प्रदत्त (Given) सत्वों का परीक्षण होनी चाहिए। मान लीजिए, मैं शरीर के अस्तित्व अथवा सत्व का विचार स्थगित कर देता हूँ, अथवा इसका निषेध ही कर देता हूँ, किन्तु जो मैं इस समय लिख रहा हूँ उसका, अर्थात् इस व्यापार का, इसके साधन का और साध्य का कैसे निषेध कर सकता हूँ? यदि मैं पत्र लिखता हूँ तो कम से कम पत्र लिखने का और उस का 'संगत' उत्तर पाने का कैसे निषेध कर सकता हूँ? ये सब तथ्य हैं, दार्शनिक होने के नाते, मैं केवल इन सब के गुणों और मूल्यों का विश्लेषण करता हूँ।

अस्तु, अपने शरीर के अस्तित्व के पश्चात् मैं अपने ही समान अन्य शरीरों और मनों में विश्वास कर सकता हूँ। इस विश्वास का आधार अधिकाँशत: उपमा है। यद्यपि इसमें हमें बड़े परोक्ष अनुमानों से काम लेना पड़ता है किन्तु पूर्ण एकात्म वादी हो कर हमारा जीवन असंभव है। अन्त: संवेदनाओं

के द्वारा मैं अनुभव करता हूँ कि जब मैं बोलता हूँ उस समय ओंठ कुछ विशेष प्रकार से हिलते हैं, जब मेरा कुछ अमुक प्रकार का भाव होता है तब मैं अमुक शब्दों का प्रयोग करता हूँ। अतः जब मैं कुछ उसी प्रकार अपने चाक्षुष संवेदों में ओंठ हिलते देखता हूँ और कुछ उसी प्रकार के श्रौत्र-संवेद अनुभव करता हूँ उस समय मैं कुछ वैसे ही मन के होने का अनुमान करता हूँ जैसा मेरा मन है। यह परिणाम बहुत परोक्ष है किन्तु व्यावहारिक है, इस के विपरीतस्थिति तर्क शस्त्र में स्वीकार की जा सकती है किन्तु जीवन में नहीं। किन्तु एक बार अन्य मनुष्यों अथवा मनों का स्वतंत्र अस्तित्व—हमारे संवेदों से अतिरिक्त अस्तित्व—स्वीकार कर लेने पर हम मेज़, वस्त्र और घड़ी के स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करने को भी वाध्य हैं। क्योंकि चाक्षुष संवेद अथवा श्रौत्र संवेद में एक मेज़ और मनुष्य में कोई अन्तर नहीं हैं, इस से भी, अन्य मनों का अनुमान हमें तार्किक आधार पर अधिक आनुमानिक अथवा परोक्ष प्रतीत होता है।

अपने हाथ अथवा पैर या अन्य अंगों को भी हम संवेद्य घटनाओं तथा अन्तः संवेदों का समवाय कह सकते हैं जो कि घटनाएँ हमारे मस्तिष्क में घटित होती हैं। किन्तु मस्तिष्क क्या है? क्या हम इसके अस्तित्व के सम्बन्ध में अन्तः संवेदों के समवाय से अधिक जान सकते हैं? स्पष्टतः नहीं। तो स्वभावतः मस्तिष्क भी मात्र अन्तः संवेदनाओं का समवाय है और संभाव्य ऐंद्रिय संवेदों का भी, इस से अधिक वह कुछ नहीं हो सकता। किन्तु यह मस्तिष्क जब कि मेरे लिए मात्र अन्तः संवेदनाओं का समवाय है तो अन्य मस्तिष्कों के लिए मात्र ऐंद्रिय संवेदनाओं का। इस लिए जिस समय यह मस्तिष्क ऐंद्रिय संवेद्य अस्तित्व से रहित है उस समय भी उसका अस्तित्व मेरे अन्तः संवेदों के रूप में विद्यमान रहता है। किन्तु अन्य किसी मस्तिष्क के लिए मैं यही बात नहीं कह सकता। वास्तव में, दूसरों के मस्तिष्क है ही, यह पुनः अत्यन्त परोक्ष अनुमान है, क्योंकि मैं केवल दूसरों के ऐंद्रिय संवेदों को अपने मस्तिष्क के सम्बन्ध में सुन कर और दूसरों के मस्तिष्क को अपने ऐंद्रिय संवेदों के साथ उन का मिलान कर अपने मस्तिष्क के चाक्षुष रूप का अनुमान करता हूँ और दूसरों के अन्तः संवेदों का। इस प्रकार मैं विश्व में ऐसी घटनाओं के अस्तित्व की कल्पना पर पहुँचता हूँ जो मेरे निज के अस्तित्व से स्वतंत्र हैं।

जैसाकि स्पष्ट है, हम एक चक्कर से बाहर नहीं निकल सकते, हम यह प्रमाणित नहीं कर सकते कि यह सब मात्र मेरे ही संवेद क्यों नहीं हैं।

और ये मेरे संवेद विशुद्ध संवेद ही क्यों नहीं रह सकते। किन्तु इस स्थिति को पचा सकना मैं असंभव पाता हूँ। इसके पक्षमें एक तर्क यह भी है कि मेरे संवेदों में जो एक संगति है वह इन संवेदों से 'बाहर' किन्हीं घटनाओं के कारण है जब कि मेरे स्वप्न सम्बन्धी संवेदों में प्रत्यक्ष विसंगति इस बात का विश्वास मुझे देती है कि ये संवेद 'संगत' संवेदों से भिन्न कारणता रखते हैं। इस सम्बन्ध में हम पीछे देख आए हैं। मुझे यह पचा सकना कुछ असंभव सा जान पड़ता है कि मेरे संवेदों के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अन्य संवेदों का अस्तित्व तो तर्क सम्मत भी जान पड़ता है। मानलीजिए, यह विश्व केवल संवेदों का संकलन मात्र ही है। 'मैं' भी संवेदों का संकलन हूँ। अन्य संवेदों के अस्तित्व में मेरे संदेह का आधार यह है कि वे परोक्ष हैं, मेरे संवेद प्रत्यक्ष हैं। किन्तु यह स्थिति भी अतर्क सम्मत है क्योंकि वे संवेद जो संकलित रूप में 'मेरा' निर्माण करते हैं सम्बन्ध स से शृंखलित हैं, इसी प्रकार ऐसी अन्य भी असंख्य शृंखलाएं हो सकती हैं जो $स_२$....$स_३$.... $स_न$ से शृंखलित हों, यह केवल अनुमान की बात नहीं है, प्रत्युत् विनिश्चयात्मक वितर्क है। इन शृंखलाओं में भी एक सम्बन्ध ब की कल्पना संगत है, जिसे कि हम सह-अस्तित्व का सम्बन्ध कह सकते हैं। सम्बन्ध यद्यपि वास्तविक अस्तित्व होता है किन्तु यह परिवर्तमान भी है—ब सम्बन्ध कभी भी (स) सम्बन्ध भी हो सकता है। अतः हम 'अपने' संवेदों से स्वतंत्र संवेदों के अस्तित्व में संदेह शील होने का कोई कारण नहीं देखते। हमारे कारणता सिद्धान्त के अनुसार, इस सम्बन्ध विपर्यय की व्याख्या की जा सकती है और इस प्रकार संवेदन की कारणात्मक व्याख्या दी जा सकती है। अब मानलीजिए, मेरे चाक्षुष संवेदन में 'दो तारे' दीख पड़ रहे हैं। इस संवेदन का भौतिक देश में वहां स्थान है जहाँ मेरे मस्तिष्क सम्बन्धी अन्तःसंवेदों का, किन्तु मनोवैज्ञानिक देश में ये वहां हैं जहां मैं चलकर कुछ देर में पहुँच सकता हूँ। इस स्थिति में इन दो देश-कालों के समीकरण में कठिनाई उत्पन्न होती है। अब यदि ये 'दो तारे' मनोवैज्ञानिक देश के समान ही देश में दो भिन्न स्थितियां रखते हैं तो इन का समन्वय मेरे संवेद के देश से नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार काल के सम्बन्ध में भी यह समस्या रहती है।

किन्तु इस कठिनाई का समाधान इस प्रकार हो सकता है कि संवेदों की करण-शृंखला स२.... $स^न$ जिनका स१ शृंखला से सम्बन्ध ब है जब इससे $(स)_१$ सम्बन्ध में एक साथ आती हैं उस समय मैं दो तारे देखता हूँ।

यह दो तारे संवेद-श्रृंखला स१ में एक ही संवेद हैं और इन का एक ही देश और काल है। किन्तु इस समस्या का समाधान विश्लेषणात्मक वैज्ञानिकता-वादी प्रणाली से संभवतः नहीं हो सकता जिसमें कि "वह मेज है" इस वाक्य का विश्लेषण संवेद की क्रिया, संवेद विषय (Sensa) तथा स्वलक्षण सत्ता (Ontological Existence) में किया जाता है। यहाँ 'दो तारे' इस संवेद में संवेदन की क्रिया जब कि एक है, संवेद विषय दो हैं और इसी प्रकार स्वतंत्र सत्तात्मक अस्तित्व भी, जिससे संवेद-विषय रहस्यमय ढंग से बँधे हैं, दो हैं। किन्तु जैसा कि हमने पीछे देखा है, वह अन्य दृष्टियों से भी विचित्र और असंभाव्य है।

इन संवेदों को हम घटनाएँ कहते हैं, और इनका देश और काल में अत्यन्त लघु विस्तार है। हमने अब अपने संवेदों से बाहर भी घटनाओं का अस्तित्व स्वीकार किया है, जिनके समूह को हम मेज, मस्तिष्क, अथवा हाथ कहते हैं। किन्तु क्या हम इन घटनाओं को 'अपने संवेदों' के समान ही संवेद मानने का कोई निश्चित कारण रखते हैं ? संभवतः नहीं, किन्तु इस निषेध से अनेक समस्याएँ उत्पन्न हो उठती हैं।

भूत विज्ञान, जो कि पदार्थ का प्रयोगात्मक दर्शन है, हमें बाह्य घट-नाओं के सम्बन्ध में गणितात्मक तथा प्रयोगात्मक शब्दावली में कुछ बताता है। इस विज्ञान के अनुसार भौतिक घटनाओं की प्रकृति गणितात्मक है। इस अवधारणा के तीन लाभ हैं--प्रथमतः इससे हमारे प्रत्यक्षों का, जो कि मूलतः विषयी निष्ठ हैं, एक 'सर्व समन्वयात्मक' रूप निर्धारित किया जा सकता है, और दूसरे, तथा कथित विषय-निष्ठ अथवा 'स्वलक्षण' घट-नाओं की प्रयोग सम्मतता का विघात नहीं होता। तीसरे, इससे संवेदों के वैविध्य की एक पूर्ण व्याख्या दी जा सकती है। किन्तु जैसा कि विज्ञान की इस स्थिति में स्वीकार कर लिया गया है, गणितात्मक प्रकृति (गणितात्मक विश्व) वास्तव में हमारे प्रत्ययों का ही प्रतिबिम्ब है। और जो आधार भूत और स्वतंत्र अस्तित्व है वह अविश्लेष्य, अप्रायोगिक. और हमारी अवधारणाओं की सीमा से परे हैं। जैसा कि इडिंगटन कहते हैं--"स्ट्रक्चरल यूनिट (Structural unit) इलेक्ट्रान या प्रोटन है जो कि मौलिक अवस्था में अवस्थित है, न कि जो कि मौलिक अवस्थाओं के समवाय में निरूपित होता है। जब एक कण अन्य कणों से प्रकम्पित किया जाता है, उस समय उसकी मौलिक अवस्थाएँ नहीं प्रकम्पित होतीं, इसका ढांचा वही रहता है जो कि उस समय होता है जब कि वह अपने परिवेश से पूर्णतः पृथक्कृत होता है।

प्रकम्पन केवल विभिन्न मौलिक अवस्थाओं की सम्भावना (Probability) के वितरण में होता है। ये सम्भावना लहरें और कुछ नहीं हमारे संवेद ही हैं और आधार भूत कण (केंद्र) केवल अभ्युपगम है जो कि सम्भावना लहरों के समन्बय को सहज बना देता है। अब यदि इन कणों को स्वतंत्र अस्तित्व माना जाए तो इसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं, क्योंकि हम इससे सम्बन्धित वाक्यों को कोई अर्थ नहीं दे सकते।" "यदि हम कहें कि विश्व संवेद्य और असंवेद्य उभयविध है तो असंवेद्य वह है जिसे हम कभी नहीं जान सकते। अतः उसके अस्तित्व के सम्बन्ध में हमारे पास कोई प्रमाण नहीं हो सकता, और जब भी कभी हम उसे जान सकेंगे, वह हमारे संवेदनों का भाग होगा। अतः जो विश्व को उभयविध विभाजित करने का प्रयास करते हैं वे असंगत हैं क्योंकि हम वहाँ केवल चैतन्य गुणों के आधार पर ही यह विभाजन करते हैं। "प्रायोगिक और आनुभविक आधार पर हम संवेदो से स्वतंत्र विश्व की कल्पना नहीं कर सकते। भूत विज्ञान में बहुत सी ऐसी अवधारणाएं और 'तत्व' हैं जो संवेदों के विषय नहीं हैं किन्तु उनकी भी संवेदों के आधार पर ही व्याख्या की जाती है—अर्थात् वे संभाव्य संवेद हैं। संभाव्य संवेदों की यह कल्पना सार्वभौम मन की कल्पना को प्रेरित करती है, जिसके आधार पर कि हमारे संवेदों से स्वतंत्र 'वस्तुओं' की कल्पना को संगति दी जा सके। 'मैं देखूँ या न देखूँ, मेज वहाँ है', यह पदार्थ की कल्पना के लिए आधार भूत महत्व का है, किन्तु असंवेद्य अस्तित्व की बात को कोई संगति नहीं दी जा सकती। अतः मेज को हम संवेदों का समवाय भी कह सकते हैं।" वर्कले समझता था कि संवेद के होने के लिए किसी अधिकरण (मन) की अनिवार्य आवश्यकता है, अतः उसने एक सार्वभौम मन की कल्पना की जो हमारे मनों को संवेद भेजता है। इडिंग्टन ने भी इस अभ्युपगय (Hypothesis) को तार्किक रूप से उपयुक्त माना है। किन्तु हमारे विचार में, यह तार्किक रूप से ठोस होते हुए भी असंभाव्य (Unplausible) है। प्रथमतः, सार्वभौम मन की कल्पना भी आनुभविक और प्रायोगिक (Emperical) आधार नहीं रखती और न रख सकती है, क्योंकि वह अनिवार्य रूप के असंवेद्य ही रहेगी। तार्किक आधार पर भी इस पर आपत्ति की जा सकती है: बर्कले हमारे संवेदों को सार्वभौम मन में कल्पित और उसके द्वारा हमारे मनों में प्रेरित अथवा प्रेषित मानता है। किन्तु यदि हमारे संवेदों के होने के लिए उनका किसी अन्य मन में होना आवश्यक है तो वह मन निश्चय ही हमारे मन से भिन्न है, अन्यथा उस मन में संवेदों के होने के लिए भी उनका किसी

अन्य मन में होना आवश्यक है । किन्तु संभवतः बर्कले का अभिप्राय अनिवार्य रूप से यह नहीं है, उसका अभिप्राय संभवतः इतना ही है कि संवेदों के कारण और गुण सभी कुछ मानसिक हैं। सार्व भौम मन का अभिप्राय हो सकता है–मनों का समवाय । किन्तु स्पष्टत: सार्वभौम का इतना मात्र अर्थ भी नहीं है । उसके अनुसार 'मेज वहाँ है, मेरे संवेदों से स्वतंत्र, किन्तु वह पुनः संवेद ही है, जो कि सार्वभौम मन में है । 'इस प्रकार सार्व भौम मन संभाव्य संवेदोंका समवाय ही है जिसे यहाँ एक ठोस और वास्तविक अस्तित्व प्राप्त है और इस प्रकार कोई संवेद संभाव्य न रह कर सभी वास्तव हैं ।

सार्व भौम मन की कल्पना का कारण अभ्युपगमिक वस्तुओं की हमारे संवेदों से स्वतंत्र सत्ता का प्रतिपादन करना है । वस्तुओं की एक विशेषता उनकी हमारे संवेदों से स्वतंत्रता और सर्व सामान्यता है। मेज़ को जब मैं नहीं भी देखता तब भी वह रहता है (स्वतंत्रता), और जिस मेज़ को मैं देखता हूँ अन्य भी देखते हैं अथवा देख सकते हैं (सर्वसामान्यता) । यह मेज़ के लिए हमें कम से कम स्वीकार करना है, चाहे कोई भी व्याख्या हम इसकी क्यों न करें । इसके बिना मेज़ का कुछ अभिप्राय नहीं हैं ।

इस स्थिति की तर्क सम्मत व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है कि हम मेज़-कुर्सी इत्यादि को घटनाओं का समवाय मानें। संवेद, जैसा कि हमने पीछे देखा है, एक घटना है और इसका गुण वह है जो वह है; इस प्रसंग में चैतन्य अथवा भावन इत्यादि को कोई अर्थ नहीं दिया जा सकता। अतः संवेद भी घटनाएँ हैं और इनमें इनके सह-संबन्धों के अतिरिक्त कोई विशेषता नहीं है, जो इन्हें भौतिक घटनाओं से पृथक् कर सके । भौतिक घटनाएँ एकत्र अथवा अनेकत्र विद्यमान हैं और कारण-शृंखलाओं के रूप में व्यापारित होती हैं। जब एक कारण शृंखला (मेज़) मेरी आँख में कारण शृंखलाओं को व्यापारित करती हैं तो ठीक परिस्थितियों में एक संवेद घटित होता है। मेरा यह मेज़ का संवेद ऐसी घटना है जो प्रदत्त (Given data) है, इससे पहले की घटना शृंखला केवल अनुमान है । यह कारण शृंखला वास्तव में ही मेरे संवेदों के समान है या नहीं यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। किन्तु यह अनुमान सुविधा जनक है कि अन्य घटनाएं मेरे संवेदों से मौलिक रूप से भिन्न नहीं होंगी । 'मौलिक रूप से भिन्न नहीं' कहने का अभिप्राय यह है कि यदि मेरे विशेष संवेद का रूप क है तो आवश्यक नहीं कि शेष घटना-शृंखला का रूप भी क ही हो, संभव है यह क हो, किन्तु यह क से मौलिक रूप में कभी भिन्न नहीं हो सकता ।

इस प्रकार पदार्थ घटनाओं के समवाय रूप में विश्लेष्य है और इसी प्रकार मन भी। क्वांटम सिद्धान्त के समान ही घटनाओं का विभाजन दो प्रकार से किया जा सकता है—प्रत्यक्ष (वास्तव या सम्भाव्य) तथा स्वलक्षण, जैसे मेज़ (क्वांटम सिद्धान्त में इलेक्ट्रन-प्रोटन), जो कि संवेद की सीमा से बाहर है और इसीलिए जिसका अस्तित्व केवल कल्पना है। उसकी आवश्यकता केवल अनेक संवेदों के सह-सम्बन्ध के लिए है।

इस प्रकार संवेद्य और स्वलक्षण घटनाओं के सम्बन्ध को हम कारण सम्बन्ध कह सकते हैं। जैसा कि हमारे पिछले निबन्ध से स्पष्ट है, कारण सम्बन्धों का अभिप्राय उत्पादक और उत्पादित का सम्बन्ध नहीं है प्रत्युत् घटनाओं के दृष्ट और द्रष्टव्य अथवा उनके आधार पर अनुमानित सम्बन्धों में विश्वास से है। यह विश्वास पूर्णतः शरीर वैज्ञानिक स्तर का है, जिसे कि हम पीछे एनिमल फेथ कहते आए हैं। किन्तु पदार्थ और मन की हमारी उपर्युक्त व्याख्या के अनुसार शरीर स्वयं घटनाओं का समवाय है, अतः विश्वास की व्याख्या भी इन घटनाओं के प्रसंग से ही होनी चाहिए। इस अवस्था में हम कहेंगे कि दो संवेदों के निश्चित अनुक्रम में घटित होने पर एक कारण श्रृंखला व्यापारित होती है जो कि उस कारण श्रृंखला का एक भाग बन जाती है जिसे हम समवेत रूप से शरीर कहते हैं। पुनः जब भी कभी नवीन घटना, जिसे हम पूर्व संवेद युगल की प्रथम घटना के समान कहते हैं, घटित होती है तो उससे अनुगमित कारण श्रृंखला भी उस कारण श्रृंखला के 'समान ही' होती है जो पूर्व संवेद युगल के घटित होने पर अनुगमित हुई थी। मान लीजिए पूर्व संवेद युगल अ+आ है और उससे अनुगमित कारण श्रृंखलाएँ, $र^{न}$ जो कि काल $अ^{न}$ पर घटित होती हैं। अब पुनः अ' के $क^{न'}$ पर घटित होने पर भी यदि $र^{न'}$ कारण श्रृंखला अनुधावित होती है तो कहा जाएगा अ+आ में कारण सम्बन्ध है। इस व्याख्या से संवेदों के बाह्य घटनाओं से कारित होने पर वह आपत्ति नहीं हो सकती जो ब्रॉड ने की है, क्योंकि कारित होने का अभिप्राय उत्पादित होना नहीं है।

कारण सम्बन्धों की यह व्याख्या मन और पदार्थ के भेद को समाप्त कर देती है। इसे ज्ञान मीमांसात्मक (Epistemological) व्याख्या भी कहा जा सकता है, किन्तु जैसा कि हमने देखा है, इसके अतिरिक्त और कोई व्याख्या तर्क सम्मत नहीं हो सकती। वस्तुओं की स्वलक्षण (Ontological) व्याख्या एकदम स्वतंत्र रूप से नहीं हो सकती, यह केवल आधुनिक तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान ने ही प्रमाणित नहीं कर दिया है प्रत्युत् भूत वैज्ञानिक ने भी

पाया है कि अब तक भूत विज्ञान के विषयों को स्वलक्षण मान कर वह भ्रान्त धारण में रहा है। इस विज्ञान ने इस नवीन दर्शन को स्वीकार कर अपनी प्रगति की सम्भावनाओं को शतधा प्रवर्द्धित कर लिया है। इसका अर्थ यह नहीं कि आज एक निश्चित और सर्वमान्य दर्शन का विकास कर लिया गया है, किन्तु यह ठीक है कि एक निश्चित और बहुमान्य प्रणाली का विकास कर लिया गया है। इस प्रणाली के आधार पर इस दर्शन की अनेक संभव व्याख्याएं की गई हैं, जिनमें से कुछक की चर्चा इस निबन्ध में की गई है। इसमें से कोई भी व्याख्या अभी अन्य से अधिक संभाव्य नहीं हो सकी है, किन्तु इस प्रणाली का एक मानदण्ड यह है कि जो व्याख्या संवेद और कथित पदार्थ में सर्वाधिक तर्क सम्मत स-सम्बन्ध प्रस्तुत कर सके वह सर्वाधिक मान्य है।

REFERENCES

1. *Bergson H.* — Matter and Memory.
2. *Broad C. D.* — Mind and Its Place in Nature.
3. *Broad C. D.* — Scientific Thought.
4. *Eddington A. S.* — Philosophy of Physical Science.
5. *James Jeans* — Physics and Philosophy.
6. *Russell B.* — Our knowledge of the External World.
7. — Mysticism and Logic.
8. — The Analysis of Mind.
9. — The Analysis of Matter.
10. *Santayana* — Scepticism and Animal Faith.
11. *Santayana* — Essays in Critical Realism.

अनुक्रमणिका

अनुमान (की अतीतोन्मुखता) २५५-५६ (निगमनात्मक) २५१-५४, २६१ ।
अन्तरुकसाहट--१२-१३, ६४, १८४ ।
अन्तः प्रेरणा--१, १३, ६८ ।
अन्तर्वासना--६५-६६, ६६ ।
अन्तः शारीरिक (रासायनिक परिस्थितियाँ) ८ (प्रयास) १३ ।
अन्तर्मन १८५-८६ ।
अन्तिम कारण ङ ।
अन्वय---२८४ ।
अभावानुभूति ७३ ।
अभ्यास १८६ ।
अभ्यासजन्य व्यवहार १६३ ।
अवस्था (लक्षण) २६७ ।
अरविन्द–ग, च ।
अस्तित्त्व मूल्य १, ७५-६, १५१ ।
अस्तित्त्व रक्षा (अपकारक) ६६, ७०, ७६ (उपकारक) ६९, ८५, ८६, ८८ ।
आईंस्टीन, अल्बर्ट १७१, १८१, १९१, २५०, २६६ ।
आॅर्गेनिज्म (का सिद्धान्त) घ ।
आत्मव्ययी प्रक्रिया २०, २१, ३५, ५६, ६३, ६५, ६८-६, ७०, ८४, १०६, १४४ ।
आवेगात्मक प्रतिक्रिया ५६, ८५, ८६, ८७, १८७ ।
इटार्ड १८१ ।
इडिंग्टन आ० स०, प, भ, म, १३८, १८९, २४९-५०, २५२, २५६, २६१, २६४-६५, २६८, २७०-७१, ३१३ ।
उकसाहट–ड, २०, ४७, ५६, ८७, १८४-६, २१८ ।
एंडर्सन १०६, १५२ ।
एडलर १९० ।
एलनवाइटल ख-ग ।
कल्पना (मनका कर्तृत्व २४४) ।

कल्पना और संवेद में अन्तर (कारण सम्बन्धों के आधार पर) २२२-२४।
काडॉव १९६।
काम वासना १८-९, ३२-४४।
काटसियन २२१।
कारण-कार्य की सुविधापेक्षता २५६-५८, २६७।
कारण सम्बन्ध २४७-४८ (निर्धारिततावाद) २४८, (निर्धारितता और सम्भाव्यता) २५१-५२।
—(स्वरूप) २५२ (सम्बन्धों की नैरन्तर्यता) २५७, (–आगम की निगम-पद्धति से प्रशंसा) २६७, (निगमनात्मक अनुमान) ३०५।
कारण सिद्धान्त (रसल के अनुसार) २९७।
कैनन ५७।
कैल्लर २८।
केरापेटियन, वी० के० १२३।
कोट्ट १५७।
कोट्टलर थ।
क्राटज़िग २१९।
गान्धी, महात्मा १७२।
गास्पेरी १६७।
गुण (मौलिक और प्रतीयमान) २९०।
गोड्डर्ड १७२।
गोल्डश्मिट १६१, १६५।
ग्रोमोश्यूस्की १२३।
घटनाएँ (मानसिक) य-र, २८६, (शारीरिक घटनाओं से भेद) २२१ २३, (चेतन और अचेतन) २८८, २८९।
चार्वाक २६१।
चीज़मैन ६१, ८१, १९९।
चुनाव–ख।
चेतन और अचेतन घटनाएँ (भेद) २४५-४६।
चैतन्य (की व्याख्या) २८७, (गुण अथवा प्रक्रिया) २८७।
जेम्ज-लैंग्ज सिद्धान्त (आवेग का) ५६-७।
जेम्जजींज़ २४८-५०, २६३, ३०५।
जेम्ज़, विलियम २८७।

जनेट, पीअर ढ।
जेस्टेल्ट मनोविज्ञान फ।
ज्ञान ञ-ट, (सहानुभूतिक) फ, (स्ट्रक्चरल और अपरोक्ष) म (–की सीमाएँ) २७१।
टिंबर्जन २०, ६०, ६२, ६५, ७३, ८१, १५८, १९९, २०४, २११।
ट्रैडगोल्ट २८२।
डन १०४, ११०, ११५, १२०, १२७, १३४।
डारवीनियनिज़्म ख, १४१, १६७–६।
डारविन ७१, ८१–४, ९५, १००–१, १३९, १९१।
डेकार्ट २८६।
डेमिल्हा, लायड–१०३।
डोबज़्हेंस्की १०२, ११०, ११५, १२२, १२५–६, १४०, १४६, १५१, १६५।
ड्रेवर २८९।
तृप्ति का सिद्धान्त ८, १८–१६।
द्वैतवाद २६५।
निगमन २८३।
निर्धारित प्रक्रिया ड, ढ, ण, त-द, २७२।
न्याय दर्शन २६१।
पदार्थ (विश्लेषण) २८९-६५।
परिवृत्ति (की सापेक्षता) ७४।
पावलॉव झ, ड, ढ, ण, त-ध, १५, २७२।
पोरूस, जे० १५४।
प्रक्रिया १, ९, २०-१, ३९, ७४, १८३, १८६-८७, (सजीव) १४, १८५, (मैथुन) ३२ (भय की आवेगात्मक) ७०।
प्रक्रिया केन्द्रीकरण २४, ६७, ६९, ८७, ९५।
प्रक्रियात्मक (कारण) ८०, (सम्बन्ध) १५, १६, ६५-६, ६८-९, १९१, २१२-१८, (व्यय) ९६, (विषय) ६६, ६८, (व्यवहार) ७०, ८५, (धृकेल) ७१, (योग्यता का चुनाव) ७३।
प्रक्रिया (शृंखला) ६७, (संस्थान) क, १०६, (निर्धारण) १८१।
प्रतिक्रियात्मक (प्रक्रिया) २१, १०६, (व्यवहार) ७०, ८५, प्रवृत्ति १८६-७, १९०, (परिभाषा) १६४-६, (सामाजिक) १९६-२०६।
प्रतिलिपि-सिद्धान्त २७२।
प्रातिभ ज्ञान २७२।

प्रैकहैम (डा० और श्रीमती) २१५ ।
प्रोकसाहन-निरोध—ढ-ण।
फ्रायड-२१७, २४५ ।
फ्रायडियन (मन)-१६० ।
फेबर-२१४।
बर्गसां—ग, घ, ९०-२, ९४ १४५, १८५, १८८, २१४, २२८, २२९, २३२, २३४, २६८-६९, २७१, (पदार्थ की परिभाषा) २९३ ।
बर्कले २८३, २८९, २९२-९३,३१४-१५ ।
बाह्य उकसाहट—१२, ५६, ६३ ।
बीच-१९, ३०, ३९-४१, ४४ ।
बीटी (जान्)-७६, ९४ ।
बीडल-१६१ ।
ब्रॉड सी०डी०—फ, २४५, ३०१-४,३१०, (संवेद की व्याख्या) ३०१-४ ।
ब्रिजमैन २५६ ।
ब्रूकनर २११ ।
ब्रोक-२१२ ।
मन—ख, घ, य (अतिभौतिकता का निषेध) २२३।
मर्फी—६५, १७७ ।
मानसिक अवस्थाएँ—क ।
मानसिक घटनाएँ—य, र, २११-२३ (भौतिक घटाओं से भेद) २९२ ।
मानसिक (प्रक्रिया) ६५ (प्रयास) १३ (योग्यता) १७०-८० ।
माल्थस-१३९ ।
मातृस्नेह (तृप्ति का सिद्धान्त) १८- १९ ।
मिल्ने १४४।
मुद्रण सिद्धान्त (trace theory) २२६-२७ ।
मुल्लर—१०३ ।
मूर० जी० ई०—२३६ ।
मैंडल—१०१'
मैंडलिज्म—मोर्गनिज्म ११६- १७, १७६ ।
मोर्गनटी०, २३, २९, ४०, ८१, १६४, १६८-६९, १७० ।
यंग-४६ ।
यांत्रिक प्रक्रिया १३, ७४, ९९, १८४-८५ ।

यांत्रिक विकास ८८–९७ ।
यांत्रिक व्यवहार ९६ (और प्रवृति में भेद) १९५।
रसल ई० एस०–१४, ४७, ६३, ६८।
रसल बर्ट्रंड-२०९, २२४-२६, २२९, २३०, २३२, ४१, २४४, २५१, २५३
२५७,५८, २६७, २९५-९९, ३०१, ३०४, ३०६, ३०८, ३१०।
रायेस–छ
रासायनिक परिस्थिति—१३ ।
रिटर—२१३ ।
लामार्क-१००-१ ।
लाइसेंको-१०९, ११४, ११७-१८, १२३, १२५ ।
लामार्कियन सिद्धान्त–१८१ ।
लेपलेस–२४९-५०, २६२-६३।
लेश्ली-१९५-९६ ।
लोट्सी-१०६ ।
लोरेंस-६४, २०५, २१९ ।
ल्लॉयड मोर्गन-१९४।
वस्तु की स्वलक्षणता-३१०-१२ ।
वाकर के०-३९, ४२, ५१ ।
वाट्सन-झ, ल, ड, ध, न ।
वासना (मातृत्व)–१८-१९, (काम) १८, ३२–४४, ६६।
वासना की धकेल–८, ६४, ७०, ८६-७, ६६, ९९।
वासनोद्रेक-३५।
वासना प्रेरित–१, (प्रक्रिया)–८५ ।
वासना-व्यय-१३, ३४, ५१, ६४, ६९, ७०, ९९।
वासनाव्ययी प्रक्रिया–१४, ६४, ८४, ८७ ।
वासनात्मक अभिव्यक्ति–१८७।
वासना तृप्ति–१४, १८, ३३, ३५, ७३, ७४ ।
वासनात्मक व्यवहार–६३, ७० ।
वुडवार्ड–२८ ।
विकासवादी मनोविज्ञान (Genetic Psychology)–ज-झ ।
विचारणात्मक व्यवहार–१९३ ।
विषय (संवेद से अभेद)–२८७-८८, (स्वतंत्रता की व्याख्या)

विश्लेषण (a Priori or a Posteriori Principale ?)–ब, म, (मनोवैज्ञानिक तथा भूतवज्ञानिक)–म ।
वेदान्ती-२२१ ।
वेलेंस (valance) ६२।
वैचारिक प्रक्रिया–१८४, (विचारणा) १८८-९ ।
व्यक्तित्व (निर्माण)–१८१ (साधना) १९१ ।
व्यक्ति-समाज संघर्ष-१९१ ।
व्यवहारवाद-ज, न, प ।
व्हाइटहैड—घ, च, १३८, २५८।
शक्ति स्रोत—६१
शल—१७४।
शारीरिक (तृप्ति)–१६०, (घटनाएं) २२१, (पदार्थ में निहित) १६०।
शेरिंगटन—५६-८ ।
संतयाना–२९९-३०१, ३०३, (संवेद की भाषा) ३००, (सार की कल्पना) ३००-३०१ ।
स-सम्बन्ध और अ-स-सम्बन्ध–२६६ ।
संवेद–म-य, २८६, (सत्तात्मक मूल्य) २९८, ३०४-१० ।
सहज चुनाव (अपकारक प्रवृत्तियां)–७५–८, ८०–८७।
साधारणीकरण –१८८ ।
सामाजिक वासना–१९०–१९१ ।
सांवेदनिक उकसाहट–१७-१८, (नैनिक कारण) ।
सिन्नट-१-४, ११०, ११५, १२०।
सिम्प्सन–७३, ९३, १०१, १४०।
सिलेक्टिव सॉब्जेक्टिविज़्म-२७० ।
सुरक्षा मूल्य-१०७-८, १३०, १३२ ।
सुलिवान ज० व०–छ, थ ।
सोद्देश्यता–ङ, च ।
स्टोन-३९ ।
स्मृति (संवेद से अंतर)–२२२, (कारण सम्बन्धों की भौतिकता) २२३-३९, (-ज्ञान की भौतिकता) २४०-४४ ।
स्वप्न-२१७-१८ ।

हम्बर्जर-१६५ ।
हार्मंज़ (व्यक्तित्व पर प्रभाव)–२-४९, १७१, १८० ।
हाल्डेन-च, छ ।
हालैंड-११५ ।
हीज़न्बर्ग-स्क्रॉडिंजर (क्वांटम सिद्धान्त) २९२ ।
हैब- ६४, १४६ ।
होल्ट–१८६ ।
ह्यूम (कल्पना और संवेद में अन्तर)–२२१-२२।

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ संख्या
समान्य	सामान्य	ऊपर से ६	१६३
एसी	ऐसी	नीचे से १२	१६४
अधिक	अधिक	नीचे से २	,,
ह	है	ऊपर से ४	१६५
चाहत	चाहते	ऊपर से १	१६६
ह	हैं	ऊपर से १३	,,
गुंजाइस	गुंजाइश	ऊपर से १४	१६८
दृष्य	दृश्य	नीचे से ६	,,
आकस्मि	आकस्मिक	ऊपर से ८	२०५
चींड़ियाँ	चिड़ियाँ	ऊपर से ६	,,
इत्यदि	इत्यादि	,,	,,
अन्तरानुभूति	अन्तरानुभूति	नीचे से १५	२०९
स्थितियों	स्थितिओं	ऊपर से १३	२१२
पौ	पौधे	अंतिम	,,
ो	तो	प्रथम	२१३
वासाओं	वासनाओं	ऊपर से १२	२१६
लाभग	लगभग	ऊपर से १०	२१७
देखेंगें	देखेंगे;	ऊपर से ७	२२२
निहित है;	निहित ह,	नीचे से १३	२२२
Parallalism	Parallelism	ब्रैकेट में	२२४
सुई	सूई	नीचे से १२	२२४
−१ + ध	−२ + ध	नीचे से २	२२५
अधार-प्रदेश	आधार-प्रदेश	अंतिम	२२७
ऊपर	—	नीचे से १३	२२८
सापक्ष	सापेक्ष	नीचे से ४	२२९
˜	हैं	ऊपर से ६	२३०
आधान	आधीन	ऊपर से ८	

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
अतीतानुभूति	अतीततानुभूति	ऊपर से १०	२३६
अनाभ्यास	अनाभ्यास	ऊर से ३	२४४
सहासन	सिंहासन	नीचे से ८	"
ार	बार	नीचे से ६	"
वरणात्मक	विवरणात्मक	नीचे से ५	२४७
काय	कार्य	ऊपर से १३	२४८
ठहरान	ठहराने	ऊपर से ६	२४९
रहा है किन्तु	रहा है, किन्तु	,, ,, ५	२५०
घन	$घ_न$	नीचे से १६	२५१
—कन	$क_न$	नीचे से १५	२५१
व्यवहारिक रूप से,	व्यावहारिक रूप से	अन्तिम	२५१
शक्ति	दबाव	ऊपर से १६	२५२
मिलाना अनुमित	मिलाना–अनुमित	ऊपर से ४	२५४
Knoweedge	Knowledge	ऊपर से ७	२५५
बदलने वाला	अनिश्चित	नीचे से १५ और १०	२५६
$घ^२$	$घ_२$ (सब निम्नसंकेतितकरें ५,८,९		२५६
विर्भाव	अविर्भाव	नीचे से १२	२५७
Psychologieal	Psychological	नीचे से ४	२६०
अत्यधिका	अत्यधिक	नीचे से ३	२६४
करते हैं।	करते हैं,	ऊपर से १३	२६५
पर्ण	पूर्ण	नीचे से २	२६५
अभ्युपगम(स्त्रीलिंग)	अभ्युपगम(पुल्लिग)	——	२६६
लाँ आॅफ़प्राँबेबिलिटी	लाॅ आॅफप्राँबेबिलिटी	नीचे से १४	२६६
तीव्रिता से,	तीव्रता से	नीचे से १२	२६६
अनर्धारितावाद	अनिर्धारिततावाद	नीचे से ११	२६६
Indeterminism	आदि उद्धरण	पृ० २६६ के नीचे	
प्राणियों पर	प्राणियों पर,	नीचे से ४	२६८
कहते हैं काल	कहते हैं "काल..	ऊपर से ४	२६९
नियमों को जो,	नियमों को, जो	नीचे के ११	२६९
प्राणी-मनुष्य	प्राणी—मनुष्य	ऊपर से ११	२७०
नबन्धों	निबन्धों	ऊपर से २	२७३

अशुद्ध	शुद्ध	पंक्ति	पृष्ठ
त्तें	लें	ऊपर से १३	२७४
Initial	Inherent	ऊपर से ३	२७५
धटना-स्मृति	घटना-स्मृति	ऊपर से ६	२७६
प्वाईंट प्रतिपादन को	प्वाइंट को	नीचे से ६	२७६
इस प्रकार की	इस प्रकार कि	नीचे से १४	२७७
चिन्ह	चिह्न	नीचे से ९-६-५	२७७
रूप से	रूप से और	प्रथम पंक्ति	२८३
होगा,	होगा	नीचे से ३	२८३
Associative	Of associations	ऊपर से ४	२८४
डेकार्ड	डेकार्ट	ऊपर से १६	२८८
सुविधापेक्ष	सुविधापेक्षी	नीचे से ६	२८९
सार्व ैम	सार्वभौम	नीचे से १४	२९७
टम्ज	टर्म्ज़	ऊपर से ११	३०१
सिश्लेषणात्मक	विश्लेषणात्मक	ऊपर से १३	३०३
निश्चात्मक	निश्चयात्मक	नीचे से ३	३०९